प्रेम नदी के तीरा

प्रवचन-क्रम

1. सामूहिक रेचन का महत्व..2
2. समर्पण के फूल...24
3. पहले सक्रियता फिर अक्रिया...39
4. धर्म को गुरु नहीं, शिष्य चाहिए..46
5. पति-पत्नी और प्रेम..56
6. गुरु होना आसान है, शिष्य बनना मुश्किल..62
7. ध्यानी को अभिनेता होना पड़ता है...73
8. हिंदुस्तान आध्यात्मिक देश नहीं है..85
9. शास्त्र को नहीं, समझ को आधार बनाएं...101 10..नींद और मौत एक जैसी होती है
.... 144
11..प्रामाणिकता सर्वोपरि है
.... 162
12...स्मृति के विसर्जन में चैतन्य का जागरण
.... 173
13...निर्णय न लें, उपलब्ध रहें
.... 197
14..इंद्रियों की जड़ें शरीर में
.... 212
15..जो बाहर से आया वह ज्ञान नहीं है
.... 224
16...लीला का अर्थ है वर्तमान में जीना
.... 248

प्रेम नदी के तीरा
पहला प्रवचन

सामूहिक रेचन का महत्व

प्रश्नः कई लोगों के मन में ऐसे कोई खयाल रहते हैं कि तीन दिन के शिविर से क्या हो सकता है? इनसान के जीवन में इतनी आसानी से कैथार्सिस वगैरह हो जाती है क्या? और इसकी कोई आवश्यकता वगैरह है कि ध्यान खुद ही अपने आप ही अपना रियलाइजेशन करने से, पृथक्करण करने से ही आता है। इसके बारे में जरा कुछ... । मैंने अपने ढंग से कुछ न कुछ तो बताया लेकिन आप जरा साफ... ?

तो, ध्यान आ सकता है, स्वयं से भी आ सकता है। लेकिन पृथक्करण से नहीं आएगा। बड़ा सवाल यह नहीं है कि हम अपने मन को एनालाइज करते हों। क्योंकि वह पृथक्करण, विश्लेषण करते वक्त में हमारा मन भी काम करता है। और यह सारा पृथक्करण हमारे ही मन को दो खंडों में तोड़ कर चला जाता है। तो न तो पृथक्करण से संभव है कि मन एक हो जाए, न ही चिंतन-मनन--उससे संभव है कि एक हो जाए। क्योंकि ये सारी क्रियाएं जिस मन से चलने वाली हैं, उसी मन को बदलना है।
एक ही व्यवस्था से हो सकता है कि न तो हम पृथक्करण करें, न हम चिंतन-मनन करें; वरन मन के प्रति हम धीरे-धीरे जागरूक होते चले जाएं। जागरूक होने का अर्थ यह नहीं है कि हम कोई निर्णय नहीं लेते कि क्या बुरा है, क्या भला है। हम कोई पक्ष-विपक्ष नहीं लेते। मन का यह हिस्सा बचाना है, यह अलग करना है। ऐसी भी कोई धारणा नहीं, जैसा भी मन है। बिना किसी भाव के, बिना किसी पूर्व धारणा के हम इस मन के प्रति जागते चले जाएं। अगर जागरण में थोड़ा सा भी पक्षपात हुआ मन में, तो मन खंड-खंड हो जाएगा।
तब दो हिस्से हम तोड़ लेंगे, अच्छे और बुरे का हिस्सा हम अलग कर लेंगे।
और जैसे ही मन टूटा कि ध्यान असंभव है। ध्यान का अर्थ ही है कि मन की समग्र अवस्था मिल जाए, अटूट अवस्था। टोटल अवस्था मिल जाए। तो अगर मैं बिना किसी पूर्व-धारणा के, निर्णय के, अच्छे-बुरे के खयाल के, शुभ-अशुभ के, जैसा भी हूं; इसके प्रति मेरे होने के दो ढंग हो सकते हैं। जैसा भी मैं हूं--इसके प्रति मैं सोया हुआ हो सकता हूं। और जैसा भी मैं हूं--इसके प्रति मैं जागा हुआ हो सकता हूं। निर्णायक नहीं, कोई जजमेंट नहीं। जो भी मैं कल तक करता रहा हूं, वह मैं सोते-सोते करता रहा हूं। आप पर क्रोध किया है तो बेहोशी में किया है। ऐसे ही हुआ है कि जब हो चुका है, जब मुझे पता चला कि यह क्रोध हो रहा है। और जब हो रहा था तो मुझे पता ही नहीं चला कि हो रहा है। पृथक्करण वाला आदमी कहेगा क्रोध बुरा है, इसे मन से अलग करो। चिंतन-मनन वाला आदमी कहेगा कि क्रोध बुरा है, उसका कोई पक्ष होगा। जागरण, अप्रमाद की जो व्यवस्था है, अवेयरनेस की जो व्यवस्था है, वह इतना ही कहेगी कि क्रोध हुआ है। और मैं दुखी क्रोध की वजह से नहीं हूं, दुखी हूं इस वजह से कि मेरे सोते-सोते हुआ है।
तो मेरी लड़ाई क्रोध से नहीं है, मेरी लड़ाई इस सोएपन से है। तो अगर हम अपने सोएपन से लड़ते चले जाएं और धीरे-धीरे हमारी प्रत्येक क्रिया हमारे होश में होने लगे, तो बड़े मजे की बात है कि कुछ क्रियाएं होश में हो ही नहीं सकतीं। इससे क्रोध नहीं हो सकता। इससे घृणा नहीं हो सकती, ईर्ष्या नहीं हो सकती।
तो मैं तो कहता ही रहता हूं कि जो जागरूक अवस्था में हो सके वही पुण्य
है, वही शुभ है। और जिसके होने के लिए निद्रा अनिवार्य हो--वही पाप है, वही अशुद्ध है। यानी सोया हुआ होना जिसके लिए अनिवार्य भूमिका बने, जिसके बिना हो ही न सके; वही पाप है। तो स्वयं ध्यान फलित हो सकता है। व्यवस्था जागने की करनी पड़ेगी।
साधारणतः यह संभव नहीं हो पाता। क्योंकि हमारा वह जो सोया हुआ चित्त है, वह इसका भी स्मरण नहीं रख पाता कि हम जागे रहें। वह इस बात के प्रति भी सो जाता है। कभी-कभी खयाल आता है कि निर्णय किया था कि हम जागते रहेंगे।

लेकिन यह निर्णय भी तो हमने जागा हुआ नहीं किया है। यह निर्णय भी तो हमारी नींद का ही निर्णय है। इसलिए यह बात तो बिल्कुल ठीक लगती है लेकिन हो नहीं पाती।
हो सकती है, वह सिर्फ संभावना है। और कभी लाख-दो लाख आदमी में एक आदमी
को हो भी जाता है। साधारणतः यह बात लगेगी बिल्कुल उचित लेकिन हो नहीं पाएगी। न होने में दो-तीन कारण होंगे। एक कारण तो यह होगा कि हमारा जो निर्णय है जागे होने का, वह भी सोए हुए आदमी का निर्णय है। हम इसे भी तो चौबीस घंटे याद नहीं रखने वाले, यह भी तो हमें भूल जाएगी पांच क्षणों के बाद। अब यह हमने निर्णय लिया है, निर्णय लेकर हम झुके भी नहीं हैं और घटना आ जाएगी और हम भूल जाएंगे कि हमने निर्णय लिया है।
यह जो, एक तो कठिनाई यह है कि सोए हुए मन से लड़ना है, लेकिन सोया हुआ मन
ही तो निर्णय लेगा। दूसरी कठिनाई यह है कि हमारे मन का जो अर्जित संस्कार है, वह जो कंडिशनिंग है, वह बाधा डालेगा। यानी वह ऐसे ही है जैसे हम बीमार आदमी से कहें कि तुम स्वस्थ हो जाओ। राजी वह भी होगा। सब बीमार भी स्वस्थ होना ही चाहता है। वह भी कहेगा कि बिल्कुल सहमत हैं आपसे, बात बिल्कुल ठीक कहे। लेकिन ये जो बीमारी के कीटाणु भरे पड़े हैं, यह जो बुखार चढ़ा हुआ है, इसका क्या करूं, स्वस्थ तो मुझे भी होना है।
जब भी हम किसी आदमी से बात कर रहे हैं तो वह आदमी खाली नहीं है, वह आदमी भरा हुआ है। इस जन्म के संस्कार हैं और अगर हम और गहरे देखें तो और जन्मों के संस्कार हैं। वे सब भरे हुए हैं। वह बोझ उसके सर पर है। तो यह जो बोझ है, यह बाधा डालेगा। क्योंकि कल तक जो मैंने किया है, अनंत बार जिसे किया है, उसकी गहरी पकड़ और उसके सांचे बन गए हैं, उसके ग्रूव्ज हैं। मुझे पता ही नहीं चलता और वही हो जाता है।
क्योंकि स्वभाव का, मन का नियम है कि जहां लीस्ट रेसिस्टेंस है, मन वही करेगा। जीवन का ही नियम है। अगर मुझे यहां से उस दरवाजे तक पहुंचना है, तो मैं सबसे कम दूरी चुनूंगा। यह स्वभावतः। सीधी से सीधी रेखा चुनूंगा। सीधी रेखा का मतलब ही यह है कि दो बिंदुओं के बीच में निकटतम जो दूरी है, कम से कम जो दूरी है।
उसको हम पागल कहेंगे, जो पच्चीस चक्कर लगा कर उस जगह पहुंचेगा। और निकटतम और सरलतम वही है, जो मैंने किया है। क्रोध मैंने किया है करोड़ों बार। अब क्रोध मैंने कभी किया ही नहीं। तो करोड़ों बार किए गए क्रोध की अपनी नहर बनी हुई है, इधर उठ ही नहीं सकती कि उधर बही नहीं। वह नहर बिल्कुल तैयार है, वह प्रतीक्षा कर रही है। दूसरी कोई नहर नहीं है, तो ऑल्टरनेटिव बहुत कम है। संभावना यही है कि जब क्रोध की स्थिति उत्पन्न हो तब आप फिर क्रोध कर जाएं। हालांकि फिर पछताएंगे, यह पछताने का भी ग्रूव है। यह हर बार क्रोध के पास का बगल का चैनल है, जो कि हर बार आपने क्रोध किया है और हर बार आप पछताए भी हैं।
तो क्रोध का भी एक रास्ता बना हुआ है। फिर क्रोध के बाद पछताने का रास्ता भी बना हुआ है, वह उसी की छाया है। इसमें भी आप कोई नया काम नहीं कर रहे हैं। पहले भी क्रोध किया था, पहले भी पछताए थे; अब फिर क्रोध किया, अब फिर पछता लिए। उसी के पास में कसम खाने का रास्ता भी बना हुआ है, वह सब बने हुए रास्ते हैं। पहले भी कसम खाई थी कि अब क्रोध न करूंगा, अब फिर कसम खा लेंगे कि अब क्रोध न करूंगा। लेकिन एक बात बिल्कुल खयाल में न आएगी कि यह सब वही हो रहा है जो हो चुका है बहुत बार। और जितनी बार दोहरता जाएगा, उतना मजबूत होता चला जा रहा है, एक।
तीसरी बात, जो कुछ भी हमने किया है उसे भी हमने कभी पूरा नहीं किया है। क्रोध भी हमने कभी पूरा नहीं किया है। घृणा भी हमने कभी पूरी नहीं की। दुश्मन भी हम कभी पूरे नहीं हुए। किसी को मार डालना जरूर चाहा, मार ही नहीं डाला। खुद भी आत्महत्या करनी चाही, लेकिन की नहीं। तो जो भी हमने करना चाहा है उसका एक हिस्सा हमने दबाया भी है। वह हमारा सप्रेशन का बोझ है। वह प्रतीक्षा कर रहा है हर वक्त, वह हमेशा बल देता है उसी को करने को जो आपने रोक लिया है। तो इधर नहर खुदी हुई है, इधर पीछे से फोर्सेज इकट्ठी हैं, बड़ी

शक्तियां इकट्ठी हैं, जो कहती हैं कि बस करो क्रोध। क्योंकि वहां भरा हुआ है बोझ, जो निकलना चाहता है।
यह तीन चीजें आपको, सब निर्णय आपके तोड़ देंगी। ध्यान आपसे हो नहीं पाएगा। इन तीनों से निपटने के लिए जो मैं ध्यान कह रहा हूं, वह व्यवस्था है। इसलिए कैथार्सिस उसमें मेरा पहला हिस्सा है। कैथार्सिस में दो बातें हैं। एक तो जो मुझमें भरा है, पुराना दबाया हुआ उसको मुक्त करना है, उसको रेचन करना है। अब यह जो पुराना दबाया हुआ है, अगर किसी के ऊपर इसका रेचन किया जाए तो फिर उपद्रव शुरू हो जाएंगे।
अगर मेरे भीतर दबाए हुए क्रोध की एक मात्रा है, वह मैं अगर आप पर निकालूं तो आप बैठे तो नहीं रहेंगे। आप भी जवाब देंगे, आप भी मेरे जैसे आदमी हैं। आप भी लकड़ी लेकर खड़े हो जाएंगे। तो मैं जितना निकालूंगा उतना, फिर उससे दुगुना आप पैदा करवा देंगे। फिर उसे दबाना पड़ेगा, क्योंकि यह सिलसिला कहीं तो तोड़ना पड़ेगा। तो फिर दबा लूंगा। तो किसी पर निकालने से तो रेचन कभी नहीं हो सकता। किसी पर तो हम निकालते ही रहे हैं और रेचन नहीं हुआ है।
इसलिए कैथार्सिस इन वैक्यूम, कैथार्सिस अनडायरेक्टिड। इसकी जरूरत है
कि मैं निकालूं तो क्रोध, लेकिन किसी पर नहीं--हवा में निकालूं, खालीपन में निकालूं। जिसमें कि लौटती प्रतिक्रिया न हो उसकी। वह जो लौटती प्रतिक्रिया है। प्रतिक्रिया है। अगर न हो, तो मैं नया अर्जन न करूंगा। और एक दूसरी मजे की घटना घटेगी कि अगर हवा में मेरा क्रोध निकल जाए जो कि साधारणतः आपको पागलपन मालूम पड़ेगा। इसलिए मॉस-मेडिटेशन पर मेरा जोर है शुरू में। अकेले में आप बिल्कुल पागल मालूम पड़ेंगे। अकेले में आपको लगेगा मैं यह क्या कर रहा हूं। और बड़े मजे की बात है अगर दो सौ लोग वही कर रहे हैं तो फिर आप पागल नहीं मालूम पड़ेंगे। फिर आपको लग रहा है कि मैं नहीं कर रहा हूं, एक सौ निन्यानबे लोग और कर रहे हैं।
असल में हमारे पागल और न पागल होने का जो निर्णय है वह भी समूह से दिया हुआ निर्णय है। किसी मुल्क में अगर मिलकर दो आदमी नाक रगड़ कर नमस्कार करते हैं तो वह पागलपन नहीं है, क्योंकि पूरा मुल्क करता है। आज मुंबई में जाकर किसी को नमस्कार नाक रगड़ कर करें, तो हम पागल हैं, वह भी आदमी चौंकेगा और आस-पास के लोग भी चौंक जाएंगे। लेकिन फर्क क्या है?
फर्क सिर्फ इतना है कि हम यहां अकेले पड़ गए हैं और वहां पूरी भीड़ वही
कर रही है। अफ्रीकन औरत है, वह सिर घुटा कर सुंदर हो जाती है क्योंकि बाकी सारी औरतें भी सिर घुटा कर सुंदर होती हैं। हिंदुस्तान में कोई स्त्री सिर घुटाने को राजी नहीं होगी। वह कहेगी मुझे कुरूप बनाना है? मुझे कोई भूत-प्रेत बनाना है? अफ्रीकन औरतें क्यों कर पा रही हैं? बाकी सारी भीड़ वही कर रही है।
असल में हमारे पागल और गैर-पागल होने का हमको पता ही सिर्फ इतना ही से चलता है कि हम अकेले तो नहीं पड़ गए हैं? तो इसलिए मेरा जोर है कि यह जो कैथार्सिस है, आप अकेले में शुरू नहीं कर पाएंगे। कर सकें तो अच्छा है। मुझे कोई एतराज नहीं कि अकेले में कोई कर सके, लेकिन कर नहीं पाएगा। अकेले में उसे खुद ही लगेगा कि मैं घूंसा किसको मार रहा हूं? क्योंकि हमारी सदा की आदत जो है वह किसी को घूंसा मारने की है। हवा में घूंसा मारने में हम पागल मालूम पड़ेंगे कि मैं यह क्या पागलपन कर रहा हूं।
हवा में घूंसे हमने सिर्फ पागलों को मारते देखा है; हवा में चिल्लाते सिर्फ पागलों को देखा है; नहीं कोई मौजूद हो और बोलते सिर्फ पागलों को देखा है। हम तो सब समझदार हैं। कोई हो तो बोलते हैं; कोई हो तो घूंसा मारते हैं; कोई हो तो क्षमा मांगते हैं; कोई हो तो चिल्लाते हैं। कोई कारण हो तो हम रोते हैं, कोई कारण हो तो हम हंसते हैं। अकारण तो हम कुछ भी नहीं करते। अगर ठीक से समझें तो अकारण करने वाले आदमी को ही हम पागल कहते हैं। अभी एक आदमी बैठा अचानक यहां हंसने लगे खिलखिला कर, तो हम कहेंगे कि यह पागल है। क्योंकि अभी तो कोई बात भी न हुई थी, अभी तो कोई चर्चा न हुई थी। चर्चा हो, खूंटी हो टांगने को, फिर हंसे, तो हम कहेंगे, चलेगा।

तो इसलिए कैथार्सिस जो है, वह मेरी दृष्टि में मास ही शुरू की जा सकती है। इतने हिम्मत के बहुत कम लोग हैं जो अकेले में कैथार्सिस कर सकें। और अकेले में किसी न किसी तरह का रेसिस्टेंस बना ही रहेगा। अकेले में, क्योंकि अकेले ही हैं आप। और आपको पूरे वक्त यह खयाल बना रहेगा कि जो मैं कर रहा हूं, यह क्या कर रहा हूं? कहीं पागलपन तो नहीं कर रहा? लेकिन दो हजार आदमी कर रहे हैं, दस हजार आदमी कर रहे हैं। इसलिए मेरा इरादा यह है कि इसको जितने बड़े व्यापक पैमाने पर किया जाए, दस हजार आदमी करेंगे, आप और भी ज्यादा आसान अनुभव करेंगे। तब आपको पागल होने का डर न रहा। दस हजार आदमी पागल नहीं हैं। और आप वे सब चेहरे देख रहे हैं, जो पागल नहीं हैं। आपको अपने चेहरे पर शक हो सकता है। सब आदमियों को शक होता है अपने पर कि वे कभी भी पागल हो सकते हैं।
क्योंकि भीतर जो वे चलते देखते हैं, वह है भी पागल होने के निकट। वहां सदा ही कहना चाहिए, वॉलकेनो पर ही हम बैठे हुए हैं। लेकिन जब आप देखते हैं कि मजिस्ट्रेट गांव का भी कर रहा है और वकील भी कर रहा है; और डाक्टर भी कर रहा है और प्रोफेसर भी कर रहा है; और वृद्ध भी कर रहा है और जवान भी कर रहा है, तब आप एकदम... यह आपके खयाल से तत्काल बात उतर जाती है कि यह कोई पागलपन हो रहा है। यह उतर जाना बहुत जरूरी है, नहीं तो कैथार्सिस न हो पाएगा। इसलिए कैथार्सिस मास ही हो सकती है।
अभी पश्चिम में गु्रप-थैरेपी पर बहुत जोर बढ़ा। मैं मानता हूं कि वह जोर उचित है। एक आदमी को अकेले में उसके मस्तिष्क को ठीक करना कठिन पाने लगे हैं वे भी। लेकिन एक ग्रुप में उसे ठीक करना ज्यादा आसान हो जाता है। क्योंकि ग्रुप में वह एक्टिविज हो जाता है। यह थोड़ा खयाल में लेने जैसा है कि एक आदमी अकेले में स्वस्थ से साधारणतः जिसको हम नार्मल आदमी कहते हैं, उसे भी हम एक अकेले में दो-चार साल एक कमरे में डाल दें, तो वह पागल हो जाएगा। यह वही आदमी है। अकेला क्या करेगा इसको? अकेला इसको पागल नहीं बना सकता अकेलापन। लेकिन यह पागल क्यों हो जा रहा है?
असल में यह वे ही काम इस अकेलेपन में करना शुरू करेगा, जो इसने किसी के साथ किए थे। लेकिन तब वजह थी इसके पास। अब बेवजह हो जाएगा मामला। तब यह क्रोधित हुआ था। उसने कहा था कि क्रोध का कारण है, क्योंकि लड़के ने गलती की है। अब भी क्रोध आएगा। क्योंकि क्रोध बाहर से बनी हुई चीज नहीं, वह हमारी भीतरी अवस्थाओं से बनी है। अब भी क्रोध आएगा, अब कोई लड़का नहीं है, कोई पत्नी नहीं है, कोई नहीं है, दीवालें हैं। अब किस पर क्रोध करेगा? कुछ दिन रोकेगा, दबाएगा, फिर बस के बाहर हो जाएंगी चीजें। फिर यह दीवालों को गालियां देने लगेगा।
दीवालों को जिस दिन इसने गाली दी, यह भी जानेगा कि मैं पागल हो गया और बाहर के लोग भी जान जाएंगे कि यह आदमी पागल हो गया। क्योंकि अब यह अकारण काम कर रहा है। कैथार्सिस का मतलब है कि जो हमने सदा ऑब्जेक्टिव के साथ किया है, कॉ.जल था। अब हम उसे अनकॉ.जल कर रहे हैं, अनडायरेक्टिड। तो इसके लिए बड़ा ग्रुप हो तो आसान हो जाएगा, एक।
दूसरी बात कि अगर यह हमने अकारण किया तो जो क्रोध सदा कारण से चलता था,
वह बंधी हुई नहर से बहता था। बंधी हुई नहर सदा डायरेक्शन में होती है। अब यह अकारण है। यह ओवरफ्लो है। अनडायरेक्टिड होने की वजह से इसका कोई चैनेलाइजेशन नहीं होगा। क्योंकि अगर आप पर मुझे क्रोध करना था तो आपके मेरे बीच एक रास्ता बनता क्रोध का। लेकिन अब मैं किसी पर क्रोध नहीं कर रहा हूं तो यह डाइमेन्शनलेस होगा।
और कैथार्सिस जो है, वह डाइमेन्शनलेस ही हो सकता है। अगर उसमें डाइमेन्शन है तो फिर कैथार्सिस नहीं होगा। यह ओवरफ्लो होगा। यह पुल की तरह होगा, बाढ़ की तरह होगा, जो किनारे तोड़ देगा। किनारे टूट जाने जरूरी हैं, तभी आप पूरे खाली हो सकते हैं--एक। क्योंकि इतना क्रोध है जन्मों- जन्मों का, इतनी वासना है, इतना काम है। वह सब है इकट्ठा, वह पूरा बहना चाहिए। दूसरा, जब यह बांध तोड़ कर बहता है तो फिर इसके कोई रास्ते नहीं बनते हैं। जब यह बह जाता है तो जगह खाली छूट जाती है। इसके पीछे जगह खाली हो जाती है और बंधे रास्ते नहीं रह जाते।

और एक दफा आपने क्रोध को अगर अकारण बहते देखा, एक बार भी अनुभव कर लिया अकारण तो अब आप कारण न खोजेंगे कभी क्रोध के लिए। और एक बार आपने उसको सारे रास्ते तोड़ कर बहते देख लिया तो वे जो पुराने बंधे हुए रास्ते थे, वे नष्ट हो गए। वे टूट गए। पुरानी गांठ टूट गई, पुराना पश्चात्ताप टूट गया, प्रायश्चित्त टूट गया, वह गया सब।
यह मन खाली हो जाए आदत से और दमन से, दोनों से खाली हो जाए तो फिर जिसको मैं जागरूकता कह रहा हूं, वह सरल घटना हो जाएगी। अब लोगों को लगता है सदा ऐसा कि तीन दिन में कैसे हो जाएगा? समय के बाबत भी हमारी बड़ी अजीब धारणा है।
असल में हमें यह खयाल नहीं है कि कोई भी टेक्नीक कम विकसित हो तो ज्यादा समय लेती है। ज्यादा विकसित हो तो कम समय लेती है। बैलगाड़ी में चलता था जो आदमी, उसकी कल्पना में नहीं हो सकता था कि घंटे भर में दिल्ली पहुंच जाए। उसका घंटे भर में दिल्ली पहुंचने की कोई आंतरिक कठिनाई नहीं है, बैलगाड़ी की टेक्नीक की तकलीफ है उसके दिमाग में। उसका जो टाइम-स्केल है वह बैलगाड़ी का है। वह अनुभव से कह रहा है। वह अनुभव से कह रहा है कि यह हो ही नहीं सकता कि घंटे भर में दिल्ली आप पहुंच जाएंगे। और यह तो हो ही नहीं सकता कि चांद पर आप पहुंच जाएंगे। क्योंकि बैलगाड़ी को चांद पर ले कैसे जाइएगा?
आज से दो सौ साल पहले सिर्फ बच्चों की कहानी में हम, कहानी लिख सकते थे चांद पर पहुंचने की, सिर्फ बच्चे ही यह बकवास कर सकते थे, चांद पर पहुंचने की। कोई बुद्धिमान आदमी, कोई प्रौढ़ आदमी यह बात नहीं करता था कि ये क्या बचकानी बातें करते हो। क्योंकि हमारे पास जो साधन थे यात्रा के, वह उनसे कोई संबंध ही नहीं जोड़ पाता। ठीक वैसे ही ध्यान की जो स्थिति है वह करीब-करीब वहीं ठहर गई है, जहां बैलगाड़ी ठहरी थी। जिस वक्त बैलगाड़ी हमारा आम वाहन थी और घोड़ा हमारा तेज से तेज वाहन था, उस जमाने में ध्यान ने जो टेक्नीक विकसित की थी, वह वहीं ठहर गई है। उसमें कोई विकास नहीं हुआ। बैलगाड़ी तो हवाई जहाज बन गई, लेकिन ध्यान वहीं ठहरा हुआ है।
अब भी हम जब ध्यान को खोजने जाते हैं तो स्वाभावतःमहावीर में खोजेंगे, पतंजलि में खोजेंगे, लेकिन हमको पता नहीं कि पतंजलि बैलगाड़ी में चलता था। और पतंजलि का जो टाइम-स्केल है, वह बैलगाड़ी का टाइम-स्केल है। और अगर बैलगाड़ी की दुनिया में विकसित की गई ध्यान की पद्धतियों की चर्चा आप जेट की दुनिया में करेंगे तो आप अपने हाथ से ध्यान को हरवाने जा रहे हैं। तो उस जमाने में बिल्कुल सहज थी यह बात कि ध्यान एक जन्म में उपलब्ध नहीं होता है। तीन दिन तो बहुत थोड़े हैं, एक जन्म भी छोटा है। ध्यान एक जन्म में उपलब्ध होता ही नहीं है। यह जन्मों-जन्मों की बात है। जिस समय की गति पर हम जी रहे थे, वहां यह बात मौजूद थी। लगती थी कि ठीक है, ऐसा ही होगा। और कोई उपाय भी नहीं था इसको समझने का। जिन्होंने पाया था वे भी कहते थे कि जन्मों-जन्मों की यात्रा है।
वे भी गलत न कहते थे, अनुभव से ही कहते थे। लेकिन इसमें कारण कोई ध्यान की, कोई इंट्रिंजिक समय से कोई लेना-देना नहीं है ध्यान को। न गति को समय से कुछ लेना-देना है। समय और गति के बीच में टेक्नीक निर्धारक होता है कि क्या होगा? अब अगर हम आयुर्वेद की दवा आपको देते हैं तो उसका समय होगा। वह असल में बैलगाड़ी के वक्त में विकसित हुई थी। एलोपैथी का इंजेक्शन उतना समय नहीं लेगा। वह बैलगाड़ी के जमाने का विकास नहीं है। मेरी अपनी समझ यह है कि जगत में जब भी एक स्तर पर गति बढ़ती है तो सारे स्तरों पर गतियों को बढ़नी चाहिए। अन्यथा वह असंगत हो जाती हैं व्यवस्थाएं।
अब जैसे कि पश्चिम में फ्रायड ने जो मनोविश्लेषण विकसित किया था, आज
से पचास-साठ साल पहले, वह हारने लगा है। क्योंकि उसका टाइम-स्केल बहुत लंबा है। अगर फ्रायडियन एनालेसिस करवानी है तो तीन साल भी लग सकते हैं, दस साल भी लग सकते हैं। दो-तीन साल तो लगने ही वाले हैं। तो गरीब आदमी तो करवा ही नहीं सकता। और दो-तीन साल जो अफोर्ड कर सके निरंतर, हर सप्ताह कम से कम तीन सिटिंग ले सके, और खर्चीला है।

तो फ्रायड अब चल नहीं सकता आगे। क्योंकि उसका जो ढंग है, वह बिल्कुल बैलगाड़ी वाला है। तीन साल में... अगर एक मानसिक आदमी को थोड़ी सी तकलीफ है। उसको तीन साल लगे इलाज में, तो बीमारी तो एक तरफ रही, इलाज बड़ी बीमारी हो गई। यह, यह इलाज नहीं लागू किया जा सकता। कितने लोगों के पास इतना समय है? कितने लोगों के पास इतना पैसा है? जो तीन साल एक छोटी-मोटी मानसिक बीमारी के लिए व्यवस्था दें। यह नहीं चल सकता।
तो निरंतर इधर पिछले पंद्रह वर्षों में मनस-शास्त्रियों को तीव्र गतियां खोजनी पड़ी हैं कि कैसे जल्दी हो सके। जो आदमी एक-एक मिनट बचा रहा है, जो एक-एक मिनट बचाने के लिए जीवन दांव पर लगाए हुए है, उस आदमी से आप कह रहे हैं कि तीन साल तुम्हारा मानसिक विश्लेषण करने में लगाएंगे। तो वह कहेगा कि भई, अगले जन्म में देखा जाएगा। लेकिन तीन साल फिर भी समझ में आते हैं, हम इस मुल्क में ध्यान के लिए जो भाषा बोलते हैं, वह जन्मों की बोलते हैं। मेरा अपना मानना है कि यह कोई सवाल नहीं है। यह सिर्फ टेक्नीक अविकसित है।
जिस टेक्नीक की मैं बात कर रहा हूं, इसको अगर चौबीस घंटे किया जाए तीन दिन। तो तीन दिन बहुत हैं। चौबीस घंटे अगर इसको तीन दिन किया जाए, तो तीन दिन थोड़े नहीं हैं। थोड़े जरूरत से ज्यादा हैं, और आप पर भारी पड़ सकते हैं। क्योंकि कैथार्सिस है, एक तो यही है।
यह कैथार्सिस साधारण घटना नहीं है। अगर इसे बहुत लंबे अर्से पर निकाला जाए। अगर इसमें हम तीन दिन की जगह तीन साल लगाएं तो इतनी थोड़ी-थोड़ी मात्रा आपसे निकलेगी कि उतनी मात्रा आप रोज पैदा कर लेंगे। इसको लंबाया नहीं जा सकता। समझ लें कि इस घर को हम इस तरह झाड़ें, इतना आहिस्ता झाड़ें कि इसे झाड़ने में चौबीस घंटे लग जाएं। तो जब दूसरे दिन तक हम झाड़ कर चुकें, तब तक हम पाएं कि कचरा घर में आ गया। तो चौबीस घंटे में कचरा ही तो आने वाला है। तो इस, इस घर को अगर झाड़ने में चौबीस घंटे लगें तो झाड़ना बिल्कुल बेकार है। झाड़ना ही नहीं चाहिए। इसका कोई अर्थ ही नहीं। क्योंकि जब तक आप झाड़ पाएंगे, तब तक कचरा वापस जगह आ जाएगा। और यह घर कभी भी स्वच्छ हालत में दिखाई नहीं पड़ सकता।
तो कैथार्सिस का तो कोई भी प्रयोग इंटेंस होना चाहिए, पहली बात। यानी इसके पहले कि नया कचरा इकट्ठा हो, आपमें खालीपन दिखाई पड़ना चाहिए, नहीं तो दिखाई ही नहीं पड़ेगा। अगर हम बहुत धीमी मात्रा के डोज दें, होम्योपैथी के डोज हों अगर, तो नहीं चलेगा। वह इतने आहिस्ता चलने वाला काम है, और आपकी बीमारियां इतनी हैं कि जितना हम निकाल पाएंगे, उससे ज्यादा तो आप कल इकट्ठा करके हाजिर हो जाएंगे। उतने धीमे कैथार्सिस नहीं हो सकती।
दूसरी बात, बहुत तेज भी नहीं की जा सकती। क्योंकि आपकी बीमारियां भी आपका व्यक्तित्व हैं। अगर उनको एकदम से निकाल दिया जाए तो आप एकदम ही घबड़ा सकते हैं। तो यह तीन दिन से कम में भी हो सकता है। मेरे हिसाब में तो यह चौबीस घंटे में भी हो सकता है; आठ घंटे में भी हो सकता है। लेकिन आठ घंटे में इतनी तीव्र प्रक्रिया होगी और गैप इतना बड़ा होगा कि आप फिर अपने को पहचान नहीं सकेंगे कि आठ घंटे पहले जो आप थे, वही आप हैं। आपकी जो पर्सनल आइडेंटिटी है, उसके टूट जाने का डर है।
तो सफाई इतनी धीमे भी नहीं होनी चाहिए कि कचरा इकट्ठा हो जाए, और इतनी तेज भी नहीं होनी चाहिए कि मकान साफ हो जाए। इतनी तेज भी हो सकती है। बुलडोजर लगा कर सफाई की तो फिर गया मामला। फिर आप जब सफा मकान देखने आएंगे तो पाएंगे कि मकान साफ है। वहां कुछ बचा ही नहीं है। कचरा ही नहीं; मकान भी गया। तो हर आदमी की अपनी आइडेंटिटी है, आपका अपना एक व्यक्तित्व है। बीमार, स्वस्थ, जैसा भी है, आपका अपना व्यक्तित्व है। उस व्यक्तित्व को इतने धीमे भी साफ नहीं करना है कि वह अपने को वापस स्थापित करता चला जाए, इतनी तेजी से भी साफ नहीं कर देना है कि आठ घंटे बाद आप पूछें कि मैं कौन हूं? तो हालत खतरनाक हो जाएगी।
तो इधर मैंने जान कर तीन दिन तय किए हैं। तो बहुत सोच कर, बहुत प्रयोग करके तीन दिन तय किए हैं। जल्दी उनको सात दिन भी करना चाहता हूं, लेकिन तब भी डर लगता है। क्योंकि सात दिन में आप इतनी गहराई में चले जाएंगे कि आप

लौटना न चाहें। तो तीन दिन में मैं आपको इतनी गहराई तक भर ले जाता हूं, जहां से आप कुछ अनुभव भी करें और अपनी पूरी पुरानी व्यवस्था में वापस भी लौट सकें। इस प्रयोग को लंबा किया जा सकता है। इसी इंटेंसिटी पर सात दिन, पंद्रह दिन, इक्कीस दिन। फिर इक्कीस दिन के बाद आप अगर लौटने से इनकार कर दें... आपको तो कोई नुकसान नहीं होने वाला, मेरा कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। लेकिन धर्म ने जो नुकसान सदा से पहुंचाया है संसार को, वह शुरू हो जाएगा। हमारे खयाल में भी नहीं है कि धर्म एक बुनियादी नुकसान पहुंचाता रहा है। कि जिन लोगों को भी उसने गहराई दी, वे संन्यासी हो जाएंगे, वे भाग जाएंगे। तो मैं इस पक्ष में नहीं हूं कि भगौड़ा कोई भी हो।
मैं इस पक्ष में हूं कि आपकी जिंदगी में जो हुआ है, वह आप जहां हैं, वहीं घटित हो। और मैं मानता हूं कि उसके ज्यादा परिणाम होंगे। क्योंकि आप आस-पास जुड़े हुए हैं एक जगत से। वह जगत भी आपसे रूपांतरित होगा। और मैं मानता हूंः जब तक बीमार थे, तब तक पत्नी का साथ दिया और जब स्वस्थ हुए तो भाग गए। फिर तो बीमार आदमी ही बेहतर था।
मैं तो मानता हूं कि अब यह तो कर्तव्य का हिस्सा हुआ। बल्कि अब यह प्रेम का अनिवार्य हिस्सा होना चाहिए कि जिस दिन मैं शांत हो जाऊं, उस दिन मेरी पत्नी को तो मुझे शांत करने की चिंता करनी चाहिए। क्योंकि बीमारियां मैंने उस पर निकालीं; क्रोध उस पर निकाला; घृणा उससे की; लड़ा उससे; प्रेम उसे कभी दिया नहीं। अब दे सकता हूं, अब मैं भाग रहा हूं।
तो मैं किसी को उसकी जीवन-व्यवस्था से तोड़ने के पक्ष में नहीं हूं। इसलिए इस समय को लंबा भी नहीं कर सकता। और इस समय के लंबा होने की वजह से धर्म के प्रति भय व्याप्त हो गया है। लोग डरते हैं। पति उत्सुक होता है, पत्नी डरती है; पत्नी उत्सुक होती है, पति डरता है; बेटा उत्सुक होता है, बाप डरता है।
यह बड़े मजे की बात है कि अगर एक बाप के सामने विकल्प हो कि लड़का गुंडा
हो जाए कि संन्यासी, तो बाप गुंडा ही होना पसंद करेगा। क्योंकि कम से कम घर में तो रहेगा। और गुंडे के लौट आने की संभावना है, संन्यासी की तो लौट आने की कोई संभावना ही नहीं है। यह बड़े मजे की बात है कि बुद्ध के बाप कोई प्रसन्न नहीं हैं। यानी बुद्ध अगर चोर भी हो गए होते तो बाप इतने परेशान नहीं होते, जितने बुद्ध के संन्यासी हो जाने से परेशान हो गए। स्वाभाविक भी है।
तो मैं तोड़ने के पक्ष में नहीं हूं, इसलिए इस पीरियड को लंबा भी करने में मैं निरंतर विचार करता हूं। उसको लंबा करने की कठिनाई है। इसको इससे छोटा भी नहीं किया जा सकता। तीन दिन मैंने कुछ सोच कर तय किए हैं।
मनुष्य के मन के कुछ गहरे नियम हैं। जैसे कि आप नये मकान में आए हैं।
तो आपको तीन दिन तो शायद उसमें नींद ही न आ सके, नये मकान में। और तीन सप्ताह तक तो वह मकान आपको नया लगेगा, तीन सप्ताह के बाद नहीं लगेगा। तीन सप्ताह मन को किसी भी नई चीज के लिए राजी होने में लग जाते हैं। और तीन दिन से राजी होना वह शुरू होता है और तीन सप्ताह पर पूरा होता है। इसलिए आदमी मरता है तो हम तीसरा दिन मनाते हैं, अब एक नया एडजस्टमेंट। एक आदमी कम हो गया घर से। तीन दिन में हम राजी हो पाएंगे। फिर हम तेरहवां दिन मनाते हैं। फिर हम कुछ और राजी हो गए होंगे। फिर हम राजी होते जाएंगे। वे हमने टाइम-स्केल कुछ सोच कर ही, बहुत से अनुभवों से तय किए हैं। एक दिन, दो दिन का फर्क हो सकता है।
लेकिन तीन दिन का मेरा अपना खयाल ऐसा है कि तीन दिन छोटा से छोटा यूनिट है काम करने के लिए। और यह प्रक्रिया इतनी तेज है कि अगर आप ऑनेस्टली तीन दिन इस पूरी प्रक्रिया को करें तो फर्क होने शुरू हो जाएंगे। अगर आप खाली हो जाते हैं अपने पुराने बोझ से और पुरानी आदतों की धाराएं टूट जाती हैं, तो फिर आपको ध्यान में गति दी जा सकती है। और इसलिए प्रत्येक प्रयोग के बाद दस मिनट का जो गैप है, वह गति देने का गैप है। तीस मिनट आप कुछ खाली कर रहें हैं, कुछ तोड़ रहे हैं, कुछ ओवरफ्लो होने दे रहे हैं। और दस मिनट सिर्फ प्रतीक्षा कर रहे हैं। उस दस मिनट में आपमें ध्यान आना शुरू होगा। जिस दिन उस दस मिनट में ध्यान आपका आना शुरू हो जाएगा, उस

दिन वह जो दस मिनट में उतरेगा, वह धीरे-धीरे चौबीस घंटे आपके साथ रहने लगेगा। क्योंकि वह इतना आनंदपूर्ण है।
इधर मेरा यह भी अनुभव है कि हमने अशांति का दुख तो जाना है, शांति का सुख नहीं जाना है। इसलिए हमारे पास बहुत विकल्प नहीं हैं, चुनाव नहीं हैं। हम निरंतर कहते हैं कि क्रोध बुरा है, लेकिन अक्रोध हमने जाना ही नहीं। तो हम चुनाव कैसे करें? हम निरंतर कहते हैं कि यह सब संसार बेकार है, लेकिन हमने कोई मुक्ति का तो कोई तरह का रस जाना नहीं। हम जिस चीज की निंदा कर रहे हैं, उसी को भर जानते हैं और जिसकी हम आकांक्षा कर रहे हैं, वह बिल्कुल अपरिचित स्वाद है। और जो अपरिचित स्वाद है, वह चुना नहीं जा सकता। उसका स्वाद मिलना चाहिए, एक दफा भी मिल जाए।
अब एक आदमी ने अंधेरा ही अंधेरा जाना। अब वह बहुत दफा कहता है कि अंधेरा छोड़ना चाहता हूं, प्रकाश पाना चाहता हूं। लेकिन जब वह यह बोलता है कि मैं अंधेरा छोड़ना चाहता हूं और प्रकाश पाना चाहता हूं। तब अंधेरा छोड़ना चाहता हूं--यह कहते वक्त तो उसका अनुभव होता है। जब कहता हैः प्रकाश पाना चाहता हूं, तब सब धुंधला हो जाता है। तब इतना ही होता है कि अंधेरा नहीं होगा, बाकी प्रकाश की कोई रेखा नहीं होगी।
और मैं मानता हूं कि अभी यह नहीं छोड़ सकता। क्योंकि हम छोड़ तभी सकते हैं, जब उससे विपरीत हमें मिलना शुरू हो जाए। अन्यथा छोड़ना मुश्किल है। क्योंकि हम यह भी खो दें, जोहै; और वह भी न मिले, जोनहीं है; जो हमें पता ही नहीं है। तो आदमी इतनी हिम्मत नहीं जुटा पाता। कभी कोई लाख-दो लाख में एक आदमी जुटाता है। उसको हम अपवाद मानें, वह नियम के बाहर है। उसके लिए कोई व्यवस्था की जरूरत नहीं पड़ती। और वैसा आदमी कई दफा भूल भरी बातें दूसरों से कहता है। वह कहता है, तुम्हें भी कोई व्यवस्था की जरूरत नहीं है।
वह ठीक कहता है। बाकी वह बेमानी है बात। यह साधारणजन जो है हमारा, जो औसत आदमी है, यह कुछ पा ले तो कुछ छोड़ने को राजी हो सकता है।
तो इधर मैं इसको तीस मिनट में खाली करवाता हूं और दस मिनट में मौका देता हूं कि वह जो जगह खाली हो गई, उसमें कुछ भर आए। और जैसे प्रकृति वैक्यूम को बरदाश्त नहीं करती, वैसा ही चित्त भी नहीं करता। अगर आप गलत से खाली हों, तो ठीक भरना शुरू हो जाएगा।
एक दफा खाली होना जरूरी है। तो इसलिए दो हिस्से हैं उसमें। एक तो कैथार्सिस का है, जो खाली होने का है। और दूसरा हिस्सा ध्यान का है, जो कुछ किसी चीज के उतरने का है, किसी चीज के भरने का है। उसमें आपको कुछ भी करना नहीं। यह अनुभव अगर दस मिनट में आपको धीरे-धीरे उतरने लगे, तो यह अनुभव आपके साथ चौबीस घंटे रहने लगेगा। और यह अनुभव आपको नई बीमारियां इकट्ठी करने से रोकेगा। नये दमन करने से रोकेगा। नई गलतियां करने से रोकेगा। फिर से पुराने रास्तों पर नया-नया जाने से रोकेगा। यह अनुभव है।
यानी अब आपको नियम न लेना पड़ेगा, व्रत न बनाना पड़ेगा कि अब मैं क्रोध न करूंगा। अब आप जानते हैं अक्रोध का आनंद, अब आप क्रोध नहीं करेंगे। और वह जो कैथार्सिस का प्रयोग है, वह तीन महीने के लिए अगर कोई ठीक से करेगा तो ज्यादा से ज्यादा तीन महीने चलेगा। फिर धीरे-धीरे शिथिल होता जाएगा। तीन सप्ताह में ही शिथिल होने लगेगा। फिर धीरे-धीरे वह खत्म हो जाएगा। आप नाचना चाहेंगे तो न नाच सकेंगे तीन महीने के बाद, चिल्लाना चाहेंगे तो न चिल्ला सकेंगे, रोना चाहेंगे तो न रो सकेंगे। क्योंकि वह होना चाहिए न भीतर। आप एकदम खाली और रिक्त हो गए हैं। रोना निकलेगा ही नहीं तो आप रोएंगे कैसे? हंसना निकलेगा नहीं, आप हंसेंगे कैसे?
तो वह जो कैथार्सिस है, वह एक अर्थ में मापदंड का काम भी करेगी। वह रोज-रोज कम होती चली जाएगी। और जितनी तीव्रता से करेंगे, उतनी शीघ्रता से कम होती चली जाएगी। अगर उसको रोका तो उतना वक्त लेगी, लंबा। और लंबा वक्त खतरनाक है। क्योंकि इस बीच आप और इकट्ठा कर लेंगे, इसलिए तीन दिन में इंटेंसिवली मैं उसको जोर लगवाने को कहता हूं कि तीन बैठक में आप उसको पूरे वक्त निकालें। यह निकल जाए तो यह अनिवार्य हिस्सा नहीं है। यह तो खत्म हो जाएगा अपने आप। यह तो सिर्फ बीमारी को फेंक देना है बाहर। फिर आप नई बीमारियां इकट्ठी नहीं करेंगे, और इसकी कोई जरूरत नहीं रह जाएगी।

एक दूसरा, दूसरा हिस्सा इसके पीछे आना शुरू होगा। अभी कैथार्सिस ध्यान के पहले है। तीस मिनट की कैथार्सिस और दस मिनट का ध्यान। जैसे-जैसे कैथार्सिस खत्म होगी, वैसे-वैसे दस मिनट के बाद कुछ होना शुरू हो सकता है। फिर नाचना आ सकता है, लेकिन वह नाचना बहुत और होगा! अभी यह नाचना कैथार्टिक है। अभी यह नाचने में कुछ निकल रहा है, उस नाचने में कुछ हां-ना होगा। फिर गीत निकल सकता है। फिर खंजड़ी बज सकती है। फिर कोई नाच कर गा सकता है सड़क पर खड़े होकर। लेकिन वह और बात है! फिर वह कैथार्सिस नहीं है। फिर जो आपको मिल गया है, उसके आनंद का अतिरेक है। वह हर्षोन्माद है, वह एक एक्सटेसीहै, वह पीछे आएगा।
यह पहला हिस्सा जब खत्म होगा, तब दूसरा हिस्सा शुरू होगा। वह इसके पीछे की बात है। इसलिए मैं उसकी साधारणतः बात नहीं करता, क्योंकि अभी वह मिक्सड-अप हो सकता है। अभी हमारे खयाल में पड़ना मुश्किल हो जाएगा कि क्या क्या है? इसलिए यह निकल जाए एकबारगी, तो वह अपने से धीरे-धीरे उसकी धारा टूटेगी। अभी इसके करने से हलकापन लगेगा। फिर उसके करने से बहुत हलकापन लगेगा। वह एक क्रिएटिव एक्ट है। रोग के बाहर हो गए हैं आप। अब एक स्वास्थ्य उतरा है। अब उस स्वास्थ्य की अपनी धाराएं होंगी बहने की।
इतना ही काफी नहीं है कि आपमें से क्रोध न बहे, किसी दिन अक्रोध भी बहना चाहिए; इतना काफी नहीं है कि आपसे घृणा न निकले, किसी दिन प्रेम भी निकलना चाहिए। घृणा न निकले यह जरूरी है, पर्याप्त नहीं। प्रेम निकले, तभी आप पर्याप्त पर पहुंचते हैं। वह दूसरे हिस्से में घटनाएं घटनी शुरू होती हैं। और इसलिए मैं समूह पर जोर देता हूं।
असल में अकेले में जाने का डर भी नहीं है, समूह का डर भी है हमारे मन में। वही सहयोग भी है, वही हमारा डर भी है। बहुत लोग आते हैं, वे मुझसे कहेंगे कि अकेले में हम कर लें तो क्या हर्ज है। हर्ज यही है कि तुम अकेले में करना चाह रहे हो। वह तो वही... जिस वजह से तुम अकेले में करना चाह रहे हो, वह वजह तो रुकावट की है। तुम डरते हो, कोई देख न ले।
जीओगे अकेले में फिर?
ध्यान तो अकेले में कर लोगे, जीना तो पड़ेगा समूह में। वह जो संन्यासी भागता था, उसका कारण था। ध्यान किया उसने अकेले में और जीना तो पड़ता है समूह में। जिसको अकेले में ध्यान करना थिर हो जाएगा, वह समूह से भागने लगेगा।
जिंदगी तो समूह है। जीएंगे हम कैसे अकेले में? जीएंगे तो सबके साथ और ध्यान करेंगे अकेले में। नहीं, इनका तालमेल नहीं होगा।
जब जीना ही सबके साथ है तो ध्यान भी सबके साथ। तो उसमें एक सहजता होगी। और जो लोग हों सो हों, और अच्छा है कि लोग जान लें। अगर मेरी पत्नी मुझे देख लेती है ध्यान के पहले चिल्लाते हो, गालियां बकते हो, घूंसे तानते हो, तो कल अगर मैं उस पर घर में घूंसा भी तानूं तो हो सकता है वह हंस पाए। क्योंकि, क्योंकि अब जरूरी नहीं है मानना कि मैं उसके ऊपर घूंसा तान रहा हूं। अब यह अनिवार्य नहीं रहा, क्योंकि उसने हवा में घूंसे तानते भी मुझे देखा है। अगर मैं अपनी पत्नी को रोते-चीखते ध्यान में देखता हूं, कल वह अचानक छोटी सी बात पर रोने-चीखने लगे तो मुझे यह मानने की जरूरत नहीं कि मुझ पर डायरेक्टिड है। मैं सिर्फ बहाना ही हूं। अब मैं जानता हूं कि यह तो इसके, बिना इसके भी हो सकता है। इसलिए समूह में मेरा जोर है।
फिर दूसरी बात यह है कि दुनिया इतना विराट प्रश्न है आज, कि इसे एक-एक आदमी को बदल कर हम ऐसे हैं जैसे चम्मच-चम्मच पानी समुद्र से लेकर रंग रहे हैं। इससे कुछ होने वाला नहीं। रंगने वाला थकेगा; चम्मच टूट जाएगा; पानी जैसा है, वैसा ही रहेगा। अब तो मास-स्केल पर चूंकि बीमारी है, विराट उसका रूप है, विराट ही संघर्ष करना होगा। इससे काम नहीं चलेगा कि गांव में एक आदमी ध्यान कर ले मंदिर में बैठ कर, पूरे गांव को ही डुबाना पड़ेगा।
इधर तो मेरी योजना है। इधर मेरी योजना है कि एक, दो-तीन वर्ष में हजार-
दो हजार युवक-युवतियों को संन्यास पीरियॉडिकल। क्योंकि उसमें मेरी दृष्टि यह है कि जिसको जब लौटना है, वह उस वक्त लौट जाए। यह संन्यास कोई आजीवन नहीं है। आजीवन हो तो प्रोफेशनल हो जाता है। यह मौज है। आपको छह

महीने की छुट्टी मिली। आप छह महीने के लिए मौज से संन्यासी हो जाएं। फिर घर लौट जाएं। फिर घर में रहें। तो धीरे-धीरे हजारों लोग संन्यासी होकर घरों में पहुंच जाएंगे। फिर ये घरों को बदलने वाले सिद्ध होंगे। और ये फिर कभी भी महीने-दो महीने के लिए वापस संन्यासी हो सकते हैं।
यानी संन्यास को मैं कोई जिंदगी से अलग चीज नहीं, बल्कि जिंदगी का फैला हुआ, फैला हुआ हाथ--वह शक्ल देना चाहता हूं। तो ये हजार-दो हजार लोग सदा ही संन्यासी रहेंगे। इसमें लोग बदलते रहेंगे, मगर ये दो हजार बने रहेंगे। इन दो हजार को लेकर मेरा, ठीक जिसको कहना चाहिए कि एक मॉरल अटैक, एक गांव पर कर देने का है। दो हजार आदमी पूरे गांव में सात दिन के लिए ठहर जाएं। पूरे गांव को हम सात दिन ध्यान में डुबाने की कोशिश करें। इससे कम पैमाने से काम नहीं होगा। और यह टेक्नीक ऐसी है, इसमें सत्तर प्रतिशत व्यक्तियों को प्रवेश की संभावना है। हंड्रेड प्रतिशत हो सकती है, पर वे तीस प्रतिशत कमजोर पड़ जाते हैं। वे नहीं जा पाते, नहीं कोऑपरेट कर पाते। हजार तरह की बातें सोच कर रुक जाते हैं। लेकिन सत्तर प्रतिशत तो अनिवार्य रूप से इसमें प्र्रवेश हो जाएगा।
अगर हम एक गांव का, दस हजार का गांव हो और उसमें हजार लोगों को भी अगर
हम ध्यान में प्रवेश करवा सकें, हम उस गांव की जिंदगी को बदलने में समर्थ हो जाएंगे। क्योंकि अभी भी किसी गांव में हजार गुंडे नहीं हैं।
यानी अभी भी बुराई जो है, कोई इतनी बड़ी नहीं हो गई है। लेकिन कठिनाई सिर्फ यह है कि बुराई के समूह हैं और भलाई के कोई समूह नहीं है। तो इसको इस कारण से जितना बड़ा हो सके और जितना व्यापक हम कर सकें, और जितने कम समय में हो सके। जितने कम समय में हो सके, क्योंकि अगर एक गांव को हमें चार महीने करवाने में लग जाएं तो पूरे हम, पूरे गांव को नहीं डुबा सकते। तो इसलिए टेक्नीक को रोज गतिमान करते जाना है।
अब आपने खयाल किया होगा कि सुबह की जो टेक्नीक है, उससे रात की जो टेक्नीक है और भी तीव्र है। हम पूरे गांव को रात इकट्ठा कर सकते हैं जब कोई काम पर नहीं है, सब फुरसत में होंगे। पूरे गांव को इकट्ठा कर सकते हैं, पूरे गांव को डुबा सकते हैं। सुबह तो उनको कुछ करना भी है, श्वास भी लेनी है, कुछ और भी करना है। रात को वह भी करना नहीं है। कोई एक सौ आठ विधियां हैं ध्यान की। और उनमें से प्रत्येक विधि को इस पर भी किया जा सकता है। उसमें थोड़ा सा जोड़ करना पड़ेगा। अब जैसे इसमें मैं पहले दस मिनट श्वास के लिए जोड़ रहा हूं। श्वास का खयाल सदा से है। लेकिन सदा से खयाल था रिदमिक ब्रीदिंग का। रिदमिक ब्रीदिंग से अगर यह प्रयोग किया जाए तो वर्षों लगेंगे।
तो मेरा जो प्रयोग है वह नॉन-रिदमिक ब्रीदिंग है। उसमें रिदम को नहीं लाना है, क्योंकि रिदम के साथ आप एडजेस्ट हो जाएंगे जल्दी, नॉन-रिदमिक रखना है। ताकि आप एडजेस्ट न हो पाएं। और खलबली तत्काल मच जाए। उसको प्रतीक्षा न करनी पड़े। तो इसलिए वह दस मिनट को मैं भस्त्रिका जैसा, बस सिर्फ लोहार की धौंकनी की तरह झोंक कर। जिसमें कोई व्यवस्था नहीं, ताकि दस मिनट में ही आप केऑटिक हो जाएं। और आप केऑटिक हो जाएं, अराजक हो जाएं तो फिर हम दूसरे चरण में कैथार्सिस कर सकते हैं, नहीं तो नहीं कर सकते हैं। मजा यह है कि भस्त्रिका भी रही, लेकिन उसके दूसरे प्रयोग होंगे। उसका कभी भी ध्यान के लिए प्रयोग नहीं था। उसके प्रयोग दूसरे थे। प्राणायाम के जो प्रयोग थे, वे सब लयबद्धता के प्रयोग थे। इसलिए उनकी चोट तीव्र नहीं हो सकती। अगर तीव्र चोट करनी है तो बिल्कुल अराजक होनी चाहिए। उसकी अराजकता ही उसकी स्पीड है।
अब दूसरा जो चरण है, यह दूसरा चरण रोकने के उपाय किए योग में। इसलिए आसन की व्यवस्था है। आसन की जो व्यवस्था है वह कैथार्सिस को मध्यम गति से करने की व्यवस्था है। शरीर पर प्रकट न हो, भीतर से निकले। तो शरीर को पहले आसनों का वर्षों तक अभ्यास कराया जाए। जैसे सिद्धासन हो या पद्मासन--ये इस बात के अभ्यास हैं कि भीतर चित्त में कुछ भी हो, शरीर थिर रहे। भीतर बहुत कुछ होगा। कैथार्सिस भीतर से भी हो जाएगी। यानी मैं आपको घूंसा मारूं, घूंसा उठा कर, यह जरूरी नहीं है। हाथ बिना उठाए भी घूंसा मारा जा सकता है।

होता ही है। तो, तो इस योग ने यह व्यवस्था की थी कि पूरा पहले आसन सिखाएंगे वर्षों तक, ताकि आपके शरीर पर प्रकट न हो, नहीं तो लोग पागल कहेंगे। लेकिन तब पहले वर्षों आसन सिखाई।
न तो कोई वर्षों आज आसन सीखने को तैयार है, न ही मैं मानता हूं कि इतना समय खराब करने की जरूरत है। फिर यह भय क्या, कि बाहर निकल जाएगा। इस भय को तोड़ दें। हम कहें कि निकलना उचित ही है। और भय टूट गया और तो कुछ मामला नहीं है। हम डरते हैं कि ऐसा न हो जाए कि मैं भला आदमी और अचानक चिल्लाने लगूं, और रोने लगूं, यह हमारी मान्यता है। अब अगर यह प्रयोग जहां-जहां हुआ है--एक-दो दफे, तीन दफे प्रयोग होता है, गांव भर को पता चल जाता है। कोई ऐसी बात नहीं है, वह टूट जाता है। इसके लिए वर्षों खराब करवाने के मैं पक्ष में नहीं हूं। तो मैं तो उलटे प्रयोग के पक्ष में हूं, कि जो शरीर करना चाहे उसको और सहयोग देकर पूर्णता से करें, ताकि जो छह महीने में निकलता हो, वह तीन दिन में निकल जाए। उसको पूरा सहयोग दें।
और भी एक मजे की बात है कि योग में कभी-कभी ऐसी घटनाएं घटती हैं (साइलेंट)... तो आदमी को रहने की जगह नहीं बचने वाली इस जमीन पर। किन गुफाओं में, किन पहाड़ों पर इनको ले जाएंगे? कहां इनके लिए इस तरह से बनाएंगे, यह सब होने वाला नहीं है? अब तो हमें जिंदगी में भी इसको स्वीकार करना पड़ेगा। दूसरी मजे की बात है कि यह प्रक्रिया अपने आप घटती है। अगर न बताया जाए तो बहुत घबड़ाने वाली बात है। और जब घटती है तो आदमी रोकने की कोशिश करता है। रोक लें तो रुक जाएगी। लेकिन वह जो रुक जाना है, वह उसकी कैथार्सिस न होने देगा। तो इधर मैं इसको पूरी की पूरी गति देना चाहता हूं। और इसके लिए पूरी स्वीकृति देना चाहता हूं। और ऐसे ग्रुप गांव-गांव में पैदा करना चाहता हूं जिनके भीतर यह स्वीकृत है। यह स्वीकृत होने से निकलने में इसको बड़ी आसानी हो जाएगी, इसका प्रवाह सहज हो जाएगा।
तो इसलिए वह जो लोग कहते हैं कि अकेले में क्यों न ध्यान कर लें, अक्सर
तो वे वे लोग हैं, उनसे पूछिए कि आपने किया, अकेले में कौन रोकता था आपको आपका करने से, अकेले तो आप हैं ही, आपको कौन रोका है कब करने से, आपने किया? आदमी का मन बहुत ही चालाक है। जब उसे एक विधि करने को कहो तो वह कहेगा
कि अगर वैसा करूं तो कोई हर्ज नहीं? और वैसा उसने कभी किया नहीं। और मैं कब उससे कहने गया था कि वह न करे या कौन उससे कहने कब गया। वह कहेगा, वैसा करें। आप अगर वैसा करने को कहेंगे तो वह कहेगा कि वैसा करें। और कोई रास्ता नहीं है?
असल में न करने से बचने की बड़ी इच्छाएं हैं, बड़ी इच्छाएं हैं। मेरे पास लोग आते थे। जब मैं उनसे कहता था कि तुम्हें ही करना पड़ेगा, तब वे कहते थे कि आप कुछ करो, हमसे क्या हो सकेगा? हम से क्या होगा? हमसे हो सकता तो हम कर लेते आप कुछ करें... और मैं कहता था कि तुम्हें ही करना पड़ेगा। वे कहते थे कि कुछ... कोई कृपा हो, कोई ग्रेस हो, कोई परमात्मा की कृपा हो, हमसे नहीं होगा! अब जब मैं उनको करवा रहा हूं तो वे मेरे पास आते हैं कि अगर हम अकेले में कर लें, या हम ही कर लें, आपकी इसमें क्या जरूरत है?
वही थे वे लोग, तब मुझे बड़ी हैरानी होती है। बड़ी हैरानी होती है कि यह वही आदमी है। नहीं करना हो तो यही जानो कि नहीं करना है, इसमें कौन तुमसे कहने जा रहा है। लेकिन नहीं, यह भी नहीं जानना है। हम तरकीबें निकालते रहेंगे। और जोखिम तो इतनी बड़ी है भीतर प्रवेश की कि हमें छोटी-मोटी जोखिम करवा कर परीक्षा लेनी ही चाहिए। लेनी ही चाहिए, नहीं तो वह बड़ी जोखिम कैसे उठाएगा? भीतर तो परतें टूटेंगी बहुत तरह की, बहुत घटनाएं घटेंगी। अगर वह रोने-चिल्लाने से डर गया है तो मैं मानता हूं कि उसका भीतर न जाना ही अच्छा है। क्योंकि भीतर तो बहुत कुछ और घटेगा। बहुत मवाद है, वह टूटेगी-फूटेगी, बहेगी, भीतर तो बहुत सा फूहड़ है, वह सब दिखाई पड़ेगा। वह उसमें तो कैसे जा पाएगा?
इसलिए अगर वह इससे डर गया है तो ठीक ही है। मैं मानता हूं जिसने इतनी हिम्मत की वह थोड़ा हिम्मतवर है, और थोड़ी हिम्मत करेगा। कदम-कदम भीतर ले जाया जा सकता है। और मैं क्या कर रहा हूं? कोई भी क्या करेगा? कर तो आप ही रहे हैं। ज्यादा से ज्यादा यह सिचुएशन पैदा की जा सकती है। और आप बिना

सिचुएशन के नहीं कर सकते हैं, यह साफ है। अन्यथा कौन रोकता है? आप मजे से करें। जिसको भी करना है वह मजे से करे। उसे कौन रोकने कब गया है? लेकिन जो नहीं कर सकते हैं उनके लिए हम सिचुएशन पैदा करेंगे। लेकिन हमारा है मन ऐसा, हमारा मन ऐसा है कि कहीं कुछ होने लगे तो भी डर लगता है, कि कहीं हो ही न जाए।
अब एक, एक महिला इधर आई थी, अभी इस कैंप में। तो पहले दिन उसने प्रयोग किया, और बहुत अच्छा परिणाम हुआ। तो पहले भी तीन कैंपों में वह आई है। तो मुझे आकर पैर पकड़ कर रोकर उसने कहा कि यह पहले आपने क्यों न करवाया, हमारा इतना समय बेकार गया? बड़े आनंद से, बड़े भाव से उसने कहा, कि पहले आपने क्यूं हमें यह प्रयोग न करवाया, हमारा इतना समय बेकार गया? और किसी दिन वह भाग गई बीच में से और दोपहर में मुझे कह गई कि मैं घबड़ा गई हूं। वह तो आपका पहले वाला प्रयोग अच्छा था। वही मैं कहा। वह आपका पहले वाला प्रयोग अच्छा था। इसमें तो रोना-धोना, चिल्लाना और चीखना ऐसे तो पागल हो जाएंगे। यह महिला मुझसे, अभी एक ही दिन पहले मुझसे कहती है कि आपने यह पहले क्यों न करवाया और तीसरे दिन कहती है कि नहीं, वही ठीक था। शांत होकर बैठने वाला प्रयोग बहुत अच्छा था। और भाग गई बीच से वह।
अब हम क्या करें? आदमी का मन बहुत अजीब है, वह बचाव खोज रहा है। नहीं होगा तो आकर कहेगा कि हो नहीं रहा है। होगा तो आकर कहेगा कि कहीं हो तो नहीं जाएगा। दोनों बातें हैं। और बहुत कभी-कभी हंसने जैसा मालूम होता है। हैरान करने वाले लोग हैं!

प्रश्नः मेरे सामने जो दूसरा सवाल आया, कई विचारक लोग भी थे, कई लोगों
के प्रति बड़ा सदभाव भी था कि इंसान दो ढंग से काम कर रहा है, सब्जेक्टिव भी और ऑब्जेक्टिव भी। तो आपकी जो प्रवृत्तियां हैं, आप चाहते हैं कि आपके पास इतना समय भी नहीं है और आपके पास... हमारे पास इतना समय भी नहीं है, हम बड़ी आसानी से और बड़े पैमाने पर यह कार्य करना चाहते हैं। अगर वैसा ही कुछ करना है, तो आपकी जो शक्तियां हैं और भावनाएं हैं, वे कंस्ट्रक्टिव ऑटोराइट लाइन पर चैनेलाइज हो जाएं तब बड़ी आसानी से काम बन सकता है। लेकिन कभी-कभी क्या होता है कि आपकी बातों में इतना औरों के प्रति कुछ खंडनात्मक, वे लोग कह लेते हैं कि गांधी हो, कि महावीर, या कोई और, आपकी दृष्टि से कुछ छूटता नहीं है। तो कितने लोगों को ऐसा लगता है, मुझे भी लगता है कि इससे क्या होता है कि जो लोग सदभाव की दृष्टि से देखते हैं आपकी प्रवृत्तियों की ओर, उनके दिमाग में भी तो हलचल मचती है। और फिर आपको भी, तो आप अगर, आपका और इनका जो मेल होता है इसमें भी कुछ विक्षेप आता है। तो जब प्रवृत्ति आसानी से हो सकती है, इसके बजाय वे लोग अलग-अलग जो प्रकृति है, वह आपस में टकराती है। तो इससे यह अच्छा नहीं होगा कि आप कंस्ट्रक्टिव दृष्टि से आपको जो कुछ कहना है वह कहें। औरों ने क्या किया और क्या कहा वह बात छोड़ कर अगर यह काम आगे चल पाए तो क्या आसान नहीं होगा?

मुझे, मुझे नहीं लगता। मर ही जाएगा; आसान तो होगा ही नहीं। काम ही मर
ही जाएगा। क्योंकि यह दलील नई नहीं है। महावीर के पास भी लोगों ने आकर यही कहा कि आप कृपा करके अगर उपनिषदों और वेदों के खिलाफ न बोलें तो लोगों का सदभाव रहेगा। बुद्ध के पास भी लोगों ने आकर यही कहा कि आप अगर महावीर के खिलाफ न बोलें तो लोगों का सदभाव रहेगा और काम हो सकेगा। शंकर को भी लोगों ने आकर यही कहा कि अगर आप बुद्ध के खिलाफ न बोलें तो आसानी पड़ेगी, जिनका बुद्ध के प्रति सदभाव है उनका भी आपको साथ मिल जाएगा; जीसस को भी यही कहने वाले लोग थे। तो थोड़ा सोचने जैसा मामला है कि ये सारे के सारे लोगों को यह समझ में बात नहीं आई, समझाने वाले लोग थे। कौन थे समझाने वाले? आज हम, आज हम उनका नाम भी नहीं बता सकते।
कारण क्या है? न बुद्ध को खयाल में आता, न शंकर को खयाल में आता, न जीसस को, न महावीर को? मुझे भी खयाल में नहीं आता। उसका कारण है। पहली तो बात यह है कि जिसको हम व्यक्ति के भीतर आमूल परिवर्तन की व्यवस्था करते हैं, वह मूलतः डिस्ट्रक्टिव होती है। वह मूलतः डिस्ट्रक्टिव होती है। उसमें जो

सृजनात्मकता आती है, वह पीछे आया हुआ फल है। उसके प्रारंभिक चरण तो सब विनाश के हैं।
आप जो हैं, अगर मैं कल सत्य कुछ बात करूं तो वह इसमें भी एक जोड़ होगा आप
जो हैं। आप जो हैं, और इसलिए आपको आसानी पड़ेगा, सदभाव बनाना भी आसान पड़ेगा, क्योंकि आपको मैं अंगीकार करता हूं, जैसे आप हैं। ज्यादा से ज्यादा मैं यह कहता हूं कि इस कमीज के ऊपर आप एक बंडी और पहन लें, उससे आप और अच्छे लगेंगे। कुर्ता तो बहुत अच्छा है, आदमी आप बहुत अच्छे हैं, यह एक बंडी और पहन लें, इससे और सुंदर हो जाएंगे। इसके लिए आप राजी हो जाते हैं। क्योंकि आपको तो मैं बदलने को कुछ कहता नहीं, कुछ छोड़ने को कहता नहीं, कुछ तोड़ने को कहता नहीं, आपको मैं पूरा स्वीकार करता हूं। और कुछ एडिशन करता हूं आपमें, इसको आप कंस्ट्रक्शन कहते हैं। साधारणतः हम इसको कंस्ट्रक्शन कहते हैं कि आप जैसे हैं, उसको हम स्वीकार करते हैं, निश्चित ही। मुझे काम में सुविधा होगी मैं आपको बंडी पहना दूंगा। लेकिन आपको बंडी पहनाने का मेरा कोई प्रयोजन ही नहीं है।
मैं आपको बदलना चाहता हूं, आपको सुधारना-संवारना नहीं चाहता। आप सुधरे-संवरे होकर भी यही रहेंगे जो आप हैं, हो सकता है और खतरनाक हो जाएं। क्योंकि अभी शायद कभी-कभी आपको अपना शरीर भी दिखाई पड़ जाता हो, बंडी पहन कर वह भी दिखाई न पड़े और एक कोट पहन कर उसका और भी दिखाई पड़ना बंद हो जाए।
तो मौलिक रूप से तो मैं आपको मिटाना चाहता हूं, मिटाना चाहता हूं। और
उस मिटाने में बड़ी लम्बी यात्रा है। और अभी तो आपके विचार पर चोट करूंगा, कल आपके भाव पर चोट करूंगा और परसों आपके पूरे अस्तित्व पर चोट करूंगा। तो अगर विचार से ही आप भाग खड़े हुए तो मैं सोचता हूं, अपना कोई संबंध नहीं। क्योंकि और गहरी चोट कैसे आप सहेंगे? गांधी आपके लिए विचार से ज्यादा नहीं हैं। वह आपकी विचारधारा है। मोहम्मद आपकी विचारधारा है या महावीर आपकी विचारधारा है। अगर विचार का इतना मोह है, सिर्फ विचार का, तो आप अपने अस्तित्व को बदलने वाले आदमी नहीं हैं।
तो मेरे लिए तो उपयोगी है वह, कि मैं देख लेता हूं कि आदमी बदलने वाला आदमी है कि सिर्फ जोड़ने वाला आदमी है। तो मैं तो आपके विचार पर चोट करके, आपकी बिल्कुल परिधि पर चोट कर रहा हूं। अगर वहीं से आप भाग खड़े होते हैं और मेरा आपसे संबंध टूट जाता है तो मैं समझता हूं कि अच्छा हुआ इस झंझट में मैं नहीं पड़ा। क्योंकि यह काम होने वाला नहीं था आगे। चोट तो मुझे और गहरी करनी पड़ेगी। कल आपके भाव पर भी चोट करूंगा, कल आपके अस्तित्व पर भी चोट करूंगा।
जिनको भी इतनी गहरी चोट करनी है, जो भी ट्रांसफर्मेशन के लिए उत्सुक हैं, वे कंस्ट्रक्टिव नहीं हो सकते। और जो कंस्ट्रक्टिव हैं उनसे कभी ट्रांसफर्मेशन किसी का हुआ नहीं है। वह चाहे गांधी हो, चाहे विनोबा हो--इन दोनों को मैं कंस्ट्रक्टिव आदमी कहता हूं। इनसे किसी का कोई ट्रांसफर्मेशन कभी हुआ नहीं। तो अगर मुझे भी नेतृत्व भर करना हो तो वे जो मित्र सलाह देते हैं, उचित सलाह देते हैं। अगर मुझको भी एक महात्मा बन कर बैठ जाना हो तो वह बहुत सरल मामला है। उससे ज्यादा सरल कोई काम नहीं है। पर मैं, आप जैसे हैं, उसको स्वीकार करता हूं और सजा देता हूं आपको थोड़ा, आपके अहंकार को और फुसलाता हूं और सजा देता हूं। तो आपको परसुएड कर लेता हूं। लेकिन तब बस मैं नेता हो पाता हूं और कुछ भी नहीं होता, मैं महात्मा हो पाता। इससे ज्यादा कोई... आप पर मैं कुछ नहीं कर पाता। क्योंकि आपको तो मैं पहले ही स्वीकार करके चल पड़ा। अब तो आपके साथ तो कुछ करने का उपाय नहीं। तो मेरे जैसे व्यक्तियों को तो अनिवार्य रूप से इस उपद्रव से गुजरना पड़ता है।
वह उपद्रव नया नहीं है, वह पुराना है। अच्छा, और मजा यह है कि महावीर
ने जिन लोगों के खिलाफ कहा, महावीर जैसे आदमी को फिर महावीर के खिलाफ बोलना पड़ रहा है। क्योंकि तब तक महावीर का भी अनुगामी वहीं खड़ा हो गया होगा, जहां उपनिषद-अनुगामी महावीर के वक्त खड़ा है। यह झगड़ा महावीर से नहीं है। महावीर का जो झगड़ा था, वही यह झगड़ा है। दिखता है कि महावीर से है, क्योंकि महावीर को उपनिषद के अनुयायी के साथ लड़ना पड़ा था। क्योंकि वह

उपनिषद स्टेटस-को हो गया था। अब मुझे महावीर से लड़ना पड़ेगा, क्योंकि महावीर स्टेटस-को हो गए हैं। इसमें महावीर की सहानुभूति मेरे हिसाब से तो होगी ही, क्योंकि मैं काम वही कर रहा हूं।
और ऐसा नहीं है कि यह काम कोई खत्म हो जाने वाला है। कल मेरे जैसे व्यक्तियों को ही मुझसे लड़ना पड़ेगा। इसमें कोई उपाय नहीं है। यानी कल मेरे जैसे व्यक्ति को मुझसे फिर इसी भांति लड़ना पड़ेगा। और मेरी उसके साथ सहानुभूति है। क्योंकि किसी न किसी को लड़ना ही पड़ेगा, लड़ना ही चाहिए। क्योंकि तब तक मैं सेटल हो जाऊंगा, मैं कुछ लोगों के मन पर बैठ जाऊंगा। जिनके मन में मैं बैठ जाऊंगा, उनको अनसेटल करना पड़ेगा।
तो मेरी दृष्टि में वे जो मित्र कहते हैं, बड़ी गणित की, चालाकी की, होशियारी की बातें कहते हैं। ठीक कहते हैं, नेतृत्व के लिए वही जरूरी भी होगा। लेकिन मुझे उसमें उत्सुकता नहीं है। मुझे उत्सुकता आप में है और आपके लिए कुछ हो सके तो उसमें उत्सुकता है। और उसके लिए वह जो सर्जरी है, वह जरूरी चीज है, और विचार उसमें सबसे कमजोर हिस्सा है जिसको पहले चोट की जानी चाहिए। अगर उस पर ही चोट करने से आप तिलमिला जाते हैं तो फिर भीतर और चोटें करनी बहुत मुश्किल हैं। फिर तो और गहरा अहंकार है भीतर, वह और गहरा होता चला जाएगा।
इधर मेरे लिए तो वह परीक्षा का उपाय बन गया है। यानी मैं तो मानता हूं
कि मेरे खंडन वगैरह को सुन कर, मेरे क्रिटिसिज्म को सुन कर भी मेरे पास कोई आ रहा है तो मैं समझता हूं कि इस आदमी के साथ कुछ आगे मेहनत की जा सकती है। मैं उसको कहता नहीं कि वह मुझे माने, मेरे खंडन को माने। इसको भी नहीं कहता, लेकिन फिर भी मेरे पास आ रहा है। और मेरे डिस्ट्रक्टिव ढंग से भाग ही नहीं गया है तो मैं समझता हूं कि यह आदमी डिस्ट्रक्शन के लिए तैयार हो सकता है। इसके, इसके भीतर कुछ तोड़ा जा सकता है। और यह आदमी थोड़ी देर टिक सकता है।
अन्यथा हम सबकी मान्यताएं ऐसी हैं कि एक बड़ी कठिनाइयां हैं, बड़े मजेदार मामले हैं। और एक आदमी तो नहीं है कोई। गुजरात में कोई गांधी का भक्त है, कोई मार्क्स का भक्त है; बंगाल में कोई मार्क्स का भक्त है, कोई गांधी का दुश्मन; कोई महावीर का भक्त है, कोई मोहम्मद का। यह, लेकिन इन सबका माइंड एक है। मेरी लड़ाई उस माइंड से है। वह इनको थोड़े दिन, दिन में समझ में आने लगेगा। क्योंकि जब मैं गांधी से लड़ता हूं तो मार्क्सिस्ट मेरे पास आ जाता है। वह कहता है, तो बढ़िया है आप बिल्कुल सच बात कहते हैं। साल भर बाद वह एकदम भाग खड़ा होता है, जब मैं मार्क्स के खिलाफ बोलता हूं, तब वह भाग जाता है कि नहीं यह आदमी अब गड़बड़ हो गया है। वह पहले बिल्कुल ठीक था। ये पांच-दस वर्ष लगेंगे कि लोग समझेंगे कि मुझे न मार्क्स से कोई लेना है न गांधी से, इरेलिवेंटहैं ये।
आपके माइंड से मुझे लड़ना है। तो गांधी के भक्त से लड़ना है तो मैं गांधी के खिलाफ बोलूंगा। मार्क्स के भक्त से लड़ना है तो मार्क्स के खिलाफ बोलूंगा। और कई बार इन दोनों में बड़ा कंपिटिशन दिखाई पड़ेगा, दिखाई पड़ेगा ही। क्योंकि मार्क्स के खिलाफ लड़ना है तो और ढंग से लड़ना पड़ेगा, और गांधी के खिलाफ लड़ना है तो और ढंग से लड़ना पड़ेगा।
ये दोनों बातों में कई बार इनकंसिस्टेंसी भी दिखाई पड़ेगी। क्योंकि अगर मुझे एक गांधी के खिलाफ लड़ना हो तो मैं कंस्सिटेंट हो सकता हूं। मुझे तो एक तरह के माइंड से लड़ना है, वह माइंड जो मार्क्स को पकड़ लेता है; गांधी को पकड़ लेता है; बुद्ध को पकड़ लेता है, उस माइंड से लड़ना है। उस माइंड से लड़ने के लिए मुझे नाहक इन विचारों से भी लड़ना पड़ता है। इनसे मुझे कोई प्रयोजन नहीं है।
लेकिन यह लड़ाई करनी पड़ेगी। और अगर सिर्फ महात्मा बन कर रह जाना हो किसी आदमी को तो बहुत सरल है। उससे ज्यादा सरल काम तो है ही नहीं। और हमारे मुल्क में तो उससे ज्यादा सरल काम है ही नहीं। इसलिए इधर जो यह सलाह मित्र देते हैं। इन्हीं मित्रों की सलाह या इन्हीं तरह के सोचने वाले लोग हजारों हैं, उनसे कुछ हो नहीं पाता।

प्रश्नः नहीं, लेकिन मैं यह कहता हूं कि हर एक व्यक्ति अपनी-अपनी परिस्थिति की पैदाइश है। मान लीजिए कि महावीर और गांधी सब अपनी-अपनी परिस्थिति और अपने-अपने विषय पर संतुष्ट हैं, उनकी एक पैदाइश है। तो विचारों के साथ अगर झगड़ना ही है तो फिर व्यक्ति निरपेक्ष विचारों के साथ अगर झगड़ा जाए तो अच्छा नहीं होगा, क्योंकि कभी-कभी होता है कि इंसान को कभी हमारे अनजानेपन से अन्याय भी हो सकता है?

सवाल यह नहीं है, सवाल यह है, एक तो यह कि यह हमारा जो, जो सोचने का ढंग है--व्यक्ति को अलग करें, विचार को अलग करें, यह सही नहीं है। गांधी के सब विचार अलग कर लें तो गांधी में बचता क्या है? कुछ भी नहीं बचता। यह मोहनदास नाम का आदमी किसी मतलब का... इससे कुछ लेना-देना... । यह आदमी जो कुछ भी है वह एक इक्ट्ठा जोड़ है। और गांधी के व्यक्तित्व को अलग कर लें तो विचारों में क्या बचता है? क्योंकि बापू ने बहुत विचार रखे, वह एक मुर्दा किताब रह जाएगी।
व्यक्ति और विचार ऐसी कोई दो चीजें नहीं हैं। व्यक्ति ही विचार है, विचार ही व्यक्ति है। बस अस्तित्व में तो इकट्ठे हैं। इसलिए हम एक से नहीं लड़ सकते हैं। हालांकि वह भी चालाकी की जाती है। वह चालाकी की जाती है कि नहीं? गांधी के व्यक्तित्व को तो हमें कोई मतलब नहीं है। मेरा तो इस विचार से विरोध है। पूरे विचार से नहीं, इस विचार से विरोध है। ये सब आत्म-रक्षा के उपाय हैं।
दूसरी बात कि सब अपनी परिस्थिति की उपज हैं। लेकिन वही परिस्थिति रावण भी पैदा करती है और वही परिस्थिति राम भी पैदा करती है। आज परिस्थिति दुनिया में एक है, लेकिन तीन अरब आदमी हैं। तीन अरब ढंग के आदमी। माना कि वे परिस्थिति की उपज होते हैं, लेकिन एकदम परिस्थिति की ही उपज नहीं होते। हम भी रोपे, जो परिस्थिति को उपजाता रहता है, वह भी होता है हमारे जीवन में। परिस्थिति ही हमारा चुनाव है। परिस्थिति को भी हम बदलते हैं। परिस्थिति को बदलने में अपने गुण बदलते हैं और निर्धारक होते हैं। तो कोई व्यक्ति निपट परिस्थिति की उपज नहीं है।
तीसरी बात, जब महावीर के, के विरोध में कुछ कह रहा हूं या बुद्ध के या किसी के भी, तो असली सवाल महावीर-बुद्ध से नहीं है। अगर दुनिया में अनुयायी न रह जाएं तो मैं बुद्ध-महावीर की बात ही बन्द कर दूं। मुझे उनसे तो कुछ लेना ही देना नहीं है। जिस दिन दुनिया अच्छी होगी और अनुयायी नहीं होंगे, समझदार लोग होंगे। क्योंकि अनुयायी सिर्फ नासमझ ही हो सकते हैं। जिस दिन दुनिया समझदार होगी और अनुयायी नहीं होंगे, महावीर को लोग पढ़ेंगे और समझेंगे, बुद्ध को पढ़ेंगे-समझेंगे, लेकिन कोई किसी का अंधा अनुयायी नहीं होगा। उस दिन मेरे जैसे आदमी को बड़ी सुविधा हो जाएगी। हमें महावीर, बुद्ध की बात ही नहीं करनी पड़ेगी। उन्हें बीच में लाने का कोई प्रयोजन ही नहीं रह जाता है। उनसे आज भी कोई प्रयोजन नहीं है। आज भी प्रयोजन आप से है। गांधीवादी से है, बुद्धवादी से है। यह जो वादी का चित्त है, यह वादी का चित्त कहता है कि आपको जो कहना है वह आप कहो, हमारी बात को मत छेड़ो। हमारे गुरु को मत छेड़ो।
हमें उसके गुरु से... लेकिन ऐसा हो सकता है, वह तो मर चुका। उसको हमारे छेड़ने से कोई जरूरत ही नहीं। हम उसके गुरु को मारने जा नहीं रहे, वह हमारे बिना ही मर गया। हम इसे छेड़ने जा रहे हैं, लेकिन अगर इसका गुरु न छेड़ा जाए तो यह आदमी नहीं छिड़ता। ये अपने दरवाजे पर गुरु को खड़ा किए हुए हैं। ये अपने दरवाजे पर झंडा लगाए हुए हैं गुरु का। यह कहता है कि इस झंडे को बस मत उतारो। और यह इसका सुरक्षा-कवच है।
यह झंडा उतारना पड़ेगा, यह लड़ाई लेनी पड़ेगी। मेरी अपनी जो दृष्टि है, मेरी जो दृष्टि है वह यह है कि व्यक्ति का आमूल जो रूपांतरण है, उस आमूल रूपांतरण में उसके विचार की प्रक्रिया से, उसके वाद के ढंग से, उसकी आइडियालॉजी से उसकी पकड़, वह जो क्लिंगिंग है उसकी, उसको तोड़ना पड़ेगा। अगर हम उसे किसी तरह अपरूट नहीं कर पाते हैं उसकी जड़ों से, तो हम उसे नई जड़ों पर

नहीं ले जा सकते हैं। उसका कोई उपाय नहीं है। और इसलिए वक्त... मेरी बात में हमेशा देर लगने वाली है, देर लगेगी ही स्वभावतः। वह स्वाभाविक है।

प्रश्नः लेकिन यह आपने कहा न कि दो साइड हो गई। जो अटैक करता है और जिनके ऊपर अटैक किया जाता है। तो आत्म-रक्षा का प्रबंध और शायद कोई अगर इससे अच्छा शब्द मुझे मिल सके तो मुझे आनंद होगा लेकिन आत्म-श्लाघा का प्रपंच, वह दोनों के बीच में एक छोटी सी एक लकीर है, कहां पर उसका जजमेंट कैसे निकालना, कि अगर आप कुछ कहते हैं कि मैं कुछ कहूं कि किसी ने भी कहा, तो एक और कह सकते हैं, कि गांधीवादी या तो बिनोवावादी या तो महावीरवादी यह इनकी आत्म-रक्षा का प्रबंध है, क्योंकि ये करते हैं। कोई आपके लिए भी ऐसा कह सकता है, कि वह रजनीश, जिसका आत्म-श्लाघा का प्रपंच है?

मैं समझ गया। मैं समझ गया। नहीं, मैं कहता नहीं कि हम जजमेंट लगाएं या
हम अलग करें या उस चिंता में पड़ें। इसलिए नहीं कहता हूं कि अगर मैं किसी दिन किसी के पास पूछने जाऊं कि मुझे शांति चाहिए, मुझे आनंद चाहिए, मुझे सत्य चाहिए। तभी सवाल उठता है। वह जो महावीरवादी है अगर उसकी आत्म-रक्षा का उपाय नहीं है और महावीर से उसने कुछ पा लिया है, तब उसकी खोज बंद हो जाती है। लेकिन मैं मानता हूं वह है महावीरवादी, आया मेरे पास है। मैं उसके पास नहीं गया। यानी अगर मैं अगर आत्म-श्लाघा में जी रहा हूं तो यह मेरा (अस्पष्ट)... बंद हो जाए। इसमें किसी को क्या लेना-देना? मेरी जो, मजे की बात है न, वह महावीरवादी आया है मेरे पास। अभी जैन मुनि मेरे पास आते हैं, अब वे कहते हैं कि मैं आचार्य तुलसी का दीक्षित साधु हूं, ध्यान सिखाइए। मैं उनको कहता हूं, आचार्य तुलसी से क्या सीखा है? दीक्षा किसलिए ली, और दीक्षा ले ली और ध्यान भी नहीं आया तो दीक्षित हुए कैसे?
अब यह बड़े मजे की बात है क्योंकि अगर, अगर सीधी तो बात यह है कि अगर महावीर से कुछ मिल गया है तो अब मेरे पास आने का कोई अर्थ ही नहीं है। बात खत्म हो गई। अगर गांधी से तुम्हें ज्ञान मिल गया है तो मजा करो। इससे कुछ लेना-देना नहीं। लेकिन मिला नहीं है, खोज जारी है। लेकिन फिर कहते हो कि गांधी को पकड़े रहेंगे। नहीं, मैं गांधी को छुड़वाऊंगा। क्योंकि जिससे नहीं मिला, कृपा करके उसे छोड़ो। मिल गया हो तो मैं नहीं कहता, मैं कभी आऊंगा नहीं कहने घर। इसलिए मैं, मेरा जो निरंतर खयाल है वह इतना ही है कि नहीं मिलता है जहां से, वहां भी हम पकड़े रहना चाहते हैं। अच्छा, फिर मुझसे भी यही चाहते हैं कि मैं भी उसमें थोड़ा एडीशन बन जाऊं। यानी मजेदार है मामला है न। मुझसे भी कुछ सीख कर जाएं, समझ कर जाएं, वह भी गांधीवाद में ही एडीशन होने वाला है।
तो इसलिए मैं तो इसमें अगर यह मेरी आत्म-श्लाघा है, हो सकती है, तो यह मेरा नरक बनेगी। अगर यह आपकी आत्म-रक्षा है तो यह आपका नरक बनेगी। और हमें सोच लेना चाहिए कि हम क्या बना रहे हैं उसको? और यह इतनी निकट वैयक्तिक है बात... इसलिए निर्णय का कोई उपाय भी नहीं है। इसके लिए मैं हो सकता है कि मैं सिर्फ अपनों को, सबको धोखा दे रहा हूं। लेकिन तब इसकी दुख और पीड़ा मेरी है। इसकी दुख और पीड़ा किसी की भी नहीं है।
क्योंकि इससे अगर मैं कुछ खो रहा हूं जो मुझे गांधी को पकड़ने से मिल सकता था, तो मैं उसे खोने को तैयार हूं। उसमें कोई कठिनाई नहीं है। मुझे महावीर को पकड़ने में जो शांति मिल सकती थी, वह मुझे लेने की इच्छा नहीं है। और अगर मैं अशांत हूं तो ज्यादा दिन यह आत्म-श्लाघा चल नहीं सकती। क्योंकि अगर आप भी अपनी अशांति से परेशान होंगे, मैं नहीं होऊंगा। आप अपने दुख से पीड़ित होंगे, मैं अपने दुख से पीड़ित नहीं होऊंगा। आप तो अपना नरक मिटाने की कोशिश में लगे हैं, मैं अपना नरक बनाता रहूंगा। कितनी देर तक यह चलेगा, यह कैसे चल सकता है? यह असंभव है।
इधर मुझे निरंतर सवाल उठता ही है। जो लोग भी सोचते हैं, उठेगा ही। पर मेरा मानना यह है कि इसके निर्णय की हमें जरूरत ही नहीं है। यह तो हमारे अपने सोचने की बात है। मैं जो पकड़े हुए हूं उससे अगर मुझे कुछ मिल रहा है तो बात खत्म हो गई। और अगर नहीं मिल रहा है तो मैं कहता हूं कि कृपा कर इसे

छोड़ो। इससे पहले कि कुछ और तुम्हारी जिंदगी में उतर सके, तुम इसे छोड़ो। और उसे छुड़ाने की लड़ाई ही कष्टपूर्ण बनती है। और जब मैं देखता हूं कि आप छोड़ने को भी तैयार नहीं हैं तो मैं मानता हूं कि नये को पाने की सामर्थ्य आपकी नहीं है। इसलिए मैं उधर से हिसाब ही छोड़ देता हूं।
यानी उचित है न यह। उचित है कि मैं एक जगह कुआं खोदने गया हूं। तो मैं कुदाली मार कर देख रहा हूं, अगर पत्थर ही है सामने और कुदाली पत्थर पर ही पड़ती है तो बेहतर है कि मैं दूसरी जगह खोदूं। इतनी मेहनत क्यूं करूं? अन्यथा जो आप कह रहे हैं, अगर वह उस तरह किया जाए तो मुझे अकारण फिजूल लोगों पर मेहनत करनी पड़ेगी। ये वे लोग होंगे जो बदलना नहीं चाहते। और जिनको मैं बदलने की कोशिश करता रहूंगा। अब यह मुझे धीरे-धीरे साफ होता चला जाता है कि इस भांति सहज ही वे लोग मेरे पास आ पाते हैं, जिनकी बदलने की आतुरता है। जिनमें बदलने का साहस है और जो कुछ भी छोड़ने को तैयार हैं। क्योंकि जो विचार ही छोड़ने को तैयार नहीं, वे कुछ और भी छोड़ पाएंगे, यह बहुत मुश्किल मामला है। क्योंकि विचार से ज्यादा निकम्मी चीज कुछ और है नहीं। यानी सिर्फ शब्द ही शब्द हैं, उसको भी छोड़ने में जो आदमी घबड़ा रहा है, वह कुछ और सब्स्टेंशियल छोड़ पाएगा किसी दिन, इसकी आशा बांधनी बहुत मुश्किल है। तो मेरे लिए तो वह परीक्षा का उपाय भी बन गया है। यानी मैं तो मानता यह हूं कि उससे मुझसे छंट जाते हैं लोग। वे ही लोग बच जाते हैं जिनके साथ मेहनत करनी ठीक होगी। और, और मैं सब तरह से उनको छांटता ही रहता हूं। क्योंकि मैं अकारण, अकारण मेहनत करने की मेरी उत्सुकता नहीं। क्योंकि असल में मेरी सीमा है। सबकी सीमाएं हैं।
सारी दुनिया को मैं बदल नहीं सकता। सारी दुनिया को बदलने का खयाल भी नहीं करना चाहिए। जितनी मेरी शक्ति है वह अधिकतम उपयोग में आ जाए, यह मुझे खयाल होना चाहिए। इस मामले को, यह एक अर्थ में सनातन है बहुत, और यह रोज उठता रहा है, और सदा उठेगा। क्योंकि आसान मेरे लिए भी वही है। आसान मेरे लिए भी वही है कि मेरे लिए भी लाख आदमी सुन सकते हैं। अगर मैं उन सबके अहंकारों की किसी तरह की तृप्ति कर रहा हूं, या तृप्ति नहीं कर रहा हूं सिर्फ चोट ही नहीं पहुंचा रहा हूं, इतनी ही तृप्ति ही कर रहा हूं तो मुझे लाखों लोग सुन सकते हैं। लेकिन मैं लाखों लोगों को सुना कर भी क्या करूंगा? मैं दस आदमियों को सुनाना पसंद करूंगा जो कि बदलने के लिए तैयार रहें। ये लाख आदमी सुन कर ताली बजा कर चले जाएंगे, लेकिन इससे क्या होने वाला है? वह रोज चल रहा है, वह रोज चल रहा है।
इधर मेरी अपनी समझ यह है कि जैसे गांधी जी ने पूरा प्रयोग किया ही वही
का वही, जो सलाह मुझे मित्र देते हैं। गांधी जी ने पूरी जिंदगी वही किया। अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम को भी इकट्ठा कर लिया, गीता-कुरान को भी इकट्ठा कर लिया, मुसलमान को भी बदल दें, हिंदू को भी बदल दें, ईसाई को भी बदल दें। सबको तृप्ति भी दे दें कि तुम्हारी किताब में भी वही, हमारी किताब में भी वही। किसी के खिलाफ न बोलें, सबके पक्ष में बोलें। यह पूरी जिंदगी प्रयोग किया।
पर मैं नहीं मानता हूं कि दस-बीस आदमी की जिंदगी भी बदल पाए। खुद की भी बदल पाए, यह भी मैं नहीं मानता हूं। क्योंकि मेरा खयाल है कि अगर खुद को भी बदल पाते तो यह बात बहुत साफ हो जाती है कि यह जो गोरखधंधा वह कर रहे हैं, यह संभव नहीं है। यह महावीर और बुद्ध और क्राइस्ट ने नासमझी नहीं की है। ठीक जो हो सकता था, वही किया है। नहीं तो बुद्ध भी कह सकते थे कि महावीर भी वही कहते हैं; उपनिषद भी वही कहते हैं; गीता भी वही कहती है; सभी वही कहते हैं; वही मैं कहता हूं। इसमें हर्ज क्या था कहने में? यह बराबर कहा जा सकता है। लेकिन मैं मानता हूं कि बुद्ध, शायद लाख-दो लाख लोग, दस लाख लोग उनको सुन लेते। लेकिन आपको नाम भी खयाल में न होता बुद्ध का। लेकिन कुछ लोग उनमें बदले। और वे कुछ बदले हुए लोग ही काम पर हैं।
हर आदमी काम करता है। उसे कोई मतलब भी नहीं। तो मेरी उत्सुकता किसी तरह के नेतृत्व में नहीं है। और किसी तरह के परसुएशन में नहीं है। सीधी- साफ ऑनेस्ट बात होनी चाहिए। मुझे जो लगता है कि आप गलत हैं तो मैं पूरी चोट से कहूंगा। और मैं मानता हूं कि अगर आप अपनी किसी तरह की आत्म-रक्षा के

उपाय में नहीं लगेंगे तो आप समझ पाएंगे। अगर लगे हैं तो जल्दी ही आपसे मेरा छुटकारा हुआ। ज्यादा समय आप मेरा जाया नहीं करेंगे।
अभी मैं, देखा न कि क्या हुआ कि मुझे जो गांधीवादी बहुत शुभ-शुभ सुनता था, अब मैं मानता हूं उसने मुझे कभी नहीं सुना। क्योंकि मुझे वह वर्षों से सुनता था, कैंपों में आता था, ध्यान के लिए बैठता था, मैं गांधी के खिलाफ बोला तो वह भाग गया। अब मैं सोचता हूं कि वे कई वर्ष जो मैंने उसके साथ मेहनत की, वह बेकार गई। मुझे गांधी के खिलाफ पहले ही बोल देना था।
मेरे अपने तौलने के ढंग हैं। यह मानता हूं कि मेरा समय व्यर्थ गया, क्योंकि वह आदमी तो भाग गया। और वर्षों ध्यान करके और वर्षों मुझे सुन कर भी वह इतनी हिम्मत न जुटा पाया कि इतनी आलोचना सह लेता। तो वह बेकार समय जाया हुआ। मैं और वर्षों उसको सुनाए जा सकता था, गांधी के खिलाफ भर नहीं बोलता। वह भी समय जाया होने वाला था। इधर मेरी अपनी यह समझ है, मेरा मानना ऐसा है कि जो आदमी बदलने की तैयारी पर खड़ा है, वह आदमी सब तरह की चोट झेलने की भी तैयारी पर खड़ा होता है।

प्रश्नः ठीक है लेकिन कभी-कभी ऐसा होता है कि विश्राम का काल भी होता
है न। कि अगर मान लीजिए जिनको आप मानते हैं कि यानी अगर गांधी की बात आप करने लगे तो वे लोग चले गए, वैसा नहीं है। शायद कभी-कभी होता है कि कोई चोट ऐसी लगती है कि अगर ठेस इधर लग गई तो मैं चल सकता हूं, लेकिन अगर यहां लग गई तो मुझे जरा कुछ पांच-दस मिनट, पंद्रह मिनट कुछ ठहरना पड़ सकता है। ऐसा नहीं है कि वे लोग छोड़ गए, इतना ही है कि विश्राम का काल है वे फिर से वापस आ सकते हैं।

नहीं, यह मैं नहीं कहता। वे अगर लौट भी आएंगे तो मैं मानता हूं कि वे पहले से बेहतर हालत में होंगे। क्योंकि अब वे लौटेंगे तो इस बात को जानते हुए लौटेंगे कि मैं उनको चोट पहुंचा सकता हूं। अब मेरे बाबत वे साफ लौटेंगे, तो भी हितकर होगा। वे दूसरे ही आदमी होकर लौटेंगे। अब अगर वे लौटते भी हैं, लौट रहे हैं। कुछ मित्र लौटे हैं वापस, तो अब वे एक बात साफ करके लौट रहे हैं कि मैं किसी तरह से उनको परसुएड करने में उत्सुक नहीं हूं। और मैं मानता हूं अंत में यह बल बनेगा। अगर मैं आपको किसी तरह परसुएड नहीं कर रहा, किसी तरह आपमें इस तरह की उत्सुकता नहीं ले रहा कि किसी भी हालत में आपको राजी होना हो। तो मैं मानता हूं मेरे और आपके बीच ज्यादा सिंसियर संबंध पैदा होंगे। क्योंकि एक तरह का धोखा ही है वह।
अगर मैं गांधी के खिलाफ वह नहीं बोलता, तो भी धोखा ही दे रहा हूं। अगर
एक आदमी मेरे पास आता है और मैं कुरान के खिलाफ, यह देख कर कि चूंकि वह मुसलमान है, इसलिए कुरान के खिलाफ नहीं बोलता तो भी मैं धोखा दे रहा हूं। मेरे बीच उसके संबंध कभी ऑनेस्ट नहीं हो सकते। मैं जो हूं, मुझे साफ है। तो अब तो धीरे-धीरे मैं ऐसी स्थिति बना लूंगा दो साल में कि मैं जैसा हूं, वैसा साफ हूं। बुरा-भला जैसा। आप आते हैं तो सब जान कर आते हैं। इसलिए आपके लौटने का उपाय कम हो जाएगा।
अभी पीछे दिक्कत थी, लौट जाने का डर सदा बना रहता था। वह, वह कठिनाई थी। अब वह मैं मिटा लेता हूं बिल्कुल। तो उसमें सीधा-साफ मामला हो जाएगा। आप जान कर आते हैं कि मैं ऐसा आदमी हूं। मेरे साथ दो घंटे अगर बैठना है तो यह सब संभावना है। तो मैं मानता हूं कि हम कुछ काम कर पाएंगे। और संबंध हार्दिक हो पाएंगे। और नहीं तो नहीं हो पाएंगे। और छोटे से छोटे लोग ही नहीं, बड़े-बड़े लोगों के साथ ऐसी हालत है।
एक बड़े संत अपने आश्रम में रोज मेरी किताबों का पाठ करते थे वर्षों से। और बैठ कर सारे साधकों को समझाते थे। गांधी के विपरीत बोला तो वे सब किताबें वहां से हटा दी गईं। वे किताबें वही हैं, उनमें मैंने कोई फर्क नहीं कर दिया है। मगर मैं गांधी के विपरीत बोला तो उनके लिए सारा गड़बड़ हो गया। अब मैं मानता हूं कि वह अच्छा ही हुआ। कि वह नाहक ही मेहनत कर रहे थे। वह मेरी किताब नहीं समझ पाएंगे। वह भूल-चूक की बात चल रही थी। तो कठिनाई तो है ही इसमें, लंबा भी वक्त लेती है यह बात। लेकिन थोड़ा सा भी जो काम हो

पाएगा, वह होगा। लगेगा कि काम हुआ। और अन्यथा काम नहीं हो पाएगा। फैलाव बहुत दिखेगा, कुछ हो नहीं पाएगा उससे। उससे कुछ निकलेगा नहीं।

प्रश्नः आपका जो आंदोलन है, प्रवृत्ति वगैरह है, तो इनका व्यक्ति के ढंग से अगर देखा जाए, तो आखिरी मकसद क्या है? और समाज की दृष्टि से देखा जाए, तो एम, इसका मकसद क्या है? आप क्या, अल्टीमेटली कहां जाना चाहते हैं?

दोनों ही दृष्टि से एक ही, एक ही बात है। व्यक्ति की दृष्टि से भी, समाज की दृष्टि से भी। व्यक्ति की जितनी संभावना है आनंद पाने की, वह प्रकट नहीं हो पाएगी। नहीं हो पा रही है। कभी इक्के-दुक्के आदमी में प्रकट हुई है। बड़े व्यापक पैमाने पर वह प्रकट नहीं हुई है। और उसकी जो आनंद की संभावना प्रकट न हो तो वह जिस समाज को निर्मित करता है, वह भी दुख का समाज ही होता है। इसलिए मेरे लिए तो एक ही है दोनों के पीछे कि व्यक्ति अधिकतम आनंद को कैसे उपलब्ध हो? जिस रास्ते से मुझे लगता है कि आनंद है, जिस रास्ते से मुझे आनंद मिलता है, वह मैं आपसे कह देना चाहता हूं। अपेक्षा बिल्कुल नहीं है मेरी कि आप उसको मानें ही। मेरा कर्तव्य पूरा हो जाता है। यानी मुझे अगर दिखाई पड़ रहा है कि जिस जगह मैं खड़ा हूं वहां से रोशनी दिखाई पड़ती है। और आप अगर दो इंच हट आएं अपनी जगह से तो इतनी ही रोशनी के मालिक हो सकते हैं। तो मैं दो इंच हटाने की आपको कोशिश कर रहा हूं। इसमें भी आप पर मेरी कोई दया नहीं है। इसमें भी आनंद बंटने से मुझे आनंद मिलेगा, उतनी ही बात है। आप पर कोई करुणा नहीं, आपसे कुछ लेना-देना नहीं है। इधर मेरा अनुभव ऐसा है कि आनंद मिलेगा, तो आनंद मिलता ही है।
जब हम उस आनंद को बांटें, तो वह करोड़ गुना हो जाता है। तो मैं अपने आनंद को करोड़ गुना कर रहा हूं। कितने ज्यादा लोगों को वह मिल सकेगा, उतना ज्यादा मुझे मिल जाएगा। और अल्टीमेट का कोई खयाल नहीं। इमिडिएट पर मेरी सदा नजर है। यानी मेरा मानना है, अभी मिल सकता है आपको। जरा से अंतर की जरूरत है। जहां आप खड़ें हैं, वहां से शायद थोड़ा ही रुख बदलने की बात है। और वह आपको मिल सकता है।
तो जितने लोग मेरे निकट जाएंगे, उनको मैं वह कहता चला जाऊंगा। अगर वे राजी हों तो उनको घुमा कर खड़ा करने की भी तैयारी है। मैं उनको घुमा कर उस तरफ रुख कर दूं, जहां रोशनी मुझे मालूम पड़ती है। जिस तरफ उन्होंने आदतवश ही कभी देखा नहीं है। इससे मुझे आनंद मिल रहा है। इससे आपको मिलेगा, नहीं मिलेगा, ऐसा मुझे पक्का नहीं। मैं आपको घुमा ही पाऊंगा, यह भी जरूरी नहीं। लेकिन मैंने आपको घुमाने की कोशिश की, उससे भी मैं आनंदित हूं। और व्यक्ति बदले तो मेरे लिए समाज भी बदलता है।

प्रश्नः आप जिस दृष्टि से एक प्रेम के माध्यम से चलते हुए समाज की कल्पना करते हैं, वैसे समाज में भी तो कोई पैटर्न उसकी रहेगी, क्या कुछ रेगुलेशंस वगैरह भी रहेंगे? नियंत्रण वगैरह कुछ रहेगा कि नहीं?

इस पर हम कल-परसों बात करेंगे।

प्रेम नदी के तीरा
दूसरा प्रवचन

समर्पण के फूल

प्रश्नः मौत जो है वह आदमी की निश्चित होती है पहले से या अकस्मात यानी एक्सीडेंट से?

दोनों ही बातें हैं। एक अर्थ में तो निश्चित होती है मौत। इस अर्थ में निश्चित होती है जिस अर्थ में बाजार से घड़ी खरीदें तो गारंटी होती है, दस साल चलेगी। लेकिन घड़ी को चलाएं, कम चलाएं, व्यवस्था से चलाएं तो बीस साल भी चल सकती है। पटक दें, तोड़ डालें तो पांच दिन भी न चले। तो आदमी का शरीर तो एक यंत्र है। आत्मा की तो कोई मौत होती नहीं। और शरीर बिल्कुल यंत्र है। शरीर की ही मौत होती है। जब एक बच्चा पैदा होता है तो मां-बाप से जो भी वीर्यकण उसे मिले हैं, उन वीर्यकणों से बना हुआ शरीर कितना चलेगा, उसकी इनर कैपेसिटी होती है। उतना चल सकता है। लेकिन अगर बहुत व्यवस्था दी जाए तो सवा सौ साल भी चल सकता है। और कम व्यवस्था दी जाए तो पचहत्तर साल में भी खत्म हो जाए।
तो उम्र जो है, आत्मा की तो कोई उम्र नहीं है। इसलिए उम्र का सवाल धर्म
का सवाल नहीं है। उम्र का सवाल विज्ञान का सवाल है। तो उम्र तो शरीर की है। और शरीर यंत्र है। अगर हिरोशिमा पर एटम बम गिरा दिया जाए तो एक लाख आदमी एक ही साथ मर जाएं। उनके हाथ की रेखाएं देखी जाएं तो सबकी रेखाएं उसी दिन समाप्त नहीं होती। उसमें कोई बच्चा था, कोई बूढ़ा था। कोई बूढ़ा अभी मरने वाला था, कोई बच्चा अभी सत्तर साल जीने वाला था। पर एक लाख आदमी एक साथ मर जाता है। यह मृत्यु, जितना शरीर चल सकता था, उसके पहले हो गई। अगर बहुत व्यवस्था दी जा सके तो शरीर को बहुत लंबाया जा सकता है।
अब जैसे जहां बहुत सुविधा है, वहां की औसत उम्र लंबी हो गई। जैसे स्वीडन है, या नार्वे है, या अमरीका है। उनकी औसत उम्र अस्सी साल छूने लगी। उसका मतलब केवल इतना है कि शरीर है यंत्र, व्यवस्था पर निर्भर होता है। और आत्मा की कोई उम्र होती नहीं। इसलिए यह सवाल अगर ठीक से समझें तो धार्मिक नहीं है।
यह सवाल बिल्कुल ही वैज्ञानिक है। और विज्ञान ही उसका उत्तर देने वाला है। धर्म इसका उत्तर देगा तो सब उत्तर गलत होंगे। असल में धर्मों को कोई हक भी नहीं है कि शरीर के संबंध में कोई उत्तर दें। मगर, हमारी आदतें हैं तो हम उत्तर दिए चले जाते हैं। वह तो बिल्कुल वैज्ञानिक का उत्तर होगा। और इसलिए शरीर एक यंत्र भी नहीं है, सैंकड़ों यंत्रों का जोड़ है।
तो यह भी हो सकता है, आपका पूरा शरीर मर जाए और आपकी आंखें दूसरे के काम में आती रहें। आपका पूरा शरीर मर जाए, आपका फेफड़ा किसी दूसरे के हृदय में धड़कता रहे। धीरे-धीरे हम पूरे शरीर के अलग-अलग पार्ट्स को बचा लेंगे। और ऐसा हो सकता है कि आपके मरने के एक हजार साल तक भी आपकी आंखें देखती चली जाएं। दूसरे-दूसरे लोगों में बदलती चली जाएं। वह तो यंत्र है, उसका उपयोग हो सकता है। एक कार बिगड़ गई, उसमें से एक पुर्जा निकाल कर हम दूसरे में लगा सकते हैं। इसलिए इस सवाल को मैं धार्मिक नहीं कहता। एक वैज्ञानिक सवाल है, और वैज्ञानिक से ही पूछा जाना चाहिए। और उसी को उसका उत्तर भी देना चाहिए। वैज्ञानिक जो उत्तर देगा, वह मैंने कहा आपको।

प्रश्न: समर्पण क्यों और कैसे होना चाहिए?

समर्पण इसलिए कि हम व्यक्ति दिखाई ही पड़ते हैं, हैं नहीं। हम अलग दिखाई ही पड़ते हैं, हैं नहीं। यह बड़ी भ्रांत प्रतीति है कि हम अलग हैं। यह जो समस्त जीवन है, हम उससे जुड़े हुए हैं। ऐसे ही जैसे पत्ते को यह भ्रम हो सकता है कि वह वृक्ष से अलग है। और यह तो भ्रम उसको होता ही है कि दूसरे पत्तों से अलग है। उसी शाखा पर लगे दूसरे पत्तों से अलग है। यह तो पत्ते को भ्रम होता ही है। क्योंकि पड़ोस का कोई पत्ता सूख जाता है, वह तो नहीं सूखता

उसके साथ। अगर एक ही होता तो वह भी सूख जाता। पड़ोस के पत्ते को कोई तोड़ लेता है तो वह तो नहीं टूटता उसके साथ। अगर एक ही होता तो टूट जाता। पड़ोस में कोई बच्चे की तरह पत्ता है नया, ताजा, कोई बूढ़े की तरह पत्ता है। तो हर पत्ता अपने को अलग समझे यह बिल्कुल स्वाभाविक है। यद्यपि सत्य नहीं है। लेकिन अगर पत्ता थोड़ा भीतर प्रवेश करे और देखे कि हम तो एक ही शाखा से जुड़े हैं। और एक ही शाखा से रस मुझमें भी आता है और बगल के पत्ते में भी जाता है पड़ोस में। तो फिर वह यह भ्रांति नहीं रह जाएगी कि मैं अलग हूं। एक शाखा दूसरी शाखा से अलग दिखाई पड़ेगी। लेकिन अगर दोनों भीतर प्रवेश करें तो पता चलेगा कि एक ही वृक्ष से जुड़ी हैं। और एक वृक्ष दूसरे वृक्ष से अलग दिखाई पड़ता है। लेकिन दोनों वृक्ष नीचे जाएं तो पता चलेगा एक ही जमीन से जुड़े हैं।
हम जितने गहरे जाएंगे, उतना हमें पता चलेगा कि "मैं" जैसी बात भ्रांति है। समर्पण का इतना ही मतलब है। समर्पण का अर्थ है कि मैं भ्रांति हूं। टूटे हुए अलग आयलैंड की तरह। द्वीप की तरह मैं नहीं हूं। मैं सागर की तरह हूं, जहां सारी लहरें जो मेरे पड़ोस में दिखाई पड़ रही हैं, वे मुझसे भिन्न नहीं हैं। और जिससे वे जुड़ी हैं, उससे अलग होना या अपने को अलग समझना अहंकार है। और जिससे सब लहरें जुड़ी हैं, उसके साथ एक होकर लीन हो जाना समर्पण है।
समर्पण का कुल मतलब इतना है कि वह जो विराट है हमारे चारों तरफ, जिससे
हम पैदा होते हैं, जिसमें हम जीते हैं और जिसमें हम लीन हो जाते हैं, उससे हम क्षण भर को भी अपने को अलग न करें। अलग न करने के भाव का नाम समर्पण है। वह विराट के प्रति लहर का समर्पण है। लहर चाहे तो अपने को अलग समझ सकती है। कोई रोकने नहीं आएगा। सागर उससे कहेगा नहीं कि तुम अलग नहीं हो। लेकिन लहर का अपने को अलग समझना व्यर्थ के दुख पैदा करवाएगा। क्योंकि कभी लहर उठेगी, कभी गिरेगी। अगर वह सागर से एक समझ ले तो फिर लहर को मरने का डर नहीं रहेगा। लेकिन अगर लहर अपने को अलग समझे तो मरने का डर रहेगा। फिर तो मरना पड़ेगा। पास की लहरें मर रही हैं।
समर्पण का अर्थ तो इतना ही है कि हम विराट के हिस्से हैं। विराट की ही श्वास हममें चलती है। विराट का ही जीवन हममें से निकलता और फैलता है। विराट को परमात्मा कहें, सत्य कहें, जो भी नाम देना चाहें, हम अलग नहीं हैं। यह जिस दिन प्रतीति होगी, उसी दिन समर्पण हो जाएगा। समर्पण क्या? के संबंध में कह रहा हूं।
और समर्पण कैसे हो, उसके संबंध में भी यही कहना है कि अगर आप समझ लें अपनी वस्तुस्थिति कि सत्य क्या है? तो समर्पण हो जाएगा। अगर आप समझें, जैसा कि हम सब समझते हैं कि हम अलग हैं तो कठिनाई है खड़ी। चिंताएं हैं, दुख हैं, पीड़ाएं हैं--वे सब अलग होने के ही उपद्रव हैं। मौत आएगी तो मेरी आएगी, बीमारी आएगी तो मुझ पर आएगी। हारूंगा तो मैं हारूंगा।
तो मुझे जीतना है, मुझे बीमार नहीं होना, मुझे मरना नहीं है। लेकिन एक बार मुझे यह पता चल जाए कि "मैं" हूं ही नहीं। मुझसे बहुत बड़ी शक्ति मेरे भीतर से प्रकट हुई है। होगी प्रकट, लौट जाएगी। स्वस्थ होगी, अस्वस्थ होगी, जीतेगी, हारेगी--यह वह जाने। तो मैं तत्काल निश्चिंत हो जाता हूं। चिंता विदा हो गई।
धार्मिक व्यक्ति निश्चिंत हो जाता है। अधार्मिक व्यक्ति चिंता से घिरा रह जाता है। अधार्मिक व्यक्ति की बड़ी चिंताएं हैं। उसकी एग्ंजाइटी बड़ी गहरी है। धार्मिक व्यक्ति को चिंता का कोई कारण ही नहीं है। चिंता तभी तक है जब तक मैं हूं। और जब मैं नहीं हूं तो चिंता कौन करे? और किस बात की करे? और क्यों करे? इस सत्य को समझते ही कि हम जुड़े हैं चारों तरफ से, समर्पण संभव हो जाता है।
समर्पण किया नहीं जाता, समर्पण एक्ट नहीं है। वह आपका कृत्य नहीं है। कोई आदमी कहे कि मैं परमात्मा के प्रति अपने को समर्पण करता हूं। कभी नहीं कर पाएगा क्योंकि वह कह रहा है कि मैं परमात्मा के प्रति अपने को समर्पण करता हूं। उसके समर्पण में भी वह मौजूद रहेगा। और कल वह कह सकता है कि वापस

लेता हूं अपना समर्पण, तो परमात्मा क्या करेगा? जिसने दिया था, वह वापस ले सकता है।
तो समर्पण जो है, सरेंडर जो है, इट इ.ज नॉट एन एक्ट, यह कृत्य नहीं है कि
आप कर सकें। यह एक हैपनिंग है, कि आपकी समझ में आ जाए तो आप अचानक पाते हैं कि समर्पित हो गया। कर नहीं सकते। ऐसा नहीं कह सकते कि मैंने समर्पण किया। जिस दिन होता है, उस दिन आप इतना ही कह सकते हैं कि मैं कैसा पागल था कि मैंने समर्पण नहीं किया था। अब तो समर्पण हो गया है। इसको आप वापस नहीं लौटा सकते। यह पॉइंट ऑफ नो रिटर्न है। इससे आप वापस नहीं लौट सकते। लेकिन अगर किया है तो वापस लौट सकते हैं।
इसलिए "कैसे" जब आप पूछते हैं तो मैं उसे कृत्य नहीं कहता। आप करके नहीं समर्पण कर पाएंगे। समझ कर। अगर आपको समझ में आ जाए कि सारा जीवन जुड़ा है, सूरज ठंडा हो जाए, आप ठंडे हो जाएंगे। हवाएं न चलें कल, हवाओं से ऑक्सीजन विदा हो जाए, आप विदा हो जाएंगे। बचेंगे नहीं फिर एक क्षण भी। कल पृथ्वी ठंडी हो जाए, समाप्त हो जाएंगे। जुड़े हैं हम पूरे वक्त। इस पूरे जोड़ के बीच हमारा होना है।
हमारा होना इनडिपेंडेंट नहीं है। हमारा होना स्वतंत्र होना नहीं है। हमारा होना एक बहुत विराट शक्ति पर प्रतिपल परतंत्र है। प्रतिपल उस पर निर्भर है। यह निर्भरता की समझ आपको समर्पण में ले जाएगी। और समर्पण के बिना धर्म है ही नहीं। समर्पण के बिना कोई, कोई अनुभूति नहीं है जीवन की। जिस दिन व्यक्ति स्वयं को खोता है, उसी दिन परमात्मा को पाने का हकदार
हो जाता है। और जब तक अपने को बचाता है तब तक परमात्मा को खोए रहता है। लेकिन हजार तरह के धार्मिक लोग दिखाई पड़ेंगे, जो समझते हैं कि परमात्मा को खोज रहे हैं; जो समझते हैं परमात्मा की पूजा कर रहे हैं; जो समझते हैं परमात्मा को पाकर रहेंगे। लेकिन उनका समर्पण कहीं भी नहीं है। तब धर्म धोखा हो जाता है। चलता बहुत है, परिणाम उसका कुछ भी नहीं होगा।
अगर ठीक से समझें तो धर्म बहुत गहरे अर्थों में आत्मघात है। बहुत गहरे अर्थों में। साधारण आदमी जब सुसाइड करता है तो सिर्फ शरीर को ही खत्म करता है। धार्मिक आदमी असल में अपने "मैं" को ही समाप्त कर देता है। समाप्त कर देता है, कहने में ठीक बात नहीं आती। अनुभव करता है। जब देखता है चारों तरफ तो समाप्त हो जाता है।
लाओत्सु का एक वचन है कि जब तक मैंने खोजा परमात्मा को तब तक न पा सका। क्योंकि मैं तो मौजूद ही था खोजने वाला। मैं मौजूद था उसे नहीं पा सका। जब मैंने खोज भी छोड़ दी, और जब मैंने खोजने वाले को भी छोड़ दिया, तब मैंने पाया कि मैं पागल कहां खोजता फिर रहा था, वह यहीं था। बस मेरी मौजूदगी की वजह से मुझे दिखाई नहीं पड़ता था। उसने कहा है कि जब मैं एक सूखे पत्ते की तरह हो गया, हवाएं पूरब ले जातीं तो मैं पूरब जाता, क्योंकि मैं एक सूखा पत्ता हो गया था। हवाएं पश्चिम जातीं तो मैं पश्चिम जाता, मेरी अपनी कोई मंजिल न थी। मुझे कहीं पहुंचना न था। हवाएं पश्चिम ले जाती तो मैं राजी था, हवाओं पे सवार हो जाता; पूरब ले जाती तो पूरब चला जाता। जमीन पर गिरा देती तो मैं विश्राम करता और आकाश में उठा देती तो मैं सूरज का आनंद लेता। इस भाव-दशा का नाम समर्पण है।
तो समर्पण कृत्य नहीं है। समर्पण इस बात की प्रतीति है कि हम अलग नहीं हैं, विराट से जुड़े हैं। बस समर्पण हो जाएगा। और जैसे ही समर्पण होगा वैसे ही जिंदगी में क्रांति हो जाएगी। तब एक आदमी आपको गाली दे रहा है तब आपको ऐसा नहीं लगेगा कि आपको गाली दी जा रही है। अब आप नहीं हैं। और अब आपको ऐसा भी नहीं लगेगा कि वह आपका दुश्मन हो सकता है, क्योंकि वह भी विराट का हिस्सा है। तब क्रोध असंभव हो जाएगा। तब चिंता असंभव हो जाएगी। अशांति असंभव हो जाएगी। तब जो हुआ है, उसकी स्वीकृति आ जाएगी। समर्पण का जो परिणाम होगा वह टोटल एक्सेप्टिबिलिटी होगा। फिर जो भी हो रहा है उसकी स्वीकृति आ जाएगी। फिर हम कभी कहेंगे ही नहीं कि इससे अन्यथा भी होना चाहिए। जो हो रहा है, ठीक हो रहा है।
ऐसा देखें, खोजें, चारों तरफ जिंदगी को तो पता चलने लगेगा कि नाहक ही, नाहक ही मैं अपने को सम्हाले हुए परेशान हो रहा हूं। और जिसे सम्हाल रहा

हूं वह वैसे ही है जैसे कोई आदमी हवा को बांधने के लिए मुट्ठी बांध ले। और जितनी जोर से मुट्ठी बांधे, उतना ही पाए कि हवा मुट्ठी में और भी नहीं रह गई। हवा को पकड़ना हो तो मुट्ठी बांधना राज नहीं है; हवा को पकड़ना हो तो मुट्ठी खोलना राज है। अब यह बड़ा उलटा राज है। क्योंकि दुनिया की सब चीजें पकड़नी हो तो मुट्ठी बांधनी पड़ती है। सिर्फ हवा को पकड़ना हो तो मुट्ठी खोलनी पड़ती है। जितनी खुली मुट्ठी है उतनी ज्यादा हवा उसके पास होगी। जितनी बंद मुट्ठी है उतनी हवा कम हो जाएगी।
तो दुनिया में सब चीजें पानी हों तो अहंकार की जरूरत है। सिर्फ परमात्मा के मामले में नियम बिल्कुल हवा जैसा हो जाता है। उसे पाना हो तो अहंकार सबसे ज्यादा गैर-जरूरी चीज है। जितना अहंकार होगा उतनी मुट्ठी बंद हो जाएगी, और उसका पाना मुश्किल हो जाएगा। तो समर्पण जो है वह एंटीडोट, वह सिर्फ अहंकार की विपरीत यात्रा है। उससे ज्यादा कुछ भी नहीं।

(प्रश्न ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

आप पूछते हैं कि आत्मा के आवागमन और कर्म के संबंध में कुछ... सच तो यह
है कि आत्मा का आवागमन शब्द ठीक नहीं है। लेकिन हमारी भाषा में काम चलाना पड़ता है। आवागमन तो सिर्फ शरीरों का होता है। आत्मा तो है, सो है। एक शरीर थक जाता है जीर्ण हो जाता है तो बदल जाता है। आत्मा न तो आती, न जाती। आत्मा है, जो है उसी का नाम आत्मा है। लेकिन हमारी तरफ से काम चल सकता है। हमारी तरफ से हम ऐसा सोच सकते हैं। क्योंकि निश्चित ही एक शरीर छूटता है, दूसरा शरीर, तीसरा शरीर। यह सारी यात्रा शरीरों की बदलाहट की है। आप अपने घर में कपड़े लाते हैं। और कपड़े बदल लेते हैं, तब आप कभी नहीं कहते कि यह मेरा आवागमन हो रहा है। आप इतना ही कहते हैं कि कपड़े आ, जा रहे हैं। कपड़े बदल रहे हैं। कभी नहीं कहते कि मैंने कपड़े बदल लिए तो मेरा आवागमन हो गया। आपका क्या आवागमन हुआ? कपड़े का ही आवागमन हुआ। कपड़ा आया और गया। पुराना गया, नया आया। कपड़े बदले। आप तो जो हैं, सो हैं।
ठीक आत्मा के ऊपर कोई आवागमन नहीं घटता। सिर्फ कपड़े बदलते चले जाते हैं और गहरे कपड़े हैं शरीर के। सत्तर साल चलते हैं, अस्सी साल चलते हैं, सौ साल चलते हैं। वह जो इसके भीतर न आता, न जाता, वह आत्मा है। जब यह ख्याल में आ जाए कि इन कपड़ों के भीतर कोई निवासी है, इस भवन के भीतर कोई रहने वाला है तो यह भी खयाल में आ जाएगा कि जो भी हम कर रहे हैं, जो भी हम कर रहे हैं, उस करने का भी जो परिणाम है, वह परिणाम भी आत्मा तक नहीं पहुंचता। वह परिणाम भी मन तक पहुंचता है।
शरीर की बदलाहट होती रहती है हर जन्म के साथ। मन की बदलाहट हर जन्म के साथ नहीं होती। वह और भी गहरा कपड़ा है। जैसे कि आपने ऊपर का कोट बदल लिया और कमीज पुरानी है। मन जो है वह और भी गहरा कपड़ा है जो हर जन्म के साथ नहीं बदल जाता। उसकी यात्रा हजारों-लाखों साल की है। तो हर मृत्यु में मन नहीं मरता। सिर्फ एक मृत्यु में मन मरता है जब समाधि के बाद आदमी मरता है। तब मन नहीं रहता, फिर मन भी मर जाता है। लेकिन मन के मरते ही फिर नये शरीर ग्रहण करने का उपाय नहीं रह जाता।
मन जो है, आत्मा और शरीर के बीच सेतु है, ब्रिज है। मन के बिना शरीर ग्रहण नहीं किया जा सकता। तो मन आप पुराने जन्म का लेकर आते हैं। अनेक जन्मों का लेकर आते हैं। शरीर आप नया कर लेते हैं। लेकिन मन आपके पास पुराना होता है। जब आप कपड़े बदलते हैं तब आपके पास मन पुराना ही होता है। कपड़े नये होते हैं। और उसी मन के आधार से आप कपड़े भी बदलते हैं। उस मन की क्या पसंदगी-नापसंदगी, उससे आप कपड़े बदलते हैं। मन वही रहता है। वह कंटीन्यू करता है।
यह जो मन है यह हमारे किए हुए, सोचे हुए, भाव किए हुए, जीए हुए समस्त कर्मों, समस्त विचारों, समस्त भावनाओं का सार अंश है। कहें कि मन हमारा व्यक्तित्व है, पर्सनैलिटी है। इसलिए हम सबके व्यक्तित्व अलग-अलग हैं, आत्मा अलग-अलग नहीं है। हमारे व्यक्तित्व अलग-अलग हैं। क्योंकि हम सबके मन अलग-अलग हैं। यह जो मन है, यह आपके साथ चलेगा। साथ चलने का मतलब सिर्फ

इतना ही है कि इस शरीर के गिरने के साथ नहीं गिरेगा। और इसी मन के आधार से आप नये गर्भ में प्रवेश करेंगे या नया शरीर ग्रहण करेंगे।
यह मन हमारे समस्त जीवन का टोटल है। समस्त जीवन का। जो आपने किया उसका भी, जो आपने नहीं किया, उसका भी। क्योंकि करना भी कृत्य है, न करना भी कृत्य है। अगर मैं इस कमरे में आया और मैंने चोरी की, तो भी मैंने एक कृत्य किया। और इस कमरे में मैं आया और मैंने चोरी नहीं की, तो भी मैंने एक कृत्य किया। और दोनों का परिणाम मेरे मन पर होने वाला है। जो हम करते हैं वह, और जो हम नहीं करते हैं वह भी, हमारे मन को निर्मित कर रहा है।
हमारा मन पूरे वक्त निर्मित हो रहा है। मन चौबीस घंटे क्रियेट किया
जा रहा है। सोते समय भी मन निर्मित हो रहा है। क्योंकि आपने कुछ और सपने देखे, मैंने कुछ और सपने देखे। और मन निर्मित हुआ। सपने में भी निर्मित हो रहा है। गहरी नींद में भी निर्मित हो रहा है। अगर ठीक से हम समझें तो मन जो है वह हमारे समस्त जीवन का लेखा-जोखा है। वह निर्मित होता रहा है। वह आपके साथ होगा, जब तक कि आप उसको तोड़ ही न डालें। उसे तोड़ने का नाम ही समर्पण है। उसे मिटा डालने का, उसे पोंछ डालने का, उसे विदा कर देने का नाम ही ध्यान है।
तो अब जो जानते हैं उनसे आप पूछें कि ध्यान का क्या अर्थ है? तो वे कहेंगेः नो-माइंड। मन न हो, तो ध्यान हो जाए। कबीर ने कहाः अ-मनी अवस्था। मन के बिना जो अवस्था है, वह ध्यान हो जाएगा। जब तक मन है तब तक ध्यान नहीं होगा। और जैसे ही ध्यान हो जाएगा, वैसे ही वह वासना जो नये कपड़े, नये शरीर ग्रहण करने की थी, वह विदा हो जाएगी। जीवन फिर भी होगा, पर वह अशरीरी हो जाएगा। वह शरीर का नहीं रह जाएगा।
संचित से केवल इतना ही अर्थ है। संचित का अर्थ है आपका पास्ट, आपका अतीत, जो भी आपने कल किया है, वह आज आपके साथ मौजूद है। उससे भागने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि आप जो भी हैं, वह आपके सभी पिछले कलों, कलों का जोड़ है। टोटल यस्टरडेज। वही आप हैं। वह आपका मन है। इस मन पर सब संचित है। इस मन को विदा करते ही यह संचित भी सब विदा हो जाएगा। फिर भी आप रहेंगे। फिर भी आप जीएंगे। काम करेंगे, लेकिन फिर मन निर्मित नहीं होगा।
अगर एक दफा समर्पण आ गया तो फिर मन निर्मित नहीं होता। समर्पण जो है
वह मन के निर्माण की प्रक्रिया को रोक देता है, समाप्त कर देता है। फिर आप ऐसे जीएंगे जैसे परमात्मा के सिर्फ एक साधन के बतौर जी रहे हैं। फिर ऐसे जीएंगे कि आप कर्ता नहीं हैं, कर्ता वही है। फिर ऐसे जीएंगे कि बांसुरी हैं आप, स्वर उसके हैं। तब फिर मन निर्मित नहीं होता।
तो मन निर्मित तभी तक होता है जब तक ईगो-सेंट्रिक है। जब तक हम किसी से जुड़े हैं, तब तक मन निर्मित होता है। जब हम कहने लगते हैं वॉय? तो फिर मन निर्मित नहीं होता। फिर अच्छा है तो उसका, बुरा है तो उसका। फिर सभी उस पर समर्पित है। फिर आप चोर हैं तो वही चोर है, और संत हैं तो वही संत है। फिर आप नहीं हैं बीच में। और जिस दिन यह घड़ी घट जाती है मन की कि वही कर रहा है, मैं नहीं हूं, तो व्यक्ति में वह क्रांति घटित होती है, जिससे बड़ी कोई क्रांति नहीं।
जो आदमी कहता है कि मैं अच्छे काम कर रहा हूं--वह भी संचित करेगा, उसका
भी ईगो बनेगा, अहंकार बनेगा। हां, उसके पास स्वर्ण अहंकार होगा। गोल्डन ईगो होगी उसके पास। बाकी होगी तो ही। जो आदमी बुरे कर्म कर रहा है वह कह रहा है कि मैं बुरे कर्म कर रहा हूं, उसके पास लोहे का अहंकार होगा, बस। और कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। और कई बार सोने का अहंकार, लोहे के अहंकार से भी बदतर सिद्ध होता है। कई बार। क्योंकि लोहे को तो छोड़ने का तो मन होता है, सोने को छोड़ने का मन नहीं होता। उसे पकड़ने का मन होता है। तो जिस कैदी को सदा ही कारागृह में रखना हो उसको लोहे की जंजीर न पहना कर सोने की जंजीर पहनानी चाहिए। क्योंकि लोहे की जंजीर तो कैदी तोड़ना भी चाहेगा, सोने की जंजीर को खुद ही बचाने में लग जाएगा।
तो चाहे अच्छे कर्म हों, चाहे बुरे कर्म हों, बांधते दोनों हैं। संचित दोनों होते हैं। सिर्फ अकर्म संचित नहीं होता। कर्म संचित होते हैं। अकर्म संचित नहीं होता। इसलिए अकर्म ही एक मात्र साधना है। लेकिन अकर्म

का मतलब यह नहीं कि कोई काम छोड़ कर भाग जाए। क्योंकि कोई भागेगा तो भागना भी काम ही है, कर्म ही है। अगर कोई कहेगा कि मैं जा रहा हूं संसार छोड़ कर, तो भी कर्म हो रहा है।
अकर्म का एक ही मतलब हैः समर्पण। कि वह जो भी कर रहा है, मैं नहीं कर रहा हूं, परमात्मा ही कर रहा है। ऐसा जान कर, ऐसा मान कर नहीं। ऐसा जान कर जीए, मान कर जीएगा तो बड़ी गड़बड़ हो जाएगी। मान कर जीने से कोई फर्क नहीं पड़ता। फिर वे इसी के मन का काम है। अभी काम जारी है। अभी समर्पण मैं ही करूंगा। नहीं, ऐसा जान कर जीने लगे तो, तो कर्म विदा हो जाते हैं। संचित विदा हो जाता है, मन विदा हो जाता है। फिर जो शेष रह जाता है वही शुद्ध अस्तित्व है। उसको कोई नाम दें--ब्रह्म कहें, मोक्ष कहें, निर्वाण कहें, कोई भी नाम दें।

प्रश्नः मन की, और जैसा आप कहते हैं कि जन्म-जन्म से यह चलता है, मन तो वही होता है, आदमी की मृत्यु के बाद कोई सूक्ष्म मेमोरी रह जाती है?

हां, मन वही होता है और आदमी की मृत्यु के बाद सारी स्मृति आदमी के पास
रह जाती है। लेकिन उसकी पर्तें जम जाती हैं। जैसे कि इस कमरे को हम सात साल तक साफ न करें, तो आज भी धूल आएगी। और सात साल तक इस कमरे में आती रहेगी। सात साल बाद जब हम इस कमरे में आएंगे तो जो ऊपर की परत होगी, वह तो आज की होगी और नीचे की परतें नीचे दब गई होंगी। सात साल पुरानी परत भी होगी, लेकिन वह बहुत नीचे होगी। हो सकता है ऊपर की परत को पता भी न हो कि नीचे धूल की सात साल पुरानी परतें भी जमी हैं।
तो मन यात्रा कर रहा है, और यात्रा है प्रोग्रेसिव। आप उसमें रोज कुछ
एड कर रहे हैं, कुछ जोड़ रहे हैं। तो कल दब जाएगा आज से। फिर आज दब जाएगा आने वाले कल से। और दबता चला जाएगा। पिछला जन्म दब जाएगा इस जन्म से, उसका भी पिछला जन्म दब जाएगा दो जन्मों से और नीचे जिसको अनकांशियस कहते हैं मनोवैज्ञानिक, अचेतन कहते हैं, उसमें छिपता चला जाएगा। कई बार ऐसा हो सकता है कि आप खुद अपने अनकांशियस हों और आपके बीच इतना बड़ा फासला होता है। क्योंकि इतनी यात्रा बीच में हो गई धूल की कि आप हाथ फैला कर अंदर तक पहुंच भी नहीं पाते, आपको पता भी नहीं होता। और खतरनाक भी है पहुंचना।
क्योंकि आदमी एक ही जिंदगी की स्मृतियों को पूरा झेल नहीं पाता, उसमें भी पगला जाता है, पागल हो जाता है। इसलिए प्रकृति का पूरा इंतजाम है। आप अगर, चौबीस घंटे की भी स्मृतियां आपको रह जाएं और न भूल पाएं तो आप पागल हो जाएंगे। इसलिए प्रकृति पूरे वक्त छांट रही है। जो व्यर्थ है उसको कचरे में फेंक रही है। भीतर डाल रही है। तलघर है आपके मन में एक, वहां डालती जा रही है। जो काम का है उसे बचाती है। बहुत थोड़ा सा बचाती है। सभी नहीं बचा लेती।
अगर हम पूछें कि पिछले वर्ष एक साल में आपके मन में क्या स्मृतियां रह
गई हैं? तो शायद दो-चार बातें होंगी जो स्मृति के लायक बच गई होंगी, बाकी फेंक दी गई हैं। तो पूरे वक्त सॉर्टिंग हो रही है आपके दिमाग में। होना जरूरी है, नहीं तो बहुत मुश्किल हो जाए। क्योंकि कल फिर जीना है। और जब पिछला कल बहुत मजबूत हो तो कल जीने में कठिनाई डालेगा। इसलिए उसको हटता जाना पड़ रहा है। बहुत जरूरी है वह, उसमें से हम बचा लेंगे। बाकी को हम हटा डालेंगे। तो पिछले जन्म का अगर आपको याद रह जाए तो आपका यह जीवन बहुत मुश्किल में पड़ जाएगा।
क्योंकि हो सकता है जो आपकी पत्नी है, वह पिछले जन्म में मां रही हो।
तब आप बड़ी दुविधा में पड़ जाएं। ऐसी दुविधा में पड़े होते हैं। बड़ी दुविधा में पड़ जाएं कि अब क्या हो? क्योंकि इस जन्म में जो मित्र है वह अगले जन्म का दुश्मन हो सकता है। और अगले जन्म का जो दुश्मन है वह इस जन्म में मित्र हो सकता है। उसका भूल जाना ही जरूरी है, भूल जाना लेकिन मिट जाना नहीं। भूल जाने का मतलब इतना ही है कि वह गहरे परत में डाल दिया गया।
अगर आप चाहें और विशेष उपाय करें तो वह जगाया जा सकता है। इसलिए उसके अलग टेक्नीक हैं। उसको स्मरण किया जा सकता है। उसमें प्रवेश किया जा सकता

है, वे सारे जन्म जितनी आपने यात्रा की, सब जाने जा सकते हैं। आदमी के ही नहीं, आपके पशु जन्म भी और पशु के ही नहीं आपके वृक्षों के जन्म भी। उनकी स्मृतियां भी आपके पास शेष हैं। अगर आप कभी पत्थर भी रहे हैं तो उसकी भी स्मृतियां हैं। रास्ते पर पड़ी ठोकरों की, उसकी भी स्मृतियां हैं। पहाड़ों से गिरने की, उसकी भी स्मृतियां हैं। नदियों में बह जाने की, उसकी भी स्मृतियां हैं, वे आपमें संचित हैं। उनमें उतरा जा सकता है।
लेकिन उतरा तभी जा सकता है जब आप इस जीवन में बिल्कुल निश्चिंत हों और शांत हो जाएं। नहीं तो एक्सप्लोजन इतना बड़ा होगा कि आपके बस के बाहर हो जाएगा सम्हालना। वह बर्रे के छत्ते को छूने जैसा हो जाएगा। तो उसको न छूना चुपचाप ही गुजरना बेहतर है। जब तक कि यह जिंदगी इतनी शांत न हो जाए कि अब कोई चीज आपको परेशान नहीं करे, तब फिर आप परेशानी में उतर सकते हैं। इसमें बड़ी कीमत का है उसका अनुभव करना, उन स्मृतियों को जगा लेना। बड़ी कीमत का है।
बुद्ध और महावीर तो दोनों ने ही अपने ध्यान की प्रक्रिया और अपनी साधना में इसको अनिवार्य बनाया हुआ था। उसको वे जाति-स्मरण कहते थे, पिछले स्मरण को। वे कहते थे हर साधक को इसमें से गुजारना ही। क्योंकि एक बार आपको दो जन्मों का भी स्मरण आ जाए तो आप फौरन बदल जाते हैं। क्योंकि पिछले जन्म में भी आपने बहुत धन इकट्ठा किया था, और फिर मर गए। उसके पहले भी आपने बहुत धन इकट्ठा किया था, फिर मर गए। उसके पहले भी आपने बहुत धन इकट्ठा किया था और फिर मर गए। तो इस जन्म में बहुत धन इकट्ठा करना मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि आप जानते हैं सब धन इकट्ठा करके आखिर मर जाना है। उस जन्म में भी आपने किसी को कहा था कि तेरे बिना नहीं जी सकेंगे। उसके पहले भी किसी से कहा था, और उसके पहले भी किसी से कहा था। अब इस जन्म में कहना बहुत मुश्किल हो जाएगा कि तेरे बिना नहीं जी सकेंगे, क्योंकि जन्मों से जी रहे हैं। तो उसकी स्मृति तो काम की बन सकती है, लेकिन उसकी पूर्व-भूमिका में चित्त बहुत शांत हो जाना चाहिए। नहीं तो उसकी स्मृति खतरनाक भी हो सकती है।

प्रश्नः समर्पण के बाद कुछ करना संभव है ही नहीं, तो जितना भी काम किया है जो भी कंफर्ट्स दिए हैं, उन लोगों ने दिए हैं, जिन्होंने समर्पण नहीं किया है, जिनमें ईगो है?

साधारणतः ऐसा हुआ है। ऐसा होना जरूरी नहीं है। साधारणतः ऐसा हुआ है
कि जगत में जितना भी काम किया है वह उन लोगों ने किया है जिन्होंने समर्पण नहीं किया है। लेकिन यह पूरा सत्य नहीं है। जरूर उन्होंने कंफर्ट्स दिए हैं। रेलगाड़ी उन्होंने नहीं बनाई जिसने समर्पण किया है। हवाई जहाज उन्होंने नहीं बनाया जिन्होंने समर्पण किया है। लेकिन जिन्होंने समर्पण किया है उन्होंने कंफर्ट से कोई बहुत बड़ी चीज, सुपर सुविधा से कोई बहुत बड़ी चीज आदमी को दी है, वह आनंद है। उन्होंने भी कुछ दिया है। और सुपर सुविधा के साथ एक मजा है कि जब तक वह तुम्हारे पास न हो तभी तक सुपर सुविधाएं मालूम पड़ती हैं। जब तुम्हारे पास हो तब मालूम नहीं पड़ती।
और आनंद का दूसरा हिसाब है। जब तक तुम्हारे पास न हो, तब तक उसका पता नहीं चलता। जब तुम्हारे पास हो तभी पता चलता है। सुख और सुविधा सिर्फ उन्हीं के लिए सुख और सुविधा मालूम होती है जो सुख और सुविधा में नहीं हैं। सिर्फ उन्हीं के लिए। जो महल में बैठा है, उसे महल की सुविधा बिल्कुल मालूम नहीं पड़ती। हां, जो महल के बाहर सड़क पर खड़ा है उसे मालूम पड़ती है। अब यह बड़ा मजेदार मामला है। यह आदमी जो सड़क पर खड़ा है यह भी अगर कल महल में पहुंच जाए, तो इसे भी मालूम पड़ने वाली नहीं है।
सुख और सुविधा दूर का ढोल है। निकट से उसकी प्रतीति नहीं होती कभी। पास गए, कि खो जाती है। बल्कि आदमी के मन की जो कुशलता है, वह यह है कि वह हर सुविधा में असुविधा खोज लेता है। हर सुविधा में असुविधा खोज लेता है। वह खोजता ही चला जाएगा। इसलिए सुविधा देने वाले वैज्ञानिक भी अब थक गए हैं और घबड़ा रहे हैं, कि हम सुविधा देते चले जाते हैं लेकिन आदमी को कोई सुख तो मिलता नहीं। बल्कि हर सुविधा के बाद वह और बड़ी सुविधा की मांग करता है। कि

और बड़ी सुविधा दो। और अब हमने बहुत सुविधाएं देकर देख ली। इससे कोई फर्क नहीं पड़ा है।
जिन्होंने समर्पण किया है उन्होंने भी कुछ दिया है। पर उनके देने की चीज बड़ी सूक्ष्म। उन्होंने वह दिया है जो सुख-सुविधा तो नहीं है, लेकिन आनंद है। और आनंद के साथ दूसरी खूबी है। सुख-सुविधा के साथ, सुख-सुविधा के साथ, व्यक्ति रोज असुविधाएं खोज लेता है, सुविधाओं में भी। जब तक आपके पास कार नहीं है, तब तक रास्ते से गुजरती एंबेसेडर बड़ी सुविधा की मालूम पड़ती है। जिस दिन हो जाती है उस दिन आदमी कहता है कि इसका दरवाजा ठीक नहीं लगता, आवाज करता है। इसकी गद्दी ठीक नहीं, चलने में आवाज होती है। पेट्रोल की बास आती है। उस दिन के बाद जो भीतर बैठा आदमी है, वह एंबेसेडर की शिकायत करता ही मिलेगा। जो बाहर खड़ा आदमी है वह एंबेसेडर की मांग करता मिलेगा और जो भीतर बैठा हुआ आदमी एंबेसेडर की शिकायत करता हुआ मिलेगा।
सुख-सुविधा वाला चित्त जो है वह हर सुविधा में फिर असुविधा खोज लेगा। क्योंकि चित्त तो नहीं बदला, कार के बाहर का आदमी भीतर बैठा दिया गया। आदमी वही है। वह सड़क पर असुविधाएं खोज रहा था, लेकिन उसे पता नहीं कि जंगल में जो चढ़ रहा है, जिसके पास सड़क नहीं है वह सड़क में बहुत सुविधा देख रहा है। सड़क पर बड़ी सुविधाएं है। बस उसको जंगल से सड़क पर ले आओगे सुविधाएं खत्म हो गईं। उसे लगता है कि कार में सुविधाएं हैं। जो कार में चल रहा है वह देखता है कि हवाई जहाज में बड़ी सुविधाएं हैं। दचकी भी नहीं हैं। हवाई जहाज में जो बैठा है उससे पूछो उसकी असुविधाएं और हो गई हैं। सुविधा खोजने वाला चित्त सदा असुविधा खोज लेता है। और आनंद खोजने वाला चित्त असुविधा में भी, दुख में भी, पीड़ा में भी आनंद खोज लेता है। एक बार आनंद का सूत्र पता चल जाए, तो हर जगह खोजा जा सकता है।
जिन्होंने समर्पण किया उन्होंने भी बहुत दिया। लेकिन उसका हमें पता नहीं चलेगा, क्योंकि हम सब सुविधा खोजने वाले लोग हैं। हमारी भाषा में उसका कोई भी मूल्य नहीं है। आनंद वगैरह का क्या मतलब? अगर एक आदमी के सामने कार रखो और कहो कि दूसरी तरफ आनंद, तो सौ में से निन्यानबे आदमी कार पसंद करेंगे, आनंद नहीं। क्योंकि आनंद से क्या मतलब? यह आनंद है क्या? और आनंद कोई ठोस चीज नहीं जिसको कार के सामने खड़ा किया जा सके। कार बड़ी ठोस चीज है। या करोड़ों की संपत्ति रखो और कहो कि इधर भगवान खड़ा है। तो भगवान तो दिखाई नहीं पड़ता, संपत्ति दिखाई पड़ती है। वह आदमी कहेगा कि पहले संपत्ति ले लें, फिर भगवान को भी देख लेंगे। चुनाव वह संपत्ति का करेगा।
तो जिस चीज की हमें मांग नहीं है, उसका हमें पता नहीं चलता कि वह दी गई
है या नहीं दी गई। जिसकी हमें मांग है, उसका हमें पता चलता है कि वह दी गई है। लेकिन पश्चिम के मुल्कों को अब पता चलना शुरू हो गया है कि बुद्ध ने, पतंजलि ने, जीसस ने, कृष्ण ने जो दिया है उसका मूल्य हमारे वैज्ञानिक ने जो दिया है, उससे बहुत ज्यादा है। और उनको पता चलना शुरू हुआ, क्योंकि सुविधाएं सीमा छू लीं, सैचुरेशन पॉइंट आ गया। हम गरीब कौन हैं? हमारे पास सुविधाएं बिल्कुल नहीं हैं। तो हमें अभी लगता है कि सुविधाएं जिन्होंने दिया उन्होंने बड़ा काम किया है। यह बहुत दिन नहीं लगेगा दुनिया को। और समर्पण करने वाले लोग बहुत थोड़े हुए हैं, न के बराबर। और समर्पण करने वाला आदमी जो देता है वह इतना सूक्ष्म है कि न कहीं कोई माप-तोल हो सकती है, न तराजू पर तोला जा सकता है, न उसका कोई रिकॉर्ड बनाया जा सकता है। वह बड़ा सूक्ष्म है।
मैं अगर एक पत्थर तुम्हारे सिर पर मार दूं, तो उसका निशान रह जाएगा।
और मैं प्रेम से तुम्हारे सिर पर हाथ रख दूं, उसका कोई निशान नहीं रह जाएगा। रास्ते पर तुम निकलोगे तो पत्थर लगा हो तो हर आदमी पूछेगा, क्या हो गया? लेकिन प्रेम का हाथ तुम्हारे सिर पर पड़ा हो तो रास्ते पर कोई नहीं पूछेगा कि क्या हो गया? क्योंकि वह कहीं दिखाई नहीं पड़ रहा। वह कहीं दिखाई नहीं पड़ रहा।
इसलिए जितने समर्पित लोग हुए, उन्होंने जगत को जो दिया है वह कहीं दिखाई नहीं पड़ता। वह प्रेम के हाथ की तरह है। जिनको अनुभव होगा, उन्हीं को पता चलेगा। हां, लेकिन जितने उपद्रवी लोग हुए, वह पत्थर की चोट की तरह है

उनकी सारी बात। वह दिखाई पड़ती है। इसलिए तो हम इतिहास बुद्ध और महावीर और कृष्ण का नहीं लिखते। क्या इतिहास लिखें? हिटलर, चंगीज और मसोलिनी, उनका हम इतिहास लिखते हैं। उनकी पत्थर की चोट हैं, जो दिखाई पड़ती है। उनकी लकीरें साफ हैं। जितना सूक्ष्म है, उतना पकड़ के बाहर है। इसलिए खयाल में नहीं आता। बाकी दिया तो उन्होंने ही है। तो उनका दिया हुआ भी तभी पता चलेगा, जब तुम्हारी सुविधा की दौड़ पूरी हो चुकी होगी।
इसलिए मैं नहीं कहता कि रुको पहले, दौड़ो। अनुभव से जानो कि सब सुविधाएं मिलकर असुविधाएं हो जाती हैं। और सब सुख मिलते ही दुख हो जाते हैं। बस जब तक नहीं मिलते तब तक प्रतीत होता है कि... । इसलिए सुखी से सुखी आदमी वे हैं, जिनको सुख नहीं मिलता। यह बहुत कठिन मालूम पड़ेगा। और दुखी से दुखी आदमी वे हैं, जिन्हें सुख मिल जाता है। इसलिए गरीब कौमें जितनी प्रसन्न मालूम होती हैं, अमीर कौमें उतनी प्रसन्न नहीं रह जाती। जंगल का आदिवासी जितना मस्त मालूम होता है उतना निवार का निवासी नहीं मालूम होता। हालांकि इसके पास कुछ नहीं है, उसके पास सब है।
कुछ नहीं है जिसके पास उसे सबके पाने की आशा है। और जिसके पास सब है, उसकी वह आशा भी टूट गई। अब वह बड़ी उदासी में है। इसलिए जब भी कोई कौम कोई समाज समृद्धि का शिखर छू लेता है तब इतिहास शुरू हो जाता है, तत्काल। क्योंकि अब पाने को कुछ नहीं रह जाता और चित्त उदास हो जाता है। यानी वह ऐसे ही है जैसे हम पहाड़ की चोटी पर दौड़ रहे थे और सोच रहे थे कि पहाड़ की चोटी पर जाकर सब मिल जाएगा। तो जो पहाड़ी की चोटी पर नहीं पहुंचे थे सिर्फ दौड़ में थे, वे बड़े प्रसन्न थे। फिर एक आदमी पहाड़ की चोटी पर जाकर खड़ा हो जाता है और पाता है कि हाथ खाली हैं, वहां कुछ भी नहीं। वह एकदम उदास हो जाता है। करीब-करीब ऐसा है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि सुविधाएं आदमी को न मिले। कह रहा हूं जरूर मिलनी चाहिए। पूरी तरह मिलनी चाहिए, जल्दी मिलनी चाहिए। ताकि वह सुविधाओं से मुक्त हो जाए। और उसे पता चल जाए कि कुछ है नहीं। कुछ है नहीं।
समर्पण करने वाले लोगों ने जो दिया है, वह दिखाई नहीं पड़ता। गैर-समर्पण करने वालों ने जो दिया है, वह प्रकट दिखाई पड़ता है। लेकिन आखिरी मूल्य उसी का है जो दिखाई नहीं पड़ता है। और जो दिखाई पड़ता है, उसका बहुत ज्यादा देर मूल्य रहने वाला नहीं है।
अगर मैं किसी को प्रेम करता हूं, तो दिखाई तो उसका शरीर पड़ता है। अगर
इस शरीर से ही प्रेम करता हूं तो यह दो दिन का प्रेम है, ज्यादा दिन टिकने वाला नहीं है। दो दिन बाद यह शरीर जो दिखाई पड़ता है, भूलने योग्य हो जाएगा। लेकिन अगर इसमें कुछ अदृश्य भी मेरे प्रेम का हिस्सा है तो वह चलेगा, क्योंकि वह कभी चुकता नहीं।
इंद्रियां जिस चीज को पकड़ लेती हैं वह चुकने वाली चीज है। इंद्रियां जिसे नहीं पकड़ पाती, वही न चुकने वाली चीज है। पर यह लेखा-जोखा बहुत बाद में हो पाता है जब तुम्हें सुविधाएं व्यर्थ हो जाएं। और आनंद की कोई किरण मिले, तब तुम जान पाते हो कि बुद्ध ने क्या दिया। तब तुम जान पाते हो कि आइंस्टीन ने क्या दिया? और मजे की बात यह है बुद्ध बिना आइंस्टीन के आनंदित हो सकते हैं; आइंस्टीन बिना बुद्ध के आनंदित नहीं हो सकते। आइंस्टीन भी मरते वक्त तब बेचैन हो गए सब देकर भी। और बेचैनी उसकी वही कि वह आनंद की तो कोई झलक का पता नहीं। तो बुद्ध बिना किसी के आनंदित हो सकते हैं। लेकिन सुविधाएं सब मिल जाएं तो तब भी तुम बुद्ध के बिना आनंदित नहीं हो सकते हो। वह घटना घटनी ही चाहिए।
सुविधाएं जरूरी हैं; जीवन का अन्त नहीं। सुविधाएं मार्ग हैं; मंजिल नहीं। सुविधाएं होनी चाहिए, लेकिन सुविधाएं ही अकेली हों तो जीवन बड़ा व्यर्थ हो जाता है। उससे तो असुविधा का जीवन भी थोड़ा सार्थक और मीनिंगफुल रहता है। न तुम्हारे पास बड़ा मकान है, न बड़ी कार है। तो तुम दौड़ते रहते हो यह मिल जाए, यह मिल जाए तब तक कम से कम रस रहता है। तुम्हें पता नहीं कि अगर एक नियम बनाया जाए कि एक आदमी को जो भी चाहिए इसी वक्त दे देते हैं, आप पांच मिनट में पाओगे कि वह आदमी आत्महत्या कर लेगा। क्योंकि अब कुछ करने को

उसको बचेगा नहीं। वह एकदम फिजूल हो जाएगा, एकदम फ्युटाइल, कुछ मतलब नहीं रहा। या तो आत्महत्या करेगा, कहेगा कि अब बेकार हो गया हूं।
इसलिए जितनी समृद्ध कौम होती है, आत्महत्या बढ़ती जाती है। आज अमरीका जितनी आत्महत्याएं करता है, उतना हिंदुस्तान नहीं करता; जितना हिंदुस्तान करता है, उतना आदिवासी बस्तर का नहीं करता। आत्महत्या का कोई कारण ही नहीं है। क्योंकि, क्योंकि जीवन में बड़ी आशाएं हैं। आत्महत्या आती है निराशा से, और निराशा आती है जिस चीज में बहुत आशा बांधी थी उसको पा लेने पर पता चलता है कि बेकार गई यहआशा। यह तो हम नाहक दौड़े थे। हमने समय भी गंवाया, शक्ति भी गंवाई, और पाया है... यह तो हाथ में कुछ भी नहीं आया है। तो मेरी दृष्टि में सुविधा की, सम्पत्ति की, सुख की एक ही खूबी हैः वह पाकर व्यर्थ हो जाती है। न पाओ तो सार्थक बनी रहती है। इसलिए मैं कहता हूं कि पा लेना चाहिए। बिना पाए अगर तुम मानकर चलोगे तो गड़बड़ होगी। तुम पा ही लो। उसकी कोशिश कर लो पूरी। और जिंदगी में अनुभव करो। सब कुछ न कुछ पा लेते हैं। कोई कार ही मिले, बड़ा मकान ही मिले, ऐसा नहीं है। हाथ में घड़ी नहीं होती तो घड़ी की फिकर होती है कि वह मिल जाए तो बड़ा आनंद आएगा। एक रात, दो रात--हाथ में घड़ी आ जाए तो फिर नींद भी नहीं आती। रात में भी दो-चार दफा उसमें टाइम देखने का मन होता है। फिर चार-छह दिन बाद आदमी पाता है कि बात खत्म हो गई। अब कुछ और चाहिए जो मिले तो आनंद आएगा।
जो भी तुम पा रहे हो एक साइकिल पा ली है; एक जूते की जोड़ी पा ली है; एक कपड़ा पा लिया है। एक पत्नी पा ली है, कुछ भी पा लिया है। जो भी पा लिया है उसे गौर से देखो कि जब तुमने नहीं पाया था तो तुम कितनी आशा बांधे थे, और जब पा लिया है तब कितनी आशा फलीभूत हुई है। तब तुम एकदम हैरान हो जाओगे। लेकिन हम इतना गौर से नहीं देखते। जब एक चीज व्यर्थ हो जाती है, हम तत्काल दूसरी चीज में संलग्न हो जाते हैं। देखने का मौका नहीं मिल पाता। गैप नहीं मिल पाता। घड़ी बेकार हो गई तो कार चाहिए; कार बेकार हो गई तो हवाई जहाज चाहिए; हवाई जहाज बेकार हुआ तो कुछ और चाहिए। मगर हम कभी लौट कर यह नहीं देखते कि सब चीजें हमने चाहीं और सब बेकार हो गईं।
अगर यह दिखाईर् पड़ जाए तो तुम्हारी चाह ही बेकार हो जाएगी। डिजायर ही बेकार हो जाएगी। तुम कहोगे कि अभी एक ही चीज बेकार है, चाह। बाकी सब चीजें तो ठीक ही हैं, एक चीज जरूर बेकार है, वह चाह बेकार है। जिस दिन यह घड़ी घटेगी, उस दिन तुम्हारे जीवन में जिन्होंने समर्पण किया उनकी खोज सार्थक होगी। उसके, उसके पहले नहीं होगी।

प्रश्नः माना जिन्होंने समर्पण किया है, जो देते हैं, उसको ग्रहण करने के लिए देते हैं, सुविधा भी जरूरी है?

हां-हां, मैं मना नहीं कर रहा।

प्रश्नः सुविधा जरूरी है?

हां।

प्रश्नः तो सुविधा वे देंगे जिन्होंने समर्पण नहीं किया है?

हां-हां, वे देते हैं।

प्रश्नः तो समर्पण करने वाला और न समर्पण करने वाला, दोनों जरूरी होगा न?

समर्पण करने वाला तो इतना कम है। और अगर समर्पण करने वाला बहुत बढ़ जाए
तो सुविधा की कोई जरूरत ही नहीं है। जिंदगी जैसी होगी बहुत सुविधापूर्ण होगी। वह तो मांग भी तुम्हारी ही पूरी कर रहा है। वह तो ऐसे ही है कि हम कहते हैं कि एक आदमी डाक्टर है, तो वह बीमारों को ठीक कर रहा है। लेकिन वह

बीमारों को ही ठीक कर रहा है न। लेकिन कल अगर बीमार बीमार होना बंद हो जाए तो डाक्टर किसको ठीक करेगा। डाक्टर को कहेंगे कि अब तुम विदा हो जाओ। उसकी जरूरत तो इसलिए है वह जो सुविधा पैदा करने वाला है, वह तुम्हारी जरूरत है। तुम उसको पैदा करवा रहे हो। तुम कह रहे हो हमको बड़ा मकान चाहिए, तो आर्किटेक्ट जो है वह बड़े मकान का नक्शा बना रहा है। कल तुम कहोगे कि बड़े मकान का सवाल नहीं है, बड़े दिल का सवाल है। बड़े मकान में रह कर देख लिया, अब तो छोटा झोपड़ा हो तो चलेगा। लेकिन दिल बड़ा चाहिए तो आर्किटेक्ट कहेगा कि मैं बेकार हो गया हूं। क्योंकि दिल को बड़ा बनाने का कोई नक्शा उसके पास नहीं है। तो वह तो तुम्हें तब तक बड़ा मकान देता जाएगा, और कितने बड़े मकान देता जा रहा है वह। डेढ़ सौ मंजिल के मकान दे दिए कि तुम आकाश छू लो। लेकिन डेढ़ सौ मंजिल के मकान पर जो आदमी बैठा है वह उतना ही परेशान है, जितना परेशान वह पहली मंजिल के मकान पर था। बल्कि शायद और भी ज्यादा परेशान है। और अब वह कहां जाए, अब आकाश पर चढ़ गया। अब वह कहां जाए? अब वह उसको कह रहा है, हम चांद पर पहुंचा देते। वह चांद पर जाने की आशा बांध रहा है।
टोक्यो में उन्नीस सौ पचहत्तर के लिए एक कंपनी ने चांद के लिए टिकट इश्यू करनी शुरू की है। और जिन लोगों को लेना है वे ले लें, वे टिकट अभी से। एडवांस कह रहे हैं कि हम उन्नीस सौ पचहत्तर में पहुंचा देंगे। अब जिनके पास कुछ नहीं बचा जमीन पर करने को वे उस टिकट, अब जो नहीं चांद पर पहुंच पाएगा, उसके दुख का अंत नहीं है। बड़ा मजा यह है कि अब वह गरीब आदमी है जो चांद पर नहीं पहुंच पाया। भारी गरीब आदमी है। वह रोएगा और चिल्लाएगा कि यह बड़ा हमारा सब आनंद छिना जा रहा है। कुछ लोग चांद पर चले जा रहे हैं। और वे जो चांद पर चले जा रहे हैं, वे वही कि जो आदमी जमीन पर थे और जमीन चांद से बहुत सुंदर है।
मगर जो निकट है वह दिखाई नहीं पड़ता। चांद पर कुछ भी नहीं है। एकदम रूखा-सूखा पत्थर के सिवाए। लेकिन अब चांद बहुत सुंदर हो गया है, क्योंकि वह कुछ लोगों की ग्रिप्स में है अब। थोड़े ही लोग जा सकते हैं। लाखों रुपये का खर्च होगा। थोड़े लोग जा सकते हैं। वह लौट कर जो मून रिटर्नड लोग होंगे उनकी तख्तियां लग जाएंगी बाहर कि ये चांद से लौटे हैं। उनके स्वागत-समारोह हो जाएंगे। हालांकि कोई उनसे नहीं पूछेगा कि तुम्हें मिला क्या? जो तुम्हें जमीन पर नहीं मिला था, तुम्हें मिला क्या? वह कोई उनसे नहीं पूछेगा। वैसा ही था।

प्रश्नः चाह खत्म हो जाए तो फिर आपका समर्पण अपने आप हो जाएगा?

हो ही गया, हो ही गया। समर्पण हो जाए तो चाह खत्म हो जाएगी। चाह खत्म
हो जाए तो समर्पण हो जाएगा। वे एक ही सिक्के के पहलू हैं उनमें कुछ भेद नहीं है, उसमें कोई भेद नहीं है।

प्रश्नः आपने कहा कि अब बायोलॉजिस्ट यह कहते हैं कि जो मेमरी है, स्मृति है वह दिमाग में रहती है, मन में भी एक स्मृति होती है?

हां, बिल्कुल ही। असल में जो जीवशास्त्री हैं वे तो यही कहते हैं कि स्मृति जो है, वह ब्रेन में, मस्तिष्क में होती है, वह शरीर का हिस्सा है। वह शरीर का हिस्सा है। इसलिए शरीर के साथ वह स्मृति तो मर जाएगी जो ब्रेन में होती है। लेकिन बायोलॉजिस्ट इससे गहरा गया नहीं कभी। जिसको वह ब्रेन कहता है, मस्तिष्क कहता है, उसको हम मन नहीं कह रहे थे। अगर हमारी तरफ से समझा जाए तो ब्रेन सिर्फ मैकेनिज्म है और मन उसकी सक्रिय शक्ति है।
जैसे कि बल्ब जल रहा है। तो कोई भी आदमी देख कर कहेगा कि बल्ब तो... बल्ब में बिजली है। तो हम बल्ब तोड़ दें, तो बिजली टूट गई। और वह प्रमाण भी दे देगा, कि लट्ठ मार देगा बल्ब में तो बल्ब टूट जाएगा, तो बिजली भी टूट जाएगी, अंधेरा हो जाएगा। लेकिन फिर भी वह ठीक बात नहीं कह रहा है। प्रमाण उसने पक्का दे दिया और हम उसको इनकार भी न कर पाएंगे।

बल्ब बिजली नहीं है, बल्ब सिर्फ मैकेनिज्म है जिससे बिजली प्रकट होती है। बल्ब जब टूट जाएगा तब भी बिजली होगी, बिजली नहीं टूटती बल्ब के टूटने से। हां, सिर्फ प्रकट होने का उपाय बंद हो गया।
तो ब्रेन जो है वह मैकेनिज्म है। इसमें स्मृति संरक्षित होती है। इसमें मन जो है वह इसकी सक्रिय शक्ति है। उसमें भी स्मृति का काउंटर-पार्ट संरक्षित होता है। उसमें भी, और इसलिए तो कई बार ऐसा हो जाता है, आप कहते हैं कि बिल्कुल जबान पर रखी है बात, लेकिन याद नहीं आ रही। अगर जबान पर रखी है तो याद क्यों नहीं आ रही? किसकी जबान पर रखी है? आप कहते हैं मेरी जबान पर रखी है। और आपको ही याद नहीं आ रही। कहीं न कहीं डिसलोकेशन हो गया। माइंड और ब्रेन के बीच डिसलोकेशन हो गया। माइंड कह रहा है कि है मालूम मुझे, लेकिन ब्रेन का जो फंक्शन होना चाहिए उसके साथ पैरलल, वह नहीं हो पा रहा। डिसलोकेशन हो गया है। तो आप थोड़ी देर सिगरेट पीने लगे कि जाकर बगीचे में घूमने लगे, और एकदम से आ गया, डिसलोकेशन मिट गया। रिलैक्स हो गए। माइंड और ब्रेन के बीच संबंध फिर तय हो गए। तो मन ने कहा कि हम तो पहले ही कह रहे थे, थी तो रखी जबान पर।
वह जबान पर नहीं रखी थी। सिर्फ जो भीतरी सूक्ष्म मन है, वह कह रहा था
कि इस आदमी को हम जानते हैं। लेकिन मैकेनिज्म उसका रिस्पांस नहीं कर रहा था, कि कब जाना, कहां जाना, कैसे जाना, उसके डिटेल्स नहीं दे रहा था वह। इसलिए बस। तो यह जो मन है, यह आपके साथ चला जाएगा। अब ब्रेन तो टूट जाएगा। यह फिर नये शरीर में जब ब्रेन होगा, तब फिर हमको ब्रेन को ट्रेंड करना पड़ेगा। फिर ट्रेनिंग होगी उसकी। और फिर मन उससे फिर काम लेना शुरू कर देगा।
आज नहीं कल, बायोलॉजी भी उस बात को कह पाएगी। लेकिन विज्ञान तो बहुत एक-एक कदम चलता है, और चलना भी चाहिए। वैज्ञानिक का मतलब भी वही है। विज्ञान जो है, छलांगें नहीं ले सकता। लेनी भी नहीं चाहिए। छलांगें तो धर्म लेता है, लेनी चाहिए। असल में धर्म जो है, वह सदा विज्ञान से आगे की छलांग लेता है। जिसको हजार, दो हजार साल में विज्ञान सिद्ध करेगा, धर्म उसे दो हजार साल पहले कहना शुरू कर देता है। वह प्रोफेटिक है। हम लोगों को वह बात कहने लगता है जो अभी प्रयोगशाला में सिद्ध नहीं होगी, लेकिन कभी होगी।
तो स्मृति तो, साधारण स्मृति तो हमारे मस्तिष्क में होती है। लेकिन ठीक इसको कोरेस्पांसकरने वाला समानांतर हमारा मन है। जिसमें सूक्ष्म स्मृति होती है। सूक्ष्म स्मृतियां आपके साथ चली जाएंगी। और उन सूक्ष्म स्मृतियों को फिर जगाया जा सकता है, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन अभी तो, अभी जहां तक विज्ञान की गति है, बायोलॉजी की खासकर, बायोलॉजी की गति बहुत कम है। कहना चाहिए बायोलॉजी सबसे अविकसित विज्ञान है अभी। अभी तो विकसित विज्ञानों में सिर्फ फिजिक्स, पीछे केमिस्ट्री, उनका विकास हुआ ढंग से।

यह बड़े मजे की बात है कि फिजिक्स अकेले विज्ञान का ठीक से विकास हुआ है। जिसको हम ठीक वैज्ञानिक कह पाएं। तो फिजिक्स के ठीक विकास का यह परिणाम हुआ है कि आदमी जो भी समझता था फिजिकल वर्ल्ड के बाबत, वे सब गलत हो गए। जो आज तक समझता था, कहता था कि मैटर है तो फिजिक्स कहता है मैटर नहीं है, पदार्थ है यह। एक ही विज्ञान ठीक से विकसित हुआ है।
तो जो विज्ञान ठीक से विकसित हुआ है उसकी अनुभूतियां और प्रतीतियां धर्म के बहुत करीब आ गईं। जो विज्ञान जितना कम विकसित है धर्म से उसका फासला उतना ज्यादा होता है। होगा ही। मेरा मतलब समझ रहे हैं न आप? क्योंकि धर्म की बहुत दूर की छलांग है, वह इनसाइट। कल की बात कह देता है, ऐसा हो जाएगा। लेकिन कल आएगा तभी प्रमाण मिलेंगे न? अभी बायोलॉजी सबसे कम विकसित है और साइकोलॉजी और भी कम विकसित है।
तो इसलिए बायोलॉजी... लेकिन बायोलॉजी जोर से विकसित हो रही है। पिछले बीस वर्षों में जिस गति से बायोलॉजी ने विकास किया है वह बहुत ही हैरानी का है, और स्वाभाविक है। क्योंकि जैसे ही हमने पदार्थ की पूरी खोज कर ली,

वैसे ही हम जीवित पदार्थ की खोज करेंगे। उसके पहले कर भी नहीं सकते। पदार्थ की खोज हो जाए तो फिर हम जीवित पदार्थ की खोज कर पाएं। और जीवित पदार्थ की खोज से और बड़ी हैरानी की घोषणाएं होने वाली हैं जो कि अभी मरे हुए पदार्थ की खोज से नहीं हुई।
मनुष्य की पूरी की पूरी धारणाओं का रूपांतरण हो जाएगा। और धर्म की बहुत सी अनुभूतियां निकट से, करीब सिद्ध हो जाएंगी। लेकिन ठीक वैसी सिद्ध नहीं होंगी जैसा धार्मिक लोगों ने कहा है। थोड़े फर्क होंगे। क्योंकि प्रोफेसी एक बात है, और प्रयोग बिल्कुल दूसरी बात। थोड़े हेर-फेर होंगे डिटेल्स के। लेकिन मूल अनुभूतियां करीब-करीब सही हो जाने वाली हैं। उसमें वक्त लगने की बात है।

प्रेम नदी के तीरा
तीसरा प्रवचन

पहले सक्रियता फिर अक्रिया

प्रेरणा आपकी होनी चाहिए, होनी चाहिए। तो ही आप जा पाएंगे, अन्यथा आप
जा नहीं पाएंगे। बल्कि और पचड़े में पड़ जाएंगे आप। यह हम सारे लोग दूसरे की प्रेरणा से ही चल रहे हैं। इसमें कठिनाई क्या है, यह मामला ऐसा हो गया। अभी मेरे पास एक सज्जन अपनी पत्नी को लेकर आए। पत्नी भली चंगी है, स्वस्थ है। लेकिन कहीं भी किसी पत्रिका में, किसी किताब में, किसी बीमारी का वर्णन पढ़ लेती है तो वही बीमारी उसको हो जाती है।
प्रेरणा पकड़ जाती है उसको।
धर्म-युग में कोई एक निकलता है... एक चिकित्सा से संबंधित हर बार, तो वह उसको पढ़ लेती है। और जो-जो उसमें बताया हो कि इस बीमारी में पेट में दर्द होता है तो उसको पेट में दर्द शुरू हो जाता है। वे परेशान हो गए चिकित्सकों के पास जा-जा कर। वे दवा दे रहे हैं। तुमने कहा, पेट में दर्द है तो दर्द की दवा ले लो।
अब उसको पेट में दर्द है नहीं। पेट का दर्द सिर्फ प्रेरित दर्द है। और दवा और दिक्कत देगी। क्योंकि दवा बीमारी की हो तो बीमारी ठीक करे, नहीं तो बीमारी पैदा करे। तो वह मेरे पास लाए। उन्होंने कहा कि मैं मुश्किल में पड़ गया हूं कि अब यह इसका क्या होगा?
तो मैंने उनसे कहा कि इसको नहीं हो रहा है, यह मेडिकल कॉलेजेज का आम अनुभव है कि क्लास में शुरू-शुरू पहले वर्ष में जिस बीमारी को पढ़ाया जाता है, तीस परसेंट लड़के-लड़कियों को वह बीमारी होनी शुरू हो जाती है। यह आम अनुभव है। क्योंकि बताया जाता है सब वर्णन कि पेट के दर्द में ऐसा-ऐसा होता है। और वह सब अपने पेट पर खयाल पहले चला जाता है कि कहीं हो तो नहीं रहा है? और पेट में थोड़ा बहुत तो कुछ हो ही रहा है। फिर उसको इमेजिनेशन जगह दे देती है, फिर वह प्रेरित हो जाता है।
दुनिया में बहुत सी बीमारियां तो हमारे खयाल की बीमारियां हैं। यह मैं इसलिए कह रहा हूं कि इसी तरह बहुत सी प्रेरणाएं हमारे खयाल की हैं। एक आदमी ने गीता पढ़ ली। हो सकता था ट्रेन में जा रहा था। कुछ नहीं था
तो गीता पढ़ ली। तो गीता में उसने पढ़ा कि भगवान को पाने से बड़ा आनंद मिल जाता है। तो उसे लगा भगवान को पाना चाहिए, क्योंकि आनंद मिल जाता है। भगवान से उसे मतलब नहीं है, मतलब आनंद से है। मतलब आनंद से है। आनंद को अभी खोज रहा था, कभी शराब में, कभी सिनेमा में, कभी सेक्स में। उसने उस किताब में पढ़ा कि भगवान से मिल जाता है।
अब उसने आनंद की तो बात बंद कर दी, वह लोगों से पूछता फिरता है कि भगवान कैसे मिलेंगे? यह बिल्कुल फॉल्स डिजी.ज पकड़ गई उसको। यह जो मामला है, अब यह बेचारा बहुत दिक्कत में पड़ेगा। क्योंकि इसके भीतर कहीं इसका मूलस्रोत नहीं है ईश्वर की खोज का। इसलिए यह पूछेगा भी, करेगा भी कुछ नहीं। कुछ करेगा भी, तो भी कहीं पहुंचेगा नहीं। क्योंकि कभी टोटली पूरा उसमें लग नहीं पाएगा और एक चक्कर में पड़ जाएगा।
मेरी अपनी यह समझ है कि इस तरह की जो प्रेरणाएं हैं, वे हमें बहुत तरह
के गलत चक्करों पर डाल देती हैं। आदमी के बड़े से बड़े उलझाव में यह बात है एक, कि आप अपनी सूझ-बूझ से बिल्कुल नहीं चलते। कोई सूझ-बूझ दे रहा है आपको। बाप बेटे को पिला रहा है; मां बेटी को पिला रही है, स्कूल पिला रहा है; कॉलेज पिला रहा है; गुरु, साधु, संन्यासी, सब हैं भिड़े हैं--इन सबको सुधारने के लिए लगे हुए हैं। और ये सब मिल कर बिगाड़ डालते हैं। क्योंकि इतनी, इतनी प्रेरणाएं दे देते हैं कि उस व्यक्ति की क्या प्रेरणा थी, उसका उसे पता ही नहीं रह जाता कि उसके पास अपनी भी कोई प्रेरणा थी।
तो मैं तो यह भी कहता हूं कि जैसे शास्त्र से बचना, ऐसे ही प्रेरणा से
भी बचना। ताकि अपनी प्रेरणा आपको पता चल सके कि आपकी खुद की जिंदगी की क्या प्रेरणा है? आप क्या चाहते हैं? आज अगर हम किसी लड़के से पूछेंगे कि वह क्या चाहता है, तो वह पक्का नहीं है कि जो वह कह रहा है वह वही चाहता हो। हो

सकता है उसका बाप जो चाहता है, वह कह रहा है। वह कह रहा है, मैं इंजीनियर बनना चाहता हूं, यह उसका बाप चाहता है। यह बेचारा फंसा। और इसकी जिंदगी भर फंसाव में पड़ जाएगी। क्योंकि बाप इसका चाहता था कि इंजीनियर बने, और इसने समझा कि यह अपनी प्रेरणा हो गई।
यह सारी जो कठिनाई है, यह मनुष्य को विकृत करती है, स्वस्थ नहीं करती। मेरी अपनी समझ यह है कि शास्त्रों को प्रेरणा की तरह भी मत पढ़ना। शास्त्र को सिर्फ परिचय की तरह पढ़ना। परिचय की तरह, एक्वेंटेंस की तरह। गीता क्या कहती है, और जल्दी से इसको प्रेरणा मत बनाना। बनाना ही मत प्रेरणा। यह बड़े मजे की बात है कि यह मुझे अपनी प्रेरणा अपने से ही खोजनी चाहिए कि मैं क्या पाना चाहता हूं। कई बार ऐसा होता है कि आप कंकड़ पाना चाहते हैं और हीरा खोजने निकल जाते हैं। हीरा मिल जाए तो तृप्ति न मिलेगी। क्योंकि पाना चाहिए था कंकड़ आपको, और न मिले तो अतृप्ति रहेगी। और कंकड़ तो कभी मिलेगा नहीं, क्योंकि उसको आप पाने नहीं निकलते।
जिंदगी में जो आपको पाने को लगता हो, उसकी भीतर खोज करना। बाप से बचना, मां से बचना, गुरु से बचना, शास्त्र से बचना, और इसकी खोज करना कि मैं भी तो... गुरु, बाप, मां, स्कूल, कालेज के अलावा मेरा भी तो कोई अस्तित्व है। और मैं क्या पाने के लिए यहां इस जगत में हूं? कि मैं कुछ पाने के लिए नहीं हूं? बस मैं दूसरों की इच्छाओं का जोड़ हूं और दूसरों की सलाहों का जोड़ हूं? तो मैं आदमी न हुआ एक बंडल हो गया। जिसमें कि कुछ है ही नहीं भीतर। तो मुझे अपनी खोज कर लेनी चाहिए। और जैसे ही आपको अपनी प्रेरणा का पता चल जाएगा कि यह रहा मेरा स्रोत, वैसे ही आपकी जिंदगी में चमक आनी शुरू हो जाती है। क्योंकि यह आपकी खोज थी।
खोज असल में रास्तों से नहीं होती। आपके भीतर की सहज प्रेरणा से होती है। अब जैसे हमारा मुल्क है, जो आदमी देखो वही धार्मिक है। यह असंभव है बात! आप फ्रांस में जाओ, पेरिस में जाओ, तो जो आदमी देखो वही पेंटर। यह असंभव है बात!
लेकिन पेरिस में हवा है पेंटिंग की। तो जो भी आदमी सुसंस्कृत है वह अगर कहे कि मैं पेंटिंग नहीं जानता तो असंस्कृत है। तो जिसको भी जरा सुसंस्कृत होने का झक है, तो वह अपना पेंट कर रहा है। हिंदुस्तान में जिसको भी जरा लगा कि अच्छा आदमी होना है, वह संन्यासी हुआ जा रहा है। व्यक्ति की निजी प्रेरणा असली बात है। दूसरे की प्रेरणा से भी बचना। हालांकि दूसरों को बहुत मजा आता है आपको प्रेरणा देने में। उसे बहुत मजा आता है। क्योंकि मेरी अपनी समझ में दूसरे को प्रेरणा देने में जो मजा है वह एक तरह की हिंसा का मजा है, वायलेंस का मजा है।

जब हम किसी आदमी को बनाने की कोशिश में लग जाते हैं कि ऐसा बनाएंगे, तब
हम उसके साथ खिलौने का खेल शुरू करेंगे। हमारी मुट्ठी में बांध लिया। अब यह हमें दिखाई नहीं पड़ता। एक बाप कहता है मैं अपने बेटे को अच्छा बना कर रहूंगा। तब वह एक ढांचा बनाएगा। बेटे के हाथ जरा लंबे होंगे तो छांटेगा।
पैर जरा बड़ा होगा तो सफाई करेगा। और वह बेटे को छांट-छूंट कर बना कर खड़ा कर देगा। वह उसकी इच्छा का सबूत तो होगा, लेकिन वह जिंदा आदमी नहीं रह जाएगा।
वह मर चुका होगा यह सब बनाने में।
इसलिए बनाना जो है, हमारे मन की बड़ी सूक्ष्म हिंसा है।
और दुनिया में किसी की छाती में छुरा भोंकने से बचना बहुत आसान है। आमतौर से कोई भोंकता नहीं, लेकिन दूसरे की छाती में सलाह भोंकने से बचना बहुत कठिन है। क्योंकि वह दिखाई नहीं पड़ती। हो जाता है छुरा ही वह। आखिर दूसरा, हम जैसा चाहते हैं वैसा हो, यह बात ही बेहूदी है। दूसरा जो होना चाहता है, वह हो। लेकिन हम अब तक इसके लिए राजी नहीं हुए दुनिया में। इसलिए अच्छी दुनिया पैदा नहीं हो पाई। कोई आदमी राजी नहीं है कि लोग अपने जैसे हो जाएं। सब बनाने में लगे हुए हैं। पत्नी पति को बना रही है; पति पत्नी को बना रहा है। सब बना रहे हैं। एक दूसरे को सब बनाने में लगे हुए हैं। तो उसको ठीक करना है। वह जो कई स्त्रियां मिल कर यह कहती हैं कि हम अपने पति को ठीक न कर सके, तो वह बिगड़ जाता है।

मैंने कहा कि बिगड़ जाता तो भी जिंदा होता, अब वह बिल्कुल मरा-मरा है।
और बिगड़ा हुआ जिंदा आदमी बेहतर होता है, मरे हुए बने-बनाए से। और वह बिल्कुल गोबरगणेश हो गया है। उसको बना-बनू कर तैयार कर दिया है बिल्कुल। वह बिल्कुल आज्ञाकारी हो गया है, इसमें गई उसकी जान। तो मजा तो मिल गया कि बना दिया बिल्कुल, लेकिन वह आदमी जिंदा भी रह गया है कि नहीं। यह, यह खयाल से बाहर उतर जाता है।
महात्मा हैं, साधु हैं, संन्यासी हैं, इनको जो मजा है, वह बड़ी हिंसा का मजा है। तो मैं नहीं कहता कि प्रेरणा लें, मैं तो इतना ही कहता हूं कि अपनी प्रेरणा खोजें। और अगर आपको अपनी प्रेरणा मिल जाए तो आपके समतुल्य प्रेरणाएं कितनी हैं इस जगत में, उनसे आपका तालमेल बैठ जाएगा। वह बिल्कुल दूसरी बात है। पर आपकी प्रेरणा तो होनी चाहिए पहले, जिससे तालमेल बैठ सके। अगर आपके संगीत की खोज है, तो किसी रविशंकर से आपका तालमेल बैठ जाए, यह दूसरी बात है।
लेकिन संगीत की खोज ही नहीं। रविशंकर को देखा सितार बजाते, प्रेरित होकर खरीद लाए सितार और बजाने लगे। अब इसमें एक सितार भी खराब हुआ, आप भी खराब हुए। और जो आप बन सकते थे, वह भी न बन पाएंगे। और एक दुख की दुनिया शुरू हो गई। तो हमारी सारी कठिनाई, प्रेरणा भी एक बड़ी कठिनाई है। और उससे बचने की जरूरत है और दूसरे को प्रेरणा देने से भी बचने की जरूरत है।

प्रश्नः अब तक मैंने आपके बहुत भाषण सुने, बहुत कुछ पुस्तकें देखी हैं, विशेष रूप से जो साधना पर हैं, वह मुझे बहुत पसंद आईं। और साधना शिविर में जो डायरेक्शंस आपने दिए, आरंभ में उसमें भी यही था कि यानी मन के जो संकल्प-विकल्प हैं, वे नहीं आने चाहिए। यानी क्रियाहीनता का मालिक, शून्य का मालिक, मन में संकल्प हो जाए, कुछ इस प्रकार का था। अब यहां जो साधना बताई गई, उसमें क्रिया की बहुलता है, तो इसमें कुछ विरोधाभास मुझे ऐसा लग सकता है...

लग सकता है, विरोधाभास है नहीं। असल में हम चीजों को दो हिस्सों में तोड़े बिना रह ही नहीं पाते। हम तो चीजों को दो विरोधी हिस्सों में तोड़ कर देखते हैं। हम कहते हैं यह है अंधेरा, और यह है प्रकाश। लेकिन जिंदगी में अंधेरा और प्रकाश दो चीजें नहीं हैं। जिंदगी में एक ही चीज की तारतम्यता अंधेरा और प्रकाश है। एक ही चीज की डिग्री। दो चीजें नहीं हैं। हां, एक ही चीज की डिग्री। जिसको हम प्रकाश कहते हैं वह उसी चीज की सघन डिग्री है। जिसको हम अंधेरा कहते हैं वह उसी की विरल डिग्री है। अंधेरा और प्रकाश ऐसी दो दुश्मन जैसी चीजें नहीं हैं। ऐसे ही क्रिया और अक्रिया दो दुश्मन चीजें नहीं हैं। और दोनों तरफ से यात्रा हो तो भी एक ही जगह पहुंचते हैं आप। क्योंकि बहुत गहरे में दोनों एक हैं।
तो जब मैं कहता हूं अक्रिया--अक्रिया का मार्ग है। अगर सब क्रिया छोड़
कर निष्क्रिय हो सकें, और सब विचार छोड़ कर निर्विचार हो सकें, तो समाधि में पहुंच जाएंगे। लेकिन आप न विचार छोड़ पाते हैं, न क्रिया छोड़ पाते हैं। तो मैंने अनुभव यह किया कि शायद हजार में एक आदमी मुश्किल से मुझे मिल पाता है जो सीधा अक्रिया में जा सके।

प्रश्नः तो उनको विशेष रूप से लाभ भी हुआ?

न-न, आपको हो सके तो बिल्कुल उसे करिए, यह सवाल नहीं है। यह सवाल नहीं है। अगर हो सके तो उसे करें और चले जाएं, उससे। जो मैं कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि मुश्किल से हजार में एक आदमी सीधा अक्रिया में जा सकता है। तब मुझे खयाल करना पड़ा कि कठिनाई क्या है? मुझे तो कभी खयाल में नहीं थी यह बात। क्योंकि मुझे तो अक्रिया में जाना इतना सरल है, जितना क्रिया में जाना सरल नहीं है। तो मैं इस कठिनाई में पड़ा कि मामला क्या है? हजार आदमियों को करवाता हूं। कभी एक को, दो को गहराई आती है। बाकि नौ सौ अट्ठानवे तो खाली रह जाते हैं।

तो मुझे यह खयाल में आया कि ये नौ सौ निन्यानबे जो लोग हैं ये सीधे अक्रिया में नहीं जा सकते। इन्हें पहले क्रिया के पूरे तनाव में ले जाना जरूरी है। जब ये क्रिया के पूरे क्लाइमेक्स पर पहुंच जाते हैं, तो वहां से छोड़ने से इनको अपने आप अक्रिया में जाना पड़ता है।

यह जो मामला है, जैसे कि मेरा हाथ है, और आप मुझसे कहें कि इसे शिथिल कर दो, तो मैं कहूंगा कि कैसे शिथिल कर दूं? तो ठीक है छोड़ दिया, मगर इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता जैसा यह पहले था, वैसा ही है। तब मुझे खयाल में आया कि इस हाथ को बांधो मुट्ठी जोर से और जितनी ताकत से बांध सकते हो, पूरी ताकत इस पर लगा दो कि तुममें ताकत ही न बचे और जब यह पूरा टेंस हो जाए, तब मैं आपसे कहता हूं कि रिलैक्स करो। तो अब आपको तत्काल... ये दो अतियों के कारण तत्काल गति हो जाती है।
तो मैंने यह अनुभव किया कि इस प्रयोग में जो आपको करवा रहा हूं, यह कोई सिक्सटी परसेंट लोगों को, सौ में से साठ लोगों को भी संभव होगा। वे जब पूरी तीव्र क्रिया में चले जाते हैं, क्योंकि है तो ले जाना अक्रिया में ही। वह जो आखिरी चरण है, मैं अक्रिया में ले जाता हूं।... हां, तो वे जो तीन चरण हैं, वे क्रिया में तीव्रता लाने के हैं। वह इतनी तीव्र हो जाए कि फिर आपको खुद ही लगने लगे कि अब जल्दी कहो कि छोड़ो। यानी मुझे न कहना पड़े कि क्रिया छोड़ो, आप ही रास्ता देखने लगो कि अब और दो मिनट बचे हैं, किस तरह अब यह छूटे और आराम में चले जाएं। आप टेंशन में जब पूरे चले जाते हैं तो नॉन-टेंशन में जाना आपके लिए एकदम सहज हो जाता है।
और जिसको सीधा हो सकता हो, उसको करने की कोई भी जरूरत नहीं। लेकिन फिर
भी करके देख लेना। क्योंकि सीधे से जितनी गहराई मिली है, जरूरी नहीं है कि वह बहुत गहरी हो, वह उथली भी हो सकती है। और इससे जो गहराई मिले अगर वह उससे ज्यादा मिलती हो तो भी इसका उपयोग है। जैसे कि कुछ मित्र जो उससे प्रयोग कर रहे थे, उन्होंने भी जब इससे किया तो उन्होंने कहा कि इससे हमारी गहराई बहुत बढ़ गई। उसके कारण हैं।
हमारा माइंड जो है एक्सट्रीम से बदलना, बहुत उसे आसान होगा। एकदम आसान होगा। जैसे एक आदमी से हम कहें, एक बच्चे को हम कहें कि कोने में बैठ जाओ शांत होकर। तो वह बैठ भी जाएगा तो भी वैसा करता रहेगा। क्योंकि हम कह दिए हैं तो वह बैठ गया उस कोने में। तो जो काम वह पूरे कमरे में घूम कर करता, वह वहीं करेगा। अब एक रास्ता यह है कि हम उससे कहें कि पहले मकान के पचास चक्कर लगाओ। और वह मकान के पचास चक्कर लगा रहा है। और वह कहता है कि पच्चीस हो गए, अब मैं रुक जाऊं? हम कहते हैं कि नहीं, तुम पूरे पचास पूरे करो। अब पचास चक्कर... वह बार-बार कहता है कि अब बहुत हो गया, हम रुक जाएं? हम कहें कि नहीं, पहले पचास पूरे करो। अब हम उससे कहते भी नहीं हैं कि कोने में बैठ जाओ। पचास पूरे हुए कि नहीं वह कोने में बैठ गया।
अब जो बैठ जाना है उसका, यह बेसिकली डिफरेंट है। डिफरेंस जो है वह यह
है कि अब जो भीतर की गति थी वह खुद ही शिथिल होने के लिए तैयार हो गई। और इस शिथिलता में गहराई ज्यादा संभव है। लेकिन अगर पहले प्रयोग से होती हो...

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

नहीं होता, नहीं होता। यह, यह जो मैं आपसे कह रहा हूं यह प्रयोग कभी भी नहीं कहा गया है। उसके कारण हैं। योगासन का यह लक्ष्य नहीं है, योगासन का यह लक्ष्य नहीं है। योगासन के लक्ष्य बहुत इससे बिल्कुल विपरीत हैं। इससे बहुत भिन्न हैं। यह तो जो मैं कह रहा हूं, यह तो इसको कहना चाहिए एक्सपेरिमेंट इनटेंशन है यह। यह तो तनाव की एक प्रक्रिया है। इतने तनाव की प्रक्रिया है कि आप बिल्कुल पागल हो जाएंगे।
लेकिन इसमें एक मजा है, कि चूंकि पागलपन इंटेंशनल है, क्योंकि आप ही उसे पैदा कर रहे हैं, इसलिए किसी भी सेकेंड छोड़ सकते हैं। और छोड़ते से वह विदा हो जाएगा। एक तो पागलपन वह है जो आप पर आ जाए, आ जाए तो आपके हाथ के

बाहर है छोड़ना। यह तो एक ऐसा पागलपन है, जो हम खुद पैदा कर रहे हैं। और क्योंकि हम खुद पैदा कर रहे हैं इसलिए हम एक अर्थ में सदा इसके बाहर हैं। सब तरह से पैदा कर लें तो भी भीतर एक सूत्र पर हम बाहर खड़े हैं और हम जानते हैं कि (अस्पष्ट...)वह भी आप हो जाता है। क्योंकि (अस्पष्ट...)यह सारा का सारा हमने पैदा किया है। इंटेंशनल है, वॉलेंटरी है।
और चूंकि वालेंटरी है इसलिए इसमें दोहरे फायदे हैं। एक तो हम अलग रहते हैं और पागलपन अलग हो जाता है। जब आपका शरीर भी नाच रहा है तब भी आप अलग होकर देख पाते हैं कि मेरा शरीर नाच रहा है या मैं रो रहा हूं। और एक रोना और है कि आपकी पत्नी मर गई है और आप रो रहे हैं, तब आप अलग नहीं हो पाते हैं कि यह कोई और रो रहा है और मैं देख रहा हूं। तब अलग होना असंभव है। क्योंकि आप ही क्रिया कर रहे हैं। और आप चाहें कि इसी वक्त रोक दूं रोना। तो आप नहीं रोक सकते, क्योंकि वह आपके हाथ से आया हुआ नहीं है।
यह क्योंकि आपके हाथ से आया हुआ है, आप पूरे वक्त बाहर होते हैं, इसलिए साक्षी का अनुभव बड़े सहजता से हो जाता है। और दूसरी बात यह है कि इसको चूंकि किसी भी वक्त समाप्त किया जा सकता है। तो आप तनाव का भी अनुभव कर लेते हैं और उसके साथ ही तत्काल, गैर-तनाव का भी अनुभव कर लेते हैं। इसलिए कंपेरिजन में आपको फासले साफ दिखाई पड़ते हैं, कंट्रास्ट में। क्योंकि सीधा आप जब शिथिल होते हैं तो आपको कुछ पता ही नहीं चलता कि क्या हुआ है। यह ऐसे कि जैसे हम काले पत्ते पर सफेद अक्षर से लिख रहे हैं। और अगर काला पत्ता तीस मिनट में तैयार करते हो और वह दस मिनट में सफेद अक्षर। वह पूरा दोनों आपको साफ दिखाई पड़ जाएगा--ये मेरे दो एक्सट्रीम, यह मेरा माइंड, यह दो काम कर सकता है। इतने तनाव में जा सकता है, इतनी शांति में जा सकता है। ये दोनों छोर हैं मेरे। ये आपको बहुत साफ सामने खड़े हो जाते हैं दोनों। और इसके फायदे तो अदभुत हैं, इसलिए कि एक दफा अगर आप वॉलेंटरी पागलपन पैदा करने में समर्थ हो गए, तनाव करने में समर्थ हो गए तो धीरे-धीरे वह जो नॉन-वॉलेंटरी है, उसके भी आप बाहर हो जाएंगे।
गुरजिएफएक फकीर था। तो वह, अगर कोई उसके पास जाता कि मुझे क्रोध बहुत आता है। अगर अभी आज मुझे कह दे कोई कि क्रोध बहुत आता। उसके पास गया होता तो वह एक काम करता। वह कहता, अगर क्रोध आता है तो वह कहता कि पंद्रह दिन यहां रहो और जो भी तुम्हें मौका मिले, जितना तुम क्रोध कर सको, करो। फिर वह हजार मौके जुटाता। और वह वालेंटरी क्रोध करवाता। पूरा क्रोध करो। क्रोध आता है तो पूरा करो। उसे रोको मत। हाथ-पैर पटकना है, पटको। सामान तोड़ना है तोड़ो, पूरी तरह करो।
लेकिन जब पूरी तरह वालेंटरी कोई क्रोध करता है तो फौरन साक्षी हो जाता है। साक्षी होते ही उसे पता चलता है कि मैं क्या कर रहा हूं? अच्छा, चूंकि उसका खुद का किया हुआ है, वह अब भी आप कर सकता है। और एक दफा जब क्रोध को ऑन-ऑफ करना आ गया, तो आप असली क्रोध को भी ऑन-ऑफ कर सकते हैं, क्योंकि फर्क दोनों में नहीं है। बात तो वही है। लेकिन बटन का पता नहीं था कि यह ऑन-ऑफ हो सकती है।
तो यह जो तनाव का प्रयोग है, ये अगर आप करते तो आप किसी भी तनाव को इसी तरह फौरन ऑफ कर सकते हो कि देखो इसका अनुभव है क्या? किसी भी तनाव को। यानी मेरी तो अपनी समझ यह है और अभी इस पर एक, एक व्यवस्था जैसी कर रहे हैं कि पागल को भी यह प्रयोग कराया जा सके, तो इक्कीस दिन में उसको पागलपन के बाहर किया जा सकता है। इतनी फिर होश उसमें हो कि वह प्रयोग करने को राजी हो सके, बस। बिल्कुल बाहर किया जा सकता है। क्योंकि हम उसको पूरे टेंशन पर ले जा सकते हैं पागलपन के। और जब वह खुद ही देख ले कि पागलपन लाया और ले जाया जा सकता है, अपने हाथ की बात है तो फिर पागलपन के हाथ में नहीं रह जाएगा वह। जो चीज हमारे हाथ की बात है, उसके हाथ में हम नहीं जा पाते। तो इसलिए मैं मानता हूं कि बजाय अच्छाई को हाथ में करने के बुराई हमारे हाथ की बात है, यह हमें साफ-साफ पता होना चाहिए। तब फिर हम उसके हाथ के शिकार नहीं रह जाते, नहीं। और मैं तो हर शिविर में ध्यान की पद्धति बदल देता हूं। बदलने का कारण है, आपको एक पद्धति ठीक मालूम पड़ी तो आप सीधे से उस पर चल पड़े। लेकिन इनको वह पद्धति ठीक मालूम नहीं पड़ी, अब इनको उसमें क्यों अटकाए

रहूं। इनको मैं दूसरी पद्धति कहता हूं। वह उनको ठीक से पड़ जाती है, उससे चल पड़े।
तो ध्यान के एक सौ बारह प्रयोग संभव हैं, और सब कारगर हैं। मेरी तो तकलीफ यह है कि एक ही प्रयोग को चलाने में इतनी मुसीबतें आती हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं। तो वे सब प्रयोग चलाए जा सकते हैं। और वे एक सौ बारह प्रयोग टोटल। ऐसा एक आदमी नहीं बचेगा फिर, जिसको कोई न कोई प्रयोग कारगर न हो जाए। यानी अभी जो हमको लगता है कि मुझको नहीं होता, उसका बहुत कारण तो हमें टेक्नीक सूट नहीं पड़ता, और कोई कारण नहीं हो सकता। न आपके पिछले जन्म का सवाल है; न आप शराब पीते हैं, इसका सवाल है; न सिगरेट पीते हैं, इसका सवाल है। ये सब बेमानी बातें हैं। इररेलिवेंट है। गहरे में सवाल यह है कि जिस-जिस टेक्नीक से हम कर रहे हैं, वह टेक्नीक आपको सूट नहीं कर रहा, बस और कोई कारण नहीं है।
तो जो टेक्नीक सूट पड़ जाए। इसलिए उसमें कंट्राडिक्शन न लेंगे। वह तो मैं बहुत विभिन्न... उनमें भेद हैं, विरोध नहीं हैं। बुनियाद में तो वहीं ले जाने की बात है।

प्रेम नदी के तीरा
चौथा प्रवचन

धर्म को गुरु नहीं, शिष्य चाहिए

आप बहुत गहरा भाव करते हैं तो ऐसा नहीं है कि सिर्फ कल्पना ही है आपको। नहीं आपमें से किसी गहरे व्यक्ति से संबंधित होगा। और वह जो संबंधित हो जाए न, वहां उसके कोई फासले का सवाल नहीं है, टाइम का सवाल नहीं है, दूरी का सवाल नहीं है। यही सब पूरा का पूरा साइंटिफिक मामला है, सारी की सारी साइंस की बात है। आपकी कहीं समझ बढ़ जाए तो बहुत काम आएगी।

प्रश्नः आसनों के बारे में आपका क्या विचार है?

आसन के संबंध में... नहीं, जहां तक आपको करने की जरूरत नहीं है। इसमें बहुत से आसन आप से होने लगेंगे। ये प्रक्रियाएं अगर आप पंद्रह-बीस दिन करते हैं तो आपसे बहुत से आसन होने लगेंगे। अभी तो कैंप में कोई शीर्षासनों तक चला जाता था, करते-करते। क्योंकि जब शरीर को पूरा छोड़ता हो तो उसका शरीर शीर्षासन करने लगे तो वह क्या करे? और ये सारे आसन इसी तरह विकसित हुए हैं। इनको किसी ने विकसित किया नहीं। ऐसी अवस्था में शरीर कई तरह के रूप लेने शुरू करता है, कई मुद्राएं बनाता है, कई आसन बनाता है। अभी एक महिला थी इस कैंप में... (अस्पष्ट। करीब-करीब सारी मुद्राएं उसके हाथों से होती हैं, सारी मुद्राएं। जितनी मुद्राओं की चर्चा है शास्त्रों में, वे सारी मुद्राएं उसमें आ गईं। वहां से चित्र नहीं आए हैं आपके पास? वहां की मूवी भी बनाई है, और मूवी भी पंजाब में दस-पांच जगह दिखाई है। उस कैंप में ही बनाई थी। तो न मालूम कितने आसन में कोई चला जाएगा, कोई क्या होगा? पर जो आसन अपने आप बनता है वही आपके लिए फायदे का है। बनाया जाना फिर वह डायरेक्टली आपका नहीं है। अपने आप बनता है। काम अपने आप बनता है।

प्रश्नः दूसरा कुछ...

... वह अपने आप होगा। तो शरीर की जो जरूरत है वह उसकीशरीर की वि... जडम पर छोड़ देने की जरूरत है। वह जैसी जरूरत होगी, पूरा कर लेगा। आप बाधा मत दो उसको। वे सब आसन ऐसे ही विकसित हुए हैं।

प्रश्नः शरीर को जरूरत से क्या मतलब है?

शरीर को पता है कि उसके लिए क्या जरूरत है। उसको हाथ हिलाने से फायदा होने वाला है तो वह हाथ हिला रहा है। उसके तनाव के कहां कांपलेक्स हैं? जो वह अपना काम करता है। आपको तो कुछ पता नहीं है, आप शीर्षासन कर रहे हैं। अब एक आदमी ऐसा शीर्षासन कर सकता है जिसके शरीर को शीर्षासन की कोई जरूरत नहीं है। नुकसान पहुंच सकता है।
बॉॅडी की अपनी वि.जडम है, आदमी ने बॉडी की वि.जडम भी खो दी है। जानवर ने नहीं खोई है। यहां आप एक भैंस को छोड़ दें, यहां पच्चीस तरह का घास लगाया हुआ है। वह अपने घास को चुनकर खा लेगी। बाकी सारा घास छोड़ देगी। चुनाव नहीं कर रही है वह, उसको कुछ पता भी ही नहीं है। उसने कोई घास के संबंध में किताब भी नहीं पढ़ी है कि किस स्पीसी का घास खाना, कि नहीं खाना। बस वह अपने उसी को ही खाती है, वह बॉडी पर ही जीती है, बॉडी उसकी खुद जानती है। वह उसे चुन लेती है, बाकी छोड़ देती है।
एक कुत्ता है। उसको आप, उसके पेट में भार है, तो वह फौरन वॉमिट कर देगा। उसको पता नहीं है वे मुद्राएं भी, वॉमिटिंग एजेंट ले। नहीं, लेकिन उसकी बॉडी काम कर रही है। वह कुछ भी खाता है तो वह फौरन वोमिट कर देता है। कोई भी जानवर बीमार हो जाए, आप उसको खाना नहीं खिला सकते। आदमी भर को खिला सकते हो। क्यों? आदमी ने बॉडी की वि.जडम ही खो दी है उसने। नहीं तो बीमारी

में खाना खाना ही मतलब बीमारी को खाना खिलाना है। कोई जानवर नहीं खाएगा। वह इंकार कर देगा बिल्कुल खाना खाने से। तो शरीर की अपनी वि.जडम है। जिसका हमें बोध मिट गया है, क्योंकि हम इंटलेक्ट से जी रहे हैं।
इंटलेक्ट जो है वह, जिसको कहना चाहिए कि बॉडी की जो इंस्टेंट जो समझ है, उससे इधर-उधर कर देती है। इतना अदभुत हुआ है आदमी के शरीर के साथ गड़बड़ उस इंटलेक्ट की वजह से कि जिसका कोई हिसाब नहीं। तो यह जो, इस प्रक्रिया में जब हम बॉडी को पूरा छोड़ देते हैं इंटलेक्ट के बाहर तो वह अपनी बेसिक इंस्टिंक्ट (अस्पष्ट----)को उपलब्ध होगी। तब फिर उसे जो करना है वह कर लेती है, जो उसके लिए जरूरी है वह कर लेती है। उस वक्त जो आसन बनें, मुद्राएं बनें, वे बन जाती हैं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

वह रिमूव कर लेगी, वह रिमूव कर लेगी। बिल्कुल रिमूव कर लेगी।
इसलिए यह बड़े मजे की बात है कि अगर कोई बीमार है तो बीमारी जागने में ठीक नहीं होती उसकी, नींद में ठीक होती है। और अगर नींद ही न आती हो तो बीमारी ठीक करना मुश्किल हो जाए। उसका कारण है कि जागने में बॉडी की वि.जडम को काम नहीं करने देता वह। नींद में बॉडी अपना काम कर लेती है। इसलिए हर बीमारी के लिए नींद जरूरी है, ठीक करने के लिए। अब एक मरीज को नींद न आती हो और बीमारी हो, तो पहले नींद ठीक करो उसकी, पीछे बीमारी ठीक होने वाली है, नहीं तो नहीं होने वाली। क्योंकि वह चौबीस घंटे जगा हुआ है, वह बॉडी को कुछ करने नहीं देता। अब रात में उसका हाथ कहां गिरता है, पैर कहां गिरता है, होश में नहीं गिरने देगा वह। रात उसके मुंह से कुछ उधर गिर जाए, अब वह होश में नहीं गिरने देगा। बॉडी को काम नहीं करने दे रहे हैं। इंटलेक्ट हावी हो गई है उसके ऊपर। फिर भारी तकलीफ होगी।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

तो दो वक्त बहुत अच्छे हैं। एक तो नींद से जगने के बाद, सुबह। और एक रात सोने के पहले। सनराइज का सवाल उतना नहीं है बड़ा, उतना बड़ा सनराइज का नहीं है। अगर उठ सकें तो बहुत अच्छा है। बहुत अच्छा है। सनराइज के साथ ही साथ सबसे अच्छा है, बिफोर नहीं। उधर सूरज उग रहा है इधर आपकी प्रक्रिया चल रही है, तो ज्यादा कारगर है। और या फिर रात सोने के पहले। ये दो वक्त बहुत अच्छे हैं। वक्त तो कोई भी अच्छा है, वक्त तो कोई भी अच्छा है, आधी रात भी बहुत बढ़िया है। वक्त तो कोई भी अच्छा है, हां, डिस्टर्बेंस बाहरी कम हो जाते हैं, बाहरी कम हो जाते हैं, बहुत कम हो जाते हैं।

प्रश्नः ध्यान में आपने परमात्मा के एक जप का प्रयोग किया है। यह तो ऐसा ट्रेडीशनल कर दिया है वह मतलब का नहीं है। क्योंकि यह बात कोई मायने नहीं रखती?

नहीं, नहीं, नहीं। ट्रेडीशनल तो मैं किसी चीज का उपयोग करता ही नहीं, कभी नहीं करता। वह परमात्मा का मेरा मतलब ही इतना है कि वह जो हमारे जीवन की गहराई की परम अनुभूति है, उसको मैं परमात्मा कहता हूं। जितने गहरे हम जीवन में उतर सकते हैं, वह जो अल्टीमेट है जीवन के केंद्र पर, जीवन का जो केंद्र है, उसका नाम परमात्मा है। उसको न परमात्मा कहें तो भी चलेगा। उसको कुछ और नाम देना पड़े, कोई भी नाम देना पड़े। कोई भी लफ्ज से वह दिक्कत नहीं है, कोई भी लफ्ज। लफ्ज ही तो लफ्ज रहेगा, उसके साथ एसोसिएशन हो जाता है। तो परमात्मा से मेरा मतलब इतना है कि जीवन का जो चरम स्रोत, जहां से जीवन आता है और जहां जीवन रहता है, बस उस चरम स्रोत को, उसको हम जीवन का चरम स्रोत कहें तो कोई हर्जा नहीं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

वह मैं अभी आपसे कह रहा था कि प्रकाश का अनुभव पहला अनुभव होगा, और उसका कारण है। हमारी जीवन भर की प्रतीति अंधेरे की प्रतीति है। न कुछ दिखाई पड़ता है, न कुछ समझ आता है। न कुछ पता चलता है, कहां से आए हैं? कहां जा रहे हैं? क्यूं हैं? यह सब अंधेरे का भाव है। जैसे एक अंधेरे में घिरे हों, जहां न आगे का पता चलता है, न पीछे का पता चलता है, न प.ड़ोसी का पता चलता है, न अपना पता चलता है। ऐसी अंधेरी किनारी का टूटना।
तो ध्यान की पहली जो चोट होती है वह इस अंधेरे पर हो जाती है। और पहली चोट के बाद हमें पहला अनुभव होना शुरू होता है, और वह एक पर्दे में लाइट का होता है। चारों तरफ प्रकाश ही प्रकाश दिखेगा। उस प्रकाश में भी और इस प्रकाश में बुनियादी फर्क होता है। इस प्रकाश में उष्णता है, उस प्रकाश में कोई उष्णता नहीं है। ठंडा प्रकाश है। इस प्रकाश में कोई सोर्स है, वह विदाउट सोर्स होगा। (अस्पष्ट...)कहीं दीया है तो वहां से आ रहा है, सूरज है तो वहां से आ रहा है। ध्यान में जिस प्रकाश का अनुभव बढ़ता है, प्रकाश ही होता है, सोर्स कोई नहीं। इसलिए जैसे कि सुबह सूरज नहीं निकला है और रात समाप्त हो गई है, उस समय जैसा प्रकाश होता है, वैसे प्रकाश की प्रतीति बढ़नी शुरू होती है।
दूसरी प्रतीति शांति की होती है। परम शांति की। परम शांति बहुत घनीभूत होती है। और तीसरी प्रतीति आनंद की है। वह, उसको कहना चाहिए कि कंडैंस्ड पीस का अनुभव, आनंद। बहुत घनीभूत शांति बनती है तो वह आनंद बनता है।

प्रश्नः फिर आंख खोलने को मन नहीं करेगा?

नहीं करेगा आंख खोलने का मन, बिल्कुल नहीं करेगा। और आनंद की घनीभूत स्थिति जो है, उसी को बताना चाहता हूं। उसके पार कुछ नहीं है। क्योंकि उसका कोई पार ही नहीं है। इसलिए पार नहीं है उसका क्योंकि उसके आगे कुछ भी नहीं, क्योंकि उसका कोई अंत ही नहीं। और शांति में आपको बराबर पता चलता रहेगा कि मैं शांत हूं। आनंद में आपको पता चलेगा। शांति अलग मालूम पड़ेगी और आप अलग मालूम पड़ेंगे। आनंद में आपको लगेगा कि मैं आनंद हो गया हूं। वह अलग नहीं मालूम पड़ेगा, आइडेंटिफाइड मालूम पड़ेगा कि मैं आनंद हो गया हूं। और आनंद को लेकर जहां गए, वहां मैं भी नहीं पहुंचा। वहां यह भी नहीं मालूम पड़ेगा कि मैं परमात्मा हो गया हूं, वहां परमात्मा ही है।
तो यह तीन तलों पर--यहां शांति में मैं रहूंगा और चारों तरफ शांति रहेगी। आनंद में मैं और आनंद एक हो जाएंगे। और परमात्मा में मैं रह ही नहीं जाता। बस इसीलिए आनंद तक की खबर लोग ला सके, उसके आगे की खबर लोग नहीं ला सके। क्योंकि खबर लाने वाले ही वहां खो गए। इसलिए आनंद तक खबर है। इसलिए सच्चिदानंद जो है वह आखिरी खबर है। जहां तक आदमी खबर लाया है। वहां सत्य है, चित्त है और आनंद है। एग्जिस्टेंस है वहां, कांशसनेस है वहां, और बिलीफ है वहां। यह आखिरी खबर है, आखिरी पड़ाव--जिसके बाद आदमी मिट जाता है। क्योंकि उसके बाद की कोई खबर नहीं है। मगर असली बात इसके आगे है। यह आखिरी पड़ाव है जहां तक मील के पत्थर लगे हैं। उसके बाद जंगल है, जहां रास्ता खत्म हो जाता है, जहां हम भी खत्म हो जाते हैं।
इसलिए आखिरी खबर, जो गहरी से गहरी खबर लाई जा सकी है, वह सच्चिदानंद है। मगर बात उसके भी आगे है। इसलिए यह ब्रह्म की परिभाषा नहीं है सच्चिदानंद। यह आदमी के आखिरी पड़ाव की परिभाषा है। जिसके आगे फिर आदमी नहीं बढ़ता। इसलिए उसके आगे की खबर नहीं आती। यह मुकाम की खबर नहीं है। लास्ट, लास्ट स्टोन जो हमने लगाया, लगा सकते हैं हम, उस बॉर्डर का। मगर यह इसी तरफ है बॉर्डर। क्योंकि बॉर्डर के उस तरफ पत्थर नहीं लग सकता, वह इसी तरफ लगेगा।
इसलिए मैं नहीं कहता कि यह ब्रह्म की परिभाषा है। यह ब्रह्म तक की जाने वाली आखिरी संभावना है परिभाषा की। इसके आगे अपरिभाषित, नान-

42

डेफिनिशन की दुनिया शुरू होती है। वहीं है ब्रह्म। इसलिए मुझसे कोई पूछता है कि सच्चिदानंद यानी ब्रह्म, तो मैं नहीं कहता?
मैं कहता हूं ब्रह्म यानी सच्चिदानंद के आगे। फिर न सच है, न चित्त है,
न आनंद है। न इनको जानने वाला है। पर कामचलाऊ ठीक है, कि हम कहें कि यह ब्रह्म की परिभाषा हो सकती है।

प्रश्नः तो उस कंट्रोवर्सी की वजह से जो बिखरा या पूछा जाए, क्या आपका दूसरे लोगों से फर्क है? क्यों वे इतने अपसेट हुए हैं? तो इसके बारे में अगर आप कुछ बताएं हमें तो मेहरबानी होगी।

कंट्रोवर्सी बिल्कुल स्वाभाविक है। उसमें उनका कसूर नहीं, कसूर मेरा है। क्योंकि जो भी मैं कह रहा हूं, वह बहुत सी चीजों के विपरीत है। इसमें ट्रेडीशन, परंपरा का विरोधी है। और मेरा मानना है कि धर्म की कोई परंपरा नहीं होती। हो नहीं सकती। धर्म की जो अनुभूति है, वह सदा नई है। वह कभी पुरानी हो ही नहीं सकती। और जब भी किसी व्यक्ति को मिलती है तो वह सदा ताजी और नई ही होती है। और धर्म की अनुभूति पर हम कोई ट्रेडीशन भी नहीं बना सकते हैं। बनाते से ही बासी और उधार हो जाते हैं। असल में धर्म का जो अनुभव है उसे शब्द देते से ही, लिखते से, बोलते ही मर जाता है।
तो लिविंग रिलीजन की कोई ट्रेडीशन नहीं होती। सिर्फ डेड रिलीजन की ट्रेडीशन होती है। सभी धर्म मरे हुए धर्म हैं। और धर्म कभी मर नहीं सकता। तो धर्म तो जीवंत अनुभव है। तो नानक को एक अनुभव होगा, वह अनुभव तो जीवित है। लेकिन सिक्ख जिसको पकड़े बैठा है, वह मृत है। वह नानक का कहा हुआ शब्द उसके पास है। बुद्ध को जो अनुभव हुआ, वह तो जीवित है। लेकिन बुद्ध को मानने वाला जो पकड़े बैठा है, वह बुद्ध का कहा हुआ शब्द पकड़े बैठा है। वह मृत है। धर्म एक है, लेकिन मरे हुए धर्म बहुत हैं। क्योंकि जितनी बार लोगों को जीवित सत्य का अनुभव हुआ है उतनी बार ही शब्दों में प्रयुक्त होने के बाद शास्त्र बनने के बाद वह मृत हो जाता है। इस दुनिया में कोई तीन सौ धर्म हैं। और मेरी अपनी समझ यह है कि इन तीन सौ मरे हुए धर्मों के कारण ही जीवित धर्म की अनुभूति बहुत मुश्किल हो जाती है। क्योंकि यह हमें पकड़ लेते हैं चारों तरफ से।
नानक जहां पहुंचे; बुद्ध जहां पहुंचे; मोहम्मद जहां पहुंचे; वहां हम नहीं पहुंच पाते, क्योंकि हम तो नानक, बुद्ध और कृष्ण के शब्दों को पकड़ कर रुक जाते हैं।
इसलिए मैं शास्त्र-विरोधी भी हूं।
मेरा मानना है कि धर्म का कोई शास्त्र नहीं, धर्म-शास्त्र जैसा कोई शास्त्र नहीं। सब शास्त्र धार्मिक लोगों के लिखे हुए हैं, लेकिन धर्म-शास्त्र कोई भी नहीं। ऐसा कोई भी शास्त्र नहीं, जिसको पढ़ कर धर्म उपलब्ध हो जाए। धर्म तो उपलब्ध करना पड़ेगा अनुभव से। हां, शास्त्र गवाही दे सकेगा कि तुम्हें जो अनुभव हुआ है वह नानक को भी हुआ था। वह बुद्ध को भी हुआ था। तो वह ज्यादा से ज्यादा गवाही का काम कर सकता है। लेकिन अनुभव देने का काम नहीं कर सकता। स्वभावतः परंपरा के विरोध में कहूं कुछ, शास्त्र को कहूं कि उससे धर्म नहीं मिलेगा, और सत्य के संबंध में कहता हूं कि उसे कभी बॉरोड, उधार नहीं पाया जा सकता। वह ट्रांसफरेबल नहीं है कि मुझे सत्य मिल जाए तो मैं आपको दे दूं।
इसलिए मेरा कहना है कि धर्म के जगत में गुरु नहीं हो सकता। सिर्फ शिष्य हो सकते हैं। और शिष्य होने का मतलब है: मेरा एटिट्यूड ऑफ डिसाइपलशिप। सीखने का एक भाव हो सकता है भावुक आदमी में, वह सीखता है, सब तरफ से सीख सकता है। और कहीं से भी सीख सकता है, लेकिन गुरु नहीं होता। ऐसा कोई आदमी नहीं होता जो कहता है कि मैं तुम्हें दूंगा। क्योंकि धर्म की दुनिया में प्रवेश करने के बाद मैं तो बचता नहीं, देने वाला बचता नहीं। तो कोई दावेदार तो हो नहीं सकता वहां। हां, खोजने वाले किसी भी स्रोत से सीख सकते हैं। लेकिन शिष्य ही होते हैं, गुरु नहीं होते।

और मेरी समझ है कि गुरुओं के खयाल की वजह से पंथ और संप्रदाय खड़े हुए हैं। अगर सीखने वाले पर हमारा जोर हो तो फिर पंथ और संप्रदाय की कोई जरूरत नहीं है। कोई कहीं से भी सीख सकता है। फिर सारा जगत शिक्षा की जगह बन जाती है। और सारा जगत गुरु बन जाता है।
तो परंपरा, शास्त्र, गुरु, इन सबको मैं धर्म न कहूं तो विवाद उठना अत्यंत स्वाभाविक है।

प्रश्नः आपकी यह तो हुई इंटरप्रिटेशन का सवाल, आपकी पाजिटिव फिलॉसफी
ऑफ लाइफ जो है वह क्या है?

असल में, असल में, यह बहुत अच्छा सवाल आपने पूछा। मेरी समझ ही यह है कि रिलीजन जो है, वह निगेटिव फिलॉसफी ऑफ लाइफ है। पाजिटिव फिलॉसफी रिलीजन के पास होती ही नहीं। असल में निगेटिव माइंड ही रिलीजियस माइंड है। इसका मतलब यह है कि जैसे एक आदमी जंजीरों में बंधा हुआ है। और वह कहता है कि मैं जंजीरें तोड़ कर स्वतंत्र होना चाहता हूं। और कोई उससे पूछे कि तेरी पाजिटिव स्वतंत्रता का, तेरी पाजिटिव स्वतंत्रता का मतलब क्या है? पाजिटिव फ्रीडम से तेरा मतलब क्या है? वह कहेगा कि मेरी जंजीर टूटे, मेरे ऊपर से सारी जंजीर टूट जाएं तो मुझे स्वतंत्रता मिल जाए। मगर यह निगेटिव बात है। सारी जंजीरें टूट जाएं तो मैं स्वतंत्र हो जाता हूं।
स्वतंत्रता का असल में पाजिटिव कोई मतलब होता ही नहीं है। स्वतंत्रता
का मतलब ही होता है: निगेटिव। और धर्म जो है वह मुक्ति है, वह एब्सोल्यूट फ्रीडम की खोज है। जहां हम परम स्वतंत्र हों, जहां कोई सीमा न होगी, कोई बंधन न होगा, कोई रुकावट न होगी। तो धर्म बेसिकली निगेटिव है। कहां-कहां बंधन है, वहां-वहां तोड़ देना है। तो मैं मानता हूं: रूढ़ि बंधन है; परंपरा बंधन है; गुरु बंधन है; शास्त्र बंधन है; सिद्धांत बंधन हैं; ये सारे बंधन हैं। ये सब तोड़ देने हैं। इनके तोड़ते ही जो शेष रह जाएगा, वह अनुभूति ही पाजिटिव है। इन सबके तोड़ते ही जो शेष रह जाएगी जिसको आप तोड़ ही नहीं सकते, उसी को स्वरूप कहें, स्वभाव कहें, हमारा परम सत्य कहें, परमात्मा कहें, जो भी नाम दें।
हमारे सारे बंधन जहां टूट जाएंगे, वहां जो शेष रह जाएगा वह पाजिटिव है। लेकिन हमें जो करना पड़ेगा वह तो निगेटिव होगा। सारे बंधन तोड़ने का काम करना पड़ेगा। तो मेरी कोई पाजिटिव फिलॉसफी है ही नहीं। क्योंकि मैं मानता ही यह हूं कि पाजिटिव फिलॉसफी ही बंधन बन जाती है। सिर्फ निगेटिव माइंड ही स्वतंत्र हो सकता है, पाजिटिव माइंड तो बंध ही जाएगा। क्योंकि जिसको भी वह पाजिट करेगा उसी से बंध जाएगा। अगर वह कहेगा कि यह भगवान एक ऐसा भगवान है, उससे बंधेगा। कहेगा कि ऐसा स्वर्ग है, उससे बंधेगा। कहेगा ऐसा मोक्ष है, उससे बंधेगा।
और नहीं जो बंधता कहीं और सब तरह के बंधन छोड़ देता है, तो भीतर जब चेतना पर सब बंधन गिर जाते हैं, तब एक फ्रीडम उपलब्ध होती है। वह जो स्वतंत्रता है, वह हमारा स्वभाव है। वह हमारा इनहेरेंट नेचर है। उसको तो निगेटिविटी से ही पाना पड़ता है। निषेध से पाना पड़ता है। इसलिए जो परम अनुभव जिन्हें हुआ है वे नेति-नेति ही कहेंगे। वे कहेंगेः यह भी नहीं, यह भी नहीं। नॉट दिस, नॉट दैट। यह भी छोड़ो, वह भी छोड़ो। और हम हमेशा पूछेंगे कि पकड़ें क्या? पाजिटिव का मतलब होता है कि पकड़ें क्या? लेकिन पकड़ना बंधन बन जाता है।
तो मैं कहता हूंः पकड़ो ही मत, बिना पकड़े जीओ। और अगर बिना पकड़े जी सकते हो, विदाउट ऐनी क्लिंगिंग, तो ही मुक्त हो सकते हो, पकड़ा कि बंधे। जहां पकड़ा कि वहीं बंधे। इसलिए पकड़ना ही मत। इसलिए मेरे पास कोई पाजिटिव फिलॉसफी नहीं है, वह भी दिक्कत है। वह भी एक कंट्रोवर्सी का कारण है। क्योंकि जो भी आदमी छोड़ने को कहता है, वह कहता है कि पहले हमें पकड़ने को तो बता दो। आप कहते हो कि ये मुट्ठी में जो रखे हैं इसे छोड़ दो, तो हम कहां मुट्ठी बांधें?

और मैं कहता हूं कि मुट्ठी ही छोड़ दो। मैं यह नहीं कहता हूं कि तुम मुट्ठी में जो रखे हुए हो वह छोड़ दो। उससे क्या फर्क पड़ता है, दूसरी चीज पर मुट्ठी बंध जाएगी। मिट्टी न होगी, पत्थर होगा; पत्थर न होगा, सोना होगा; लेकिन मुट्ठी तो हर हालत में बंधी होगी। और मेरा जोर यह है कि मुट्ठी खुली होनी चाहिए। इसलिए सवाल यह नहीं है कि क्या पकड़े हो, सवाल यह है कि पकड़े हो या नहीं पकड़े हो।
तो मेरा कहना है कि सब तरह की क्लिंगिंग जहां छूट जाती है, ए माइंड विदाउट क्लिंगिंग, विदाउट ऐनी पाजिटिव क्लिंगिंग।

प्रश्नः... एट मेंटल अवेयरनेस शुड रीच एट लेवल वेयर वन शुड नॉट डिपेंड
ऑन एनीथिंग, बट दि इनडिपेंडेंट एण्ड सेल्फ-सफिशिएंट मेंटली। एम आई करेक्ट एण्ड... तो दूसरा मेरा इसी सिलसिले में प्रश्न है कि एक यह समझा जाता है कि फ्रीडम फ्रॉम वांट? शायद यह एक स्वतंत्रता का, जेहनी स्वतंत्रता का एक चिह्न होता है। तो इस संबंध में आपको कुछ कहना हो तो?

पहली बात तो आप यह कह रहे हैं कि अवेयरनेस, चेतना ऐसी जगह पहुंचनी चाहिए जहां वह बिना डिपेंडेंस के रह सके। लेकिन वह ऐसी जगह पहुंचेगी तब जब वह डिपेंडेंस तोड़ना शुरू करे अन्यथा पहुंचेगी नहीं। तो जितनी हमारी डिपेंडेंस हैं, उन्हें हम तोड़ना शुरू करें तो ही हम उस जगह पहुंचें कि अवेयरनेस जहां इंडिपेंडेंट हो सके। तो डिपेंडेंस तोड़ना ही उस जगह पहुंचने का रास्ता है।
और दूसरी बात, फ्रीडम फ्रॉम वांट में स्वतंत्रता नहीं कहता। क्योंकि जिसको हमने अब तक इच्छाएं, जरूरतें, और वांट कहा है वे जीवन के अस्तित्व की अनिवार्यताएं हैं। जरूरतें हैं।

प्रश्नः बट माई क्वेश्चन इ.ज नॉट एनी क्लियर--फ्रीडम फ्रॉम वांट--बट
आई मेंट वा.ज मीटिंग ऑफ ऑल वांट्स। आई मीन आई डोंट थिंक आई शुड से दैट निगेटिवली स्पीकिंग वांट शुड नॉट बादर अबाउट वन्ज वांट्स, बट दि फुलफिलमेंट ऑफ ऑल दोज डिजायर देन वांट्स, आई मीन इन पाजिटिव वे। सो उस लिहाज में मैं कहता हूं कि अगर सभी जरूरियात किसी की पूरी हो जाएं तो फिर वह इंडिपेंडेंट हो जाता है। इस कांसेप्ट को आप कैसे समझते हैं?

वह समझता है। मैं समझा आपकी बात। असल में इच्छाएं पूरी हों तो ही हम इच्छाओं को ट्रांसेंड कर पाते हैं। जिस इच्छा को हम पूरा कर लेते हैं, उसके ही हम पार चले जाते हैं। जब तक हम पूरा नहीं करते तब तक इच्छा पीछा करती है। चारों तरफ से घेरती है। पुरानी जो दृष्टि थी वह यह थी कि इच्छाओं को दबा दो, सप्रेस कर दो। सप्रेस कर दोगे तो मुक्त हो जाओगे। मैं नहीं मानता। सप्रेशन फ्रीडम नहीं है। फुलफिलमेंट ठीक फ्रीडम है। और सप्रेशन एक बहुत गहरे किस्म की गुलामी है, जो अपने ही हाथों में अपनी गुलामी है। कोई और गुलाम बनाने वाला नहीं है, लेकिन हम ही अपने को बना रहे हैं।
तो मेरी दृष्टि में इच्छाओं का कोई विरोध नहीं है। जीवन में जो भी वासनाएं, जो भी इच्छाएं, जो भी डिजायर्स दिए हैं, वे जैसे-जैसे पूरी हों, जिस भांति पूरी हों, ऐसा समाज चाहिए, ऐसी धारणाएं चाहिए, ऐसी व्यवस्था चाहिए, जहां वे अधिकतम पूरी हो सकें। इसलिए मैं पावर्टी के पक्ष में नहीं हूं।
और मेरा मानना है कि रिलीजन की फ्लॉवरिंग एफ्लुएंट सोसाइटी में ही होती है, गरीब समाज में नहीं होती। जैसे एफ्लुएंस आता है, जहां सारी इच्छाएं पूरी होने लगती हैं, वहां ही पहली दफा एक नई इच्छा का जन्म होता है कि हम सारी इच्छाओं के बाहर कैसे हो जाएं। जहां सब इच्छाएं पूरी होने लगती हैं, वहीं पहली दफा सवाल उठता है कि जीवन का सत्य क्या है? परमात्मा क्या है? मोक्ष क्या है? ये जीवन की जो चारों तरफ की इच्छाएं पूरी होती हैं, तब यह गहरी इच्छा पैदा होनी शुरू होती है। इस गहरी इच्छा के शुरू होने के लिए भी जीवन की साधारण इच्छाएं पूरी हो जाना जरूरी हैं।

तो मैं लाइफ-अफरमेटिव हूं। जीवन का मैं पूरा स्वीकार करता हूं। जीवन
के समस्त रूपों को और जीवन की समस्त आकांक्षाओं को मैं स्वीकार करता हूं। और उनको पूरा करके ही उनके पार जाने का मार्ग है। जहां वे पूरी होती हैं, वहीं हम उनके पार जाते हैं। इच्छाएं पूरी हों, इच्छाओं का दमन न हो, इच्छाओं को काटा-पीटा न जाए। तो किसी तरह की ऑस्टैरिटी, किसी तरह के त्याग और तपश्चर्या का मैं पक्षपाती नहीं हूं। क्योंकि मेरा मानना है कि त्याग, जिसे हम त्याग कहते रहे हैं, रिनंसिएशन, जिसे हम छोड़ना कहते रहे हैं, तो वह सब का सब मनुष्य को क्रिपल्ड करता है, पंगु करता है, सब तरफ से उसको तोड़ डालता है। उससे चेतना विकसित नहीं होती, अविकसित ही रह जाती है।
लेकिन एक और तरह का रिनंसिएशन है, एक और तरह का त्याग है जो चीजों के अनुभव से उपलब्ध होता है। एक तो त्याग वह है कि एक, एक गरीब आदमी, जिसने जिंदगी में कुछ भी नहीं जाना, चीजों को छोड़ता है। एक बुद्ध जैसा आदमी, जिसने जीवन में सारी चीजों को जाना और छोड़ रहा है। इन दोनों के छोड़ने में मैं फर्क मानता हूं। गरीब को छोड़ना पड़ता है, बुद्ध का छोड़ना बहुत सहज और स्पांटेनियस है। चीजें व्यर्थ हो गई हैं। मीनिंगलेस हो गई हैं।
तो जीवन के संबंध में, जीवन की इच्छाओं, जरूरतों, आवश्यकताओं के संबंध में मैं मैटीरियलिज्म को पूरी तरह स्वीकार करता हूं। और मैं मानता हूं कि एक ठीक धर्म एंटी-मैटीरियलिस्ट नहीं हो सकता। और अगर एंटी-मैटीरियलिस्ट होगा तो एंटी-लाइफ भी होगा। क्योंकि जीवन का सारा आधार भौतिक है। और पदार्थ जीवन का आधार है। यह भी मेरी समझ है कि धर्म की बुनियाद तो मैटीरियलिस्ट ही होगी। लेकिन उसकी पीक स्प्रिचुअलिस्ट होगी। तो उसके मंदिर के नीचे के पत्थर तो भौतिकवादी होते हैं, लेकिन मंदिर का शिखर अध्यात्म का होता है।
और अध्यात्म और भौतिक में, स्प्रिचुअलिटी में और मैटीरियलिज्म में मैं विरोध नहीं मानता। क्योंकि मेरी यह भी समझ है कि शरीर और आत्मा में भी कोई विरोध नहीं है। और परमात्मा और सृष्टि में भी कोई विरोध नहीं है। बल्कि ये दो चीजें नहीं हैं। एक ही चीज के दो एस्पेक्ट्स हैं। एक तरफ से जो हमें शरीर की तरह दिखाई पड़ता है, वही चीज दूसरी तरफ से आत्मा की तरह अनुभव में आती है। और एक तरफ से जो हमें पदार्थ मालूम पड़ता है, वही दूसरी तरफ से हमें परमात्मा की तरह दिखाई पड़ता है।
ऐसी दो चीजें... नहीं तो मैं डुअलिस्ट नहीं हूं। और, और मैं मानता हूं
कि डुअलिज्म ने सारे धार्मिक चिंतन को स्कि.जोफ्रेनिक कर दिया। यानी आदमी ने दो हिस्से कर दिए। उसने कहा कि यह शरीर है, यह दुश्मन है। और तुम आत्मा हो, तुम इसके खिलाफ लड़ते रहो। शरीर से लड़ो; प्रकृति से लड़ो; जीवन से लड़ो। तो जीवन से, शरीर से और प्रकृति से लड़ कर हम परमात्मा तक नहीं पहुंच सकते। बल्कि इनमें पूरी तरह लीन होकर, डूब कर इनके रस में पूरी तरह विमुग्ध होकर, इनके रस में पूरी तरह एक होकर ही परमात्मा तक पहुंच सकते हैं। क्योंकि हम इनसे अलग नहीं हैं।
इसलिए मैं लाइफ-निगेटिव नहीं हूं। लाइफ-अफरमेटिव हूं। लेकिन रिलीजियस माइंड को मैं मानता हूं कि वह निगेटिव माइंड है। निगेटिव माइंड का मेरा मतलब यह है कि फ्रीडम के लिहाज से वह जहां-जहां बंधन हैं, वहां- वहां बंधन को तोड़ने के लिए तत्पर है। उसकी आकांक्षा परम स्वतंत्रता की है। और द्वैत भी एक बंधन है। क्योंकि जब मैं अपने को दो में बांट लेता हूं तो बहुत मुश्किल में पड़ जाता हूं। वह लड़ाई ऐसी हो जाती है जैसे बाएं और दाएं हाथ को मैं लड़ाऊं। और कोई भी न जीते। क्योंकि दोनों हाथ मेरे हैं। और दोनों हाथ लड़ें, जीते भी कोई न, लेकिन मैं हार जाऊं। क्योंकि दोनों हाथ लड़ा-लड़ा कर थक जाऊं।
तो जिंदगी को अब तक ठीक-ठीक धार्मिक शक्ल नहीं मिल सकी। क्योंकि द्वैत ने हमें बहुत बुरी तरह से दो हिस्सों में, खंडों में तोड़ दिया है। अद्वैत मेरे मन में यह अर्थ रखता है... ऐसा अर्थ नहीं रखता जैसा शंकर के लिए। शंकर के लिए अद्वैत का मतलब होता है कि संसार है ही नहीं। और मैं मानता हूं तब शंकर द्वैतवादी ही हैं। और संसार को बिना इंकार किए उन्हें उपाय नहीं है कोई। तो संसार को डिनाई करेंगे तो ही अद्वैत को बचा पाते

हैं। लेकिन जिसको हम डिनाई करते हैं, डिनाई करने की वजह से भी वह है, उसे इनकार करना पड़ता है। माया, इलुजन कहना पड़ता है, तो भी वह है।
अद्वैत का मेरे लिए मतलब यह है कि जो भी है, वह एक है। उसमें कुछ भी इनकार करने योग्य नहीं है और कोई भी लड़ने योग्य नहीं है उसमें। और उसमें खंड करने की जरूरत नहीं है, वह इंटिग्रेटेड, एक है। और मैं पूरे जीवन को स्वीकार करता हूं। तो टोटल एक्सेप्टिबिलिटी को आप मेरा पाजिटिव एलिमेंट कह सकते हैं। टोटल एक्सेप्टिबिलिटी, कि मुझे सब स्वीकार है, जीवन जैसा है, पूरी तरह स्वीकार है।

प्रश्नः तो अगर यह कहा जाए कि आपकी जो धारणा है, वह आज के युग में एक नई तरह की धारणा है। जिसकी पहले परंपरा, इस प्रचलित जमाने में नहीं है, तो यह ठीक रहेगा या इस तरह का कोई और आप उदाहरण दे सकेंगे। कि और लोग भी होंगे जो इस तरह का खयाल रखते हैं?

नहीं, यह परंपरा तो नहीं है जो मैं कह रहा हूं, लेकिन यह नई बात भी नहीं है। इन दोनों बातों को खयाल में ले लें। असल में जो मैं कह रहा हूं कि जब भी कोई आदमी धर्म को उपलब्ध हुआ है तो उसने यही कहा है। और जब भी कोई उपलब्ध होगा तो यही कहेगा। लेकिन उसकी परंपरा नहीं बन पाती, परंपरा बनाने वाले सदा दूसरे होते हैं। अगर बुद्ध पैदा हों या जीसस पैदा हों, तो जीसस के आधार पर परंपरा बनती है। लेकिन बनाने वाले हमेशा और होते हैं। वे होते हैं, जिन्हें धर्म का कोई अनुभव नहीं। परंपरा बनाने वाला समाज और होता है। ऑरिजिनल सोर्स तो वही होता है जो मैं कह रहा हूं। और अगर मेरे पीछे भी दस लोग परंपरा बनाएं तो वह मेरे खिलाफ होगी।
तो मेरी यह भी धारणा है कि सारी धर्म की परंपराएं जिनके नाम पर बनी हैं, उनके ही खिलाफ हैं। क्योंकि बनाने वाला जो है, वह बहुत दूसरा आदमी है। वह चारों तरफ से इकट्ठा होकर बनाता है। और नानक के आस-पास जो लोग इकट्ठे होकर एक ऑर्गनाइजेशन बनाते हैं, एक सिस्टम बनाते हैं--वे। और उनके पास नानक का अनुभव नहीं है। उनके पास सिर्फ नानक के शब्द हैं। और उन शब्दों की भी उनकी अपनी व्याख्या है, जिसका नानक से कोई लेना-देना नहीं।
क्योंकि मेरी समझ यह है कि नानक के शब्दों को समझने के लिए भी नानक की हैसियत का अनुभव चाहिए। उसके बिना कुछ और उपाय नहीं है। यानी मामला ऐसा है कि एक आंख वाला आदमी प्रकाश देखता है, और फिर अंधे इकट्ठे होकर उसके ऊपर सिस्टम बनाते हैं। वह तो सब गड़बड़ हो जाता है। तो ट्रेडीशन तो कोई भी नहीं है जो मैं कह रहा हूं उसकी। लेकिन जो मैं कह रहा हूं, वह नया बिल्कुल नहीं है। सदा वही कहा गया है, और सदा उसी के आस-पास उससे उलटी ट्रेडीशन बनी है। और इसलिए बड़े मजे की बात है। वह बड़े मजे की बात यह है कि दुनिया में जब
भी किसी को धर्म की अनुभूति होगी। तो जिनको भी कभी धर्म की अनुभूति हुई है, वह उनकी ही बात कह रहा है। लेकिन जितने लोग पिछले तीर्थंकरों, पैगंबरों, गुरुओं के पीछे खड़े हैं, वे सब उसके दुश्मन हो जाएंगे फौरन। वे इसलिए हो जाएंगे कि परंपरा जो है, वह डेविएट हो जाती है। अनिवार्य रूप से और उलटी हो जाती है।
अब बुद्ध ने लोगों से कहा कि किसी की पूजा मत करना। क्योंकि जिसकी तुम पूजा कर रहे हो वह तुम्हारे भीतर बैठा हुआ है। लेकिन लोग बुद्ध की पूजा करने लगे। और लोगों ने कहा कि और किसी की चाहे हम न करें, किसी की न करेंगे अब। न राम की करेंगे, न कृष्ण की करेंगे; लेकिन तुमने तो हमें ज्ञान बताया है, तुम्हारी तो करेंगे। और बुद्ध चिल्ला रहे हैंः किसी की पूजा मत करना। इसमें बुद्ध इनक्लूडिड हैं।
अब बुद्ध कह रहे हैंः किसी की मूर्ति मत बनाना। क्योंकि मूर्ति से क्या मतलब है? तो लोगों ने कहा कि हम तुम्हारी तो मूर्ति कम से कम बना ही लेंगे। तो बुद्ध की जितनी मूर्तियां हैं जमीन पर उतनी किसी और आदमी की नहीं हैं। और जितना बुद्ध ने विरोध किया मूर्ति का उतना किसी और आदमी ने किया नहीं।

अब यह बड़े मजे की बात है। पर्शियन में या उर्दू में जो "बुत" शब्द है,
वह बुद्ध का बिगड़ा हुआ रूप है। इतनी मूर्तियां बनीं बुद्ध की कि मूर्ति और बुद्ध का एक ही मतलब हो गया। बुत जो है, वह बुद्ध का ही पर्वर्शन है, वह उसका ही बिगड़ा हुआ रूप है। जब पहली दफा सारी दुनिया में मूर्तियां गईं तो वे बुद्ध की ही गईं। तो लोगों ने पूछाः यह क्या है? तो उन्होंने कहाः बुद्ध। मूर्ति और बुद्ध पर्यायवाची हो गए। उस आदमी के नाम के साथ मूर्ति जुड़ गई जो मूर्ति का सबसे बड़ा दुश्मन था। बुद्ध ने कहाः किसी की शरण में मत जाना। तो लोगों ने कहा, "बुद्धं शरणं गच्छामि"--हम तुम्हारी ही शरण आते हैं।
तो सारी तकलीफ जो है वह ये है धर्म पर जब प्रवचन कोई देता है...

प्रेम नदी के तीरा
पांचवां प्रवचन

पति-पत्नी और प्रेम
(Starting line- incomplete)

..... और जीसस अगर जमीन पर लौटें तो पहले क्रिश्चिएनिटी को डिनाई करना पड़ेगा, क्योंकि यह, यह तो कभी बात ही नहीं उठी कभी। यह मैंने कब कहा? मगर वह सदा ऐसा होता है। तो मेरी दृष्टि में मैं जो कह रहा हूं वह परंपरा तो कोई नहीं है; लेकिन जो मैं कह रहा हूं वह नया भी नहीं है, पुराना भी नहीं है।

प्रश्नः आपके खिलाफ जो बगावत है वह तो खैर समझ में आई, अब आपका प्रोग्राम गया?

नहीं, मेरा कोई प्रोग्राम नहीं है। मेरा कोई प्रोग्राम नहीं। और बगावत की तरफ मेरी कोई दृष्टि नहीं। कोई रुख भी नहीं। मैं मानता हूं कि वह स्वाभाविक है। इसलिए मैं उसकी तरफ कोई रिएक्शन नहीं लेता। मेरी उससे कोई फाइट नहीं है। हां, मुझे जो ठीक लग रहा है वह मैं कहता चला जाता हूं। जो मुझे ठीक लग रहा है वह बताता चला जाता हूं। जिसको उसका विरोध करना है वह विरोध कर रहा है, वह वहीं खत्म हो जाता है। उस विरोध करने वाले का विरोध करने का मेरे पास कोई प्रोग्राम नहीं है। मुझे उससे कोई संबंध नहीं है। क्योंकि मैं मानता हूं बिल्कुल स्वाभाविक है।
वह उतना ही स्वाभाविक है कि जैसे कि पूरब से पश्चिम की तरफ हवा चल रही
हो और मैं पश्चिम की तरफ चलने लगूं, तो हवा मुझे धक्के देने लगे। अब उस... यह इतना ही स्वाभाविक है। और यह सदा ऐसा ही स्वाभाविक रहा है। इसलिए वह जो मेरे खिलाफ कोई कुछ कहे, उसके खिलाफ मेरे पास कोई प्रोग्राम नहीं। मुझे जो कहना है वह मैं कहता चला जाऊंगा। मुझे जो ठीक लगता है, वह मैं बताता चला जाऊंगा। जिसको उसका विरोध करना है, वह उसका विरोध करता रहेगा; जिसको उसका पक्ष करना है वह पक्ष करता रहेगा। और ये दोनों मिल कर ट्रेडीशन बनाते हैं। दोनों मिल कर ट्रेडीशन बनाते हैं।
हां, तो मेरा कोई प्रोग्राम नहीं ट्रेडीशन बनाने का। और मेरी सदा चेष्टा यह है... मैं मानता हूं पहले भी चेष्टा यही रही, हालांकि अब तक सफल नहीं हो सकी कि ट्रेडीशन न बने। क्योंकि अगर मैं कोई प्रोग्राम लूं उनके खिलाफ, तो फिर ट्रेडीशन बननी शुरू होती है। तो उनके खिलाफ मेरा कोई प्रोग्राम नहीं है। उनसे मेरी कोई खिलाफत नहीं है। मुझसे उनकी खिलाफत हो सकती है।
मैं मानता हूं कि बिल्कुल स्वाभाविक है। इसमें कोई... यह सदा से ऐसा है, इसमें कोई बात ही नहीं है। ऐसा न हो तो आश्चर्य की बात है। ऐसा न हो तो बहुत आश्चर्य की बात है। इसका मतलब है कि कुछ मिरेकल हो गया। यानी जीसस आएं और उनको सूली न लगे तो बड़े आश्चर्य की बात है; नानक आएं और पत्थर न प.ड़े तो समझना चाहिए कि या तो इररेलिवेंट हो गए, जिसे किसी को पत्थर मारने की भी अब फुरसत नहीं है उनको, और या फिर दुनिया में क्रांति हो गई, सारे लोग धार्मिक हो गए। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। इसलिए मैं उसकी तरफ, उसके बाद मेरा कोई और रिएक्शन नहीं है। उसको मैं स्वाभाविक मान कर स्वीकार कर लेता हूं और जो मुझे करना है वह करता चला जाता हूं। उनकी वजह से मेरे करने में मैं कोई फर्क नहीं करता। और अगर फर्क करूं तो बहुत जल्दी वे मुझे अपनी जगह पर खींच कर खड़ा कर देंगे।
यह बड़े मजे की बात है कि जिससे हम लड़ें, जाने-अनजाने हम उसी जैसे हो जाते हैं। इसलिए दुश्मन बहुत समझ कर चुनना चाहिए। दोस्त कोई भी चुना जा सकता है। दोस्त उतना नहीं बिगाड़ सकता आपको, लेकिन दुश्मन तो अनिवार्य रूप से बिगाड़ता है। जिससे हम लड़ते हैं तो क्योंकि उसकी टेक्टिक्स से लड़ना पड़ता है, और तब जो... धीरे-धीरे दुश्मन एक ही तल पर आ जाते हैं। उनमें कोई फर्क नहीं रह जाता।

कोई फर्क रह ही नहीं सकता, क्योंकि लड़ना पड़ेगा उसी की टेक्टिक्स से। वही टेक्टिक्स आपकी हो जाएगी, वही उसकी हो जाएगी। सब खराब। तो मैं तो लड़ता नहीं। मैं मानता हूं कि अगर किसी बात की प्योरिटी को बचाना हो तो उसे, उसे लड़ाई में नहीं डालना चाहिए। नहीं तो बस वह फिर खराब होनी शुरू हो जाती है। इसलिए मेरा काम मैं करता हूं, अपना काम वे करते हैं, बात वहीं खत्म। उसके बाद मेरा कोई उनसे लेना-देना नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

अगर उसे प्रेम चाहिए तो... उसमें कोई थका-मांदा घर में परेशानी लेकर आए। पति को समझ लेना चाहिए कि घर जाते से पत्नी से आधे घंटे तक जहां तक बने, बचकर रहें। बचकर रहें, इसलिए कि आधा घंटे... दिन भर का उसका दिमाग भरा हुआ है। कभी भी वह पत्नी पर टूट सकता है।
और ध्यान रहे कि हम उसी पर टूटते हैं जो हमारे निकटतम हैं। दूसरे पर नहीं टूटते। मगर यह हमारे खयाल में नहीं आता। जिसको हम सबसे ज्यादा अपने करीब पाते हैं, हम उसी पर टूट सकते हैं। यह भी प्रेम का हिस्सा है। यह दुश्मनी नहीं है।
अब ये बाजार में इनको किसी ने क्रोध दिला दिया, उस पर नहीं टूट सके। क्योंकि उस पर टूटे तो वह तो दुश्मन हो जाएगा। अब वह भर गया, वह निकलेगा कहां? वह अपनी पत्नी पर टूट सकते हैं। क्योंकि जानते हैं कि टूट लेंगे तो भी दुश्मनी नहीं हो जाने वाली। आधे घंटे बाद सब ठीक हो जाएगा।
तो हम अपने पर ही क्रोध करते हैं। यह हमें खयाल ही नहीं है कभी, दूसरे
पर हम कभी क्रोध नहीं करते। इसलिए जब कोई हम पर क्रोध करे तो अगर हममें समझ हो तो हमें जानना चाहिए कि यह प्रेम का ही हिस्सा है। इसलिए वह इतना क्रोध कर रहा है। मगर तकलीफ यह है कि कोई किसी को नहीं समझ रहा। पति जोर से बोला तो हमने समझा कि हम पर बोला है जोर से, तो मतलब हमको कसूरवार सिद्ध कर रहा है। जब पत्नी रोने लगी तो पति ने समझा कि मैंने जो इसको जोर से बोल दिया इसलिए यह रो रही है।
नहीं, उसके रोने के अपने कारण हैं, वह भर गई है दिन भर। वह तैयारी कर रही थी कि रोने का मौका मिल जाए तो रो दे। और आप तैयारी कर रहे थे कि कोई डांटने का मौका मिल जाए तो डांट दें।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, उसके कारण हैं, उसके बहुत कारण हैं। यह बायोलॉजिकल फर्क है। स्त्री और पुरुष में शारीरिक फर्क है। उसका कारण है कि स्त्री को बनना है मां। वह अगर अपने बच्चे को चौबीस घंटे प्रेम न दे सके, तो बच्चा मर जाएगा। तो शरीर की उसकी बनावट ऐसी है कि वह चौबीस घंटे प्रेम दे सके, नहीं तो बच्चा मर जाए।
आप एक बच्चे को नहीं पाल सकते। अगर दुनिया में पुरुषों के हाथ में बच्चे सौंप दिए जाएं पालने के लिए तो दुनिया की जनसंख्या घटाने के लिए जरूरत ही न पड़े। बच्चे आप पाल नहीं सकते। आधा घंटा, पंद्रह मिनट खिला लेना एक बात है। रात को जब वह रोएगा दस दफा तो तबीयत होगी कि गर्दन दबा दें, अपने बेटे की। स्त्री की तो कभी तबीयत नहीं होगी कि वह गर्दन दबा दे उसकी। वह उसे चौबीस घंटे प्रेम कर सकती है।
तो उसकी पूरी बायोलॉजिकल जो बनावट है स्त्री की, वह ऐसी है कि वह चौबीस घंटे प्रेम करे, एक। स्त्री का पूरा शरीर प्रेम से प्रभावित होता है। पूरा शरीर। स्त्री का एक-एक रोआं प्रेम से प्रभावित होता है। पुरुष का ऐसा मामला नहीं है। तो इसलिए पुरुष के लिए प्रेम घूम-फिर कर सेक्स बन जाता है। क्योंकि उसका सिर्फ सेक्स-सेंटर ही प्रेम से प्रभावित होता है।
अब यह दोनों में इतना बुनियादी फर्क है कि इससे झंझटें खड़ी होती हैं। पुरुष का सिर्फ सेक्स-सेंटर प्रेम से प्रभावित होता है। बाकी उसकी बॉडी जो है वह लवलेस है। उसमें कहीं प्रेम के परमाणु नहीं हैं शरीर में, और

इसमें उसका कोई कसूर नहीं। स्त्री का कोई कसूर नहीं, उसका पूरा शरीर प्रेम से भरा हुआ है।
तो अगर, इसलिए होता क्या है कि जब कोई एक पुरुष एक स्त्री को शुरू करता
है प्रेम, तो वह उसके पूरे शरीर को प्रेम करता है तो स्त्री बहुत प्रसन्न होती है उससे। लेकिन जब उनकी शादी हो जाए तो बस सेक्स से ही संबंध रह जाता है, पूरा शरीर छूट जाता है। तब स्त्री दुखी होना शुरू हो जाती है। क्योंकि उसको सेक्स में उतना रस नहीं है। उसका सेक्स जो है वह क्लाइमेक्स है। उसके पूरे शरीर को प्रेम करो, जब उसका पूरा शरीर प्रेम से उत्तेजित हो जाए तब सेक्स उसके लिए रसपूर्ण है। अच्छा, पुरुष के लिए सेक्स ही प्रेम हो जाता है। उसका उतना ही हिस्सा प्रेम कर पाता है। इसलिए उसके लिए सेक्स काफी है। तो फिर उपद्रव शुरू हो गए।
स्त्री मांगती है कि उसके पूरे शरीर को प्रेम करो। तो जब पुरुष शुरू- शुरू में किसी स्त्री को प्रेम शुरू करता है तब तो उसके पूरे शरीर को प्रेम करता है। क्योंकि सीधा स्त्री के सेक्स पर हमला करो तो वह बहुत नाराज हो जाए। तो उसके पूरे शरीर को प्रेम करके कदम बढ़ाना पड़ता है। और फिर बाद में जब शादी हो गई तो पुरुष तो सेक्स से निपट जाता है, स्त्री मांग करती रहती है, पूरा प्र्रेम करो।
तो उसको ऐसा लगने लगता है कि सेक्स से ही संबंध बना लिया है इसने हमसे,
और हमसे कोई प्रेम नहीं। उसको प्रेम तभी लगेगा जब घंटे भर उसके पूरे शरीर को प्रेम करो। वह उसको... ये सारी कठिनाइयां एक-एक बच्चे को समझाए जाने की जरूरत है। और इसलिए सब उपद्रव खड़ा होता है। वह उपद्रव आप ऊपर से हल करते रहते हैं, वह हल नहीं होता। क्योंकि मांग बहुत दूसरी है।
जब एक स्त्री को ऐसा लगता है कि आप उसके शरीर को पूरा प्रेम नहीं करते
तो उसको फौरन यह खयाल आता है कि आपको किसी और का शरीर पसन्द आने लगा है। यह मुश्किल की बात है। क्योंकि जब उसका शरीर आपको पसंद आता था तो आप उसको, पूरे शरीर को प्रेम करते थे। उसको फौरन शक पैदा होना शुरू हो जाता है कि आप किसी और शरीर को चाहने लगे हैं। यह उसको भारी कष्ट में डाल देती है बात। फिर अगर वह आपको किसी से हंसते देख ले, किसी से बात करते देख ले, मर गई वह। उसकी जान निकल गई। अब वह उसका बदला लेगी आपसे।
तो यह सारी की सारी बात साफ होनी चाहिए कि पुरुष और स्त्री में बेसिक डिफरेंस है। अब इसमें किसी का कसूर नहीं है, नेचुरल फर्क है। और वह जो नेचर के लिए दिक्कत नहीं थी। विवाह आदमी ने बनाया है, पशु-पक्षियों को दिक्कत नहीं है। अगर आदमी भी पशु-पक्षी हो जाए, कोई दिक्कत नहीं रहेगी। लेकिन आदमी ने विवाह बना लिया, विवाह ने सारे उपद्रव खड़े कर दिए। न बनाए विवाह तो दूसरे उपद्रव हैं, इसलिए विवाह बनाना पड़ा उसे।
पशु-पक्षी का कोई झगड़ा नहीं, क्योंकि स्थाई संबंध बनते नहीं। इसलिए
जो भी संबंध बनता है उसमें जो मादा है वह भी तृप्त होती है, क्योंकि वह जो नर है वह उसके पूरे शरीर को प्रेम करता है। जब वह उसके पूरे शरीर को प्रेम करता है, तभी तो वह सेक्स के लिए राजी होती है, नहीं तो वह राजी नहीं होती। तो वह तृप्त हो जाती है पूरी की पूरी।
अच्छा वह संबंध तात्कालिक छूट जाता है। इसलिए कल अगर वह दूसरी मादा
के साथ प्रेम कर रहा है तो कोई ईर्ष्या नहीं बनती, क्योंकि उससे संबंध क्या है? यहां ईर्ष्या बनती है क्योंकि संबंध हम स्थाई बनाते हैं। संबंध स्थाई बनाते हैं और प्रकृति पशुओं की ही है हममें। इसलिए सारा का सारा उपद्रव है। या तो प्रकृति पशुओं से ऊपर उठे और या फिर हम संबंध समाप्त करें, नहीं तो दुनिया का हल होना मुश्किल है।
या फिर इतनी अंडरस्टैंडिंग हो कि हम एक-एक बच्चे को सारे सत्य समझा दें कि ये सत्य हैं। हमें एक-एक लड़की को समझा देना चाहिए कि तेरा पति तुझे दो-चार-आठ दिन ही तेरे पूरे शरीर को प्रेम करेगा इसके बाद सेक्स से ही उसका संबंध रह जाएगा। तब तू दुखी मत होना। यह स्वाभाविक है। और उसे बताना चाहिए कि वह तुझे, अगर चौबीस घंटे में पंद्रह मिनट भी तेरे प्रति प्रेमपूर्ण हो जाए, तो इसको पर्याप्त मानना। साढ़े तेईस घंटे मांग मत करना उससे प्रेम की, क्योंकि वह असमर्थ है।

ऐसे ही पुरुष को समझाया जाना जरूरी है कि तू सिर्फ सेक्स का संबंध मत रखना स्त्री से, क्योंकि जैसे ही उससे सेक्स का सीधा संबंध रखोगे, उसको लगता है वह वेश्या हो गई। उससे प्रेम नहीं है तुम्हारा। तुम उसका इंस्ट्रूमेंट की तरह उपयोग कर रहे हो, एक मशीन की तरह उपयोग कर रहे हो। मुझे हजारों स्त्रियों ने यह कहा है कि उनको अपने पतियों के साथ यह ही खयाल है कि वे उनके लिए सिर्फ वेश्याएं हैं खरीदी हुईं, जिनके साथ वे संभोग कर रहे हैं। और संभोग हुआ कि पति करवट लेकर सो गया है। और पत्नी रो रही है, सौ में नब्बे मौकों पर। क्योंकि वह तो अतृप्त रह गई। उसके पूरे शरीर को तुमने स्पर्श भी नहीं किया। तो ये सारी की सारी बातें, एक-एक सत्य सीधा जैसा नंगा है। तो हम इससे भी डरते हैं।
इसलिए मेरी बड़ी झंझट हो गई कि मैं चाहता हूं जो बात जैसी है, उसको वैसा
ही सामने रखने से हल हो सकता है। और हम सब छिपाए बैठे हुए हैं। उस छिपावट में सारी गड़बड़ हुई चली जाती है।
और ये, अब इसमें ऐसे फर्क बुनियादी होने से जो दिखाई नहीं पड़ते हैं। जैसे पुरुष का सेक्स जो है, वह प्राथमिक रूप में सबसे सबल रहता है। और स्त्री का सेक्स जो है, वह बाद की उम्र में सबल होना शुरू होता है। तो इनमें बेसिक डिफरेंस हो जाता है। पुरुष जो है वह पंद्रह से लेकर पच्चीस और तीस साल तक सबल होता है। और स्त्री जो है चालीस साल के बाद उसकी सेक्स की डिमांड बढ़नी शुरू होती है। उसके कारण हैं। उसके भी बायोलॉजिकल कारण हैं। क्योंकि स्त्री बहुत भयभीत है सदा सेक्स से। क्योंकि सेक्स उसके लिए जिम्मेदारी है। पुरुष के लिए कोई जिम्मेदारी नहीं है। पुरुष के लिए सेक्स एक खेल है। स्त्री के लिए जिम्मेवारी है। बच्चा पालना, पोसना--इसलिए सारी लड़कियां सेक्स से भयभीत होती हैं। जब तक उनका सेक्स से भय मिटता है तब तक पुरुष रिक्त हो चुका होता है। जब तक उनका भय मिटता है, जब तक वे सेक्स के लिए समझ पाती हैं और उनका भय खत्म होता है तब तक पुरुष समाप्त हो चुका होता है। जब उनकी मांग बढ़ती है तब वह शिथिल हो चुका होता है। तो इससे बड़ी दिक्कत शुरू होती है।

प्रश्नः आज के जमाने में ये बात भी नहीं कही जा सकतीं। आज के जमाने में ये बात नहीं कही जा सकतीं। बर्थ-कंड्रोल के साधन हैं...

मगर कहां उपयोग कर रहे हो तुम। जिन मुल्कों में कर रहे हो, वहां फर्क
पड़ रहा है। न, न, बिल्कुल, बिल्कुल फर्क पड़ रहा है। और हम, लड़कियों की ट्रेनिंग जो है हमारी, वह एंटी-सेक्स की है। इसलिए स्त्री आमतौर से मरते- मरते तक सेक्स के विरोध से मुक्त नहीं हो पाती। और आप ही सिखाते हो, अपनी लड़की को सिखाते हो बिल्कुल कुंवारी रखना। तुम उसको कुंवारी सिखाओगे रहना, और बाद में कुंवारापन टूटेगा कैसे उसका फिर दिमाग से? उसको तोड़ने का क्या इंतजाम किया है? बीस साल सिखाओगे कुंवारी रहने की बात, और बीस साल के बाद अचानक एक दिन कहोगे कि अब सेक्स की दुनिया में चली जाओ।
और बीस साल की ट्रेनिंग कहां जाएगी? तो वह रेसिस्ट करेगी। पूरी जिंदगी भर उसका सेक्स से विरोध रहेगा। इसलिए वह पुरुष को दुष्ट समझेगी, बुरा समझेगी, गंदा समझेगी। ऊपर से कहेगी कि पति है, लेकिन भीतर वह जानेगी कि यह आदमी गंदा है। क्योंकि सेक्स, उसको गंदा बताया गया बीस साल तक। और जब उसका कुंवारा मन था, सरल मन था तब तुमने ठोंक-ठोंक कर रखा--किसी लड़के से बोलना मत; बात मत करना; किसी को छू मत लेना, अब इसके बाद अचानक एक दिन में उसका आप उसका विवाह कर देते हैं। अब दिक्कत खड़ी हो गई।
तो हमारी सारी ट्रेनिंग जो है, वह ऐसी है कि उसमें कष्ट अनिवार्य है।
वह एक आदमी और एक स्त्री का प्रॉब्लम नहीं है। वह हमारी पूरी सोशल व्यवस्था की प्रॉब्लम है। और जब तक हम उसको वहां से न तोड़ दें, तब तक यह नहीं होगा।
और यह भी बिल्कुल स्वाभाविक है कि हम हर चीज से ऊबते हैं। पत्नी से भी ऊबते हैं, पति से भी ऊबते हैं। मगर इसको हम मानने को राजी नहीं हैं। अगर मुझे जो खाना आज खिलाया, कल भी खिलाओ, परसों भी खिलाओ तो मैं ऊब जाऊंगा। एक

ही स्त्री का शरीर रोज-रोज मिले तो उससे ऊब जाते हैं, पुरुष के शरीर से स्त्री भी ऊब जाती है।
मगर यह सत्य हम स्वीकार नहीं करते। इससे बहुत दिक्कत होती है। तो कभी अगर कोई दूसरी स्त्री किसी को मिल जाए तो वह उससे जरा आनंद से बात करता है।
वह अपनी स्त्री से ऊबा हुआ है, यह जानना चाहिए। इसमें कुछ अस्वाभाविक नहीं हो रहा है। मगर बस उपद्रव शुरू हो जाएगा।
हर चीज ऊबा देती है जिसको हम पुनरुक्त करते हैं। वही चेहरा, वही हंसी ऊबाने वाली हो जाती है। कोई दूसरा चेहरा, दूसरी हंसी थोड़ी सुखद लगती है। इसमें कुछ न बुरा है, न अस्वाभाविक है। लेकिन हमारा दिमाग दिक्कत में डाल देता है। और मेरी अपनी समझ यह है कि अगर वह एक पुरुष किसी दूसरी स्त्री के साथ दस मिनट हंस-हंस कर बात कर ले तो अपनी पत्नी फिर उसे अच्छी लगती है। वह फिर एक स्वाद नया फिर शुरू हो जाता है।
मगर पत्नी इससे भयभीत हो जाती है। पुरुष भयभीत हो जाए, उसकी पत्नी किसी दूसरे पुरुष से हंस ले, बोल ले, तो दुखी होगा। लेकिन उसे ख्याल नहीं है कि यह बहुत अच्छा है। इससे उसका पति उसे फिर अच्छा लगेगा। इसमें बीच में स्वाद परिवर्तित हुआ।
जिस दिन हम मनुष्य के पूरे सत्यों को समझ कर स्वीकार करेंगे--जैसे हैं, उस दिन दुनिया अच्छी बन सकती है। लेकिन हम बेईमान हैं, हम करें क्या? और, और ईमानदारी की बात कहें तो हमको दुश्मन सी लगती है, तब तो बहुत मुश्किल हो जाती है।

प्रेम नदी के तीरा
छठवां प्रवचन

गुरु होना आसान है, शिष्य बनना मुश्किल

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

ऐसा होने का कारण है। थोड़े नहीं, बहुत कारण हैं। एक तो धर्म सदा ही नई चीज है, सदा। धर्म सदा ही नई चीज है। धर्म कभी पुराना नहीं पड़ता। पड़ ही नहीं सकता। लेकिन हमारी सब मान्यताएं पुरानी पड़ जाती हैं। धर्म तो सदा नया है। लेकिन मान्यताएं सब पुरानी हो जाती हैं। इसलिए जब भी धर्म फिर से जाग्रत होगा, फिर से कभी भी किसी व्यक्ति से प्रकट होगा, तब मान्यताओं वाले सभी व्यक्तियों को अड़चन और कठिनाई होगी। ऐसा एक दफा नहीं होगा, हमेशा होगा। चाहे कृष्ण पैदा हो, तो उस जमाने का जो पुरोहित है, उस जमाने का जो तथाकथित, सो-काल्ड रिलीजियस आदमी है, वह कृष्ण के खिलाफ हो जाएगा।
वह इसलिए खिलाफ हो जाएगा कि उसके पास तो पुरानी मान्यताएं हैं और यह आदमी धर्म को फिर नया रूप देगा। यह नया रूप उस अंधे आदमी की पकड़ में नहीं आएगा। उसको यह भी पता नहीं चलेगा कि वह जिसे बचा रहा है, वही अधर्म है। और जिसके खिलाफ लड़ रहा है वह धर्म है, उसे यह पता नहीं चलेगा। उसे तो पता चलेगा कि मैं जो पकड़े हुए था वह ठीक था। और अब कोई आदमी उसे गलत किए दे रहा है।
इसलिए यह जो तथाकथित धार्मिक आदमी है, सो-काल्ड रिलीजियस है, यह अधार्मिक से न लड़ेगा कभी भी। यह सदा धार्मिक से ही लड़ेगा। अधार्मिक से इसको कोई डर नहीं मालूम पड़ेगा। लेकिन धार्मिक से इसको डर मालूम पड़ेगा। तो वह चाहे कृष्ण हो; चाहे क्राइस्ट हो; चाहे नानक हो; चाहे कोई भी हो, जब भी किसी व्यक्ति के जीवन में फिर से धर्म का जागरण होगा, तब फिर धर्म नये रूप में जन्म लेगा। नई भाषा लेगा; नये आकार लेगा; और पुराने आकार जो आदमी पकड़े बैठे हैं जो सिर्फ आकार रह गए हैं, जड़ हो गए हैं, मर गए हैं, उनसे टक्कर शुरू हो जाएगी।
अगर आज फिर नानक पैदा हो जाएं, तो आप यह मत समझना कि सिक्ख उनसे नहीं लड़ेगा, सिक्ख भी उनसे लड़ जाएगा। क्योंकि नानक फिर नई भाषा बोलेंगे। पांच सौ साल का फर्क पड़ जाएगा। पांच सौ साल में नानक फिर नई भाषा बोलेंगे। सिक्ख भी लड़ जाएगा। वह भी कहेगा कि यह क्या बात कह रहे हैं? तो ऐसा नहीं है।
एक बहुत प्रसिद्ध... दोस्तोवस्की ने एक कहानी लिखी है। दोस्तोवस्की
ने लिखा है कि जीसस क्राइस्ट ने अट्ठारह सौ साल बाद सोचा कि अब तो सारी जमीन पर आधे लोग ईसाई हो गए। अब अगर मैं जाऊं तो ठीक से स्वागत होगा। क्योंकि जब मैं गया था तब तो एक ईसाई न था। सब यहूदी थे। उन्होंने मुझे फांसी लगा दी। अब तो आधी जमीन पर मेरे अपने आदमी हैं। सारी जमीन चर्च से भर गई है। तो अब तो मेरा स्वागत ही स्वागत है। अब तो जो मैं कहूंगा लोग तत्काल राजी हो जाएंगे। अब ठीक वक्त है।
तो उस कहानी में जीसस उतरते हैं। और जेरुसलम में जहां बड़ा चर्च है उनका, उसके सामने खड़े हो गए हैं। सुबह है, रविवार का दिन, चर्च से लोग निकल रहे हैं। लोगों ने देखा कि एक ठीक जीसस जैसा आदमी खड़ा है, तो लोगों ने भीड़ लगा ली। और लोगों ने कहा कि रूप-रंग तो बिल्कुल ठीक बनाया है। बिल्कुल जीसस जैसे जंच रहे हो, कोई बहरूपिए मालूम पड़ते हो। तो जीसस ने कहा कि नहीं, नहीं तुम समझे नहीं, मैं जीसस ही हूं। और मैं फिर से आया हूं, क्योंकि अब तो मेरे प्रेम करने वाले लोग हैं। तुम भी मुझे नहीं पहचान पा रहे, क्योंकि तुम मेरी ही प्रार्थना करके निकल रहे हो चर्च से। उन्होंने कहा कि छोड़ो मजाक। गंभीर हो जाएगा मामला। हमारा पुरोहित बाहर निकलने वाला है, आर्च प्रीस्ट। अगर उसने देख लिया तो सजा पाओगे, भाग जाओ। पर उन्होंने कहा कि वह तो मेरा ही पुरोहित है। वह भी मुझे नहीं पहचानेगा? तभी पुरोहित आ गया। कोई पत्थर फेंकने लगा, कोई कंकड़, कोई गाली बकने लगा कि यह आदमी हमारे जीसस का अपमान कर रहा है, जीसस बनकर। दूसरा आदमी जीसस कैसे हो सकता है? वह हो गया

एक दफा। वह यूनीक है। अब दुबारा कोई आदमी वैसा नहीं हो सकता। यह आदमी मखौल उड़ा रहा है। जीसस के लिए एक आदमी ने आदर नहीं दिखाया। वह जो आर्च प्रीस्ट मंदिर से निकला था, सारे लोगों ने झुककर उसे प्रणाम करके उसके पैर छुए। जीसस बहुत हैरान हुए कि मेरे पुरोहित के पैर छुए जा रहे हैं। और मैं खड़ा हूं, मेरी मजाक उड़ाई जा रही है, तब तो मैंने समझा था पुरोहित दूसरे का, अब तो अपना ही है, पर कम से कम पुरोहित तो पहचानेगा। उस पुरोहित ने ऊपर आंख उठाई और कहा बदमाश, नीचे उतर! यह काम बहुत ही पापपूर्ण है कि कोई आदमी जीसस की तरह बनकर खड़ा हो जाए। वह इकलौता बेटा है परमात्मा का। दूसरा कोई उसका मुकाबला नहीं। और लोगों से कहा, पकड़ो इस बदमाश को। यह हमारे धर्म का मजाक उड़ा रहा है। जीसस ने कहा, तुम भी मुझे नहीं पहचाने। तुम मेरे सबसे बड़े पुरोहित हो, वह जो क्रास तुम लटकाए हुए हो, वह मेरा है। तुम भी मुझे नहीं पहचाने? उसने कहा, मैं ठीक पहचान गया। लेकिन तब तक तो उसके हाथ बांध दिए गए हैं। जीसस को जाकर कोठरी में बंद कर दिया गया।
जीसस बहुत हैरान हैं कि यह दूसरे की कोठरी थी, जब मैं अट्ठारह सौ साल पहले बंद किया गया था, यह अब अपनी कोठरी है। लेकिन अपना पुरोहित भी ऐसा करेगा? तब जीसस सोचते हैं कि पुरोहित सदा ऐसा करेगा, वह किसका है, इससे फर्क नहीं पड़ता।
आधी रात को दरवाजा किसी ने खोला। दीया भीतर लेकर वह पुरोहित अंदर आया। दीया रख कर जीसस के चरणों पर गिर पड़ा, और उसने कहा, पहचान तो मैं उसी वक्त गया था। लेकिन तुम सदा के डिस्टर्बर, तुम सब गड़बड़ कर दोगे। सब हमने जमाया अट्ठारह सौ साल में। अब सब बिल्कुल ठीक चल रहा है, अब तुम्हारी कोई जरूरत नहीं। हम तुम्हारा काम, तुम्हारा (7ः32--अस्पष्ट)... बिल्कुल ठीक से कर रहे हैं। तुम्हारे और जनता के बीच में हम पूरा काम कर रहे हैं। अब तुम्हें वापस आने की जरूरत नहीं। अन्यथा तुम फिर सब गड़बड़ कर दोगे। तुम्हें पहचान गया था भलीभांति, लेकिन भीड़ में हम तुम्हें नहीं पहचान सकते। एकांत में हम तुम्हें पहचान लेंगे। भीड़ में तुम आए तो मुझे मजबूर मत करना, नहीं तो हमें तुम्हें फिर सूली लगानी पड़ेगी। यू आर द ओल्ड डिस्टर्बर। वह कह रहा है कि तुम सदा के उपद्रवी हो। क्योंकि तुम फिर वही गड़बड़ बातें करोगे, जिनसे कि सारा जमा जमाया अस्त-व्यस्त हो जाए।
तो जो कठिनाई है वह यह है कि जब भी हम एक मान्यता को पकड़ लेते हैं, जब
हम पकड़ते हैं तब तो उस मान्यता का जीवित व्यक्ति साथ होता है। लेकिन वह व्यक्ति तो विदा हो जाता है। हमारे पास तो उस जैसा कोई अनुभव नहीं होता, सिर्फ उसके शब्द रह जाते हैं। और उन शब्दों का अर्थ हम निकालते हैं। जब नानक की वाणी में आप अर्थ निकालते हैं तो इस भूल में कभी मत पड़ना कि यह नानक का अर्थ है, यह नानक का तो कभी हो नहीं सकता। क्योंकि नानक का अर्थ नानक की हैसियत का आदमी ही निकाल सकता है। आप नहीं निकाल सकते। आप जो भी अर्थ निकालेंगे, वह गलत होने वाला है। आप कितना ही अच्छा अर्थ निकालेंगे वह आपसे ही निकलेगा और आपकी चेतना का जो तल है, आपकी कांशसनेस जहां तक है, उतना ही अर्थ होगा, उससे ज्यादा नहीं हो सकता।
तो नानक विदा हो जाएंगे। नानक को प्रेम करने वाला आदमी रह जाएगा। और ऐसे लोगों को प्रेम करने वाला तो मिल ही जाएगा। यह जो प्रेम करने वाला है इसके पास शब्द रह जाएंगे, याद रह जाएगी, वह उसको सजा कर, संवार कर रख लेगा। रखनी ही चाहिए। लेकिन उसमें से जो भी अर्थ वह निकालेगा वे उसके अपने होंगे। और कल अगर नानक फिर वापस लौट आएं, तो नानक जो अर्थ निकालेंगे वे वही नहीं होने वाले हैं जो अनुयायी ने निकाले थे। फिर झगड़ा उससे ही खड़ा हो जाएगा। झगड़े की जो कठिनाई है वह कांशसनेस के लेयर्स की कठिनाई है। वह इतनी बड़ी कठिनाई है, जिसका कोई हिसाब नहीं। और तब हम फिर लड़ जाएंगे कि यह तो गलत बात हो गई। क्योंकि अब देखें मजा। अब यह बहुत मजे की बात है, लेकिन कैसे चेतना बदलती है, और कैसी दिक्कत आती है?
नानक को हम गुरु कहेंगे। जब कि नानक का कुल जोर इस पर है कि आप शिष्य हों। उनका गुरु होने पर जोर जरा भी नहीं है। जोर है कि आप शिष्य हों। उस शिष्य से ही सिक्ख बना। सिक्ख कोई धर्म नहीं है। वह सिर्फ डिसाइपलशिप है, वह कोई रिलीजन नहीं है। वह कोई पंथ नहीं है। सिक्ख का मतलब हैः वह आदमी जो

शिष्य होने को तैयार हो। द एटीट्यूड ऑफ डिसाइपलशिप जिसमें है, जो सीखने को तैयार है, वह सिक्ख है।
तो जोर तो इस पर है कि आप शिष्य बनें, लेकिन हम शिष्य तो नहीं बनेंगे।
हम उनको गुरु बना लेंगे। यह बिल्कुल उलटी बात है। इसमें बहुत फर्क है। इसमें जमीन-आसमान का फर्क है। जब हमें शिष्य बनना पड़ेगा तो हमें बदलना पड़ता है। और जब हम दूसरे को गुरु बनाते हैं तो हमें बदलने की कोई जरूरत नहीं रह जाती, सिर्फ पूजा करना काफी होता है। शिष्य बनना बड़ी मुश्किल की बात है। गुरु बनाना बहुत आसान मामला है। आपको कुछ भी नहीं करना पड़ता, वह दूसरे का मामला है।
एक आदमी को आप गुरु कह देते हैं, आप निपट गए। आपने आदर दे दिया, बात समाप्त हो गई। लेकिन अगर आपको शिष्य बनना हो तो आपको पूरी जिंदगी बदलनी पड़ेगी। वह कठिन मामला है। शिष्य बनना बहुत कठिन है। गुरु बनाना बहुत आसान है। क्योंकि गुरु बनाने से ज्यादा आसान और क्या होगा? क्योंकि गुरु बनाने में आपको कुछ भी नहीं करना है। आपका कोई संबंध नहीं गुरु बनाने से। सारा जोर, सदा उन लोगों का जोर, जो जानते हैं, इस बात पर है, कि आप सीखो। लेकिन हमारा जोर यह है कि आप सिखाने वाले हो। हमारा जोर तत्काल बदल जाता है। हम फौरन कहते हैं कि तुम हो गुरु। और हम तुम्हें आदर देते हैं। अब यह बड़े मजे की बात है, कि नानक तो कम से कम गुरु बनने को राजी नहीं हो सकते। दुनिया का कोई भी वह आदमी जो गुरु की हैसियत का है, यानी जो गुरु बन सकता है, वह गुरु बनने को राजी नहीं होगा; और जो गुरु बनने को राजी होगा, वह गुरु बनने की हैसियत का नहीं होता।
जो भी आदमी गुरु बनने की स्थिति में है, वह तो कहेगा परमात्मा गुरु है। वह कभी बीच में खड़ा नहीं होगा। और जो आदमी गुरु बनने की हैसियत में नहीं है, वह कहेगा, मैं गुरु। और अगर परमात्मा तक जाना है तो मुझसे जाना पड़ेगा। तो इस तरह के लोग तो गुरु बनना न चाहेंगे। इस तरह के लोग सिर्फ शिष्य बनना हमें सिखाना चाहेंगे।
अब यह भी बड़े मजे की बात है, कि अगर आप किसी एक व्यक्ति को गुरु मान लें
तो आपके शिष्यत्व की सीमा बंध जाती है। फिर आप उसी से सीखते हैं, दूसरे से नहीं सीखते। लेकिन अगर आप सिर्फ शिष्य बन जाएं तो आप सारे जगत से सीखते हैं किसी एक से सीखने का सवाल नहीं। इसलिए शिष्य होना बहुत इनफाइनाइट बात है। और गुरु बनाना बहुत फाइनाइट रिलेशनशिप है। इसमें एक, एक आदमी से हम संबंध जोड़ रहे हैं। और जब हम एक को गुरु बनाएंगे तो उससे जरा भी कोई भिन्न होगा तो उससे दुश्मनी हो जाएगी। उसके विपरीत होगा तब तो पक्की दुश्मनी हो जाएगी।
लेकिन अगर हम सिर्फ शिष्य-भाव रखते हैं तो भिन्न से क्या दुश्मनी? विपरीत से क्या दुश्मनी? हम दोनों से सीख लेंगे। हम दोनों से ही सीख लेंगे। जो जहां से मिल जाएगा, वहां से सीख लेंगे। अंधेरे से भी सीख लेंगे, उजाले से भी सीख लेंगे; मस्जिद से भी सीख लेंगे, मंदिर से भी सीख लेंगे; कुरान से भी सीख लेंगे, बाइबिल से भी सीख लेंगे। लेकिन अगर एक बार हमने कह दिया कि कुरान ही बस, तो फिर हम गीता से नहीं सीखेंगे। फिर कठिनाई होगी, फिर मुश्किल होगी।
यह जो गुरुग्रंथ है, इसमें उस समय के सभी ज्ञानियों के वचन हैं लेकिन क्लोज्ड हो गया। यह खतरा होगा। इसमें ज्ञानियों के वचन संग्रहीत होते ही चले जाने चाहिए। क्लोज्ड हो गया। उस वक्त तो बिल्कुल ओपन किताब है। उस वक्त जितने ज्ञानी थे, उन सबके वचन संग्रहीत हैं। यह बड़ी अदभुत घटना है। इसलिए गुरुग्रंथ को मैं मानता हूं कि जिस दिन वह क्लोज्ड हो गया, उसी दिन नुकसान हो गया। वह क्लोज्ड नहीं होना चाहिए, वह ओपन होना चाहिए।
असल में मतलब ही इतना है नानक का, जोर ही यह है कि आप शिष्य बनें और जहां सीखना मिल जाए, वहीं से सीख लो। क्योंकि जहां भी सीखना मिल जाए, वहीं परमात्मा है। कहां से सीखते हो, इसका कोई सवाल नहीं? वह फरीद के वचन से सीखते हो, कि नानक के वचन से सीखते हो, कि कबीर के वचन से, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कहां से सीखते हो इससे कोई संबंध नहीं है। जिस दिन गुरुग्रंथ

बंद हो गया, क्लोज्ड हो गया, अब उसमें जोड़ा नहीं जा सकता, उसी दिन से नुकसान हो गया।
मेरा मानना उसको ओपन होना था, वह अभी भी खुली होनी चाहिए, अभी भी ज्ञानियों की वाणी उसमें जुड़ती ही जानी चाहिए। उसका कोई एंड नहीं होना चाहिए, तभी वह गुरुग्रंथ रहेगा, नहीं तो नहीं रह जाएगा। वह क्लोज्ड हो गया। अब उसके विपरीत और भिन्न पड़ने वाले को हम समा न सकेंगे। अब वह किताब छोटी हो जाएगी। अपने वक्त में बड़ी किताब थी, खुली किताब थी; अब नहीं रह गई। अब हमने बंद कर दी। अब उस जमाने का ज्ञानी तो समाविष्ट हो गया। अब उसके बाद का ज्ञानी? अब बाद के ज्ञानी का हमें विचार करना पड़ेगा कि वह हमसे मेल खाता है कि नहीं खाता।
और जिस दिन हम यह तय करने लगे कि वह हमसे मेल खाए, तब हम मानेंगे। उसी दिन भूल होनी शुरू हो गई। क्योंकि यह जो जगत है, यह सारा का सारा जगत, इसमें कुछ भी विरोधी नहीं है। इसमें विरोध दिखाई पड़ सकता है, इसमें विरोधी कुछ है नहीं। और जहां-जहां हमें विरोध दिखाई पड़ता है, वहां-वहां भी हमारी भूल से ही दिखाई पड़ता है। अन्यथा इस जगत की पूरी की पूरी व्यवस्था पोलैरिटीज को निर्मित करके चलने की है।
ऋण है और धन है, और दोनों के जोड़ से बिजली चल रही है। अगर बिजली एक दफा
तय कर ले कि हम ऋण से ही चलेंगे और धन से नहीं चलेंगे, तो उसी दिन बंद हो जाए। यह पूरा का पूरा जीवन जो है विरोध से बना हुआ है। रात है और दिन है; ठंड है और गर्मी है; जन्म है और मृत्यु है। यहां सब चीजें समाविष्ट हैं। यहां राम और रावण हमें अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं, परमात्मा में दोनों इकट्ठे हैं।
और राम नहीं हो सकते रावण के बिना, और रावण भी नहीं हो सकता राम के बिना। तो जिसके बिना आप न हो सकते हों, वह आपका विरोधी नहीं है। क्योंकि उसके बिना आप हो ही नहीं सकते। वही आपका आधार है होने का। तो नानक जैसे व्यक्ति किसी को रोकेंगे नहीं। वे इतना ही कहते हैं कि तुम सीखने के लिए खुले रहो। सिक्ख का मेरे लिए मतलब ही यही है वह सीखने के लिए खुला हो। और अगर उसे कहीं भी सीखने को मिल जाए तो सीखने की तैयारी... बड़ी कठिन बात है सीखने की तैयारी!
क्योंकि अक्सर मन हमारा सिखाने का होता है, सीखने का नहीं होता।
गुरु होना बहुत आसान बात है। शिष्य होना बहुत मुश्किल बात है। गुरु
तो कोई भी होना चाहता है। जहां भी मौका मिल जाए आदमी गुरु बन जाता है। शिष्य बनना बहुत ही कठिन बात है।
एक फकीर हुआ, सूफी। एक राह से गुजर रहा है। और एक छोटा सा बच्चा दीया लेकर जा रहा है, मंदिर में जलाने। और वह उससे पूछता है कि यह दीया तूने ही जलाया है? तो वह बच्चा कहता है, मैंने ही जलाया है। यह ज्योति तेरे सामने आई है? तो वह कहता है, मेरे सामने आई है। तो वह यह पूछता है कि यह ज्योति कहां से आई है? तो वह बच्चा फूंक मार कर दीया बुझा देता है। और उस सूफी फकीर से पूछता है कि आपके सामने ही ज्योति चली गई, आप बता दें, कहां चली गई है? अगर आप बता दें कि कहां चली गई तो फिर मैं भी कोशिश करूं बताने की कि कहां से आई है। तो वह सूफी फकीर उसके पैरों पर गिर पड़ा, और कहता है, मैं गुरुओं की तलाश में हूं। और एक गुरु तू भी मिला है। तूने भी मेरे मन में एक और द्वार खोल दिया, अनंत का और अज्ञात का। मैं तो मजाक में ही पूछ रहा था, लेकिन मजाक गंभीर हो जाएगी, यह न सोचा था। और मुझ पर लौट पड़ेगी, यह न सोचा था।
जब वह सूफी फकीर मर रहा था, और उससे किसी ने पूछा है, तुमने किस-किस से सीखा? कौन-कौन तुम्हारे गुरु हैं? उसने कहा गिनती बतानी मुश्किल है। उसने कई लोगों के नाम गिनाए, उसमें एक बच्चे का नाम भी गिनाया, कि उस बच्चे का नाम मुझे पता नहीं, क्योंकि फिर मैं उससे नाम पूछने की हिम्मत न कर सका, एक घटना के बाद। क्योंकि कहीं वह कुछ और उलटा-सीधा न कह दे। फिर मैंने हिम्मत नहीं की उससे पूछने की।
इसको शिष्यत्व कहेंगे। यह परमज्ञान को उपलब्ध हो गया फकीर भी। मरते वक्त स्मरण कर रहा है। आध्यात्मिक जीवन में गुरु तो होता ही नहीं, शिष्य

ही होते हैं। और जहां-जहां गुरु जोर हो जाता है, वहां-वहां आध्यात्मिक जीवन तो समाप्त हो जाता है, और पॉलिटिक्स शुरू हो जाती है। इसको बड़े ठीक से समझ लेने की जरूरत है।
यानी हमें यह खयाल में आता है कि शिष्य जब होगा तो गुरु तो होगा ही।
गुरु को गुरु होने का पता नहीं होना चाहिए, और शिष्य को शिष्य होने का पता होना चाहिए। अगर गुरु को पता हो गया कि मैं गुरु हूं, तो बात ही खराब हो गई। वह तो गुरु न रहा, वह तो एक अहंकार की पूजा हो गई। वह तो एक अहंकार हो गया और गुरु... गुरुडम खड़ी हो जाएगी। शिष्य को पता होना चाहिए कि मैं शिष्य हूं। और यह उसे सदा पता होना चाहिए। यह उसे चौबीस घंटे पता होना चाहिए कि मुझे सीखना है, सीखना है, सीखना है। मैं अज्ञानी हूं, मुझे पता नहीं है। और जहां सीखने को मिल जाए, उसे सीखते चले जाना चाहिए।
यह जो स्थिति होगी, यह धार्मिक व्यक्तियों की है। ऐसा धार्मिक व्यक्ति अगर पृथ्वी पर पैदा हो जाए, जिसकी सदा कोशिश की गई, लेकिन पैदा नहीं हो पाता। अगर पैदा हो जाए तो फिर लड़ाई नहीं होगी।
फिर लड़ाई नहीं होगी। अगर मैं कुछ कह रहा हूं, और आपमें सिर्फ सीखने की भावना और कामना है तो आप सुन लेंगे, समझ लेंगे, विदा हो जाएंगे। कुछ सीखने जैसा होगा तो सीख लेंगे, कुछ सीखने जैसा नहीं होगा तो नहीं सीखेंगे। लेकिन अगर आप पहले से ही सीखे बैठे हुए हैं, और पक्का माने बैठे हुए हैं कि आपको तो पता ही चल गया है कि ज्ञान क्या है? तो फिर टक्कर हो जाएगी। फिर कठिनाई हो जाएगी। फिर अगर आप कहेंगेः नहीं, यह तो ठीक नहीं है। और मजा यह है कि क्या ठीक है उसका अगर हमें पता ही हो, तब तो कोई अड़चन नहीं। उसका हमें पता ही नहीं। लेकिन क्या ठीक नहीं है, यह कहने को हम सदा तैयार हैं।
एक, अभी एक बहुत बड़ा गणितज्ञ था रूस में--ऑस्पेंस्की। एक फकीर था यूनानी--गुरजिएफ, उसके पास गया। उसने कहा कि मुझे कुछ सवाल पूछने हैं। तो गुरजिएफ बहुत अदभुत आदमी था। थोड़े से अदभुत आदमी इन पचास साल में थे, उनमें एक था। तो उसने एक कोरा कागज उठा कर ऑस्पेंस्की को दे दिया और कहा कि मैं जानता हूं, तुम बड़े विद्वान हो। बड़ा नाम है। बड़ी किताबें लिखी हैं। तो पहले तुम इस कागज पर यह लिख दो कि तुम्हें जो-जो पता है, वह तुम लिख दो, ताकि उसकी मैं बात न करूं। और तुम्हें जो पता न हो उसकी बात करें। नहीं तो बेकार समय जाया होगा। बात तो ठीक लगी। तो ऑस्पेंस्की को उसने कहा कि बगल के कमरे में चले जाएं, इस कागज पर लिख लाएं दो तरफ। जो पता है वह हम छोड़ ही देंगे। और जो पता नहीं है, उसकी बात कर लेंगे।
ऑस्पेंस्की ने लिखा है कि पहली दफा जिंदगी में मैं मुश्किल में पड़ा। लिखने बैठूं ईश्वर, तो लिखा न जाए, क्योंकि पता तो नहीं है; आत्मा, तो लिखा न जाए, क्योंकि पता तो नहीं है। फिर तो कोरा कागज ही वापस दे देना पड़ा था। मुझे तो कुछ भी पता नहीं। तो गुरजिएफ ने कहा कि तुझमें शिष्य होने की क्षमता है, अब तू बैठ। तेरे पास सिखाने को कुछ भी नहीं है तो झगड़ा खत्म। अब मैं जो कहूं उसको तुझे समझना हो तो समझ लेना; न समझना हो, न समझना। लेकिन तू यह न कह सकेगा कि यह गलत है। क्योंकि तुझे पता नहीं कि सही क्या है? इतना पक्का हो गया।
और वर्षों ऑस्पेंस्की उसके साथ रहा। लेकिन कभी उसने यह नहीं कहा कि
यह गलत है। और गुरजिएफ ने वर्षों बाद कहा कि यह आदमी बड़ा अदभुत है। इसने वचन निभाया। तो ऑस्पेंस्की ने कहा, वचन निभाया नहीं, बात सच्ची समझ में आ गई। बात ही ठीक है कि जब मुझे सही का पता नहीं तो किसी को गलत कैसे कह दूं? वचन नहीं निभाया, बात ही समझ में आ गई। अब मैं सीखने की कोशिश करता हूं, समझने की कोशिश करता हूं। और जब समझता हूं और सीखता हूं तो जो सही है, उसकी किरणें धीरे-धीरे साफ होने लगीं। लेकिन अच्छा किया आपने कि पहले दिन वह कोरा कागज मुझे पकड़ा दिया, नहीं तो मैं कुछ भी न सीख पाता। क्योंकि हर बात पर मैं कहता कि नहीं, यह ऐसा नहीं है।
जिसको सच में डिसाइपलशिप कहें, शिष्यत्व कहें, उसका कुल मतलब इतना है
कि हम अपने अज्ञान के पूरे बोध के साथ खड़े हैं, बस। इसलिए कहीं भी कोई कह रहा हो कि मुझे पता चल गया है तो हम सुनने को राजी हैं।

गुरुडम की घोषणा बहुत दूसरी घोषणा है। गुरुडम की घोषणा बहुत दूसरी घोषणा है। गुरु बनने की चेष्टा में लगा आदमी इस बात में बहुत उत्सुक नहीं है कि आपको सत्य पता चल जाए। इस बात में बहुत उत्सुक है कि जो वह कह रहा है, वही सत्य मान लिया जाए। लेकिन जिसको सत्य पता चल गया है, आप मान लें, इसका जोर उसमें नहीं रह जाएगा। कोई कारण नहीं है। और सत्य कहीं माना जा सकता है किसी के कहने से? सिर्फ जाना ही जा सकता है। वह अनुभव से ही जाना जा सकता है।
सारी जो कठिनाई सदा आती रही है वह यह है, और यह बड़े मजे की बात है, ये बड़े मजे की बात है कि अगर नानक, बुद्ध या कृष्ण और कबीर और क्राइस्ट और मोहम्मद कहीं मिलते हों मोक्ष में, तो बड़े हंसते होंगे। वे सब एक ही बात कह गए। और वहां इनके पीछे चलने वाले तलवारें लिए खड़े हैं और एक-दूसरे की जान पर सवार हैं। मगर अगर वह सब भी लौट आएं वापस तो इनको राजी नहीं कर सकते कि मत लड़ो। कहेंगे कि इनका दिमाग खराब हो गया है। हम कैसे मान सकते हैं? फ्रायड की जिंदगी में एक संस्मरण है। बड़ा अदभुत है। फ्रायड जिंदा था।
और उसके जिंदा में ही उसका एक बड़ा व्यापक आंदोलन हो गया था, साइकोलॉजिकल। तो उसके बड़े-बड़े शिष्य सारी दुनिया में एक बड़ा एक पौरोहित्य फैल गया था। तो उसके बीस बड़े, सारी दुनिया के खास-खास शिष्य उससे मिलने आए हुए थे, बूढ़ा आदमी हो गया है, वह बैठा था। टेबल पर बैठा है, बीस उसके शिष्य बैठे हैं और उनमें विवाद हो गया इस बात पर, कि फ्रायड ने कोई वचन कहा है, उसका क्या अर्थ है? और वे विवाद करने में यह भूल ही गए कि फ्रायड मौजूद है, और उससे हम पूछ लें। वह आदमी बैठा है। वह बैठा है। और वह तो विवाद इतना बढ़ गया कि वह कटुता और दुश्मनी से बात होने लगी।
तो फ्रायड ने उनसे कहा कि मित्रो, अभी मैं जिंदा हूं, मर नहीं गया। लेकिन हैरानी है कि तुम मुझसे पूछते नहीं कि मेरा मतलब क्या है? तो जब मैं मर जाऊंगा, तब तुम मेरे साथ क्या करोगे? इसे देख कर मैं अभी हैरान हूं कि मैं अभी जिंदा हूं, और तुम्हारे सामने बैठा हूं। तुम मुझसे पूछने की फिकर ही नहीं कर रहे कि मेरा मतलब क्या है? तुम तय आपस में कर रहे हो कि मतलब क्या है? और लड़ रहे हो। तो जब मैं मर जाऊंगा, तब तुम क्या करोगे, वह मैं सोच कर ही घबड़ाया हुआ हूं?
बाद के सारे के सारे जो हम एक-एक आदमी के आस-पास ढांचा बनाते हैं, वह हमारी समझ का ढांचा है। हम अपनी समझ से ऊपर नहीं उठते। हम अपनी समझ का ढांचा बना कर खड़े हो जाते हैं। फिर दुबारा सत्य प्रकट होगा, न मालूम किससे? फिर उस सांचे से टक्कर हो जाएगी। अब मजा यह है कि वह जो दूसरा आदमी है, कृष्ण का ही काम करेगा; नानक का ही काम करेगा। लेकिन नानक का मानने वाला या कृष्ण का मानने वाला ही उससे लड़ जाएगा। वह दुश्मन मालूम पड़ेगा। जीसस ने कहा है ये, जीसस ने कहा है: जब उनको सूली दिए जाने की बात चलने लगी, और उनको पकड़ा जाने लगा, तो अब्राहिम जो बहुत पुराना पैगंबर हुआ, यहूदियों का पैगंबर--तो जीसस ने कहा कि अब्राहिम जब नहीं था, उसके पहले भी मैं था। और अब्राहिम ने जो कहा है, उसी को फुलफिल करने मैं आया हूं। लेकिन कौन सुनेगा उसकी?
क्योंकि अब्राहिम के पुजारी, उसके मंदिर, वे बरदाश्त नहीं कर सकते हैं कि कोई आदमी कहे कि मैं अब्राहिम के पहले था। और मैं वही कह रहा हूं जो अब्राहिम ने कहा था। वे नहीं मान सकते इस बात को। यह बढ़ई का लड़का! कहां अब्राहिम, परमात्मा का अवतार और कहां यह बढ़ई का लड़का! आज फिर अब जीसस बढ़ई का लड़का नहीं रह गया। अब जीसस भगवान का बेटा है। अब अगर कोई दूसरा आदमी कहेगा तो वह कहेगा कि यह चमार का लड़का है। यह फलां दुकानदार का लड़का है, यह भगवान से टक्कर लेना चाह रहा है।
जब भी आदमी में से कोई ज्योति निकलेगी, तो वह तो आदमी ही में से निकलेगी। वह आदमी बढ़ई का बेटा होगा या चमार का बेटा होगा, या दुकानदार होगा, कोई होगा, कोई होगा। लेकिन हजारों साल में जब कहानियां रच जाएंगी, तब तक वह भगवान हो चुका होगा। और उसके मानने वाले यह मानने को राजी न होंगे कि एक साधारण आदमी और इस तरह की बात कहे, और हमारे गुरु के लिए कह दे। यह नहीं हो सकता।

मगर यही उसके गुरु के साथ हुआ था, यह उसे खयाल में नहीं है। यानी मजे
की बात जो है वह यह है कि हम निरंतर वही भूल दोहराए चले जाते हैं। अभी भी वही दोहराए चले जाते हैं, उसमें कोई अंतर नहीं पड़ता। हमारी मान्यताएं हमें जकड़ लेती हैं। मान्यताएं जड़ हो जाती हैं। हमारी बुद्धि से निकाली गई होती हैं। सृष्ट चेतना से आई हुई कोई भी बात उसके विपरीत मालूम पड़ती है। और वक्त बदल गया होता है।
नानक जिनसे बोल रहे थे, वह पांच सौ साल पहले का वक्त था। वेद का ऋषि जिससे बोल रहा था, वह कोई दस हजार साल पुराना वक्त था। दस हजार साल पुरानी भाषा; दस हजार साल पुराना प्रतीक; दस हजार साल पहले के आदमी की समझ; जिनसे बात की जा रही थी वे, और जो बात कर रहा था वह। वह सब है उसमें। दस हजार साल में सब बदल गया। अब मैं चाहूं भी तो वह भाषा नहीं बोल सकता।
और बोलूं तो किससे बोलूं? क्योंकि वह आदमी कहां है जो उस भाषा को समझेगा। मुझे आपसे बात करनी है, और मुझे आपसे बात करनी है। सब बदल जाएगा। लेकिन बदलता सिर्फ ढांचा है। वस्त्र बदलते हैं; रूप बदलते हैं; आकार बदलते हैं; शब्द बदलते हैं। आत्मा सदा वही है, लेकिन आत्मा को पहचानता कोई नहीं है। पहचानते हम शब्दों को हैं।
बुद्ध के जमाने में ऐसा हुआ कि बुद्ध और महावीर एक ही वक्त में हैं।
और एक ही इलाके में हैं और दोनों के मानने वाले। और एक का मानने वाला दूसरे के पास जाकर कहे कि उन्होंने ऐसा कहा, उन्होंने ऐसा कहा। और दोनों उसी जगह, और बड़ी उलटी बातें दोनों कहें। महावीर कहें, आत्मा ही सब कुछ। और बुद्ध कहें, आत्मा तो कुछ है ही नहीं--सीधा झगड़ा। महावीर कहें, आत्मा को जान लिया तो परम ज्ञान हो गया, और बुद्ध कहें, जब तब तक आत्मा को माना, तब तक अज्ञान है। ये तो बिल्कुल सीधी उलटी बातें हैं। एक आत्मवादी और एक अनात्मवादी। सुनने वाला तो शब्द ही पकड़ेगा।
तो महावीर को मानने वाला अब भी आत्मा को पकड़े हुए है। बुद्ध को मानने वाला अनात्मा को पकड़े हुए है। और उन दोनों को पता नहीं कि वे दोनों एक ही चीज की तरफ इन दो विपरीत शब्दों से इशारा कर रहे हैं। हम पूछ सकते हैं कि तो विपरीत शब्दों से इशारा क्यों कर रहे हो? उसका भी कारण है।
कुछ लोग हैं जो आत्मा के शब्द से ही इशारे को समझ सकेंगे, और कुछ लोग हैं जो अनात्मा के शब्द से ही इशारे को समझ सकेंगे; कुछ लोग हैं जो नाच कर ही भगवान को पा सकेंगे, और कुछ लोग हैं जो आंख बंद करके ही भगवान को पा सकेंगे; कुछ लोग हैं जो मौन हो कर पाएंगे; कुछ हैं जो गाकर पाएंगे।
तो जिसने मौन होकर पाया, वह कहेगा कि मौन हो जाओ। बकवास है शब्द, मत बोलो। सब शब्द छोड़ो। जिसने गाकर पाया, वह कहेगा, गाओ और गाना ही हो जाओ, बचो ही मत बिल्कुल। गीत ही बन जाओ। अब ये दोनों बातें उलटी लगेंगी। और जिनके पास सिर्फ शब्द है, उनके पास झगड़े खड़े रहेंगे कि एक कहेगा कि नहीं, मौन होना पड़ेगा, तभी मिलता है। और एक कहेगा कि नहीं, जब तक गाकर शब्द-रूप ही न हो जाओ, तब तक नहीं मिलेगा।
अब इनके झगड़े हजारों साल तक चलते रहेंगे। और ये दोनों पागल हैं। ये कुल इतनी खबर दे रहे हैं कि जिस आदमी ने पाया था, उसने अपनी बात कह दी। और उसे पाने के हजार रास्ते हैं। हजार होंगे ही। क्योंकि आप अपने रास्ते से आएंगे उस तक, मैं अपने रास्ते से आऊंगा उस तक; तीसरा कोई तीसरे रास्ते से आएगा, चौथा कोई चौथे रास्ते से आएगा। हम सब एक जगह नहीं खड़े हैं। इसलिए हमारे यात्रा-पथ अलग होने वाले हैं। मीरा नाच कर पाएगी, महावीर नाच कर नहीं पा सकते। महावीर नाच ही नहीं सकते। हम सोच ही नहीं सकते कि महावीर, और नाचें! यह नहीं हो सकता। नानक गाकर पा सकते हैं, तंबूरा बजता रहेगा पास। बुद्ध के पास बजाओगे तो कहेंगे कि बंद करो। डिस्टर्बेंस कर रहे हो। यह नहीं चलेगा। हटाओ यह तंबूरा यहां से।
अब यह इन दोनों का अपना व्यक्तित्व, जिस मार्ग से उनको उपलब्ध हुआ है,
ये उसकी बात कह जाएंगे। और हमारे पास फिर आखिर में तंबूरा रह जाएगा। एक तंबूरा तोड़ने को खड़ा हो जाएगा, एक तंबूरा बजाने को खड़ा हो जाएगा। और समझ दोनों के पास नहीं होगी, कि बात क्या है? पहचानना पड़ेगा हमें, कि मेरे लिए है? मैं राग में डूब सकता हूं? अगर मैं डूब सकता हूं तो ठीक, डूब जाऊं। अगर

मेरे लिए नहीं है, तो मैं मौन में ठहर जाऊं। मगर यह बड़ी कठिनाई है, हजार तरह के व्यक्ति हैं। हजार तरह की पहुंच हैं। हजार तरह के शब्द हैं। अनंत उसके मार्ग, क्योंकि जो स्वयं अनंत है, उस तक पहुंचने का एक रास्ता नहीं हो सकता। अनंत उसके रास्ते होंगे।
यह सारी कठिनाई, इसलिए जब जैसे मैं अगर एक बात कहूंगा तो किसी को लगेगी कि नहीं, यह तो हमारे रास्ते के विपरीत पड़ गई है। रास्ते का सवाल नहीं है, सब रास्ते एक-दूसरे के विपरीत हो सकते हैं। लेकिन सवाल यह है कि कहां पहुंचाते हैं? अगर एक ही जगह पहुंचाते हैं तो रास्ते के विपरीत होने से कुछ भी उपद्रव नहीं है। रहने दो रास्ते विपरीत। ध्यान इसका रखो कि पहुंच जाते हैं हम। लेकिन पहुंचने पर हमें पता नहीं कि कहीं पहुंचता है रास्ता, सिर्फ रास्तों का पता है।
हमारी हालत ऐसी है कि जैसे हम एक बड़ा सर्कल बनाएं और उसके सेंटर पर सर्कल के, पच्चीस रेखाएं खींच दें। हम सब सर्कल पर खड़े हुए हैं। हमको अपनी- अपनी रेखा दिखाई पड़ रही है, लेकिन वह सेंटर दिखाई नहीं पड़ता, जहां सब रेखाएं जाकर मिल जाती हैं। मैं अपनी रेखा पर खड़ा हूं, आप अपनी रेखा पर खड़े हैं। मेरी आपकी रेखा के बीच बड़ा फासला है। मैं कैसे मान सकता हूं कि मेरी रेखा जहां पहुंचेगी, वहीं आपकी पहुंचती है? मैं कहूंगा, तुम कभी न पहुंच पाओगे और मैं पहुंच जाऊंगा, क्योंकि मेरे आगे एक आदमी पहुंच गया है जो कह गया है कि इस रास्ते से पहुंचना है। आप कहोगे, तुम पागल हो। हम पहुंचे ही हुए हैं, हमारे आगे भी एक आदमी पहुंच गया है जो कह गया है कि इस रास्ते से पहुंच जाओ। तब झगड़ा सुनिश्चित है। और यह झगड़ा दुश्मनी से भी भरा हुआ है, ऐसा मानने की भी कोई जरूरत नहीं।
यह झगड़ा बहुत स्वाभाविक है। बिल्कुल स्वाभाविक है। इसमें कोई दुश्मनी करके ही करने जा रहा है, ऐसा कुछ भी नहीं है। बिल्कुल स्वाभाविक है। उसको लग रहा है कि कैसे पहुंच जाओगे? उसको लग रहा है कि कहीं तुम किसी को भटका न दो? उसको लग रहा है कि कहीं किसी को तुम बिगाड़ न दो? यह बेचारा तो रुकावट डाल रहा है कि तुम बिगाड़ न पाओ।
अब, अब यह उसकी नासमझी तो है, क्योंकि उसे पता नहीं कि कितने रास्ते उस
तक पहुंच जाते हैं। वह बड़ा संकीर्ण रास्ता बना रहा है। वह बना रहा है बस मेरा ही पहुंच पाएगा। लेकिन जरूरी नहीं कि वह दुश्मनी में हो। यह जो इतनी समझ साफ हो जाए, धीरे-धीरे होनी चाहिए दुनिया में। अब तक हो नहीं पा रही। तो शायद लड़ने का कारण ही नहीं, कम से कम धर्म के मामले में तो लड़ने का कारण नहीं है। कोई भी कारण नहीं है। और किसी दिन यह अच्छा वक्त आ सकता है जब आपके पड़ोस में मस्जिद पड़ती हो तो मस्जिद में जाकर प्रार्थना कर आएं और मंदिर पड़ता हो तो मंदिर में कर आएं और गुरुद्वारा पड़ता हो तो गुरुद्वारे में कर आएं। और कोई न पड़ता हो पास तो अपने घर में बैठ कर कर लें। यह वक्त किसी दिन आ सकता है, आना चाहिए। यह सबकी चेष्टा ही रही है लेकिन यह हो नहीं पाता, बल्कि एक नया उपद्रव होता है।
अब मैं भी जानता हूं कि वह उपद्रव बिल्कुल ही संभावी है। अक्सर यह होता है। तभी तो नानक ने कहा कि सभी रास्ते उसके हैं। तो गुरुद्वारा कोई सिक्ख के लिए नहीं बनाया। कोई सिक्ख के लिए नहीं बनाया। जो भी मौज, चाहे उसकी खोज ले कि उसके लिए भी एक दरवाजा है, द्वार। यह भी एक डोर है। इसलिए उसको गुरुद्वारा नाम दिया। वह बढ़िया है। मंदिर से ज्यादा बढ़िया है। जस्ट ए डोर। यह कोई महल नहीं है, यहां पहुंचने से भगवान नहीं मिल जाएगा। यह सिर्फ एक दरवाजा है, इससे भी मिल सकता है। और सबके लिए खुला है, क्योंकि दरवाजा अगर भगवान का किसी के लिए बंद हो तो बड़ा कंजूस दरवाजा हो गया। कम से कम भगवान का दरवाजा बंद नहीं होना चाहिए। सबके लिए खुला है, कोई भी आ जाए। चाहा तो यही था, लेकिन यह हो नहीं पाता। और अंत में जो होता है, वह बहुत उलटा है। वह यह होता है कि जहां दस लड़ने वाले थे, वहां ग्यारह लड़ने वाले हो जाते हैं। वह ग्यारहवां और पैदा हो जाता है। यानी चाहा यह था कि यह ग्यारहवां लड़ेगा नहीं, और दस को भी दरवाजा दे देगा। आखिर में परिणाम इतना होता है कि एक और ग्यारहवां लड़ने वाला हो जाता है। और वह कहता है, कि यहां

आओ, यहां से पहुंच जाओगे। फिर उसको मिटाने के लिए कल कोई आकर बारहवें आदमी को खड़ा करता है। तब बारह हो जाते हैं, और तेरह हो जाते हैं।
सिर्फ झगड़े की पार्टियां बढ़ती चली जाती हैं और हर नई पार्टी जिस दिन बनाई गई है, उस दिन इसलिए बनाई गई है कि बाकी लोगों का झगड़ा मिटा देगी। बड़ी मुश्किल की बात है। लेकिन ऐसा हुआ है, और यह भी कुछ अर्थों में स्वाभाविक है। अब जैसे मैं जो कह रहा हूं, अगर मुझे आप प्रेम करने लगें, तो मैं जानता हूं कि मैं पार्टी बना दे सकता हूं। अगर वह प्रेम बढ़ जाए तो मैं आपको भी झगड़ा करने वाली एक पार्टी बना दे सकता हूं। मेरे न चाहते हुए भी वह हो सकता है।
जैनों का एक सिद्धांत है--"स्यात्वाद।" उसका, उसका मतलब होता हैः यह
भी ठीक है, वह भी ठीक है। बड़ा कीमती खयाल है। वे यह कहते हैं कि यह भी ठीक है, वह भी ठीक है। यही ठीक है, ऐसा कहना ठीक नहीं है। इसको वे, इसको वे स्यात्वाद कहते हैं। लेकिन अगर जैन से पूछो, तो वह स्यात्वाद के बाबत यह कहेगा कि स्यात्वाद ही ठीक है। अब यह बड़े मजे की बात है। अगर कोई कहे कि स्यात्वाद गलत है तो वह यह हिम्मत नहीं जुटा पाएगा कि यह भी ठीक है, यह हिम्मत न जुटा पाएगा।
अब यह बड़े मजे की बात है। कैसा कंट्राडिक्शन आदमी के दिमाग में चलता है। सिद्धांत ही कुल इतना कि कोई कितना ही विपरीत बात कह रहा हो, उसमें भी कुछ न कुछ ठीक होगा ही। कम से कम एक आदमी भी अगर कह रहा हो दुनिया में तो, कम से कम एक आदमी के भीतर का परमात्मा तो कह ही रहा है। वह कुछ न कुछ तो ठीक होगा ही। नहीं तो वह भी नहीं कह पाता। बड़े से बड़े झूठ में भी थोड़ा सा सच होता है। नहीं तो बड़े से बड़ा झूठ भी खड़ा नहीं हो सकता। उसको खड़ा तो सच पर ही होना पड़ता है। खड़ा नहीं हो सकता, एक दम गिर जाएगा। कितना ही बड़ा झूठ हो, उसके नीचे कहीं न कहीं सच की बुनियाद भी हमें खोजनी ही पड़ती है, नहीं तो वह खड़ा नहीं हो सकता। मकान तो हम कितना ही बड़ा झूठ का बनाएं, बुनियाद में सच की कहीं न कहीं ईंट रखनी ही पड़ती है। नहीं तो वह गिर जाएगा।
अरबी में एक कहावत है कि झूठ के पैर नहीं होते। पैर उसे सदा सच से ही उधार लेने पड़ते हैं। इसलिए झूठ सच होने का सदा दावा करता है। जोर से दावा करता है। नहीं तो वह लंगड़ा है, वह चल नहीं सकता, एक कदम नहीं चल सकता। वह जितना सच का दावा करता है, उतना ही चल पाता है बस। वह जैसे ही सच का दावा गिर जाता है, वह गिर जाता है। इसलिए झूठ बड़ी कोशिश करता है कि मैं सच होऊं। क्योंकि कोशिश इसलिए करता है कि वह खड़ा हो सके।
यह जो हमारी मन की पकड़ है, लेकिन यह भी सच है वह भी सच है, इसका मतलब ही केवल इतना होता है कि हम सच पर ध्यान रखेंगे। हम झूठ की फिकर छोड़ देंगे और सच को निकाल लेंगे। तो इतने को हम राजी हो जाएंगे सदा। लेकिन इस सिद्धांत को मानने वाला कहेगा, लेकिन इस सिद्धांत को गलत कहने वाला बिल्कुल गलत है। यह सिद्धांत तो बिल्कुल ही सच है। बस वहीं की वहीं बात वापस लौट आती है। आदमी की बुद्धि इतनी छोटी है कि उसमें परम बुद्धि से जो भी सत्य आते हैं वे उनको सदा, खुद अपने को उन सत्यों तक ले जाने की बजाए, उन सत्यों को अपने स्थान तक ले आता है। बस, वह स्वाभाविक ही होता है। यानी बजाय इसके कि मैं आपको खींच-खींच कर ऊपर की मंजिल पर ले चलूं, मैं पूरी जिंदगी कोशिश करता रहूंगा ऊपर की मंजिल पर आपको खींच कर ले चलने की, लेकिन मरने के बाद आप मेरी लाश को नीचे की मंजिल पर ले आएंगे, जहां आप थे। और करेंगे क्या? मैं अपनी कोशिश कर चुका, आखिर में आप अपनी कोशिश करेंगे।
तो हम अपने उन सब लोगों को, जिन्होंने हमें कोई परम बात सुनाई है, इतना प्रेम करने लगते हैं कि आखिर में हम उन्हें, जब वे नहीं रहते तो अपनी जगह पर उन्हें ले आते हैं, ठीक भी है। क्यों, वहां अकेले में अब वे क्या करेंगे?

प्रेम नदी के तीरा
सातवां प्रवचन

ध्यानी को अभिनेता होना पड़ता है

दो बातें समझनी चाहिए। एक तो किसी चीज में विकास होता है। विकास में कंटीन्यूटी होती है, सातत्य होता है। लेकिन विकास में नई चीज कभी पैदा नहीं होती है। पुराना ही मौजूद रहता है। थोड़ा बहुत फर्क होता है, लेकिन पुराना ही मौजूद होता है। तो जिस-जिस चीज में विकास होता है, उसमें पुराना समाप्त नहीं होता। सिर्फ पुराना नये ढंग, नये रूप, नई आकृतियों में फिर मौजूद रहता है। जैसे बच्चा जवान होता है, यह विकास है। जंप नहीं है, छलांग नहीं है, इसलिए आपको कभी पता नहीं लगता है कि कब बच्चा जवान हो गया। वह धीरे-धीरे होता है। जवानी आ जाती है, लेकिन बच्चा समाप्त नहीं हो जाता। बच्चा ही जवान हो गया होता है। इसलिए मौके-बेमौके जवान फिर बच्चे के जैसा व्यवहार कर सकता है। उसमें कोई कठिनाई नहीं है। हम भी बहुत बार वापस लौट के काम करने लगते हैं और बच्चों जैसा व्यवहार कर सकते हैं। बूढ़ा भी बच्चों जैसा व्यवहार कर सकता है। अब जवान धीरे-धीरे धीरे-धीरे बूढ़ा हुआ जाता है। लेकिन यह इतने-इतने धीरे होता है कि जवान कभी नहीं मिट पाता। जवान मौजूद रहता है, उसके ऊपर ही बुढ़ापा भी जुड़ जाता है।
तो जिंदगी में साधारणतः तो विकास होता है। और इसलिए बच्चा जो था, वही
जब बूढ़ा होता है तो सब मौजूद रहता है जो बच्चे में था, वह कहीं गया नहीं हुआ था। हां, जिंदगी के अनुभव और इन सबकी चोट में फर्क हो गए होते हैं। लेकिन बच्चे को पहचाना जा सकता है कि यह वही बच्चा है जो अब बूढ़ा हो गया है। कहीं बीच में डिस्कंटीन्यूटी नहीं हुई। कहीं गैप नहीं आया। कहीं ऐसा नहीं हुआ कि पुरानी धारा टूट गई और नई धारा शुरू हुई। पुरानी धारा ही बहती रही।
एक नदी जा रही है सागर की तरफ। यह वही नदी है जो मूल स्रोत से निकली थी। पानी ज्यादा हो गया है, वर्षा के नाले मिल गए हैं। पाट बड़ा हो गया है, चौड़ा हो गया है। पहचानना मुश्किल पड़ेगा कि यह मूल, ऑरिजन पर जहां देखा था तो जरा सी पतली धारा थी। यहां समुद्र की तरह बड़ी हो गई है आकर। पहचानना मुश्किल हो गया है कि यह वही नदी है। उसको कोई फर्क नहीं पड़ गया है।
और अगर कोई फर्क पड़ा है तो क्वांटिटी का है, क्वालिटी का नहीं है। मात्रा बढ़ गई है, पानी थोड़ा था पानी बहुत हो गया है। लेकिन वही है नदी। कहीं नदी ने जंप नहीं लिया; कहीं नदी ऐसे नहीं हुआ कि पुरानी नदी जस्ट सी.ज.ज टू बी और नई नदी शुरू हो गई; ऐसा गैप नहीं बढ़ा कि पुरानी नदी खत्म हो गई और नई नदी शुरू हो गई।
लेकिन ध्यान जो है वह विकास नहीं है। वह छलांग है। छलांग का मैं फर्क समझाने के लिए कह रहा हूं कि ध्यान जो है वह छलांग है। ऐसा नहीं है कि ध्यान करने के बाद, ध्यान हो जाने के बाद आप वही आदमी रहेंगे जो ध्यान करने के पहले थे। नहीं, वह आदमी तो जा ही चुका होगा। यानी यह बचपन और जवानी जैसा नहीं होगा फर्क। ऐसा नहीं होगा कि वही आदमी जो कल ध्यान नहीं करता था, अब ध्यान करने लगा है। नहीं, ऐसा नहीं होगा। क्योंकि ध्यान जिसको हो गया है यह बिल्कुल ही दूसरा आदमी है। यह वही आदमी नहीं है। हालांकि शक्ल वही होगी, शरीर वही होगा। हम, हम आमतौर से पहचान भी नहीं पाएंगे, इसमें क्या हो गया?
बुद्ध जब वापस लौटे हैं अपने घर, तो सारा गांव लेने गया, पिता भी लेने गए। तो पिता जो बारह साल पहले जो पुत्र, घर से भाग गया था जो लड़का, वह उसी के खयाल में है। उनको दिखाई भी नहीं पड़ रहा है कि छलांग हो गई। यह मेरा बेटा नहीं है जो आया है अब। अब यह किसी का बेटा नहीं है, अब यह बेटा-बाप होने के बाहर चला गया है। लेकिन बाप को क्या पता? बाप तो पुराने गुस्से में बैठा है। सारा गांव तो स्वागत कर रहा है, बाप नाराज है। उसने आकर बुद्ध को, दरवाजे पर गांव के कहा कि मैं खुश नहीं हूं तुम घर छोड़ कर चले गए। एक ही बेटा, वह घर छोड़ कर चला गया। हमारे वंश को नष्ट करना चाहता है। वे डांट रहे हैं, और वह अपने गुस्से में बातें कहे जा रहे हैं। वह, बारह साल पहले जो आदमी गया था, उससे ही बातें कर रहा है।

वह आदमी रहा ही नहीं वहां। वह आदमी अब है नहीं। उसे कैसे पता चले कि छलांग हो गई? वह आदमी अब नहीं है। वह वही बात किए चले जा रहा है कि अभी भी मेरा दरवाजा खुला है और तुम्हें मैं माफ कर दूंगा, आखिर बाप का दिल है माफ कर देगा। तुम आ जाओ लौट कर वापस। अब उसे पता ही नहीं कि पॉइंट ऑफ नो रिटर्न पर पहुंच गया है यह लड़का, वापस लौटने का उपाय नहीं। कुछ जगह है, जहां से वापस लौटा ही नहीं जा सकता है। जब जंप हो जाती है तो वापस नहीं लौटा जा सकता। लेकिन अगर कंटीन्यूटी हो तो वापस लौटा जा सकता है। पॉइंट ऑफ नो रिटर्न भी है। वह जंप के बाद आता है जहां से आप वापस लौट ही नहीं सकते, जहां से कोई उपाय ही नहीं। क्योंकि पुराना सब रास्ता ही गया। पुरानी जगह ही खो गई, पुराना आदमी ही खो गया। वापस लौटा ही नहीं जाता।
तो बुद्ध हंस रहे हैं। क्योंकि उनको हंसी आ रही है कि पिता क्या कह रहे हैं यह उनके। पर वह गुस्से में हैं, वह कोई बात कहे चले जा रहे हैं कि मैं तुझे माफ कर दूंगा, मेरा दरवाजा जो है अभी भी खुला है। बहुत तूने बहुत कष्ट दिया है इस बुढ़ापे में, बहुत दुख दिया है। लेकिन फिर भी क्षमा कर दूंगा। बाप का दिल, बाप का दिल ठहरा, क्षमा कर देता है। जब वह सारी बात कह रहे हैं तब उन्हें अचानक खयाल आया कि वह लड़का बोल नहीं रहा, वह चुपचाप खड़ा है। इतनी सारी बातें हो गईं। उसे कुछ जवाब देना चाहिए, उसे कुछ माफी मांगनी चाहिए, उसे कुछ तो कहना चाहिए। तब उन्होंने उसे गौर से देखा है तो बुद्ध हंसने लगे और उन्होंने कहा कि आप पहचान नहीं पा रहे हैं, जो गया था वही वापस नहीं लौटा है।
आप किससे बातें कर रहे हैं? आप किससे बातें कर रहे हैं? जो गया था, वही वापस नहीं लौटा। जब गया था तो आपका बेटा था, अब मैं किसी का बेटा नहीं हूं। और, और पिता ने कहा है इस गुस्से में कि सम्राट का बेटा और भीख मांगे सड़कों पर! हमारे लिये लाज की बात है। शर्म की बात है कि मेरा बेटा, और सड़कों पर भिक्षापात्र लेकर भीख मांगे! मेरे वंश में ऐसा कभी नहीं हुआ कि हमारे वंश में कभी किसी ने भीख मांगी हो। यह तू क्या कर रहा है? तो बुद्ध कहते हैं आपके वंश में न हुआ होगा लेकिन जहां तक मुझे याद आता है, मैंने सदा भीख मांगी है। आपके वंश में न हुआ होगा लेकिन मेरा आपके वंश से क्या लेना- देना।
अब यह बाप की समझ में बिल्कुल नहीं आता क्योंकि यह बातचीत बिलकुल ही अलग भाषा में हो रही है। बाप को तो गुस्सा आता है कि यह तू क्या बातें कर रहा है? मैं तुझे नहीं पहचानता? अपने बेटे को नहीं पहचानूंगा? मेरा खून, मेरी हड्डी, मेरा मांस, तुझे नहीं पहचानूंगा? वह तो कहता है कि वह जो खून, हड्डी और मांस है, वह आपका होगा, लेकिन वह मैं कहां हूं।
मगर यह बात बिल्कुल ही... कहीं इसमें तालमेल नहीं हो रहा है। क्योंकि
यह बिल्कुल दो धरातलों पर चल रही है। बुद्ध उस बेटे से बात कर रहे हैं जो छलांग के पहले था, और यह बेटा उस जगह से जवाब दे रहा है जहां से छलांग के बाहर है। इसमें कहीं मेल नहीं हो पा रहा है। इसमें बड़ी कठिनाई होती है। ध्यान जो है वह एवोल्यूएशन नहीं है, रेवोल्यूशन है। वह विकास नहीं है क्रांति है, वह इंकलाब है। और क्रांति और विकास में यही फर्क है। क्रांति का मतलब है बीच में एक खंड आ गया है, एक गैप, जहां से पुराना समाप्त हो गया और नये की शुरुआत हुईर्। इसका पुराने से कुछ भी लेना-देना नहीं है। यह बात ही और है। इसको पुराने से जोड़ना ही मत।
एक, एक भिक्षु है जो कोई सत्तर साल का है। उससे बुद्ध पूछते हैं कि तेरी उम्र कितनी है? तो वह कहता है, चार साल। तो बाकी लोग हंसने लगते हैं कि वह मजाक कर रहा है। कोई सत्तर साल का बूढ़ा अपनी उम्र चार साल कहता है तो बाकी लोग हंसने लगे। और बुद्ध कहते हैं हंसो मत, वह ठीक कहता है। क्योंकि सत्तर साल इसकी उम्र नहीं है। वह एक पहले आदमी हुआ करता था। वह चार साल पहले मर गया। अब यह एक दूसरा आदमी है। इसकी उम्र चार ही साल है।
तो वह अपने भिक्षुओं से कहते हैं कि तुम भी अपनी उम्र अब ऐसे ही गिनना। यही उम्र गिनने का नियम मानना। तो सारे भिक्षु उस बूढ़े को घेर लेते हैं और कहते हैं कि तुमने यह कैसे कहा? तो उसने कहा कि चार साल पहले मैं तो था ही नहीं। और जो था उससे मैं कोई संबंध नहीं जोड़ पाता। जो था वह क्रोध

करता था; जो था वह चिंतित होता था; जो था वह परेशान था; जो था वह दुखी था; जो था वह अंधेरे में खड़ा था; अंधा था; वह कुछ भी नहीं रह गया।
न मैं अब अंधा हूं; न मैं अंधेरे में खड़ा हूं; न मैं अशांत हूं; न मैं चिंतित हूं; न मैं दुखी हूं। जो इसके पहले था वह मौत से डरता था। और अब मैं जानता हूं कि मौत है ही नहीं, तो मैं वह कैसे हूं? यही चार साल मेरी उम्र है। यही चार साल पहले ही मैं पैदा हुआ हूं। मेरा यह जन्म दूसरा ही है। इसीलिए हम इस मुल्क में एक बहुत कीमती शब्द उपयोग किए थे--द्विज। द्विज का मतलब होता है: ट्वाइस बार, जिसका दुबारा जन्म हुआ हो। लेकिन धीरे-धीरे ब्राह्मणों ने उस पर कब्जा कर लिया। और वह ब्राह्मण द्विज हो गया। लेकिन द्विज का मतलब यह होता हैः जिसका फिर से जन्म हो गया। वह आदमी गया और यह एक दूसरा आदमी पैदा हो गया। लेकिन ब्राह्मणों ने एक तरकीब निकाल ली, और वह यह, उसको जनेऊ पहना दिया तो वह द्विज हो गया।
द्विज का मतलब तो बहुत कीमती है। ऐसा शब्द दुनिया में कहीं भी नहीं है। बड़ा गहरा है वह शब्द। यानी एक आदमी को, जिसने दुबारा जन्म ले लिया है उसको द्विज कहते हैं। यह एक ब्राह्मण भी है असल में, जिसने ब्रह्म को जान लिया लेकिन ब्रह्म को जानने के लिए दुबारा जन्म लेना जरूरी है। और दुबारा जन्म लेने के लिए पहले आदमी का मरना जरूरी है। नहीं तो, नहीं तो दूसरा आदमी कैसे पैदा होगा?
इसलिए ध्यान मरने की प्रक्रिया है और नये जन्म की भी। उसमें पुराना
तो चला ही जाएगा। ऐसा नहीं है कि आप ही ध्यान को उपलब्ध हो जाओगे। नहीं, ध्यान को उपलब्ध होते ही आप तो चले ही जाओगे। जो आएगा, वह इतना नया होगा कि पहचान भी लगानी मुश्किल हो जाएगी कि यह वही आदमी है। इसलिए बहुत कठिनाई होती है।
कठिनाई जो होती है सारी वह इसलिए होती है कि चेहरा वही रहेगा, आदमी वही रहेगा, और सब बदल गया। उसके भीतर का सब कंटेंट बदल गया। सिर्फ डब्बा वही रह गया। डब्बा तो वही है, उसकी आत्मा तो पूरी बदल गई जो उसके भीतर थी। तो जब मैं जन्म का कह रहा हूं तो मेरा मतलब यह है कि ध्यान को आप एक कंटीन्यूइटी मत मान लेना।
ध्यान एक डिस्कंटीन्यूटी है। पुराने की धारा टूट गई, और नये का जन्म हुआ। लेकिन चूंकि पुराने की धारा के करीब ही यह जन्म हुआ है इसलिए बाकी तो सब वही का वही रहेगा। और वह बाकी की वजह से हमारी कठिनाई जारी रहेगी। अब अगर, अगर एक, एक पति को ज्ञान उपलब्ध हो जाए तो पत्नी तो उसे पति माने चली जाएगी। वही अपेक्षाएं किए जाएगी जो कल उसने की थी। अगर एक पत्नी को ज्ञान उपलब्ध हो जाए तो पति उसे पत्नी माने चला जाएगा। वही अपेक्षाएं किए जाएगा जो उसने कल की थी। उसे पता ही नहीं कि सब कुछ बदल गया। और इतनी बड़ी मुश्किल और कठिनाई खड़ी हो जाती है।
जब कोई व्यक्ति ध्यान को उपलब्ध होता है तो वह एकदम से इस दुनिया में अजनबी, स्ट्रेंजर हो जाता है। क्योंकि यह दुनिया जिस ढंग को... उसको मान कर चलती थी अब वह आदमी ही नहीं रहा। वह उपाय नहीं रहा उसका कि वह उसी ढंग से बोले, चले, उठे, करे--उसके लिए उपाय नहीं रहा। एकदम स्ट्रेंजर हो जाता है वह आदमी। एकदम अजनबी हो जाता है। आउटसाइडर हो जाता है।
हमारी इस दुनिया से जहां हम सब इनसाइडर थे, वह एकदम आउटसाइडर हो जाता है। वह एकदम बाहर पड़ जाता है। उससे हमारा कोई ताल-मेल नहीं रह जाता। तो या तो वह एक्टिंग करता रहे, अभिनय करता रहे तो ताल-मेल बना रहता है, नहीं तो ताल-मेल नहीं रह जाता। यानी अब वह, अब वह, अब वह अगर पति है तो वह अब, अब फिर वही बातें कहता रहे, जो उसने कल भी कही थीं जब वह कुछ भी नहीं जानता था। हालांकि अब वह जानता है कि अब उसका कोई मतलब नहीं है, यह मैं क्या कह रहा हूं। लेकिन अब वह एक्टिंग करता रहे तो ठीक है। नहीं तो बहुत बेमौजी हो जाएगा। सब स्थिति गड़बड़ हो जाएगी।
तो ध्यानी को निरंतर रूप से अभिनेता हो जाना पड़ता है, नहीं तो बहुत मुश्किल हो जाए। वह खुद भी न जी सके और दूसरों के जीने में भी बाधा बनने लगे। उसे, उसे बिल्कुल ही अभिनेता हो जाना पड़ता है। क्योंकि अब वह अभिनय ही करेगा। अब भी वह पत्नी से कहेगा कि तुझसे ज्यादा प्रेम मैं किसी को

नहीं करता हूं। लेकिन अब यह बिल्कुल एक्टिंग है। अब इसमें कोई मतलब नहीं रहा। क्योंकि अब असल में वह या तो शरीर को प्रेम करता है या किसी को नहीं करता। अब यह उपाय नहीं रहा कि किसको करता है और कम-ज्यादा, कंपेयर भी नहीं कर सकता, कोई तुलना भी नहीं। लेकिन कहे वह यही चला जाएगा, नहीं तो अभी झंझट खड़ी हो जाएगी। ऐसी कठिनाई खड़ी हो जाएगी, क्योंकि वह पत्नी यह सोच ही नहीं सकती कि यह क्या हो गया है?
महावीर की जिंदगी में बहुत अदभुत घटना है। महावीर को यह क्रांति घट गई। उन्होंने अपनी मां को जाकर कहा कि मुझे आज्ञा दे दो, मैं संन्यासी हो जाऊं। अब यह अभिनय ही था। क्योंकि इस ध्यान के बाद कौन मां है? किससे आज्ञा लेनी? और संन्यास भी कहीं आज्ञा लेकर लिया जाता है? संन्यास के लिए भी कोई किसी से पूछना पड़ेगा कि मैं संन्यासी हो जाऊं? लेकिन महावीर ने कहा कि मुझे आज्ञा दे दो, मैं संन्यासी हो जाऊं। मां ने कहा कि मेरे सामने दुबारा ये शब्द मत निकालना। जब तक मैं जीवित हूं तब तक यह बात मत करना। यह मैं बरदाश्त ही नहीं कर सकती, उसी वक्त मर जाऊंगी। तो तुम्हें मेरे मरने तक रास्ता देखना पड़ेगा। तो महावीर ने कहा, ठीक है। कोई जल्दी भी न थी। क्योंकि बात तो हो गई थी, इसलिए कोई जल्दी भी न थी। मां की मृत्यु हो गई। मरघट से लौटते ही अपने बड़े भाई को कहा, कि अब मैं, अपने घर ही लौट रहे हैं रास्ते में--कि अब मैं संन्यासी हो जाऊं। तो बड़े भाई ने कहा, तुम पागल हो गए हो? हम पर इतना बड़ा आघात पड़ा है कि मां और पिता चल बसे। और तुम भी एक ही मेरे भाई। तुम्हीं मुझे छोड़ कर चले जाओगे? यह बात भी मत करना। तो महावीर ने कहा, जैसी मर्जी। फिर उन्होंने बात भी नहीं की। लेकिन वह घर के लोगों को धीरे-धीरे पता चलना शुरू हुआ कि महावीर तो चले गए। रहते हैं घर में, लेकिन हैं नहीं। और वे घर में रहते हैं वहीं। लेकिन धीरे-धीरे वह छाया की तरह, शैडो की तरह हो गए। न वे किसी को दखलअंदाजी देते हैं, न वे किसी को कहते हैं कि यह करो, और यह मत करो; न वे घर के किसी काम में भागीदार हैं; न घर की इज्जत को बढ़ाते हैं, न घटाते हैं; न घर में धन लाते हैं, न कमाते हैं। वे कुछ भी नहीं करते हैं, वे बिल्कुल छाया की तरह रहने लगे हैं वे। जैसे धर्मशाला है वह घर, या कोई सराय है, या कोई सपना है। अब उसमें वे कोई उठते हैं, बैठते हैं, चले जाते हैं, खाने को कोई कहता है, खाना खा लेते हैं, सो जाते हैं। दो- चार वर्ष बीते, घर के लोग इकट्ठे हुए उन्होंने कहा कि, अब लोगों ने कहाः कोई मतलब ही नहीं, वह जा ही चुका है। कि अब, अब रोक कर भी क्या मतलब है? सिर्फ इस घर में मौजूद हैं शरीर की तरह से, उसने भी क्या कहा। तब वहां (17 : 36 अस्पष्ट...) ने कहा कि अब आप रुके ही नहीं हैं, जा ही चुके हैं, तो हम बाधा न देंगे। तब महावीर उठ कर चल दिए।
मेरी समझ यह है कि यह आदमी पूरी जिंदगी भी रुक सकता था। अगर वे कहते कि रुक जाओ तो रुका रहता। लेकिन, वह जो घटना थी वह घट ही गई थी। लेकिन अब इसके लिए यह सब एक्टिंग का ही हिस्सा था। घर में होना या बाहर होना है। रहना कि न रहना। लेकिन हमारी तकलीफ सबकी जो है, वह यह है कि जब किसी व्यक्ति में ऐसी घटना घटे तो हमें, हमें तो पता नहीं चलता। जो बाहर से खड़े उसको देख रहे हैं, हमें तो पता लगता है कि वही आदमी है, आगे बढ़ा जा रहा है। लेकिन भीतर सब बदल गया है। और यह बदलाहट इतनी तीव्र है कि यह धीरे-धीरे नहीं हुई। क्योंकि धीरे-धीरे जब भी होगी तो विकास होगा। धीरे-धीरे क्रांति नहीं होती।
क्रांति तत्क्षण होती है। एक क्षण में सब हो जाता है। इधर से उधर हो जाते हैं आप। इसलिए मैंने कहा। जन्म से मेरा मतलब यह है कि छलांग कि जिसमें बीच में आप चलते ही नहीं, कदम नहीं रखते बीच में। एक जमीन के टुकड़े पर आप थे और फिर एक छलांग हो गई। और जमीन के दूसरे टुकड़े पर आप हैं। और बीच के टुकड़े पर आप चले ही नहीं। उसमें आपने कोई कदम नहीं रखे। इसलिए पुराना जमीन का टुकड़ा और नये जमीन के टुकड़े में कोई जोड़ नहीं है। आप छलांग लगा गए हैं। आप कूद गए हैं, इसलिए मैंने जंप की बात कही।

प्रश्नः 19: 15 (पंजाबी भाषा में प्रश्न हैं। ध्वनि-मुद्रण अस्पष्ट)कारण दा छलांग का एक फीका फासला वो नहीं रइया, वो इनसान नहीं रइया,

वो जीवन, वो आत्मा नहीं, मगर कारण बन गया कारण... मेरा मतलब है छलांग दा कारण हो, ये फीका छलांग से कुछ नहीं होने कीत्ता। बड़ा कुछ कीत्ता, 19 : 51

यह भी समझने की बात है। यह भी समझने की बात है। यह बहुत समझने की बात है। और बहुत कठिन है समझना। एकदम कठिन बात है। कठिन इसलिए है कि हमें यह लगता है कि माना कि यह छलांग हो गई, लेकिन इसमें कुछ किया होगा, उससे कारण बना होगा, उस कारण से छलांग हुई। अगर कारण से छलांग हुई तो कंटीन्यूटी जारी है। अगर कारण से छलांग हुई तो फिर सातत्व जारी है। फिर छलांग नहीं हुई, फिर विकास ही हो रहा है।
और यह समझना इसलिए कठिन है कि हम बिना कारण के कोई चीज समझ ही नहीं सकते। इस जिंदगी में जहां हम जी रहे हैं, सब चीजों का कारण है। कारण है, उसके बिना कुछ भी नहीं हो सकता। इस जिंदगी में, जिसको हम जी रहे हैं, वहां हर चीज का कारण है। कारण है, फिर उसका कार्य है, कॉ.ज है, फिर उसका इफेक्ट है। हमने बीज बोया है इसीलिए वृक्ष हुआ है। बीज और वृक्ष में कोई छलांग नहीं है। क्योंकि बीज ही तो वृक्ष हुआ है। अगर बीज हम न बोते तो वृक्ष न होता। तो बीज और वृक्ष में कोई छलांग नहीं, विकास है। फिर वृक्ष में बीज लग जाएंगे वह भी छलांग नहीं, वह भी विकास है। इस जिंदगी में, जिसको हम जानते हैं, विज्ञान जिस जिंदगी को जानता है उसमें तो कॉ.ज और इफेक्ट है। और यही है रिलीजन और विज्ञान का फर्क है। यह बहुत गहरा फर्क है।
विज्ञान कहता है, बिना कारण के कुछ भी न होगा। और रिलीजन कहता है, सब अकारण है। यह जो बहुत गहरा फर्क है। विज्ञान कहता है कि बिना कारण के कुछ होता नहीं। कारण हो जाएगा तो घटना घट जाएगी। और धर्म यह कहता है कि सब अकारण है। अकारण क्यों कहता है? क्योंकि धर्म को अपनी तकलीफ है।
धर्म को तकलीफ यह है कि वह अल्टीमेट, आखिरी चीजों को खोज रहा है। अजीब-अजीब न जाने क्यूं... मैं इसलिए पैदा हुआ कि मेरे पिता कारण बने, मेरी मां कारण बनी। मेरे मां और पिता पैदा हुए, उनके पिता और मां कारण बने। इसको हम खोजते चले जाएं, खोजते चले जाएं। लेकिन यह पूरा जगत किस कारण से पैदा हुआ है? कठिनाई खड़ी हो जाएगी इस पूरे जगत का कारण खोजने में। अगर कोई कहे कि भगवान भी कारण से पैदा हुआ है तो भगवान के साथ कठिनाई खड़ी हो जाएगी, कि भगवान के पैदा होने का क्या कारण है?
तो भगवान को हम कहेंगे, अनकॉ.ज्ड। उसका कोई कारण नहीं, वह बस हुआ। वह
बस हुआ, उसका कोईर् कारण नहीं है। या जो भगवान को नहीं मानता, वह कहेगाः यह जगत हुआ है। इसका कोई कारण नहीं है। यह छलांग न होने से, होने में इसका कोई कारण नहीं है। इसका कोई कारण नहीं। क्योंकि अगर हम कारण खोजेंगे तो फिर तो अंत ही नहीं आता। इसका कोई अंत नहीं आता।
और जब एक, एक व्यक्ति को छलांग लग जाती है, जीवन बदल जाता है, नया जीवन
हो जाता है तो जो पीछे खड़े हैं वे वहां भी कारण खोजेंगे। वे वहां भी कारण खोजेंगे, यह आदमी बदल क्यों गया? इसकी पत्नी मर गई। इसके चित्त में दुख हुआ, विराग आ गया। लेकिन अनेक लोगों की पत्नियां मर जाती हैं, और विराग नहीं आता। बल्कि दूसरी पत्नी की तलाश शुरू हो जाती है। कोई कहेगा, इसके घर में आग लग गई, धन नष्ट हो गया, इसको विराग आ गया। लेकिन कितनों के घरों में आग लगती है, कोई विराग नहीं हो जाता। यह कोई भी कारण नहीं है।
अगर यही कारण है तो यह आदमी बदला ही नहीं है। यह आदमी वही का वही है। मकान नहीं जला था तो मकान में रहता था, मकान जल गया तो संन्यासी हो गया। यह आदमी वही का वही है। पत्नी नहीं मरी थी तो पत्नी के साथ रहता था, पत्नी मर गई तो अब पत्नी के साथ नहीं रहता। आदमी वही का वही है। उसमें कोई फर्क नहीं हो गया। नहीं, हमारी जिंदगी में एक अनकॉ.ज्ड जंप भी है। अनकॉ.ज्ड, जिसके लिए हम कोई कारण न बता सकेंगे कि इस कारण ऐसा हुआ। अगर कारण बता सकेंगे तो फिर सिलसिला शुरू हो गया, वह फिर जंप नहीं रही।
माना कि हमारी और सारी जिंदगी जुड़ी हुई है। अगर हम प्रेम करते हैं तो कारण है; अगर घृणा करते हैं तो कारण है; अगर किसी से दोस्ती बनती है तो कारण है; दुश्मनी बनती है तो कारण है। हमारी जिंदगी में सब कारण हैं सिर्फ एक जगह जाकर--जहां कि आखिरी छलांग लगती है; जहां न किसी से दुश्मनी रह जाती है,

न दोस्ती रह जाती है; और न किसी से प्रेम रह जाता है, और न घृणा रह जाती है; जहां न कोई अपना रह जाता है, न कोई पराया रह जाता है; वहां अनकॉ.ज्ड, अकारण कुछ होगा। समझना हमें मुश्किल है, क्योंकि समझ कहेगी कि बिना कारण हो कैसे सकता है?
क्योंकि समझ कारण मांगेगी ही। वह कहेगी कि होगा कोई कारण जरूर छिपा हुआ। कारण का पता लगाना पड़ेगा। और इस कारण के पता लगाने से बहुत दिक्कतें पैदा हुई। दिक्कतें इसलिए पैदा हुई कि हम जब पता लगाने जाते हैं तो हमें कुछ न कुछ कारण मिल जाता है।
जैसे कि हमने पता लगाया कि पत्नी मर गई, यह कारण था एक आदमी को क्रांति
हो जाने का। तो हम सोच सकते हैं हम अपनी पत्नी को मार डालें, तो क्रांति हो जाए। एक आदमी के घर में आग लग गई तो वह घर के बाहर निकल गया तो मैं घर में आग लगा दूं, तो मेरी जिंदगी में क्रांति हो जाए। हमें लगता है कि एक आदमी ने धन-दौलत को लात मार दिया तो लात मारने से उसके जीवन में बड़ी शांति आ गई, तो मैं भी लात मार दूं तो शांति आ जाए।
नहीं आएगी। सिर्फ धोखा हो जाएगा। वह जो कारण हमने खोजा है, वह हमने खोज लिया है। क्योंकि वह जो आखिरी, अल्टीमेट जंप है वह बिल्कुल अकारण है। और इसलिए भी अकारण है कि अगर उसमें कारण हो तो कल कारण पीछे हट जाए तो जंप वापस लौट सकती है। अगर कोई भी कारण से मेरे मन में, कोई भी कारण से मैं परमात्मा में प्रवेश किया तो अगर कल वह कारण न रह जाए, तो मुझे वापस लौट आना पड़े। यानी कल मुझे पता चले जंगल में कि मेरी पत्नी मरी नहीं थी, बेहोश थी, वह होश में आ गई है, मरघट से लोग घर वापस ले आए हैं--तो मैं भाग कर घर आ जाऊं। मुझे पता चले कि वह जो मकान में आग लग गई है वह इंश्योर्ड था, मुझे पता नहीं था लड़के ने उसे इंश्योर किया हुआ था, मैं नाहक जंगल में आ गया हूं, सब पैसा मिल गया है मकान का, दूसरा मकान बन रहा है--मैं वापस लौट आऊं।
मेरा मतलब समझ रहे हैं न? मैं यह कह रहा हूं कि अगर कहीं कोई कारण है
तो वापस लौटने की निरंतर संभावना है। लेकिन परमात्मा से कोई कभी वापस नहीं लौटता, क्योंकि वह अकारण घटना है। लेकिन हमारी समझ का नियम यह है कि बिना कारण के समझ राजी न होगी। समझ कहेगी कि कारण होना ही चाहिए। कारण होना ही चाहिए क्योंकि समझ, समझ का सूत्र यह है कि वह कहती है कि अनकॉ.ज्ड हो ही नहीं सकता।
समझ, इसीलिए समझ के बाहर है परमात्मा; इसीलिए समझ के बाहर है धर्म, समझ
के बाहर है ध्यान, वह बियोंड अंडरस्टैंडिंग है। उसका कारण ही यह है कि समझ के नियम हैं अपने, और वे नियम बहुत सख्त हैं। वे नियम कहते हैं कि नियम के विपरीत तो कुछ हो ही नहीं सकता। हर चीज का कारण होता है। आपको पता न हो लेकिन बीज बोया गया होगा तभी वृक्ष हुआ है, नहीं तो वृक्ष हो ही नहीं सकता। यह बिल्कुल ठीक कहती है समझ। वह कहती है पानी गर्म किया गया है इसलिए भाप बना होगा। यह तो हो ही नहीं सकता कि गर्म न किया गया हो और भाप बन गया हो। इसलिए समझ धीरे-धीरे वैज्ञानिक हो जाती है। और जितनी समझ दुनिया में बढ़ती है, धर्म कम हो जाता है। उसका कारण है। क्योंकि समझ जब सब जगह मांग करने लगती है तो वह एक चीज जो अनकॉ.ज्ड है, वह उसके बाहर पड़ जाती है। और वह उसको इनकार कर देती है कि नहीं, यह हम न मान सकेंगे। यह हम न मान सकेंगे। क्योंकि यह बात... सारी चीजें तो नियम के भीतर हैं। यह एक ही बात नियम के बाहर क्यों होगी?
लेकिन अगर यह बात भी नियम के भीतर है तो धर्म खत्म हो जाएगा किसी दिन। क्योंकि विज्ञान इसको भी पकड़ लेगा। आज विज्ञान ने पकड़ लिया है कि आपके भीतर मलेरिया है तो कारण है उसका कि यह पॉय.जन आपके भीतर चला गया है, यह कीटाणु आपके भीतर चला गया है। हम इसका उलटा कीटाणु भीतर डाल देते हैं, इसको हम खत्म किए देते हैं। मलेरिया वहां खत्म हो जाएगा। प्लेग खत्म हो जाएगी। क्योंकि सब चीज का कारण हम खोज लेंगे। अगर किसी दिन हमने यह कारण भी खोज लिया, खोज लिया कि महावीर या बुद्ध या कृष्ण में क्रांति कैसे हो गई? तो हमने इसका कारण खोज लिया तो उस कारण का इंजेक्शन हम किसी को भी दे देंगे, उस कारण का। क्रांति हो जाएगी।

धर्म तो यह कहता है कि ऐसा हो ही नहीं... धर्म तो यह कहता है कि यह हो ही नहीं सकता कभी कि आप बाहर से इसको मैनेज नहीं कर सकते। यह अनमैनेजिएबल है। लेकिन धर्म समझा नहीं पाता है। इसलिए धर्म बहुत लचर मालूम पड़ता है जब कोई वैज्ञानिक तर्क करने लगता है उसके साथ, तो वह बड़ी मुश्किल में पड़ जाता है। अब वह यह नहीं बता पाता है कि कैसे यह हुआ? वह इतना ही कह सकता है कि बस यह हुआ। न हमने कुछ किया था, न कोई कारण था। बस यह हुआ। और इसलिए फिर धार्मिक आदमी ने एक भाषा को विकसित कर लिया है। जिसने उसे और दिक्कत में डाल दिया। वह कहता हैः परमात्मा की कृपा से हुआ। उसका कुल मतलब इतना ही है कि अनकॉ.ज्ड है।
वह जो धार्मिक आदमी है कहता है कि वह उसकी कृपा से हुआ, वह यही कह रहा
है कि कोई कारण तो दिखाई पड़ता नहीं। अपने में कोई पात्रता नहीं दिखाई पड़ती। अपनी समझ के भीतर नहीं मालूम पड़ती। हुआ है जरूर। तो अब फिर एक ही रास्ता है कि उसकी कृपा से हुआ होगा।
मगर यह भी उसने कारण खोज लिया। उसने कारण खोज लिया तो फिर दूसरे लोग उसकी कृपा पाने चले गए। वे कह रहे हैं मंदिर में हम घुटने टेक कर सिर रखे रहेंगे तुम्हारे चरणों में। हम पर भी कृपा करो न? इस आदमी पर कृपा कर दी। नहीं, लेकिन मैं कह रहा हूं कि कृपा से भी नहीं हुआ क्योंकि वह भी कारण
ही खोजना है। नहीं, इस, इस तथ्य को अकारण ही स्वीकार कर लेना होगा। यह हो जाता है। और जब हो जाता है तब पता चलता है कि कोई भी तो कारण नहीं है। छलांग हो गई। लेकिन जब तक छलांग न हुई हो, तब तक हम कारण की दुनिया में जीते हैं। जो मन के सोचने का ढंग हैः वह कॉ.ज और इफेक्ट का है। वह बिना कारण के सोच ही नहीं सकता। कि जब तक मन की दुनिया में जीते हैं, हम कहेंगे कि नहीं। यह बात जंचती नहीं। यह मैं भी कहूंगा कि जंचती नहीं। यह मैं भी कहूंगा, यह मैं भी कहूंगा कि जंचती मुझको भी नहीं है यह बात। लेकिन अब इसमें कोई उपाय नहीं है, जंचे या न जंचे; होता ऐसा ही है कि अकारण है बिलकुल--तभी जंप है।
जंप का आप मतलब समझे?
अनकॉज्ड होगा तो ही जंप होगा। अगर कारण होगा तो फिर विकास होगा। कारण
न होगा तो क्रांति होगी। और जब कारण के बिना हो जाएगा तभी नये का जन्म होगा। कारण कभी भी पुराने से छुटकारा नहीं लेने देगा। कारण का मतलब ही है कि पुराना मौजूद रहा है। 31ः00... (अस्पष्ट)वह जो था, वह है मौजूद, बीज था, वह पुराना था, उसमें से वृक्ष निकल आया।
लेकिन यह वृक्ष है उसी बीज का। इसमें कुछ नया नहीं है। यह सब उस बीज में छिपा था वह मैनिफैस्ट हो गया, वह प्रकट हो गया। लेकिन है पुराना ही, नया कुछ भी नहीं है। इसलिए अगर विज्ञान की भाषा को हम समझें तो नया कुछ भी नहीं है, सब पुराना है। वह पुराने में छिपा था, प्रकट हो गया। आप कोट पहने थे, आपने कोट निकाल दिया। नया क्या है? आपका शरीर दिखाई पड़ने लगा। बीज ने कोई कोट पहन रखी थी, वह निकल गया है, वृक्ष दिखाई पड़ने लगा। बीज नंगा हो गया तो वृक्ष दिखाई पड़ने लगा। इसने एक कोट पहन रखी थी जो जमीन में गल गया, टूट गया, बिखर गया और भीतर जो छिपा था वह बाहर निकल आया।
एक मां के पेट में बच्चा है। वह अभी छिपा है, अभी दिखाई नहीं पड़ रहा।
कल वह पैदा हो जाएगा। बाकी पुराना ही है वह, नया क्या है? असल में कॉ.ज जहां तक काम कर रहा है वहां तक नये की कोई संभावना नहीं है। कॉ.ज का मतलब यह हैः डिटरमिंड बाय द ओल्ड। कॉ.ज का मतलब यह होता है कि पुराने के द्वारा निर्धारित। लेकिन यह जो अनुभव है--मुक्ति का अनुभव कहें, सत्य का कहें, परमात्मा का कहें, निर्वाण का कहें--यह, यह पुराने के द्वारा निर्धारित नहीं है।
यह पुराने से एकदम ही बिछड़ जाना है। यह तकलीफ है, पुराने से टोटली अलग
हो जाना है। उसमें इतना सा भी सूत्र नहीं बचता पुराने का, जिसको हम कह सकें कि यह कारण रहा। नहीं, यह पुराने से एकदम ही अलग हो जाता है। पुराने से जो एकदम अलग हो जाना है उससे हमारा कोई संबंध ही न रहा। यानी कहीं कोई जरा सा भी ब्रिज नहीं है जिस पर कि चल कर हम आ गए हों। अगर ब्रिज है तो कंटीन्यूटी हो गई। ब्रिज नहीं है। गैप है, एबिस है, खाई है। और एकदम हमने पाया है कि पुराना नहीं है, और नया हो गया। इसीलिए समझ के बाहर है मामला।

प्रश्नः (33ः 30) पंजाबी भाषा में, अस्पष्ट...)

क्यूं कह रहा हूं, क्यूं कह रहा हूं, क्योंकि हमारा मन जो है, उसके लिए तत्काल बात समझ के भीतर हो जाती है। जैसे कि हम कहें कि करते-करते, करते- करते ऐसा क्षण आ जाता है कि हो जाता है। लेकिन करते-करते के कारण ही आता है क्षण। तो फिर बात गड़बड़ हो गई।
नहीं, उसके कारण नहीं आता। यानी मैं यह कहता हूं कि न करते, करते, करते
भी क्षण आ जाता है। मैं यह नहीं कहता हूं कि करते-करते ही आ जाता है, न करते- करते भी आ जाता है। एक आदमी प्रार्थना करते-करते भी छलांग ले लेता है, और एक आदमी बिना प्रार्थना किए भी छलांग पा जाता है; और एक आदमी गीता को पढ़ते- पढ़ते भी छलांग पाता है, और एक आदमी गीता को फेंक कर भी छलांग पा जाता है। कारण जैसी कोई चीज नहीं पता चलती।
और जब कोई आदमी उस छलांग में उतर जाता है तब वह एकदम मुश्किल हो जाता है। उससे हम पूछने जाएं, कैसे हुआ? हाउ डिड इट हैपन? यह, यह नहीं बता सकता। बता नहीं सकता, इसका यह मतलब नहीं है कि उसे पता है, बताया नहीं जा रहा। वह यह, यह भी अगर कहे कि मुझे पता नहीं, कि इसका यह मतलब नहीं कि उसको पता नहीं है। होगा जरूर कोई कारण। न, नहीं बता सकते का मतलब यह है कि कोई कारण ही नहीं, बस यह हो गया है।
इट है.ज हैपंड। इसके लिए कभी कहीं कोई सूत्र नहीं मिलता। इसका कोई, कहीं कोई रास्ता ही नहीं है। और अगर बुद्धि को यह खयाल में भी आ जाए कि यह संभव है तो अभी छलांग हो सकती है। लेकिन जब तक बुद्धि को, बुद्धि हमेशा बाधा डालेगी इसलिए छलांग में। वह कहेगी कि नहीं, कुछ न कुछ रास्ता होगा जो हमें पता नहीं। जो पहुंच गए हैं वह कहीं से पहुंचे होंगे। जरूर पहुंचे होंगे कहीं से। हो सकता है उनको भी पता न हो। लेकिन रास्ता तो होगा ही। हो सकता है वह धक्का-मुक्की खाकर ही रास्ते पर पड़ गए हों। हो सकता है आंखें बंद रही होंगी, चलते-चलते उस जगह पहुंच गए होंगे। लेकिन कोई जगह होगी जहां से यह हुआ है। जहां से यह हो सकता है। हमको भी पता लगाना चाहिए कि वह जगह कहां है? वह रास्ता कहां है? वह, वह ब्रिज कहां है? उन्होंने कौन सा आधार रखा? किस जगह पर खड़े होकर, जंपिग बोर्ड क्या था उनका? जिस पर से खड़े होकर वे छलांग लगा गए। उस बोर्ड को हमें भी खोज लेना पड़ेगा। हमारी बु.द्ध यह कह कर ही हमको दिक्कत में डाल देती है। फिर हम उसी काम में लग गए। नहीं, बुद्धि ठप्प हो जाएगी।
जिस दिन अकारण होती है घटना, इसका जरा सा भी खयाल पैदा हो जाएगा तो बुद्धि एकदम ठप्प हो जाएगी, जाम हो जाएगी। बुद्धि कहेगीः अपने बस के बाहर बात हो गई। अपने बस के भीतर थी जब तक कार्य-कारण का संबंध था, अपने बस के बाहर हो गई। और अगर बुद्धि इतना समझ ले कि अपने बस के बाहर हो गई तो बुद्धि हट जाती है मार्ग से, नहीं तो बुद्धि नहीं हटती।
और मजा यह है कि जो मैं आपको समझा रहा हूं, मैं भी जानता हूं कि वह जंच नहीं सकता। यह, यह मामला नहीं है कि मैं जब आपको समझा रहा हूं तो मैं यह समझ रहा हूं कि आपको जंच जाएगा। यह मैं नहीं मानता हूं। मुझे भी कोई यह समझाता तो मैं भी नहीं मान सकता था। यह जो मुझे भी कोई समझाता तो मैं भी उससे लड़ जाता कि आप गलत कह रहे हो, मैं उसको सिद्ध कर देता कि गलत है यह बात। बिना कारण के कैसे होगा?
लेकिन जो हुआ है, वह बिना कारण हुआ है। इसलिए, और इसलिए उसमें कोई पात्र-अपात्र नहीं है। उसमें कोई दावेदार नहीं हो सकता कि मुझको हो जाएगा, तुमको नहीं हो सकता। तुम अपात्र हो। तुम बीड़ी पीते हो, तुमको नहीं हो सकता; कि तुम वेश्या के घर देखे गए हो, तुमको नहीं हो सकता; तुम रात में खाना खा लेते हो, तुमको नहीं हो सकता। कि तुमको क्या होगा? इसलिए, इसलिए मैं बहुत कठिनाई में रहता हूं। कठिनाई में यह रहता हूं कि मैं, यह... कहीं कोई कारण नहीं। कहीं कोई कारण नहीं होता।
लेकिन इस जगत में ऐसी घटना भी है जो अकारण है। और वही घटना स्प्रिचुअल
है जो अकारण है; वही मिरेकल है जो अकारण है; वही चमत्कार है जो अकारण है। और

जहां तक कारण है, वहां तक धर्म का कोई संबंध नहीं। वह तो लेबोरेटरी और विज्ञान की बात है। वह सब पता लगा लेंगे। वह सब पता लगा लेंगे, वह तो इसकी तो फिकर है ही नहीं।
वह तो पूरे वक्त यह कहते हैं कि बुद्ध जैसे आदमी में हार्मोन अलग तरह
के हैं। वह तो उसका कारण पता लगाने में लगे ही हुए हैं पूरे वक्त। वे तो यह कहते हैं कि बुद्ध के व्यक्तित्व में हार्मोन का भेद है। केमिकली बुद्ध के शरीर में हार्मोन दूसरे ढंग के हैं। तो वे हार्मोन अगर किसी दिन बुद्ध का पूरा कंपोजिशन पता चल जाए कि पूरे शरीर में क्या-क्या हार्मोन किस-किस मात्रा में थे तो हम बुद्ध पैदा कर लेंगे? विज्ञान का तो मानना ही यह है। यह तो पकड़ ही यह है। यह सवाल ही नहीं है इसको पूछने का, क्योंकि कारण तो होने ही चाहिए। हां, अगर हम बुद्ध को पूरा डिसेक्ट कर सकें किसी दिन, और उसका सब खोज-बीन करके सब हमने पता लगा लिया, हमको पता चल गया कि इसमें इतनी मात्रा में यह चीज है, इतनी मात्रा में यह चीज, इतनी मात्रा में यह, उतनी मात्रा में किसी में भी कर देने से बुद्ध पैदा होगा।
लेकिन यह, यह सोचना भी बहुत कष्टपूर्ण है कि अगर किसी दिन ऐसा संभव हो जाए कि हम बुद्ध को लेबोरेटरी में पैदा करने लगें, उस दिन यह जगत और भी बेमानी हो जाएगा। क्योंकि उस दिन फिर बुद्ध का भी कोई मतलब न रह जाएगा। उस दिन किसी के ज्ञान को उपलब्ध करना भी व्यर्थ की बकवास हो गई। उसका कोई मतलब न रहा। मैं तो यह, मेरी... यह बिल्कुल ही इररेशनल बात है, इसमें कोई भी, इसमें कोई तर्क और बुद्धि की बात नहीं है।
इस मामले में बिल्कुल इररेशनल हूं। एकदम मूढ़ों से राजी हूं इस मामले में। यह जो मामला हैः यहां छलांग घटती है, जहां कोई कारण नहीं है। वह हम बिल्कुल पता लगा लें बुद्ध का, सारे शरीर का, और सब शरीर निर्मित कर दें, फिर भी बुद्ध घटित नहीं होगा।

प्रश्नः (पंजाबी भाषा 39 : 53)

इसलिए उसको अकारण ही... और अकारण के साथ बड़ी कठिनाई है। मेन कठिनाई यह
कि बुद्धि कहेगी कैसे? बुद्धि का, बुद्धि का मेथड सदा कारण है। उसका ढंग सोचने का यह है कि कारण पता चलाओ। हुआ है तो कारण होगा। इसीलिए तो बुद्धि परमात्मा तक नहीं पहुंच पाती। क्योंकि परमात्मा अकारण है। अगर बुद्धि वहां तक पहुंच जाएगी, तो वह बुद्धि वाला पूछता है कि परमात्मा का होने का कारण क्या है? इसने दुनिया बनाई तो इसका कारण क्या है? आपमें किसी के साथ आपके जीवन में प्रेम हुआ तो कारण क्या है? कारण होना चाहिए। वह सारी चीजों के कारण खोज रहा है। आप हुए तो कोई कारण होना चाहिए।
तो बुद्धि ने कारण का बहुत जाल फैलाया है। हमारा पुनर्जन्म है, कर्मवाद है, वह सब कारण का फैलाव है। उसमें, उसमें सब साइंटिफिक बातें है वे। वह सब कारण का ही फैलाव है। हम यह कह रहे हैं कि पिछले जन्म में इस आदमी ने यह काम किया था, इसीलिए यह आदमी ऐसा हो गया है। कारण खोज रहे हैं। और इसलिए मैं कहता हूं कि पुनर्जन्म, कि कर्म का सिद्धांत, कोई भी आध्यात्मिक बातें नहीं हैं। आध्यात्मिक बात तो वहीं से शुरू होती है जहां से बुद्धि जवाब देना शुरू करती है। कहती हैः हमारा समय, अब इसकी जगह हमारी यात्रा न रही। यहां अगर जाना है तो हमको छोड़ कर जाना पड़ेगा।
अगर धर्म में प्रवेश करना है तो बुद्धि को एक जगह छोड़ कर जाना पड़ेगा। जैसे मंदिर के बाहर जूते उतार आते हैं, ऐसे ही प्रभु के मंदिर के बाहर बुद्धि को उतार कर रख आना पड़ेगा। और वह सबसे अड़चन तभी आती है जब यह कारण का सवाल उठता है। क्योंकि तभी बुद्धि कहती है कि क्या तुम गलती कर रहे हो? कहां पागल होने जा रहे हो? पागल हो जाओगे। मुझे साथ रहने दो, मैं जांच-पड़ताल करती रहूंगी कि बात ठीक है कि नहीं। हम जरा जांच-पड़ताल कर लेंगे कि भगवान सच्चा है कि नहीं? जो बैठा है झूठा तो नहीं है? क्योंकि मुझे छोड़ कर तुम पता कैसे लगाओगे?

तो बुद्धि कहती है कि मुझे साथ रखो। हर वक्त मुझे साथ रखो। उसका दावा
है और वह हमको जंचता भी है। क्योंकि हम उसके अभ्यासी हैं। लेकिन एक और दावा भी है।

प्रश्नः ब्रेन बदले जा सकते हैं?

ब्रेन बदले जा सकते हैं। असल में क्योंकि ब्रेन जो है, ब्रेन कोई आध्यात्मिक चीज नहीं है, बिल्कुल मैटीरियल है। बदला जा सकता है। बिल्कुल बदला जा सकता है। लेकिन यह जो घटना है, यह ब्रेन की घटना नहीं है। यह जो घटना है, यह उसमें भी घट सकती है जिसमें बुद्धि नाम की चीज नहीं थी; स्कूल में फेल हो गया; परीक्षा में कभी आंकड़े नहीं मिले; कभी नंबर नहीं लगा, उसको भी घट सकती है। यह ब्रेन का मामला नहीं है। ब्रेन का मामला होता तो आइंस्टीन को घटनी चाहिए। तो कबीर को घटना मुश्किल हो जाए। क्योंकि कबीर के पास काहे का ब्रेन? मैट्रिक भी फेल हो जाएं बिठाओ उनको तो।
हां, यह मिरेकल है। यह ब्रेन का मामला नहीं है। ब्रेन का मामला हो तो, अक्सर तो उलटा मामला है। जितना बुद्धिमान आदमी हो उतना मुश्किल होता है धार्मिक होना उसका। क्योंकि उसकी बुद्धि कहती हैः ये बातें कुछ अटपटी मालूम होती है, यह कुछ जमती नहीं है। यह सब उलटा मामला मालूम पड़ता है। यह कुछ बात ठीक नहीं मालूम पड़ती।
तो ब्रेन तो बदला जा सकेगा। बदला जा रहा है। ब्रेन तो बहुत छोटी-छोटी चीज से बदला जा रहा है। ब्रेन का तो कोई मामला नहीं, क्योंकि ब्रेन तो बिल्कुल ही फिजिकल, शारीरिक बात है। उसमें जो सब चीजें हैं, तत्व हैं, उन सबको बदला जा सकता है। मगर फिर भी आपके पास कितना ही अच्छा ब्रेन हो इससे क्रांति नहीं हो जाती। वह क्रांति, बात ही अलग है। वह कभी मूढ़ में भी हो जाती है, और कभी बुद्धिमान में भी नहीं होती; कभी बड़े से बड़ा बुद्धिमान सिर पटक-पटक कर मर जाता है, और कभी बिल्कुल बुद्धिहीन गति कर जाता है।
ऐसा भी नहीं है कि बुद्धिहीन होने से गति हो जाएगी। अगर ऐसा होता तो भी... ऐसा भी नहीं है कि हम कोई बुद्धिहीन हो जाएंगे तो गति हो जाएगी। फिर कारण मिल जाएगा, फिर कारण मिल जाएगा। नहीं वैसा भी नहीं है। यह तो, वह भी मामला वही का वही है। तो बुद्धि थोड़ी कम की जा सकती है अगर, अगर बुद्धिहीन गति करते हों तो ब्रेन को थोड़.ा सा कम किया जा सकता है। उसको डैमेज किया जा सकता है। उसके कुछ हिस्से तोड़े जा सकते हैं, बिगाड़े जा सकते हैं। तुम बुद्धिहीन हो जाओगे। लेकिन बुद्धिहीन भी बैठा रह सकता है। उसको भी नहीं हो जाता है।
इसलिए मैं कह रहा हूं कि कारण खोजना असंभव है। कारण है ही नहीं। अकारण है। और अगर यह खयाल आएगा, अगर यह खयाल भी आ जाए कि अकारण है तो इससे बड़ा रास्ता साफ हो जाएगा। क्योंकि तब सब भय मिट जाएं। सब सहारे छूट जाएं। जब गुरु को पकड़ने की जरूरत न रह जाए। यह मेथड का उपयोग करें, कि यह मेथड का करें; कि यह कर्मयोग करें; कि ध्यान करें; कि भक्ति करें--यह सब छूट जाएगा। और अगर इस क्षण में एक क्षण भी हम रुक जाएं कि ठीक है भई, तो अकारण हो जाता है। इसमें मेरा कोई बस नहीं है। हेल्पलेस है, तो अहंकार के लिए गति न रही। मैं कुछ कर लूं, कारण हो तो अहंकार के लिए गति है। वह कहेगा कि इंतजाम किए देते हैं। कर लेंगे इंतजाम, आज नहीं कल कर लेंगे। फिर गति न रही, ठप्प हो गया। एक डेड एण्ड आ गया। और यह डेड एंड जितनी जोर से आ जाए, जंप हो जाए, लेकिन फिर भी कारण और कार्य का संबंध नहीं है।

प्रेम नदी के तीरा
आठवां प्रवचन

हिंदुस्तान आध्यात्मिक देश नहीं है

(अस्पष्ट)... वैसे उस मेथड से यह तीव्र है बहुत। मतलब कि जल्दी होगा। (अस्पष्ट)... लगता भी है बिल्कुल। एकदम होना शुरू होता है। और वह करीब सौ में से पांच प्रतिशत लोगों के काम का है वह मेथड। यह सौ में से करीब साठ प्रतिशत लोगों के काम का है।
एक तो ऐसा कोई देश नहीं है जहां महात्मा न हुए हों। लेकिन उन महात्माओं के संबंध में पता चलने में दो-तीन तरह की कठिनाइयां हैं। एक कठिनाई तो यह है कि महात्मा, हम अपने ही महात्माओं के संबंध में जानते हैं। अगर हम आपसे पूछें कि ईसाइयत ने कितने महात्मा पैदा किए हैं? तो जीसस का नाम साधारणतया खयाल में आएगा। जो लोग और थोड़ा ज्यादा जानते हैं वह संत फ्रांसिस का या अगस्तीन का नाम ले सकेंगे। लेकिन हजारों उच्च कोटि के साधु ईसाइयत ने पैदा किए हैं जिनका हमें कोई पता नहीं है। ठीक ऐसे ही ईसाई को भी पता नहीं है आपके महात्माओं का। अब मुसलमानों ने सूफी फकीर इतनी कीमत से पैदा किए हैं जिनका कोई हिसाब नहीं। लेकिन हम एक-दो रूमी या 2 : 44 .(अस्पष्ट) इस तरह के दो-चार नामों का उपयोग कर सकते हैं। लेकिन हजारों की संख्या में लोग पैदा हुए हैं।
चीन में तो इतना बड़ा वर्ग पैदा हुआ है कि जिसका हिसाब लगाना मुश्किल। लेकिन हम लाओत्सु, कनफ्यूशियस और च्वांग्त्सु--तीन के नाम के अलावा, साधारणतः शिक्षित आदमी भी चौथे का नाम नहीं ले सकता। जापान ने बहुत संन्यासी पैदा किए। कई मामलों में तो ऐसा है... जैसे थाईलैंड। थाईलैंड की कुल आबादी आज चार करोड़ है। और बीस लाख संन्यासी हैं आज भी। लेकिन हमें इसकी कोई जानकारी नहीं होती। तो सारी दुनिया के संन्यासियों की जानकारी न होना, पहला तो उसकी वजह से बाधा पड़ती है। दूर की तो बात छोड़ दें।
अगर हम साधारणतः शिक्षित हिंदू से पूछें कि गौतम बुद्ध के बाद बुद्धों में और हिंदुस्तान में कौन से महात्मा हुए हैं? बाहर की तो बात छोड़ दो। तो साधारण शिक्षित हिंदू इसका भी उत्तर नहीं दे सकता। अगर बहुत ही नाम ले सकेगा तो शायद नागार्जुन एक नाम है जो बहुत शिक्षित आदमी ही ले सकता है। लेकिन बसुबंधु का नाम नहीं सुना होगा उसने; दिग्नाथ का नाम नहीं सुना होगा उसने; धर्मकीर्ति का नाम नहीं सुना होगा; चंद्रकीर्ति का नाम नहीं, ये नाम ही नहीं सुने होंगे। अब ये इतनी ही कोटि के लोग हैं जैसे शंकराचार्य। लेकिन शंकराचार्य हिंदू परंपरा के हैं इसलिए आपको नाम याद है। नहीं तो सच्चाई तो यह है कि शंकराचार्य ने जो भी कहा है, वह सब का सब नागार्जुन का कहा हुआ है। ओरिजिनल आदमी नागार्जुन है। लेकिन वह बौद्ध था इसलिए हम उसको भूल गए।
अगर हम हिंदू से पूछें कि जैनियों के कितने महात्मा हुए हैं? तो वह महावीर के सिवाय शायद नाम न ले सकेगा। जैनियों के चौबीस तीर्थंकरों का नाम भी हिंदू नहीं बता सकता, सिवाय महावीर को छोड़ कर। बाकी और तेईस तीर्थंकरों, कि कौन थे वे? तो इसलिए बाहर के मुल्कों की तो हम बात छोड़ दें, हमारे पड़ोस में जो रह रहा है उसके बाबत भी हम नहीं जानते। सारे जगत में इतने महात्मा हुए हैं कि उनका हिसाब लगाने की कठिनाई है। अब जैसे, आपको अंदाजा भी नहीं होगा, आज भी कैथोलिक मांक्स और नन्स की संख्या बारह लाख है सारी दुनिया में। उनके साधु और संन्यासिनियों की संख्या बारह लाख है, साधु-संन्यासिनियों की!
तो एक तो अपरिचय सबसे बड़ी कठिनाई है। अब तिब्बत में कितने संन्यासी हुए हैं? बहुत शिक्षित आदमी दो नाम ले सकता है, मार्क्स और मिरले का। वह भी बहुत शिक्षित आदमी। लेकिन वह भी नहीं बता सकता कि और जो हजारों संख्या में संन्यासी हुए, उनका क्या रिकॉर्ड है? तो एक तो अपरिचय बहुत बड़ी बाधा है। दूसरी बाधा यह है कि हर मुल्क में संन्यासी की व्यवस्था भिन्न है।
तो जिसको आप अपना संन्यासी कहते हैं, उसकी तो व्यवस्था आपको स्वीकृत
है कि वह संन्यासी है। दूसरे का जो संन्यासी है उसकी दूसरी व्यवस्था है।

अब यह समझो कि जैन। अगर दिगंबर जैन है तो वह मानता है कि महात्मा का लक्षण है कि वह नंगा हो। तो अपना महात्मा तो उसको महात्मा मालूम पड़ता है, दूसरे का महात्मा मालूम नहीं पड़ता महात्मा। क्योंकि उसकी डेफिनिशन में नहीं आता वह। उसको नग्न होना चाहिए। वह उसकी अनिवार्य शर्त है। तो दिगंबर जैनी कहेगा कि हमारे धर्म में तो महात्मा हुए दूसरे के महात्मा नहीं हुए। क्योंकि दूसरे के वह, वह बुद्ध को भी महात्मा मानने को तैयार नहीं है क्योंकि वे कपड़े पहनते हैं। कृष्ण को महात्मा मानने को तैयार नहीं है क्योंकि उसकी परिभाषा के बाहर है।
अब जैन की परिभाषा में अहिंसा अनिवार्य है। तो कृष्ण उसकी परिभाषा के बाहर हैं, क्योंकि हिंसा उन्होंने करवा दी। राम उसकी परिभाषा के बाहर हैं क्योंकि वह युद्ध करें; जीसस उसकी परिभाषा में नहीं आ सकते, मोहम्मद उसकी परिभाषा में नहीं आ सकते।
तो दूसरी जो बुनियादी कठिनाई है, वह हम सब की डेफिनिशन है महात्मा की।
अब जैसे हिन्दू जितने महात्मा हैं वेद के और उपनिषद के, जैन या बौद्ध उनको महात्मा नहीं मान सकते। क्योंकि वे सब विवाहित हैं। वे सपत्नीय हैं। यानी जैन तो ये कल्पना ही नहीं कर सकता है कि रामचंद्रजी सीताजी के साथ खड़े हैं और लोग उनकी पूजा कर रहे हैं। तो फिर महात्मा कैसे हैं? क्योंकि महात्मा में अपत्निक होना अनिवार्य है उनके हिस्से में, उनकी डेफिनिशन में। सही और गलत की बात नहीं कर रहा।
अब कैथोलिक जो साधु है वह आपको साधु नहीं मालूम पड़ता। क्योंकि हिंदुओं में दिमाग में खयाल है कि साधुओं को गेरुआ वस्त्र पहनना चाहिए। कैथोलिक गेरुआ वस्त्र नहीं पहने हुए है। वह सड़क से निकल जाएगा, आप नहीं समझेंगे कि यह साधु है।
तो सारी दुनिया के साधुओं की अपनी डेफिनिशन है अपने सम्प्रदाय की। वह
उस डेफिनिशन के भीतर जीता है। अब जैसे कि गोविंद सिंह। तो गोविंद सिंह को सिक्ख तो मानेगा कि महात्मा है, लेकिन जैन नहीं मान सकता। क्योंकि महात्मा और तलवार रखे, यह उसके बाहर की बात है। महात्मा और लड़े, समझ के बाहर की बात है। तो दूसरी कठिनाई है डेफिनिशन, कि आप किसको महात्मा कहते हैं? और इससे मुश्किल खड़ी हो जाती है।
तीसरी एक और कठिनाई है। और वह कठिनाई यह है कि कुछ मुल्कों में तो महात्मा जो है वह फॉर्मल है, और कुछ मुल्कों में वह इनफार्मल है। कुछ मुल्कों में तो महात्मा जो है वह फार्मल प्रोफेशन है। यानी वह आदमी अलग मालूम पड़ता है। उसका कपड़ा अलग है, उसके रहने का ढंग अलग है, उसके जीने का ढंग अलग है। कुछ मुल्कों ने फार्मल महात्मा पैदा नहीं किए, इनफार्मल महात्मा हैं उनके। वे रहते घर में हैं। जैसे और लोग रहते हैं वह वैसे ही रहता है, जैसे और लोग चलते हैं वैसे ही चलता है, लेकिन महात्मा है। तब हमें और मुश्किल हो जाती है। अब जैसे कि सूफियों में हजारों सूफी ऐसे हैं जिनकी हैसियत वही है जो कि किसी शंकराचार्य की, किसी रामानंदाचार्य की। लेकिन कोई सूफी मोची! और वह मोची का काम ही जिंदगी भर करता रहता है। फार्मल रूप से वह कभी महात्मा की घोषणा नहीं करता। अब जैसे कबीरदास हैं वे अपना कपड़े ही बुनते रहे। फार्मली कभी महात्मा नहीं हुए।
तो तीसरी तकलीफ यह है कि जिन मुल्कों में फार्मल महात्मा हैं, उन मुल्कों में तो दिखाई पड़ता है। और जिन मुल्कों में फार्मल नहीं है, जिंदगी में घुला-मिला है उन मुल्कों में दिखाई नहीं पड़ता। अब एक आदमी गेरुआ वस्त्र पहने है तो हम कह देंगे, महात्मा है; एक आदमी जैनियों का वस्त्र पहने हुए है तो हम कह देंगे कि महात्मा है; अगर वह आदमी कोट-पतलून पहने हुए है तो महात्मा नहीं रह जाएगा।
लेकिन कोट-पतलून से महात्मा होने का विरोध क्या है?
उससे कोई, उससे कोई विरोध नहीं है, क्योंकि महात्मा होना एक भीतरी कवालिटी की बात है। तुम क्या पहने हुए हो, उससे कोई संबंध नहीं है।
तो ये सारी कठिनाइयां हैं। इन कठिनाइयों की वजह से सब मुल्कों को यह सुविधा है कि वे यह समझ लें कि महात्मा हमारे यहां हुए हैं और दूसरों के यहां नहीं हुए हैं। दूसरी जो बात हैः मैं इसको नहीं मानता। सारी दुनिया

में महात्मा हुए। क्योंकि महात्मा होना वैसे ही है, जैसे कवि होना; वैसे ही है, जैसे चित्रकार होना; वैसे ही है, जैसे मूर्तिकार होना; संगीतज्ञ होना, नृत्यकार होना। महात्मा होना मनुष्य के भीतर छिपी हुई कोई क्षमता है। वह सब जगह प्रकट होगी। उसके रूप कैसे होते हैं?
वे भिन्न होंगे? अब जैसे कि रामकृष्ण। अब बंगाल में तो रामकृष्ण भी मछली खाते हैं और विवेकानंद भी मछली खाते हैं। और उनको कभी खयाल नहीं आया बंगाल के बाहर भी सब मिल गए--कि मछली खाना महात्मा होने में विरोध हो सकता है। जब विवेकानंद पहली दफा बाहर आए तब उनको पता चला कि यह बड़ी मुश्किल बात है। क्योंकि मछली खाए महात्मा, यह जरा मुश्किल मामला हो गया। तो वे तकलीफ की बातें हैं, लेकिन इससे कोई लेना-देना नहीं है। इससे कोई लेना-देना नहीं है।
अब ऐसा हम सोच ही नहीं सकते कि जीसस, और शराब पीते थे? लेकिन जिस मुल्क में जीसस थे वहां शराब पीना साधारण पेय था। वह कोई बुराई थी नहीं। उसमें कभी उनके खयाल में आने का मामला नहीं था। हम सोच भी नहीं सकते कि महावीर या बुद्ध शराब पीएंगे। और अगर महावीर शराब पी लें तो कोई महात्मा मानने को तैयार नहीं होगा। ये सारी कठिनाइयों की वजह से ऐसा भेद मालूम पड़ता है, ऐसा है नहीं।
दूसरी बात यह है कि हिंदुस्तान कोई ज्यादा स्प्रिचिअल है दूसरे मुल्कों से, यह भ्रांति है। स्प्रिचुअलिटी एक डाइमेन्शन है हर आदमी का। वह उसमें गति कर सकता है। और सारी दुनिया में सब तरफ लोगों ने गति की है। इतना जरूर हम कह सकते हैं कि हमारी एंफेसिस स्प्रिचुअलिटी पर शायद दूसरों से थोड़ी ज्यादा रही है। उन्होंने जिंदगी के और आयामों पर उतनी एंफेसिस नहीं की जितनी हमने स्प्रिचुअलिटी पर एंफेसिस की है। एंफेसिस का फर्क है। वह फर्क बुनियाद में नहीं है बहुत। एंफेसिस का फर्क है। स्प्रिचुअल हम ज्यादा हैं, ऐसा नहीं है।
हमने जिंदगी को स्पिरिचुअल बनाने की सबसे ज्यादा आग्रहपूर्ण वृत्ति रखी है। इतना आग्रह किसी ने नहीं रखा। और इसका परिणाम उलटा हुआ है। इसका परिणाम यह नहीं हुआ कि हम स्पिरिचुअल हो गए हैं, इसका मतलब है कि हम हिप्पोक्रेट हो गए हैं। असल में किसी चीज पर अगर ज्यादा एम्फेसिस दी जाए तो हिपोक्रेसी पैदा होती है।
समझ लो कि एक समाज है उसमें दस कवि पैदा होते हैं। और ठीक है कवि पैदा होते हैं। हम स्वीकार कर लेते हैं, लेकिन कोई समाज को यह वहम पड़ जाए कि हमारे मुल्क में सभी को कवि होना चाहिए तो उस मुल्क में फाल्स पोएट्स पैदा हो जाएंगे। क्योंकि कवि होना व्यक्ति की क्षमता है। लेकिन अगर आप यह पक्का कर लें कि कवि होना जरूरी है तो कुछ ऐसे लोग कवि हो जाएंगे... तो कवि नहीं सिर्फ तुकबंद हैं।
तो मेरा अपना मानना है कि एंफेसिस ने हिंदुस्तान को स्प्रिचुअल नहीं बनाया, बल्कि फाल्स स्प्रिचुअलिटी पैदा की है। स्प्रिचुअलिटी जिंदगी का एक हिस्सा है और कुछ लोग उसमें शामिल यात्रा करेंगे। मगर ये स्ट्रग्ल हालांकि नॉन-एंफेटिक होनी चाहिए। तो वे ही लोग जाएंगे जो जाने चाहिए। अन्यथा अगर आपने बहुत एंफेसिस की तो वे लोग भी चले जाएंगे जो नहीं जाने चाहिए। और बहुत एंफेसिस में यह भी हो सकता है कि जो लोग जाने चाहिए थे, वे रुक जाएं। क्योंकि उन्हें लगे कि यह उपद्रव का मामला है। हम अपने घर में छुप कर चुपचाप कर लें जो करना है।
यह, इसकी वजह से हिंदुस्तान को नुकसान पहुंचा, फायदा नहीं हुआ। हिंदुस्तान में हजारों की संख्या में ऐसे लोग संन्यासी हो गए जो निपट संसारी हैं। जिन्होंने जाकर संन्यास को भी संसार बना दिया। एक आदमी घर छोड़ कर भागेगा। और अगर सिर्फ संन्यास होने का उसे पागलपन सवार है, संन्यास होना उसकी वस्तुतः स्थिति नहीं है तो वह जाकर एक आश्रम खड़ा कर लेगा। और आश्रम में वही सब उपद्रव बड़े पैमाने पर शुरू हो जाएगा जो घर पर छोटे पैमाने पर होता था। अगर घर पर वह तिजोरी में पैसे रखता था तो आश्रम में भी संपत्ति इकट्ठी करनी शुरू कर देगा। अब अगर घर में वह मुकदमेबाजी करता था जमीन के लिए तो आश्रम की जमीन के लिए भी मुकदमेबाजी लड़ेगा। वह आदमी तो वही

है जिसकी कहीं... वह कहीं भी चला जाएगा तो खुद ही जाएगा। वह अपना सारा का सारा लेकर वहां पहुंच जाएगा। और वहां सब उपद्रव शुरू हो जाएंगे।
अब यह बड़े मजे की बात है न कि शंकराचार्य जी जमीन के लिए अदालत में मौजूद होते हैं और एक ही गद्दी पर दो शंकराचार्य कब्जा कर लेते हैं। और दोनों घोषणा कर देते हैं कि मैं असली हूं। फिर दोनों को हाईकोर्ट तय करती है कि असली कौन? अब मजा यह कि जिस दिन हाईकोर्ट को तय करना पड़े कि असली संन्यासी कौन है और, और यह दो आदमी जब तय करवाने जाएं हाईकोर्ट में, तो मैं मानता हूं जो इसमें असली संन्यासी होगा वह तो भाग खड़ा होगा, वह कहेगा कि हां मैं संन्यासी नहीं हूं। क्योंकि यह हाईकोर्ट से तय करवाने जाएंगे?

प्रश्नः मेरे ख्याल से संन्यासी वैसे ही नहीं जाएगा कि मैं संन्यासी हूं?

हां, नहीं जाएगा। वही मेरा कहना है कि यह बहुत एम्फेसिस की वजह से दोहरा नुकसान होगा। जो सच में होने की क्षमता रखता था, वह शायद पीछे खड़ा हो जाएगा या चुपचाप हो जाएगा।

प्रश्नः तो इसका यह मतलब हुआ जितने ज्यादा संन्यासी हैं, उनमें से तो फिर ज्यादा पाखंडी हैं?

ज्यादा होने की संभावना ही नहीं है। क्योंकि संन्यास ऐसा फूल है कि बहुत बड़ी संख्या में खिलना मुश्किल है। अभी मनुष्यता उस योग्य भी नहीं है कि बहुत बड़ी संख्या में खिल जाए। बहुत मुश्किल है। आर्डुअस। इसलिए (अस्पष्ट 16: 24)हिंदुस्तान में पचास लाख संन्यासी हैं। पचास लाख संन्यासी जिस मुल्क में हों उस मुल्क की तो जिंदगी सुगंध से भर जाए। मगर कुछ किसी मतलब के नहीं हैं उनमें से, और पचास लाख संन्यासी में अधिकतम संन्यासी जो हैं वे, जिसको कहना चाहिए कि यूनिफॉर्म संन्यासी हैं। उनका काम यूनिफॉर्म संन्यासी का है। इतना वे काम पूरा कर देते हैं।
तीसरी जो बात हैः हमारा यह जो आग्रह है कि हम बहुत आध्यात्मिक हैं, यह किसी इनफीरियॉरिटी कांप्लेक्स का परिणाम है। असल में हुआ क्या है, आध्यात्मिक हम नहीं हैं; लेकिन भौतिक हम नहीं हो पाए। हमारी एक कमी रह गई। असल में मैटीरियलिज्म में जितनी हमारी गति होनी चाहिए थी वह नहीं हो पाई। न समृद्ध हैं, न शक्तिशाली हैं। सब तरह से दीन-हीन हैं। हजार साल की गुलामी की है। तो एक बात तो तय हो गई कि मैटीरियलिज्म का दावा हम नहीं कर सकते। वह तो दावे के हम बाहर हैं। अब इतना ही रह गया है कि हम उसको उलटा दावा जरूर कर सकते हैं।
अच्छा, मजा यह है कि मैटीरियलिज्म का आप दावा करें तो उसकी परीक्षा हो सकती है कि आप सच भी कर रहे हैं कि नहीं। स्पिरिचुअलिज्म की कोई वैलेडिटी नहीं होती, कोई एक्सपेरीमेंट नहीं होता। अब एक आदमी कहे कि मैं अमीर हूं तो जांच पड़ताल हो सकती है कि--है कि नहीं; एक आदमी कहे कि मैं ताकतवर हूं तो कुश्ती लड़वाई जा सकती है कि--है कि नहीं। लेकिन एक आदमी कहेः मैं तो आध्यात्मिक हूं, तो यह कोरा स्टेटमेंट हो सकता है। लेकिन यह इतनी भीतरी बात है कि जिसकी जांच ही नहीं हो सकती कि मामला कहां तक है, और कहां तक नहीं?
तो भारत को इधर बहुत वर्षों से, कहना चाहिए कि दो हजार वर्षों से बड़ी दीनता में जीना पड़ रहा है और उसके अहंकार को बड़ी चोट लगी है। और इस अहंकार को कहीं से तो प्रकट होने के लिए सब्स्टीट्यूट मार्ग चाहिए। तो हम दो हजार साल से जितने नीचे गिरे हैं, उतने हमने जोर से यह घोषणा की कि हम आध्यात्मिक लोग हैं। होता यह है कि कई बार ऐसा हो जाता है कि अंगूर न मिल पाएं तो हम उन्हें खट्टे कहना शुरू कर देते हैं। यह हमारे मन की स्थिति है।
हम भौतिकवाद का इनकार करने लगे, क्योंकि वह हमें मिल नहीं पाया। और जिनको मिल गया उनको हम कहने लगे कि वे सब संसारी हैं। यानी उनको मिल जाने

को भी हम कंडेम करने लगे। इससे हमारे दिल को बड़ी राहत मिली है। पर हमारे पास भी कोई दावा चाहिए। इसलिए हमने एक दावा करना शुरू किया कि हम आध्यात्मिक हैं। सच्चाइयां उलटी हैं। सच्चाइयां उलटी हैं। अगर आज हम आध्यात्मिक क्वालिटी को खोजने निकले दुनिया में तो हिंदुस्तान में सबसे कम मिलेगी। यूनिफॉर्म की बात नहीं कर रहा हूं।
वह जो क्वालिटी है आदमी की अब जैसे कि मैं उदाहरण के लिए कहूं, मुझे----।
एक जॉर्ज माइट अंग्रेज लेखक था। वह हिंदुस्तान आया। तो दिल्ली स्टेशन
पर वह उतरा है। और एक सरदार जी ने, एक ज्योतिषी ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा कि मैं आपका हाथ देखूंगा। तो उस आदमी ने कहा, लेकिन मैं हाथ दिखाना नहीं चाहता। न मैं भरोसा करता हूं, न मैं विश्वास करता हूं। इसलिए कृपा करके आप मेरा हाथ छोड़ दें। क्योंकि मैं आपसे हाथ छुड़ाऊं जबरदस्ती तो अशिष्टता होगी। लेकिन वह तो जोर से हाथ पकड़े हुए है और उसने तो बताना ही शुरू कर दिया, ज्योतिषी ने। और वह आदमी कह रहा है कि आप हाथ छोड़ दें, मैं जबरदस्ती छुड़ाऊं तो अशिष्टता होगी। और मेरा कोई भरोसा नहीं, न मैं आपसे पूछना चाहता हूं। लेकिन वह तो ज्योतिषी ने जोर से हाथ पकड़ा और बताना भी शुरू कर दिया जोर-जोर से, दस-पांच आदमी भी खड़े हो गये। जब वह दो-चार मिनट बता चुका तो उसने कहा कि अब आप माफ करिए, मुझे जाने दीजिए। तो उस ज्योतिषी ने कहा कि मेरी दो रुपये फीस हो गई। तो जॉर्ज माइट ने कहा कि ठीक है, आप यह दो रुपये ले लो, हालांकि यह ज्यादती है क्योंकि मैं मना कर रहा हूं और आप जबरदस्ती बताए चले जा रहे हैं, इसलिए फीस देने के लिए मैं बाध्य नहीं। लेकिन ठीक है आपने मेहनत की है तो आप ये दो रुपये ले लें। जैसे ही उसको दो रुपये दिए कि उसने तो और बताना शुरू कर दिया। उसने कहाः देखिए, लेकिन अब मैं आपको फीस नहीं दूंगा। अब आप मत बताइए। लेकिन तब तक एक रुपया फीस और हो गई। यह जॉर्ज माइट ने अपनी पूरी किताब में लिखा था, (अस्पष्ट.20 : 48--)। उसने कहा कि मैंने उसको कहा कि मैं आपको अब पैसे नहीं दूंगा क्योंकि यह ज्यादती है। तो उस आदमी ने मेरा हाथ जोर से पटका और कहा कि पैसे के पीछे मरे जाते हो, वर्ल्डी आदमी हो तुम, उस ज्योतिषी ने उसको कहा। तो माइट ने लिखा है कि मैं सोचता हूं कि हम दोनों में वर्ल्डी कौन था? उस, उस आदमी ने मुझे आखिर में गाली दी कि तुम वर्ल्डी हो, क्योंकि तुम दो रुपये के पीछे मरे जा रहे हो। अब यह जो हमारी मनोदशा है... न तो चरित्र है हमारे पास आज, जो किसी भी दूसरी कौम से मुकाबला कर सके, न नैतिकता है, न अध्यात्म है। लेकिन पांच हजार वर्ष की हमारे पास विरासत जरूर है। हमारे पास कुछ किताबें जरूर हैं। ऐसी किताबें दुनिया में सब जगह हैं। (अस्पष्ट. 21 : 46--)हमारे पास ही ऐसी किताबें नहीं हैं। सारी दुनिया में इस तरह की किताबें हैं।
बल्कि कई दफा तो मुझे हैरानी होती है कि हमारी दो हजार साल पुरानी जो किताब है, उसके मुकाबले यूनान की दो हजार साल पुरानी किताब ज्यादा श्रेष्ठ मालूम होती है, ज्यादा विकसित मालूम होती है। क्योंकि हमारी किताब में सिर्फ एक स्टेटमेंट है। जैसे उपनिषद हैं। उनमें सिर्फ बेयर स्टेटमेंट है। न कोई आर्गुमेंट है, न कोई ग्रोथ है। एक आदमी कह रहा है कि ब्रह्म है और ब्रह्म ही सब कुछ है, यह स्टेटमेंट है सिर्फ। अगर इसी समय की दो हजार साल पुरानी सुकरात की किताब देखें तो उसमें स्टेटमेंट ही नहीं है सिर्फ, उसमें लॉजिकल कॉ.जे.ज भी हैं। अगर वह कह रहा है कि ईश्वर है तो उसके लिए प्रमाण देने की कोशिश कर रहा है, तर्क भी दे रहा है। विपरीत तर्क का खंडन भी कर रहा है।
अगर हम दोनों किताबों को सीधा टाइम स्केल पर रख कर देखें तो हमें पता लगेगा कि यूनान की किताब ज्यादा विकसित मस्तिष्क से लिखी हुई मालूम पड़ती है। हमारी किताब पोएटिक है, शिक्षाविद नहीं है। मगर यह पोएटिक ट्रेडिशन हमारे पास है बड़ी। हम इसके वसीयतदार होकर दावा करते हैं। मगर स्पिरिचुअलिटी का किताबों से कोई संबंध नहीं है। क्योंकि गीता को पैदा करने के लिए कृष्ण काफी हैं। कोई पचास हजार आदमी और पचास लाख या पांच करोड़ आदमियों को आध्यात्मिक होने की जरूरत नहीं है। एक जीसस काफी हैं (अस्पष्ट.23 : 12--)पैदा करने के लिए। और एक सुकरात काफी है। हमारे पास एक

कृष्ण हुआ यह सच है; एक बुद्ध हुआ यह सच है; एक महावीर हुआ यह सच है। इनके वक्तव्य हमारे पास हैं। लेकिन हम कोई आध्यात्मिक मनुष्य हैं, यह सिद्ध नहीं होता।
एक आइंस्टीन पैदा हो जाए जर्मनी में तो इसलिए जर्मनी साइंटिस्ट नहीं
हो जाती। एक बुद्ध पैदा हो जाए तो हम कोई स्पिरिचुअल नहीं हो जाते। ये दावे बड़े हैं। एक इंडिविजुअल की बात है वह। इसके लिए सबको दावा करने की कोई जरूरत नहीं। लेकिन हमारे मन में दावे का कारण है। क्योंकि हम इतने हीन हो गए हैं कि जितना ही दावा करते हैं हमको सुख मिलता है। इसलिए हमको विवेकानंद में बहुत सुख मिला। क्योंकि विवेकानंद ने हमारी ईगो को, हमारे अहंकार को खूब तृप्ति दी। विवेकानंद को हिंदुस्तान में कोई पूछता भी नहीं था अमेरिका जाने के पहले। किसी को पता भी नहीं था इस आदमी का कि यह आदमी भी है। यह आदमी अगर आपके गांव से निकला होगा, और निकला होगा क्योंकि पूरे उत्तर भारत में पैदल घूमता रहा। किसी को पता नहीं था यह आदमी। और यह आदमी जिंदगी भर यहां रह कर मर जाता, हमको किसी को भी पता नहीं चलता। लेकिन हमको पता इसलिए चला क्योंकि उसने जाकर अमेरीका में हमारे अहंकार को बड़ी तृप्ति दी। तो इसकी प्रतिष्ठा हमें अपनी प्रतिष्ठा मालूम हुई। फिर हमने कहा कि यह भगवान है। जब यह आदमी लौटा तो हमने बहुत शोरगुल मचाया। लेकिन बड़े मजे की बात है कि वह शोरगुल पंद्रह दिन में फिर शांत हो गया। विवेकानंद के आने के बाद महीने-पंद्रह दिन तक स्वागत-समारोह और ये सब चले, और उसके बाद सभी शांत।
विवेकानन्द ने सोचा था कि हिंदुस्तान में जाकर बड़ा काम हो पाएगा। कुछ काम नहीं हुआ। बल्कि विवेकानंद को जितना सम्मान दूसरे मुल्कों में मिला, उतना सम्मान भी हम नहीं दे पाए। और कलकत्ते में तो आते ही उनके खिलाफ जो आध्यात्मिक आदमी हुए हैं, हमने उनके खिलाफ पर्चेबाजी शुरू कर दी। और हमने उनमें गलतियां खोजनी फौरन शुरू कर दी। यह आदमी ऐसे कपड़े क्यों पहने हुए हैं, यह निवेदिता इसके साथ क्यों आ गई है? हमने यह सब शुरू कर दिया। आप यह जान कर हैरान होंगे, निवेदिता ने ही सारा काम किया पश्चिम में। रामकृष्ण मिशन के लिए सारा काम निवेदिता का फैलाया हुआ है। लेकिन हिंदुस्तान ने क्या बदला दिया उसको? विवेकानंद के मरने के बाद निवेदिता को रामकृष्ण आश्रम से निकाल बाहर किया। जब वह मरी तो रामकृष्ण आश्रम में नहीं थी, अलग एक मकान में मरी थी।
हमारा यह जो मन है, हमारे अहंकार को तृप्ति मिले, वहां तक तो हम कुछ भी घोषणा करने को तैयार हैं। लेकिन जब हमारी असलियत प्रकट होती है तो हम बहुत नीच साबित होते हैं। मैं नहीं मानता हूं कि यह मुल्क कोई आध्यात्मिक मुल्क है। हां, इसमें एंफेसिस अध्यात्म पर रही है, और इससे दोहरे नुकसान हुए हैं। न तो आध्यात्मिक हो पाया, और उस गलत एंफेसिस की वजह से... तो मैं गलत इसलिए कहता हूं कि मैं किसी भी एंफेसिस को गलत कहता हूं। मैं जिंदगी के सरल होने के पक्ष में हूं।
अगर एक आदमी कवि हो सकता है तो मैं कहता हूं कि वह कवि हो लेकिन कविता
को कोई जीवन के ऊपर थोपने की कोशिश न करे। और एक आदमी अगर वैज्ञानिक हो सकता है तो वह वैज्ञानिक हो, लेकिन विज्ञान को जिंदगी बनाने की चेष्टा न की जाए। और एक आदमी आध्यात्मिक हो सकता है तो बहुत मजे से हो, लेकिन जिंदगी पर अध्यात्म का चोगा न ओढ़ाने की कोशिश की जाए। जिंदगी सरल हो, जो-जो हो सकता है वह हो। और हम सब चीजों को स्वीकार करने वाले हों। उस मुल्क को मैं उतना ही ब्रॉड-माइंडिड कहता हूं, जिसका एंफेसिस किसी भी चीज पर नहीं है। क्योंकि जब भी हम किसी चीज पर एंफेसिस देते हैं तो किसी चीज पर एम्फेसिस कम करनी पड़ती है।
अगर हम अध्यात्म पर बहुत जोर देंगे तो विज्ञान पिछड़ जाएगा। अगर हम विज्ञान पर बहुत जोर देंगे, अध्यात्म पिछड़ जाएगा। अगर हम कविता पर बहुत जोर देंगे तो यथार्थ पिछड़ जाएगा। और अगर यथार्थ पर बहुत जोर देंगे तो जिंदगी में कल्पना और कविता खाली हो जाएंगी। और जिंदगी में सब चीजों का इकट्ठा समन्वय है, इसलिए मेरी मान्यता यह है कि सब फूल खिलने चाहिए। और कल्चर नॉन-एम्फेटिक होना चाहिए। यानी हम पूरा जोर किसी चीज पर न दें। जो

हो जाए उसको हम सहारा दें। एक बुद्ध हों पैदा, हम बड़े खुश। लेकिन हम यह न चाहेंगे कि आइंस्टीन की हत्या पर बुद्ध पैदा हों। क्योंकि आइंस्टीन का होना उतना ही जरूरी है। एक आदमी इंजीनियर हो, बहुत उपयोगी है। लेकिन हम यह न चाहेंगे कि जिंदगी से कविता बिल्कुल मर जाए। क्योंकि इंजीनियर मकान ही बना सकता है, लेकिन मकान में बैठे लोगों को कविता भी जरूरी है।
तो मेरा अपना जो खयाल हैः वह यह है कि जिन संस्कृतियों ने किसी एक चीज
से जोड़ दिया, उन्होंने नुकसान पहुंचा दिए। तो जोर किसी पर भी देने की जरूरत नहीं है। जिंदगी मल्टी-डाइमेन्शनल है। और उसके सब डाइमेन्शन अंगीकार होने चाहिए। और वह जितनी विविध होती है उतनी रसपूर्ण होती है। इसलिए हिंदुस्तान में एक तरह की बोर्डम पैदा हो गई है। इसलिए आज अध्यात्मवादी की बात सुनते वक्त बोर्डम मालूम होती है। क्योंकि कितनी बार सुन चुके वही बात, वही बात कहे चले जा रहे हैं। दोहराए चले जा रहे हैं। इसलिए सुनने वाला आदमी धीरे-धीरे, धीरे-धीरे टूटता जा रहा है। आज अध्यात्मवादी बहुत हैं मुल्क में लेकिन सुनने वाला उनको कोई भी नहीं है। या सुनने वाले मरे मुर्दे हैं बिल्कुल जो कि सो रहे हैं, जिन्हें सुनने की भी जरूरत नहीं है।
कोई भी संस्कृति बोर्डम पैदा करेगी अगर एकतरफा हो जाएगी। सबका समन्वय है। और जिंदगी में ऐसे क्षण हैं, एक आदमी की जिंदगी में भी ऐसे क्षण हैं जब उस आदमी की जिंदगी में भी फर्क होते रहते हैं। आज कविता प्रीतिकर लगती है, कल नहीं भी लग सकती है। और आज विज्ञान सब कुछ मालूम होता है, कल नहीं भी मालूम हो। और मैं मानूंगा कि जिस आदमी की जिंदगी में ऐसे क्षण हैं परिवर्तन के, वह आदमी अन्ततः ज्यादा रिचर होकर दुनिया से विदा होगा।
तो मैं ऐसा भी नहीं मानता कि एक सुर जिंदगी में होना चाहिए कि बचपन से लेकर बुढ़ापे तक आदमी का एक सा व्यक्तित्व हो। उसमें अनेक स्वर होने चाहिए। और अनेक स्वरों के बीच एक हार्मनी होनी चाहिए। कांफ्लिक्ट नहीं होनी चाहिए। न तो मैं चाहता हूं कि समाज में एंफेसिस हो और न मैं चाहता हूं व्यक्ति में एम्फेसिस हो। विविधता मेरा प्रेम है।
मुझे लगता है जितना वैविध्य हो, जितनी भिन्नता हो, उतना ही सब सुंदर
हो जाता है। सब रंग, सब रंग होने चाहिए जिंदगी में। इसमें मेरी अपनी समझ ऐसी है कि भारत की बजाय पश्चिम में जो संस्कृति विकसित हो रही है वह ज्यादा मल्टी-डाइमेन्शनल है। और हमें आज नहीं कल, मल्टी-डाइमेन्शनल होना पड़ेगा। एक डाइमेन्शन में सारी गति देने से हजार तरह के नुकसान हैं। हमारी सारी की सारी प्रतिभा जो है वह संन्यास की तरफ मुड़ गई है, सारी प्रतिभा। अब जैसे दिग्नाथ जैसा आदमी जो है, या नागार्जुन जैसा आदमी है, इनके पास बड़ी अदभुत प्रतिभा थी। लेकिन संन्यास के मरूस्थल में सब खो जाता है। हां, कुछ लोगों के पास संन्यासी होने की प्रतिभा होती है वह बात अलग है। लेकिन अगर मुल्क के सारे लोग संन्यासी होने लगें तो वह जो विविधता मुल्क में आनी चाहिए, और जो और दिशाएं खोज में आनी चाहिए, वे सब बन्द हो जाएंगी। तो मैं एम्फेटिकली एम्फेसिस के खिलाफ हूं। तो मैं बिल्कुल ही इस बात को पसंद करता हूं कि जिंदगी में विविधता आए। मौजूद होना चाहिए। और शायद ऐसे समाज को मैं आध्यात्मिक कहूंगा जो सब तरह के लोगों को, जो वे हो सकते हैं-- होने की सुविधा देता है, प्रशंसा देता है, सहारा देता है।
क्योंकि मेरे मन में आत्मा जो है वह एक बहुत बड़ी चीज है। और वह अनेक रूपों में प्रकट हो सकती है। अगर हम एक कवि को कवि न होने दें तो वह आदमी कभी अपनी आत्मा को उपलब्ध न हो पाएगा। क्योंकि उसके लिए तो आत्मा तक पहुंचने का रास्ता काव्य ही है। अगर हम एक नृत्यकार को नाचने न दें तो हम उसे आत्मा तक कभी न पहुंचने देंगे, क्योंकि उसका रास्ता तो नाचना ही है जिससे वह आत्मा तक पहुंचेगा। रविशंकर सितार से ही अपनी आत्मा खोजेगा। इसको अगर हमने उपवास करा कर किसी मंदिर में बिठा दिया तो यह आदमी अपनी आत्मा को कभी नहीं खोज पाएगा। इसकी आत्मा का अपना रास्ता है।
अब मैं किसको अध्यात्म कहूं?
मैं तो उस वृत्ति को आध्यात्मिक कहता हूं जो सब रास्तों को अंगीकार करती है और मानती है कि अपने-अपने रास्ते से लोग वहां पहुंच जाएं जो वे

होने को पैदा हुए हैं। आप जो होने को पैदा हुए हैं वह आपको हो जाना चाहिए, वही आपकी आत्मा की उपलब्धि है। उसी से आप जान पाएंगे जीवन के सत्य को। इधर मेरी, मेरी पहुंच बहुत और तरह की है। मैं यह नहीं कहता कि जीवन का सत्य कोई फिक्सड चीज है, कि कहीं रखा है और आप जाकर दरवाजा खोल कर पा लेंगे। ऐसा नहीं मानता हूं। जीवन का सत्य एक प्रोसेस है। और जो मेरे लिए जीवन का सत्य होगा, वह जरूरी नहीं कि आपके लिए होगा। हालांकि मैं अपने जीवन के सत्य को जिस दिन पा लूंगा और आप अपने जीवन के सत्य को पा लेंगे, हम दोनों की यात्राएं अलग होंगी, लेकिन तृप्ति समान होगी। वह तृप्ति जो है, वह जो फुलफिलमेंट है। वह समान होगा।
एक गणितज्ञ भी जब अपनी गणित की दुनिया में पूरा का पूरा उतर जाता है
तो किसी ध्यानी से पीछे नहीं रह जाता। वहीं पहुंच जाता है। और एक चित्रकार जब चित्र को बनाता है और चित्र में पूरा उतर जाता है, तब वह किसी प्रार्थना करने वाले से पीछे नहीं रह जाता--मैं यही कहूंगा। इसलिए मेरे लिए अध्यात्म का मतलब भी और है। मेरे लिए आत्मा की खोज का मतलब भी और है। और मेरे लिए सारा का सारा मामला इनडिविजुअल है। और सबसे खतरनाक और वायलेंट वे लोग हैं जो अपने को दूसरे पर थोप देते हैं।
इसलिए गुरुओं से ज्यादा वायलेंट आदमी मैं दूसरों को नहीं मानता। क्योंकि अगर मैं आपका गुरू होता हूं तो मैं यह स्वीकार कर रहा हूं कि मैं तुम्हें अपने जैसा बना कर रहूंगा। और तुम अगर शिष्य बनते हो तो तुम इसीलिए शिष्य बन रहे हो कि मैं आप जैसा बनने की कसम खाता हूं। उसमें खतरा होने ही वाला है। क्योंकि कोई दो व्यक्ति एक जैसे नहीं हैं। और मैंने अगर आपको, अपने को आपके ऊपर थोपा तो आपको नुकसान पहुंचाऊंगा। और आपने अगर मुझे ओढ़ा तो भी आप अपने को नुकसान पहुंचाएंगे। और हो सकता है इससे सिर्फ एक परवर्टिड पर्सनैलिटी पैदा हो और कुछ भी, कुछ नहीं।

प्रश्नः 35 : 17 जैसा अभी आपने कहा है, लाइफ इज मल्टीडायमेंशनल। वॉट
डू यू थिंक शुड बी अवर एटीट्यूट फॉर दि... । वैदर वी नो दैट वॉट अवर पेरेंटस... और वॉट शुड बी अवर एटिट्यूट फार अवर फैमिली? फार अवर...

इसमें दो-तीन बातें हैं। एक तो यह सवाल शुड का नहीं है। जब हम कहते हैं
कि मां और पिता के प्रति क्या रुख होना चाहिए, सभी बात गलत हो जाती है। असल में मां अगर मां है तो एक रुख तय हो ही गया है। पिता अगर पिता है तो एक रुख तय हो ही गया है। असल में पिता का पिता होना और मां का मां होना एक रुख को तय कर ही दिया। अब इसमें होना चाहिए की गुंजाइश नहीं है। कोई मुझसे नहीं पूछता कि मेरा मेरी प्रेयसी के प्रति क्या रुख होना चाहिए? कोई नहीं पूछता यह। अभी तक मुझसे किसी ने नहीं पूछा। उसका कारण है। क्योंकि प्रेयसी के प्रति रूख तय हो ही गया। लेकिन मां के प्रति हम पूछते हैं, क्योंकि कोई रुख नहीं है। पिता के प्रति कोई रुख नहीं है। इसलिए हम कोई फॉर्मल इंपोजिशन चाहते हैं। यह सवाल बन गया है। यह सवाल प्रेयसी के प्रति नहीं है, पत्नी के प्रति होता है यह सवाल। कि पत्नी के प्रति क्या रुख होना चाहिए? उसका मतलब यह है कि प्रेम मर चुका।
तो जैसे ही हम इसको शुड बनाते हैं, जैसे ही हम कहते हैं कि क्या होना चाहिए पिता के प्रति मेरा रूख? तब मैं कहूं कि बात तो समाप्त हो चुकी है। पिता अब वह आदमी रहा नहीं, आप बेटे रहे नहीं। इस तथ्य को, पहले से इसको जान लेना चाहिए कि वह जो पिता और बेटे का होना था, वह विदा हो गया है। अब तो कुछ-कुछ चेष्टा करके कायम रखना पड़ेगा। अब यह संबंध एक ड्यूटी का होगा, एक लव का नहीं होगा। अब यह कर्तव्य का होगा।
तो मेरा पहला तो सुझाव यह है कि यह स्थिति ठीक से हमें समझ लेनी चाहिए
कि मामला ऐसा ही यह समाप्त हो गया है। और अगर समाप्त हो गया है तो कोई भी उपाय नहीं है कि इसे जिंदा किया जा सके। सिर्फ अभिनय किया जा सकता है। सिर्फ एक्टिंग की जा सकती है। असल में पिता के साथ हम उसके पिता होने का और अपने बेटे होने का एक्ट कर रहे हैं तो वह बोझ भी मालूम पड़ेगा। अगर ऐसा हो गया है तो पहला कर्तव्य तो मैं यह कहूंगा कि यह अपने पिता से कह दो कि ऐसा

हो गया है--पहला कर्तव्य। क्योंकि जिनसे हमारे संबंध हैं निकट के, उनके प्रति अभिनय करने को मैं अनुचित मानता हूं। सत्य का पहला कदम तो यह हुआ कि कह दो कि यह बात सच है। विनम्रता से इसे स्वीकार कर लो कि अब कोई उपाय नहीं है। अब ज्यादा से ज्यादा मैं कर्तव्य ही निभा सकता हूं। इसकी स्वीकृति बहुत से लाभ लाएगी।
अगर यह स्वीकृति आ जाए तो जिंदगी में बहुत से उलझाव कम हो जाएं। क्योंकि हमारी बहुत सी अपेक्षाएं कम हो जाएं। अगर मुझे साफ-साफ अपनी पत्नी से कह देने की बात आ गई कि अब हमारे बीच जो संबंध है वह एक कर्तव्य का है। इसलिए अब तुम मुझसे वे अपेक्षाएं मत करना जो एक प्रेमी से की जाती हैं, तो मैं तुमसे वह अपेक्षा नहीं करूंगा जो एक प्रेयसी से की जाती है--सब चीजें स्मूथ हो जाएंगी, सीधी चल सकेंगी। क्योंकि अपेक्षाएं उपद्रव पैदा करेंगी, अपेक्षाएं जाल पैदा करेंगी; जो चाहा जाएगा, वह कभी पूरा नहीं होगा; जो मांगा जाएगा, वह कभी मिलेगा नहीं; जो पुकारा जाएगा, वह हम दे न सकेंगे-- और जाल बढ़ते जाएंगे। और जब जाल बढ़ेंगे तो हम और एक्ट करेंगे, और झूठ, और पाखंड--वह सब उपद्रव हो जाएगा।
तो मेरा अपना मानना हैः यह पिता के संबंध में नहीं; मां के संबंध में नहीं; पत्नी के, मित्र के, किसी के, विशेष के संबंध में नहीं। मेरा मानना है यह कि सदा अपने संबंधों को साफ और सत्य रखना है। उनको साफ, जो भी संबंध जैसा हो उसको वैसा ही जाहिर कर देना, ताकि गलत अपेक्षाएं न बनें। डिसइलूजनमेंट के मौके न आएं, तो फ्रस्ट्रेशन भी नहीं आएगा। अगर मुझे लगता है कि मेरे आपके बीच मित्रता समाप्त हो चुकी है, तब मैं इसको व्यर्थ ही ढोता न रहूं। यह भी मेरी मित्रता का अंतिम कृत्य होना चाहिए, जहां आपसे कह दूं कि यह बात समाप्त हो गई। अब हम दो परिचित आदमी ही हो सकेंगे। और मैं नहीं जानता जब मित्रता समाप्त हो गई, तो मैं नहीं कह सकता कि कल परिचय भी समाप्त हो जाए। और मैं यह भी नहीं कह सकता कि कल मित्रता फिर लौट आए। आ जाएगी तो मैं आपको निवेदन कर दूंगा।
हमारी कठिनाई क्या है? हमारी कठिनाई यह है कि जिंदगी चौबीस घंटे बदल रही है। और हम न बदले होने का धोखा दिए जा रहे हैं। कल सुबह मैंने आपसे कहा था कि तुम्हारे बिना एक क्षण नहीं जी सकता और आज मुझे ऐसा लग रहा है कि तुम्हारे साथ एक क्षण जीना मुश्किल है। मगर मैं धोखा वही कायम किए हुए हूं। अब भीतर मेरा मन कह रहा है कि तुम्हारे साथ एक क्षण जीना मुश्किल है, और बाहर से मैं आज भी यही कहे चला जा रहा हूं कि तुम्हारे बिना मैं जी नहीं सकता। अब यह जिंदगी बहुत जटिल और उलझन की हो जाएगी।

प्रश्नः ऐसा क्यों?

ऐसा इसीलिए कि हमने कुछ सिद्धांत मान रखे हैं जो झूठे हैं। जैसा हमने मान रखा है, कि हम भविष्य के लिए वायदे कर सकते हैं, यह झूठी बात है। भविष्य के लिए वायदे किए नहीं जा सकते। क्योंकि भविष्य का हम कोई भी वायदा नहीं कर सकते। मैं कल आपको प्रेम करूंगा, इसका वायदा करना ही खतरनाक है। यह वायदा कभी पूरा हो नहीं सकता। क्योंकि कल के लिए मैं आज कुछ भी नहीं कह सकता। कल मैं मैं ही रहूंगा, यही पक्का नहीं है। लेकिन हमने जो जिंदगी बनाई उसमें हम भविष्य के वायदे कर रहे हैं। वह हमारी बांडे हैं। फिर जब हम वायदे करते हैं तो हमारा अहंकार वायदों को पकड़ लेता है, और वह कहता है कि कल मैंने ही तो कहा था कि तुम्हारे बिना नहीं जी सकूंगा। अब मैं कैसे कह सकता हूं? अब तो मैं बंध गया हूं। तो अब मैं दोहरे काम करूंगा, भीतर कुछ और जानूंगा, बाहर कुछ और करूंगा। अब सब जाल फैलते चले जाएंगे।
तो मनुष्य ने जो सिद्धांत तय किए हैं उनमें कुछ बुनियादी भूलें हैं। क्योंकि मेरा मानना यह है कि भविष्य के बाबत कोई भी वायदा परहेप्स के साथ जुड़ा हुआ है। इसे हमें जानना चाहिए। यानी जब मैं आपसे कह रहा हूं कि कल भी मैं आपको प्रेम करूंगा तो मैं यह कह रहा हूं कि आज मैं ऐसा सोचता हूं कि कल भी प्रेम कर सकूं तो अच्छा। यह अभी का सोचना है मेरा। यह अभी मुझे लग रहा है कि कल भी प्रेम करूंगा तो बहुत अच्छा। लेकिन कल क्या लगेगा, यह मैं कुछ

नहीं कह सकता। कैसे कह सकता हूं? कल आ जाए उसके पहले कहने का कोई उपाय भी नहीं।
तो एक तो हमने, भविष्य के लिए निर्णय लेते हैं हम, वह खतरनाक है। मैं
यह नहीं कहता कि निर्णय आप न लें, निर्णय आप लेने पड़ेंगे। क्योंकि जीना है तो निर्णय लेने पड़ेंगे। लेकिन निर्णय सदा ही इस अनिश्चय को जानते हुए लिए जाएं, तो आप कल जब निर्णय टूटेगा तो परेशान नहीं होंगे--एक। दूसरी बात यह है कि हम सब अपना एक इमेज बनाते हैं, जो हम नहीं हैं। हम सब इस कोशिश में लगे रहते हैं कि हम अच्छे दिखाई पड़ने चाहिए। हम इस कोशिश में नहीं रहते कि हम सच्चे दिखाई पड़ने चाहिए। अच्छे दिखाई पड़ने चाहिए। हमको बचपन से ही सिखाया जा रहा है कि अच्छे आदमी बनो। कोई नहीं सिखा रहा, सच्चे आदमी बनो। हमारी सारी शिक्षा जो है वह अच्छे आदमी बनने की है। तो बचपन से ही हमारे ऊपर एक खयाल पैदा किया जा रहा है कि अच्छे आदमी बनो। फिर अच्छे आदमी की एक धारणा हम पैदा कर लेते हैं। अब अच्छा बेटा हुआ है जो बाप का आदर करता हो। हमको बचपन से कहा जा रहा है कि अच्छा बेटा जो है वह बाप का आदर करता है। हमें यह कभी नहीं कहा गया कि सच्चा बेटा वह है जो जब तक आदर करता है तो आदर करता है, और नहीं करता तो अपने बाप को निवेदन कर पाता है कि मेरा आदर विदा हो गया। वह नहीं है अब। अच्छा बेटा वह है जो कि मरते दम तक कुछ भी हो लेकिन आदर करता है! अच्छी पत्नी वह है कि पति चाहे वेश्यागामी हो तो भी उसको परमात्मा मानती रहे! अब यह अच्छी पत्नी का जो ख्याल हम जोड़ रहे हैं, यह खतरनाक है। सच्ची पत्नी का नहीं है यह ख्याल, यह अच्छी पत्नी का है।
और अच्छे और सच्चे में मैं फर्क करता हूं। मेरे हिसाब से तो सच्चा ही अच्छा है। तो हमने क्या किया है? हमने जो इमेजेस इंपोज किए हैं एक-एक बच्चे के ऊपर, वे मंहगे पड़ते हैं। और वे खोल की तरह हमारे जीवन को जकड़ लेते हैं। फिर जिंदगी भर उसी ढांचे में हमको जीना पड़ता है। वह ऐसा है जैसे बचपन में पाजामा पहना था, और फिर बुढ़ापे तक उसी में जीना पड़ रहा है। पाजामा फटे, तो मुश्किल है; पाजामा अलग करो, तो मुश्किल है; पाजामा बदलो, तो मुश्किल है। लेकिन शरीर के कपड़े तो बदल जाते हैं; आत्मा पर पहनाए गए जो शिकंजे हैं, वे बैठे रह जाते हैं। ये सारी की सारी बुनियादी झूठी बातें हैं। फिर इसमें कई बहुत बड़ी महत्व की बातें हमारे खयाल में नहीं हैं।
बाप अपने बेटे को प्रेम करता है। इससे वह सोचता है कि बेटा भी बाप को प्रेम करे--इसमें गलती है। मां अपने बेटे को प्रेम करती है तो वह सोचती है कि बेटा भी मां को उतना ही प्रेम करे--इसमें गलती है। यह अवैज्ञानिक है। इसको मैं समझाऊंगा आपसे, कि कर्तव्य शब्द ही गंदा है। इसमें कोई अपवाद तो नहीं। असल में कठिनाई क्या है, एक मां अपने बेटे को प्रेम करती है। तो मां अपने बेटे को प्रेम करती है इसलिए वह स्वभावतः सोचती है कि उसी भांति का प्रेम बेटा भी उसे करे। लेकिन उसे पता नहीं है कि इसी भांति का प्रेम बेटा अपने बेटे को करेगा। यह जीवन की व्यवस्था है।
इस मां से ही पूछो कि जितना प्रेम तू अपने बेटे को कर रही है इतना तूने अपनी मां को किया है? तो पता चल जाएगा फर्क। बाप अपने बेटे से उतना ही प्रेम चाहता है जितना उसने किया है। उससे पूछो कि तुमने इतना प्रेम अपने बाप को किया है?
नहीं किया है। असल में जीवन में जो प्रेम की धारा है आगे की तरफ है, पीछे की तरफ नहीं है। हो ही नहीं सकती, हो तो बड़ा खतरनाक हो जाएगा। क्योंकि जिंदगी को जाना है आगे। अगर बेटा अपने बाप को बहुत प्रेम करे इतना जितना अपने बेटे को न कर पाए तो दुनिया का बहुत नुकसान हो जाएगा।
नहीं, जीवन की जो बायोलॉजिकल व्यवस्था है उसमें धारा आगे की तरफ जा रही है। मां अपने बेटे को प्रेम करेगी, बेटा अपने बेटे को प्रेम करेगा, वह इस तरह चुकाएगा प्रेम को। तो और कोई उपाय नहीं है। लौट कर चुकाने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन मां अपेक्षा कर सकती है कि जितना प्रेम मैंने अपने बेटे को किया, उतना ही वह मुझे करे। अगर इतना ही बेटा अपनी मां को करेगा तो पत्नी को प्रेम नहीं कर पाएगा।
इसलिए जो बेटे अपनी मां को बहुत प्रेम करेंगे, उनकी जिंदगी में पत्नी मुश्किल हो जाएगी। क्योंकि उसके सारे प्रेम की धारा पत्नी की तरफ बहनी

चाहिए, नहीं तो मुश्किल हो जाएगा मामला। इसलिए जैसे ही पत्नी घर में आती है, मां परेशान होना शुरू हो जाती है। क्योंकि फौरन पता चलता है कि बेटा उसका नहीं रहा। एकदम जो धारा उसे कल तक आश्वस्त मालूम पड़ती थी वह अब पत्नी की तरफ बहने लगी है। अब वह बेटा अपनी पत्नी के पास एकांत में बैठना पसंद करता है, अपनी मां के पास बैठना पसंद नहीं करता। वह बेटा अपनी पत्नी को लेकर एकांत में घूमने जाना चाहता है, अपनी मां को लेकर घूमने नहीं जाना चाहता। अब यह बड़े मजे की बात है कि वह मां ही इस पत्नी के लिए परेशान थी--कि शादी करो, जल्दी करो, बड़ी खुशी मनाई थी, बैंड-बाजे बजाए थे, शोरगुल मचाया था--वही सबसे ज्यादा मुश्किल में पड़ जाएगी कल, यह उसे पता नहीं था। लेकिन वह पता न होने का कारण है कि वह मनुष्य के विज्ञान के बाबत पूरी जानकार नहीं है।
असल में मां को जानना चाहिए कि उसका काम पूरा हो गया। वह स्त्री आ गई जिसकी तरफ उसका प्रेम अब बहेगा। और उसने अपनी जो, जिसको कहना चाहिए अमानत, वह एक दूसरी स्त्री को सौंप दी, अब उसे रास्ते से हट जाना चाहिए। अब वह सिर्फ कोने में हो सकती है, छाया में हो सकती है, सामने नहीं हो सकती। अब कभी-कभी यह बेटा उसको प्रेम कर सकता है, अगर वह बिल्कुल मांगे न--तो। अगर वह मांगे तो कभी-कभी भी मुश्किल हो जाएगा। अगर उस मां ने प्रेम डिमांड किया, तब तो जरा सा प्रेम देना भी मुश्किल हो जाएगा। अगर वह बिल्कुल डिमांड न करे, अनडिमांडिंग हो जाए। हो ही जाना चाहिए। चुपचाप अंधेरे में हट जाए, कभी बेटे को ख्याल आ जाए, वह बात अलग। और बेटा अगर ज्यादा देर उसके पास बैठे तो भी उसको कहे कि नहीं, अब इतनी ज्यादा देर उसके पास बैठने की जरूरत नहीं है। जिंदगी आगे जानी है। तो यह बेटा अपनी मां को प्रेम कर पाएगा।
और बेटे को भी इतनी समझ होनी चाहिए, हमें कोई भी समझ नहीं जिंदगी की, क्योंकि जिंदगी की समझ बहुत और बात है और सिद्धांत बहुत और बात है।
तो बेटे को भी यह पता होना चाहिए कि जिस मां ने उसे इतना बड़ा किया है, उसने कभी सोचा भी नहीं कि कोई और स्त्री किसी दिन उसके प्रेम को इस तरह छीनने वाली सिद्ध हो जाएगी। यह कभी नहीं सोचा, उसकी कल्पना के बाहर है। और जब बेटे के मन की पूरी धारा अपनी पत्नी की तरफ बहेगी, तब उसे अगर थोड़ी भी समझ हो, समझ ही होगी। अगर उसे थोड़ी भी समझ हो तो उसे जानना चाहिए कि जिस जगह से प्रेम हट कर अब बदल रहा है, उस जगह के प्रति सहानुभूति।
प्रेम मैं नहीं कहता हूं, ड्यूटी मैं नहीं कहता हूं; सिंपेथी मैं कहता हूं। जिस मां ने उसे बड़ा किया है, प्रेम दिया है, वह मां, अचानक एकदम से उसकी तरफ से उसकी प्रेम की धारा बदल रही है। अब वह सिर्फ सहानुभूतिपूर्ण हो सकता है। सिंपैथेटिक हो सकता है, कंपेशन हो सकता है; प्रेम नहीं हो सकता। और अगर सिंपेथी न होगी तब फिर ड्यूटी रह जाएगी, जो आप कह रहे हैं। वह ड्यूटी जो है वह यह है कि एक फर्ज है मेरा कि चूंकि वह मेरी मां है और उसने क्योंकि मुझे पैदा किया है, इसलिए ठीक है कि मैं उसकी फिकर करूं, उसका आदर करूं, उसके कभी पैर छू लूं।
लेकिन यह ड्यूटी बहुत ही ऑफिशियल शब्द है। यह जो ड्यूटी है, जैसे हम दफ्तर में ड्यूटी बजाते हैं क्योंकि तनख्वाह लेते हैं। वह उस समय का कृत्य है। कर्तव्य का मतलब ही होता है कि जिसे करना पड़े। जो करने योग्य है वह नहीं, जिसे करना पड़े। दैट विच इ.ज टू बी डन। और जब कभी मां और पिता के साथ हमारा ऐसा संबंध हो जाए कि कुछ करना पड़ता है, तब सहानुभूति भी न रही।
और मेरा मानना यह है कि मां-बाप क्योंकि प्रेम की मांग करते हैं, इसलिए बेटे कर्तव्य ही दे पाते हैं। अगर मां-बाप सिर्फ सहानुभूति की मांग करें तो बेटे सहानुभूति दे पाएं। सहानुभूति बीच की चीज है। वह न तो प्रेम है, और न कर्तव्य है। वह प्रेम और कर्तव्य दोनों नहीं है। सहानुभूति का मतलब ही सिर्फ इतना है कि हम अनुभव कर पा रहे हैं कि अगर हम उनकी जगह होते, तो क्या होते? और हम यह भी अनुभव कर पा रहे हैं कि कल हम उनकी जगह पहुंच जाएंगे, क्योंकि हमारे भी बेटे होंगे।
अब घर में जो लड़की बहू बन कर आई है, अगर वह इतना समझ पाए कि कल उसकी भी बहू आएगी, और उसका बेटा भी एक दिन उससे इसी तरह टूटेगा, तब उसके मन को क्या होगा? इसी तरह वह किसी के बेटे को तोड़ रही है, उसके मन को क्या हो रहा होगा?

इसको अगर वह फील कर पाए तो सहानुभूति होगी। और अगर वह कहे कि ठीक है कि मेरे पति, मेरे पति की मां है, इसलिए कर्तव्य से मैं उसको खाना भी खिलाती हूं, पैर भी दाब देती हूं, यह मेरा कर्तव्य है, हालांकि मेरा क्या लेना- देना। और उसे पता नहीं कि यह, यह कर्तव्य अगर है तो बोझ बन जाएगा...
नहीं, सहानुभूति का मतलब हैः टु बी इन अनदर्स प्लेस। सहानुभूति का मतलब इतना ही होता है कि मैं आपकी जगह खड़े होकर देख पाऊं कि चीजें क्या हुईं। एक बेटे को मैंने बड़ा किया हो; बीस साल का बनाया हो; पढ़ाया हो; लिखाया हो; रात भर जागी हूं; खाना नहीं खाया उसे खाना खिलाया है; कपड़े नहीं पहने; उसे पढ़ाया है, और अचानक एक दिन पाया जाता है कि एक लड़की आई है--अजनबी, अपरिचित, जिससे उससे कोई संबंध न था--वह सब कुछ हो गई है और मैं कुछ भी नहीं। इस जगह अपने को जो रखने की क्षमता है, वह सिंपैथी है।
तो अगर बाप को, बाप को आप वही प्रेम तो नहीं दे सकते जो बाप ने आपको दिया था, इसे स्वीकार कर लेना चाहिए। यह सोसाइटी जिस दिन स्वीकार कर लेगी बहुत अच्छी हो जाएगी। यह हमें जान ही लेना चाहिए कि यह संभव नहीं है। क्योंकि हम अपने बाप के बाप नहीं हो सकते। इसलिए संभव नहीं है और कोई कारण नहीं है। हम बेटे ही हो सकते हैं। इसलिए बाप ने जो हमें प्रेम दिया वह हम लौटा नहीं सकते। हम अपने बेटे को दे देंगे। बस इतना ही होगा और कुछ नहीं होने वाला। लेकिन बाप को तो हम नहीं लौटा पाएंगे। तो बाप ने जो हमें दिया था, वह हम नहीं लौटा पाएंगे। तो बाप की जो मनःस्थिति है उसको फील करना सहानुभूति है।
तो मेरा अपना मानना है कि हमारे जितने संबंध हैं वे तीन तरह के होते हैं। या तो प्रेम के संबंध होते हैं। जहां प्रेम का संबंध होता है वहां कभी सवाल नहीं उठता। वहां कोई सवाल ही नहीं उठता। प्रेम के संबंध में सवाल ही नहीं है। जहां प्रेम समाप्त होता है वहीं से सवाल शुरू होते हैं। और जब प्रेम समाप्त होता है तो आप दो काम कर सकते हैं; या तो आप दूसरे व्यक्ति की जो अब स्थिति होगी उसके साथ खड़े होकर अनुभव कर सकते हैं तो सहानुभूति बन जाएगी। सहानुभूति सारे सवालों का जवाब बन जाएगी। सवाल तो होंगे, लेकिन जवाब मिल जाएंगे। कहीं खोजने न जाना पड़ेगा। और अगर सहानुभूति पैदा न हुई तो फिर कर्तव्य रह जाएगा। और कर्तव्य में सवाल ही सवाल होंगे और जवाब कभी नहीं मिलेंगे। क्योंकि वह सिर्फ बर्डन है, जिसको ढोना है।

प्रश्नः पर क्या उसको बर्डन समझना चाहिए? अगर एक बच्चा होता है छोटा, पैदा होता है। मां-बाप उसको पाल-पोस कर, आप खुद मुसीबत झेल कर उसको बड़ा करते हैं। अगर बड़ा करते हैं किसलिए बड़ा करते हैं?

ये जो हमारी बात है न, यह भ्रांति है हमारी कि मां-बाप मुसीबत झेल कर बड़ा करते हैं। अगर मां-बाप मुसीबत झेलते, कोई बच्चा बड़ा हो ही नहीं सकता। यह हमारी भूल है। यह मां-बाप का दावा है, यह गलत दावा है। मां अगर मुसीबत झेलती तो दुनिया में कोई बच्चा बड़ा हो ही नहीं सकता था। यह बच्चे के लिए मुसीबत नहीं झेली जा रही। यह मां की खूबी है इसलिए वह झेल रही है। हालांकि दावा वह बाद में यही करेगी कि मैंने तेरे लिए मुसीबत झेली है। वह दावा झूठ है।
यह मां को आनंद मिल रहा है इस बच्चे को बड़ा करने में, इसलिए वह झेल रही है। सच्चाई तो यह है। और यह बायोलॉजिकल सच्चाई है। इसमें कोई आदमी की मां और जानवर की मां का फर्क नहीं है। मां को मजा आ रहा है इस दुख झेलने में, जिसको हम दुख कह रहे हैं। यह दुख तीसरे आदमी को दिखाई पड़ रहा होगा कि मां अपने बेटे के पास रात भर बैठी कितनी तकलीफ झेल रही है। यह तकलीफ थर्ड परसन के खयाल में आई हुई बात है। यह मां बड़े मजे में है। मां को तकलीफ तो तब होगी जब बेटा न हो उसके पास, जिसके लिए रात भर जागा जा सके।
इसलिए जो स्त्री मां नहीं बन पाती वह बहुत तकलीफ में रह जाती है। जो स्त्री मां नहीं बन पाती उसकी कोई बेसिक नीड कम रह जाती है जो पूरी नहीं हो पाती। कोई चाहिए था जिसके लिए वह जागे; कोई चाहिए था जिसके लिए वह भूखी रहे; कोई चाहिए था जिसके लिए वह रोए और परेशान हो। वह भी उसकी बेसिक नीड है,

वह उसका फुलफिलमेंट है। इसलिए किसी मां ने अपने बेटे के लिए कोई तकलीफ नहीं झेली, यह मैं मां की तरफ से कह रहा हूं। यह मैं बेटे की तरफ से नहीं कह रहा हूं।
यानी मैं यह कह रहा हूं कि जहां तक मां का संबंध हैः किसी मां ने कोई तकलीफ नहीं झेली। नर्सें वगैरह तकलीफ झेलती हैं, मां वगैरह तकलीफ नहीं झेलती। इसलिए अगर हम किसी दिन ऐसे बच्चे पैदा कर सकें जो मां को बिल्कुल तकलीफ न दे, तो उन बच्चों से मां का प्रेम नहीं हो सकेगा। अगर हम किसी दिन ऐसा बच्चा पैदा कर सकें जो मां को बिल्कुल ही तकलीफ न दे, किसी तरह की तकलीफ ही मां को न हो जिसकी वजह से, तो आप पक्का जान लें, मां और बेटे का संबंध खत्म हो जाएगा।

प्रश्नः वह तो हो ही जाएगा जब आप कहते हैं।

न, मेरा मतलब यह है, मेरा मतलब यह है कि मां बनने का हिस्सा है वे सारी तकलीफें। वह उसके मां होने की पी.ड़ा है। उसमें बेटे के लिए कुछ भी नहीं। वह मां होने की वजह से सब कुछ है। जिस दिन हम ऐसा समझ लेंगे, उस दिन कोई मां भी अपने बेटे से यह नहीं कहेगी कि मैंने तेरे लिए तकलीफें झेलीं। और जब हम यह कहते हैं कि उसने किसलिए तकलीफें झेलीं तब भी हम भूल की बातें करते हैं। असल में हम जो सोचते हैं वह सोचने में दो बातें होती हैं, जिनमें भूल हो जाती है। कॉ.ज और परपज में अक्सर भूल हो जाती है।
हम सोचते हैं, किसलिए? तो किसलिए का मतलब होता है: एंड क्या था उसका? सच्चाई यह है कि मां के दिमाग में कोई एंड कभी नहीं होता, वह किसलिए तकलीफें झेल रही है। यह एंड तो तब उसके दिमाग में उठता है जब वह अचानक पाती है कि जिस बेटे के लिए उसने तकलीफें झेलीं--यह भी पीछे का खयाल है, जब झेली थीं तब तक का खयाल नहीं है। यह उस दिन का खयाल है जब कोई और औरत उसके बेटे को अपनी तरफ खींच लेगी। उस दिन उसे, वह पहली दफा कांशस होगी कि मैंने इतनी तकलीफें जिस बेटे के लिए झेलीं, वह इस औरत के लिए झेलीं थी कि यह बेटा उसके पास चला जाए। जिस दिन बेटा उसे रूपये लाकर नहीं देगा और बुढ़ापे में उसकी सेवा नहीं करेगा, उस दिन वह कांशस होगी कि मैंने इसलिए तकलीफें झेली थीं कि मेरा बेटा मुझे बुढ़ापे में खाना देगा।
लेकिन किसी मां ने कभी यह नहीं सोचा है कि बेटा बड़ा होकर उसे खाना देगा इसलिए वह उसके लिए तकलीफें झेल रही है, ये बिल्कुल झूठी बात है। यह जो है, परपज नहीं है पहले। यह जिसको कहें कि आफ्टर थॉट। यह पीछे खयाल में आई हुई बात। लेकिन न तो मां को पूरा पता है, न बेटे को पूरा पता है। और चीजों को हमने छिपा कर रखा है। न तो बेटा यह कह पाता है अपनी मां से कि तू भ्रांति कर रही है, तूने मेरे लिए तकलीफें नहीं झेलीं; और न मां बेटे से कह पाती है यह सच बात कि मैंने तेरे लिए तकलीफें नहीं झेलीं, तकलीफें मैंने किसी अपनी ही वजह से झेली हैं। इसमें तेरा कोई कसूर नहीं है। ये दोनों बातें साफ हो जाएं तो सहानुभूति बन सकती है। जब मां कहती हैः मैंने तेरे लिए तकलीफें झेलीं, इससे बेटे के मन में सहानुभूति पैदा नहीं होती, सिर्फ क्रोध पैदा होता है। तो यह (59 : 47 अस्पष्ट)... बहुत जारी।
अब मैं एक, एक युवक को जानता हूं जिसने अपनी मां से यह कहा कि मैंने तुझसे कब कहा था, तू मेरे लिए तकलीफें झेल? यह कोई समझौता है? मैंने तुझसे कब कहा था कि तू मेरे लिए तकलीफें झेल। तू मुझसे पूछ लेती कि हम तेरे लिए तकलीफें झेल रहे हैं तो तू इतने काम करेगा, कि नहीं करेगा? मैंने तुझसे कब कहा कि तू मुझे पैदा कर? और जिस बात में मैं पार्टी ही नहीं था, उसका दावा मुझ पर नहीं किया जा सकता। यानी मैं जिसमें पार्टी ही नहीं हूं--आपने तकलीफें झेलीं, अपनी मौज से झेली होंगी; आपने पैदा किया, अपनी मौज से पैदा किया होगा। लेकिन एक दिन जब मैं पार्टी ही नहीं था जिस मामले में, उसके लिए मैं फंस जाऊंगा... कल तुम मुझ पर मुकदमा चलाओगे कि आपके लिए मैंने यह किया। नहीं किसी मां ने न तो कभी किया है, न कोई दावे का सवाल है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि मैं बेटे से यह कह रहा हूं कि वह मां को इनकार कर दे। यह मैं नहीं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि माताएं ये दावे छोड़ दें, तो बेटे

ज्यादा सहानुभूतिपूर्ण हो सकेंगे। क्योंकि माताएं ये दावे करती हैं, बेटे और क्रोध से भर जाते हैं। क्रोध भरेगा ही। क्योंकि जिस बात के लिए मैंने कभी समझौता नहीं किया था उसका मुझ पर दावा किया जा रहा है। मैंने कभी नहीं कहा था कि मुझे पढ़ाओ-लिखाओ तो मैं तुम्हें बुढ़ापे में धन लाकर दूंगा। मैंने कभी नहीं कहा। यह तुम्हारी अपेक्षा भी रही होगी तो भी मेरे सामने जाहिर नहीं की। नहीं तो मैं तय कर लेता उसी वक्त कि अगर मुझे कमा कर लाकर देना है तो मैं पढ़ूं-लिखूं अन्यथा न पढ़ूं-लिखूं, इंकार कर दूं। तो जब कोई ये बातें कहता है किसी से, तो हालांकि न तो बेटे इसको स्वीकार करते हैं कि आप गलत बातें कह रही हैं। वे भी मन में तो सोचते हैं, ऊपर से तो कहते हैं कि यह बिल्कुल ठीक बात है, आपने मेरे लिए बड़ी तकलीफें झेलीं। लेकिन इससे क्रोध पैदा होता है। सहानुभूति मुश्किल हो जाती है।
इस दुनिया में कोई आदमी किसी के लिए तकलीफें नहीं झेलता है। अगर कोई तकलीफें झेल रहा है तो अपने लिए झेल रहा है। अगर हम इस सत्य से परिचित हो जाएं तो बाप अच्छे बाप हो जाएंगे, मां अच्छी मां हो जाएगी, बेटे अच्छे बेटे हो जाएंगे, पत्नी अच्छी पत्नी हो जाएगी। लेकिन हम सबको धोखा दे रहे हैं। बेटा भी अपनी मां को कह रहा है कि तूने मेरे लिए कितनी तकलीफें झेलीं। यह बिल्कुल झूठी बात है। मां भी कह रही है कि मैंने तेरे लिए कितनी तकलीफें झेलीं। ये फिक्शन्स हैं, ये फैक्ट नहीं। और इसकी वजह से हम बहुत परेशानी में पड़ते हैं। पति भी अपनी पत्नी से कहता है कि मैं तेरे लिए कितनी तकलीफें झेल रहा हूं। झूठी है यह बात। कोई किसी के लिए तकलीफें नहीं झेल रहा।
अगर आपको किसी स्त्री से प्रेम है तो आप उसके लिए तकलीफें झेलते हैं। क्योंकि आपको उससे प्रेम है। यह आपका सुख है कि आप उसके लिए तकलीफें झेलें। न कोई पत्नी अपने पति के लिए तकलीफें झेलती है। जिससे उसे प्रेम है उसके लिए तकलीफें झेलना उसका आनंद है। लेकिन जब तक प्रेम होता तब तक वे सवाल नहीं उठते। जब प्रेम विदा हो जाता है, तब दिक्कतें खड़ी हो जाती हैं। इसलिए सब सवाल उठते हैं। बातों को लौट-लौट कर सामने रखने लगते हैं।
पत्नी कहती है कि मैं तेरे लिए इतनी तकलीफें झेल रही हूं, और पति कहता
है कि मैंने तेरे लिए इतनी मुसीबतें झेलीं। जिस दिन यह कहने का सवाल आ जाए, समझ लेना चाहिए कि उस दिन प्रेम समाप्त हो गया है। हम प्रेम के बाहर हो गए। लेकिन आदमी सच्चा नहीं है। हम कभी नहीं बता पाते किसी को कि हम प्रेम के बाहर हो गए हैं। इतनी हिम्मत ही नहीं जुटा पाते कि हम कह पाएं कि हम प्रेम के बाहर हो गए हैं। इससे बहुत झूठ पैदा होती है।
मैं सब तरह के झूठ के खिलाफ हूं। और मैं यह मानता हूं कि हम जिंदगी के बाबत जितने सच्चे हैं... तकलीफ तो होगी थोड़ी सी, बहुत मुश्किल होगा, क्योंकि हम सब झूठ में जी रहे हैं। उसमें एक आदमी थोड़ा सच्चाई में जीना शुरू करेगा तो पहले तो बहुत चौकन्ना कर देगा वह आपको। लेकिन यह दो दिनों की ही बात है, वह आदमी खुद भी एट ई.ज हो जाएगा, आपको भी एट ई.ज कर देगा। और हम समझ लेंगे कि वह आदमी ठीक ही तो कह रहा है कि बात समाप्त हो गई। और समाप्त हो गई। जितना यह सच्चा हो सके, हम झूठे आश्वासन जितने कम दें, और झूठी बातों पर जितना निर्णय करें उतना सुखद है। फिर हम सहानुभूति कर सकते हैं। अगर एक लड़की को मैं प्रेम करता हूं, और सच में मुझे आज ऐसा लगता है कि जिंदगी भर उसे प्रेम कर सकूंगा, यह इस मोमेंट की फीलिंग है। यह फीलिंग यह बताती है कि इस वक्त मैं उसको प्रेम करता हूं और कुछ नहीं बताती। भविष्य के बाबत ऐसा कुछ पता नहीं चलता। इससे इतना ही पता चलता है कि इस क्षण में जैसी हालत मेरी है, उस हालत को मैं जिंदगी भर टिकाना चाहूंगा तो आनंदपूर्ण होगा। कल लेकिन मैं पाता हूं अचानक कि वह फीलिंग तो चली गई, वह अब नहीं है। तब दो रास्ते हैं मेरे सामने। एक रास्ता तो यह है कि मैं धोखा दिए चला जाऊं। जितना मैं धोखा दूंगा इस स्त्री को, उतनी ही मेरी घृणा बढ़ती जाएगी। और जितना मैं कर्तव्य निभाऊंगा, उतना मेरे सिर पर बोझ बढ़ता जाएगा। और जब बोझ बढ़ेगा, घृणा बढ़ेगी और मुझे धोखा देने का... ।

प्रेम नदी के तीरा
नौवां प्रवचन

शास्त्र को नहीं, समझ को आधार बनाएं

प्रश्नः जीवन और मौत, क्योंकि एक-दूसरे को फॉलो करते हैं, और निश्चय
ही उनमें से कुछ न कुछ टाइमिंग का फर्क तो होगा ही।... मृत्यु के बाद जो लाइफ मिलती है, लोग कहते हैं कि एक चेंज ऑफ ड्रेस होता है। सिर्फ पहनावा बदल जाता है, आत्मा वही रहती है। वह पहनावा जो हमें मिलता है, या तो वह हमारी मर्जी से मिलता है, हमारी कंसेंट से ही दिया जाता है या हमें फोर्स करके दिया जाता है। जन्म तो हमें अपनी मर्जी से दिया जाता है। तो फिर उसका मतलब यह है कि उस वक्त हमारे मन में था कि हम यह पहनावा लेकर क्या करेंगे? और क्या करेंगे, वह हम भूल चुके हैं। हमारा लक्ष्य क्या है? और अगर वह हमें दिया गया है तो निश्चय ही हमें कुछ न कुछ सोच करके दिया गया है कि तुम जाओ और यह करो। तो अब यह हमारा लक्ष्य क्या है? अगर हम सबका लक्ष्य एक ही है तो फिर सबके एनवायरनमेंट्स और ड्रेसेज सेम क्यों नहीं हैं? कुछ लोग कहते हैं कि हमारा लक्ष्य है--परमात्मा को पाना ही है हमारा लक्ष्य। कुछ कहते हैं, आप तो जानते हैं कि परमात्मा वैसे तो मिल ही नहीं सकता। जैसे, कितनी देर निर्विचार और कुछ न करने से परमात्मा मिलता है। और जिंदगी जद्दोजहद का नाम है। ऐसी कंट्राडिक्शन सी आ जाती है। हमारा लक्ष्य क्या है? यही हमारा प्रश्न है।

ऐसे बहुत से प्रश्न उठते हैं। इन प्रश्नों में, इस तरह के प्रश्नों में बुनियादी भूल हो जाती है, वह हमारे खयाल में नहीं आती। और चूंकि प्रश्न में ही भूल होती है, इसलिए इनका कोई भी उत्तर कभी ठीक नहीं हो सकता। प्रश्न को सीधा लेकर हम सोचना शुरू कर देते हैं। बिना इसकी फिकर किए कि प्रश्न में ही कोई बुनियादी भूल है। और तब जो भी उत्तर हमें मिलते हैं, वे सब गलत होंगे। और किसी से संतोष नहीं होता है। इसलिए सबसे पहले तो प्रश्न पर विचार करें कि उसमें कि बुनियादी भूल नहीं है, फिर हम आगे बढ़ें।
जैसे, जब भी हम कहते हैं कि जीवन में हमारे आने का लक्ष्य क्या है? तभी हमने जीवन को अलग, और अपने को अलग कर लिया--जो कि गलत है। हम जीवन से अलग कोई भी नहीं हैं। हम जीवन से भिन्न नहीं हैं। जीवन ही हम हैं। तो भाषा बुनियादी दिक्कत दे देती है। भाषा कहती है कि मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है? जैसे मैं अलग हूं और जीवन कुछ अलग है। मैं ही जीवन हूं। मेरे भीतर जो जीवन है, इसको ही दिया गया मैं एक नाम हूं। यह एक दूसरा नाम है, वह एक तीसरा नाम है। अगर हम लहरों को भी नाम दे दें, पानी पर लहरें उठीं--उनको नाम दे दें। तो हर लहर यह पूछ सकती है कि--मैं लहर क्यों बनती हूं और क्यों मिटती हूं? लेकिन उसे पता नहीं कि वह जो पूछ रही है वह बात ही गलत है।
जीवन से भिन्न हम नहीं हैं। इसलिए भिन्न करके उठाए गए कोई भी सवाल का
ठीक जवाब कभी भी नहीं मिल सकेगा। इसलिए यह मत पूछिए कि हमारे जीवन का लक्ष्य क्या है? इतना ही पूछें कि जीवन का लक्ष्य क्या है? तो प्रश्न ज्यादा ठीक जगह पर आएगा। यह मत पूछिए कि मैं किसलिए जन्मा हूं? मुझे किसलिए जीवन मिला है? आप अलग नहीं हैं। जीवन के पहले आप नहीं थे जिसको जीवन दे दिया गया हो। जैसे आपको कपड़े मिले हैं, ऐसे आपको जीवन नहीं मिला। आप थे कपड़े मिलने के पहले, और कपड़े छीन लिए जाएंगे तब भी आप होंगे।
तो कपड़े आपको मिलते हैं, तब हम पूछ सकते हैं कि कपड़ों का क्या लक्ष्य है? मुझे कपड़े किसलिए दिए गए हैं? तो कोई न कोई उत्तर मिल जाएगा--कि इसलिए दिए गए हैं। जीवन ऐसी चीज नहीं है कि आप थे और आपको जीवन दिया गया। आप ही जीवन हो। इसलिए "मैं" को और "जीवन" को अलग न करें, पहली तो समझने की बात यह है। अलग करते से भूल हो जाएगी। और हम रोज अलग करते हैं। हमारी भाषा की जो व्यवस्था है उससे ऐसी कठिनाई पैदा हो जाती है।
कोई कहता है कि मुझे क्रोध आ गया। कोई कहता है कि मैं प्रेम में पड़ गया। वह यही भूल कर रहा है। जब तुम क्रोध में होते हो या प्रेम में होते हो, तो ऐसा नहीं होता है कि तुम अलग हो और प्रेम अलग है। नहीं, जब तुम प्रेम में

होते हो तो तुम ही प्रेम होते हो; और जब तुम क्रोध में होते हो तो तुम ही क्रोध होते हो। क्रोध कोई ऐसी फॉरेन बॉडी नहीं है कि आ गई और तुम कुछ अलग थे। जब तुम क्रोध में होते हो, तब तुम क्रोध ही होते हो। लेकिन भाषा कहती है कि मैं क्रोध में था। मुझे अलग कर लेती है, क्रोध को अलग कर देती है। जैसे कि सागर में तूफान आया हो, फिर तूफान शांत हो गया हो। तो भाषा कहती है कि अब तूफान शांत है। जैसे कि तूफान ऐसी कोई चीज है जो कि शांत होकर भी हो सकता हो। सागर के शांत हो जाने का नाम तूफान का न होना है। सागर के अशांत हो जाने का नाम तूफान का होना है। तो अब तूफान शांत है, यह बिल्कुल ही गलत है। अब तूफान है ही नहीं। क्योंकि शांत तूफान जैसी कोई चीज नहीं होती। तूफान का मतलब ही अशांति है। शांत तूफान नहीं होता।
तो यहां भी इसको इस तरह न शुरू करके कि मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है? जीवन का क्या लक्ष्य है? पहले तो प्रश्न को इतनी बदलाहट देनी जरूरी है। और जैसे ही यह बदलाहट दोगे तो दूसरा खयाल (7ः 05... अस्पष्ट) होना शुरू हो जाएगा। दूसरी बात यह है कि जैसे ही हम पूछेंगे, जीवन का लक्ष्य क्या है? तब हमें पूछना चाहिए कि यह सवाल पूछा जा सकता है कि नहीं पूछा जा सकता? सवाल का बन जाना काफी नहीं है पूछने के लिए। सवाल तो कोई भी बन सकता है। काफी नहीं है पूछने के लिए। यह सवाल पूछा जा सकता है कि जीवन का लक्ष्य क्या है? समझ लो कि कोई उत्तर दे कि यह रहा लक्ष्य। तो उस लक्ष्य के बाबत भी हम पूछ सकेंगे कि इसका लक्ष्य क्या है? कोई कहेगा, यह रहा। उसके बाबत भी हम पूछ सकेंगे, इसका लक्ष्य क्या है? तब तो इसशृंखला का कोई अंत नहीं हो सकता। कोई पूछे कि जीवन का लक्ष्य है--प्रेम। तो हम पूछेंगे कि प्रेम का क्या लक्ष्य है? कोई कहे कि जीवन का लक्ष्य है--परमात्मा। तो हम पूछेंगे कि परमात्मा का क्या लक्ष्य है? यह जो हमारा सवाल है, यह ऐसा है जो हर उत्तर पर वापस लागू हो जाएगा। इसलिए इस सवाल को ठीक से समझ लेना जरूरी है, नहीं तो इसकी तृप्ति कभी नहीं होगी। क्योंकि यह हर दिए गए उत्तर पर उतनी ही संगति से लागू हो सकता है जितनी संगति से पहले प्रश्न पर लागू था। मैं कोई भी उत्तर दूंगा--अ ब स। तुम फिर पूछ सकते होः लेकिन इसका क्या लक्ष्य है?
इस बात को इसलिए कह रहा हूं कि यह ठीक से समझ लेना जरूरी है कि एक स्थिति तो हमें स्वीकार करनी पड़ेगी जो बिना लक्ष्य के हो। जिसको अल्टीमेट कहें, परम कहें। उसके आगे हमें लक्ष्य को नहीं रखना पड़ेगा--अंत है, उसका कोई अर्थ नहीं रहेगा। मैं जीवन को ही परम मानता हूं। मैं कहता हूं--सारे लक्ष्य जीवन के लिए हैं, और जीवन का लक्ष्य कोई भी नहीं है। सारे लक्ष्य जीवन के लिए हैं, सारे साधन जीवन के लिए हैं। हंसते हैं हम जीवन के लिए, रोते हैं हम जीवन के लिए; जीते हैं जीवन के लिए, मरते हैं जीवन के लिए; प्रार्थना भी जीवन के लिए है, प्रेम भी जीवन के लिए है; और परमात्मा भी जीवन के लिए है। हमारे सारे जीवन के सब साधन जीवन के लिए हैं। और तब जीवन किसी के लिए नहीं हो सकता। वह स्वयं लक्ष्य है। वह किसी का साधन नहीं बनता, मीं.ज नहीं बनता।
तो जीवन चूंकि परम है, अंतिम है, उसके ऊपर कुछ भी नहीं है। इसलिए जीवन
का लक्ष्य क्या है? जब हम पूछते हैं, तो गलती हो जाती है। मैं आपसे पूछूं कि घड़ी का लक्ष्य क्या है? तो आप बता सकते हैं कि मुझे टाइम बताती है। क्योंकि आप साध्य हो, घड़ी साधन है। पूछूं, आपके कपड़े का क्या लक्ष्य है? आप कहते हैं मुझे सर्दी से बचाता है, या धूप से बचाता है। आप साधन नहीं हो, साध्य हो। कपड़ा लक्ष्य है। आपकी कार का क्या लक्ष्य है? आप कहते होः मुझे दुकान तक ले जाती है। मुझे घर तक लौटा लाती है। लेकिन कोई पूछे कि आपका लक्ष्य क्या है? तब जरा मुश्किल शुरू होगी। वह मुश्किल इसलिए कि हमने परमात्मा को जीवन से अलग किया है।
मैं तो कहता हूंः पूरे जीवन को पा लेना ही परमात्मा को पा लेना है। मैं जीवन और परमात्मा को अलग नहीं करता। जीवन जो है वह सेकुलर शब्द है, और परमात्मा रिलीजियस शब्द है। बस इतना ही फर्क है। शब्द का ही फर्क है वह।
जीवन की पूर्णता को पा लेना ही परमात्मा को पा लेना है। जीवन का कोई लक्ष्य नहीं है। लेकिन तब हमें बड़ी कठिनाई होती है।

हमें कठिनाई इसलिए होती है कि जिस जिंदगी में हमें हर चीज का लक्ष्य होता है, उसमें यह स्वीकार करना कि जीवन का कोई लक्ष्य नहीं है, बहुत बेचैनी में डाल देता है। क्योंकि हमारे सब सोचने के ढंग लक्ष्य के हैं। सब सोचने का हमारा ढंग यह है कि--किसलिए? जो हमारे सोचने का ढंग है जिंदगी में कि किसलिए, वह हम इस पर भी पूछना चाहते हैं कि--किसलिए? जीवन किसलिए? हम कपड़ा लेते हैं तो पूछना चाहते हैं; मकान बनाते हैं तो पूछना चाहते हैं; बगीचा लगाते हैं तो पूछना चाहते हैं--किसलिए? यही सवाल हम जीवन पर भी लागू कर देते हैं कि किसलिए जीवन? और जब मैं कहता हूं कि अपने आप में एक लक्ष्य है, तो मेरा मतलब यह है कि अगर तुमसे यह कहा जाए, इसको इस भांति कहा जाए कि जीवित होना ही अपने आप में आनंद है। इसके लिए किसी और आनंद के होने की जरूरत नहीं।
समझो कि एक सम्राट है और एक रेगिस्तान में फंस गया है। और कोई उससे कहता है कि रास्ता हम बता देंगे, आधा राज्य दे दो। तैयार हो जाएगा। फिर प्यास से मरा जा रहा है और कोई कहता है, एक गिलास हम पानी दे देंगे, आधा राज्य दे दो। तो वह आधा राज्य भी दे देगा। वह पूरा राज्य खोकर सिर्फ अपने को बचा लेगा। कोई उससे पूछे कि तुम बड़े पागल हो, अपने को बचा कर क्या करोगे? तो वह यही कहेगा कि अपने को बचाना अपने में ही सुखद है। राज्य था अपने लिए, हम राज्य के लिए न थे। सब खोया जा सकता है जीवन के लिए--सब। इसलिए उपनिषद एक बहुत अदभुत बात कहते हैं। बड़ी कठोर भी है बात, पर बड़ी अदभुत है। वह बात यह है कि मां बेटे को प्रेम करती है अपने ही लिए, बेटे के लिए नहीं। उसे सुखद है प्रेम करना। पति प्रेम करता है पत्नी को अपने ही लिए। पत्नी को नहीं, उसे सुखद है। यानी जब हम ऐसा भी दिखाते हैं कि पति कहता है कि मेरा लक्ष्य अपने बेटे के लिए ही सब कुछ करना है, तब भी वह गलत बोल रहा है। तब भी वह गलत बोल रहा है। यह उसका ही बेटा है। यह उसके ही जीवन की धारा है। यह उसके ही जीवन की एक शाखा है। उसे बचाने में वे आनंद देते हैं।
जीवित होना अपने आप में आनंद है--अकारण, अनकॉज्ड। अगर तुम सिर्फ जीवित हो, समझ लो बीमारी दुख देती है। बीमारी इसलिए दुख देती है, वह तुम्हें जीवित होने में पूरी तरह से बाधा डालती है। और कोई कारण नहीं उसके दुख का। तुम्हारे जीवन का जितना फूल खिलना चाहिए, नहीं खिलने देती। इसलिए बीमारी दुख देती है, गरीबी दुख देती है। और कोई कारण नहीं। गरीबी में जीवन के फूल को खिलना मुश्किल हो जाता है। एक दिन अमीरी भी दुख देने लगती है। क्योंकि बहुत अमीरी में भी जीवन के फूल के खिलने में बाधा पड़नी शुरू हो जाती है। मित्र न हों तो भी मुसीबत होती है, क्योंकि वे भी जीवन के खिलने में बाधक हैं। बहुत मित्र हो जाएं, अति आग्रह से भर जाएं तो भी जीवन के फूल में दिक्कत हो जाए।
हम मित्र भी इसीलिए खोजते हैं, शत्रु भी इसीलिए बना लेते हैं, मकान भी इसलिए बनाते हैं, एक दिन मकान को छोड़ कर जंगल भी इसीलिए चले जाते हैं कि जहां हमारे जीवन का फूल खिल सके--पूरा, हम उसकी तलाश में चौबीस घंटे लगे हुए हैं। और वह जो जीवन का फूल है, उसके खिलने में ही अपना आनंद है। उसके बाहर कोई आनंद नहीं है। तो दो तरह के आनंद पर ध्यान देना जरूरी है। एक साधन का आनंद होता है, वह अपने आप में नहीं होता। वह साध्य तक पहुंचा दे, तो होता है।
आपके पास एक कार है जो बहुत तेज चलती है, बहुत बढ़िया है। सब ठीक है। लेकिन एक ही खराबी है कि जहां आप जाना चाहते हैं, वह वहां नहीं ले जाती। बस वह फिर बेकार हो गई। क्योंकि उसका मूल्य एक ही था कि आप जहां जाना चाहें, वहां पहुंचा दे। उसका और कोई मूल्य नहीं था। उसका मूल्य, उसका साधन की तरह मूल्य था। आपके पास पैसा है, उसका साधन की तरह मूल्य है कि आपको वह बंदी न बनाए। आपको मुक्त करे। आप जब जो करना चाहें तो पैसे की कमी की वजह से न रुक जाए। आपका जीवन जैसा होना चाहे, पैसा बाधा न डाल दे।
तो पैसे का एक साध्य के लिए उपयोग है। जीवन में सब चीजों का उपयोग जीवन को साध्य मान कर है। और जिसके लिए सब चीजें साधन का काम करती हैं, वह खुद किसी के साधन का काम नहीं करता। वह मालिक है। वह परम सम्राट है। वह

किसी का भी नौकर नहीं; सब नौकर उसके हैं। सब नौकर उसके हैं। तो जीवित होना अपने आप में परम आनंद है। वह किसी भी तल पर हो।
एक पौधा खिला है, उसका भी परम आनंद सिर्फ होने में है। जस्ट बीइंग, जस्ट टू बी। होना ही। एक पक्षी है, एक मनुष्य है--इन सबका आनंद सिर्फ होने में है--मात्र होने में। अब मात्र होना इतना बड़ा मिरेकल है, छोटी-मोटी घटना नहीं है। वह तो चूंकि हमको मुफ्त मिल गया है इसलिए हम ये बातें पूछते हैं। अगर किसी दिन हमको पैसे लग कर मिलें, तब हमको पता चले। कितना मूल्य चुकाने को राजी हम न हो जाएंगे, अगर मात्र होना हमें किसी भी कीमत से मिलता हो! एक आदमी मर रहा है और उसको अगर एक क्षण भी मिल सकता हो होने का, तो कौन सा मूल्य है जिसको चुकाने से इंकार करेगा? वह सब मूल्य चुकाने को राजी हो जाएगा। लेकिन चूंकि हमें जीवन मुफ्त मिला हुआ है, इसलिए हमारे मन में ये सवाल उठते हैं, किसलिए?
एक सूफी कहानी मैंने सुनी है। एक सूफी फकीर एक गांव से गुजरता है और
एक आदमी उससे गिड़गिड़ा कर रो रहा है। और उससे कह रहा है कि मैं तो मरने का, आत्महत्या करने की सोचता हूं। मेरे पास कुछ भी नहीं है, एक पैसा मेरे पास खींसे में नहीं है। तो वह सूफी फकीर उससे कहता है, तू घबड़ा मत। तेरे पास बहुत है, लेकिन तुझे पता नहीं है। हम तेरी बिक्री करवाएंगे। कहता है कि इस गांव का जो राजा है, उसको अजीब-अजीब चीजों का शौक है। हम तेरी आंख बिकवाए देते हैं। एक-एक आंख का एक-एक लाख रुपया दिलवाए देते हैं। उसने कहा, क्या कहते हो? मैं और आंख बेचूं? लाख क्या, करोड़ भी कोई दे तो मैं आंख न बेचूं। तो उसने कहा कि तेरे पास तो करोड़ की चीज है, फिर तू अभी तो कह रहा था कि मेरे पास एक पैसा नहीं। क्योंकि इसमें उसको उससे कुछ खर्च नहीं करना पड़ा है। यह उसे सहज मिली हैं। यह उसे सहज मिली हैं। और जब सहज मिली हैं, इसलिए हमें सारी कठिनाई है।
अगर जीवन तुमसे पूछ कर तुम्हें मिले तो तुम कुछ भी चुकाने को राजी हो जाओ। लेकिन चूंकि जीवन तुम्हें बिना पूछे मिलता है, क्योंकि तुम होते ही नहीं जीवन पर पूछने के पहले, तो इसलिए मिलेगा ही बिना पूछे। कोई उपाय नहीं है। इसलिए जब तुम्हें मिल जाता है, चूंकि मुफ्त मिलता है, इसलिए हम उसका खयाल नहीं कर पाते हैं। इसलिए हम जीवन का लक्ष्य पूछने में लग जाते हैं कि लक्ष्य क्या है मेरे होने का? लेकिन ध्यान रहे, हमारे सारे होने का लक्ष्य शुद्ध होना है। हम पूरी तरह से कैसे हो जाएं? हम पूरी तरह से कभी नहीं हो पाते। इसलिए जब भी हम कभी पूरी तरह से हो पाते हैं क्षण भर को भी, तब हमें परम आनंद का अनुभव होता है।
समझ लो कि तुम एक दुश्मन के पास बैठे हो, तब तुम पूरी तरह से नहीं हो पाते। क्योंकि दुश्मन की मौजूदगी तुम्हें पूरे वक्त डराए रखती है। तुम सिकुड़े हुए होते हो। जैसे कि फूल की सब पंखुड़ियां बंद हैं। तुम भयभीत होते हो, तुम डरे होते हो कि पता नहीं कब हमला हो जाए? पता नहीं यह आदमी क्या करे? तो तुम खिल नहीं पाते। तुम सिकुड़े होते हो। तुम अपने मित्र के पास बैठे हो, तब तुम खिल जाते हो। इसलिए मित्र के पास जो आनंद मिलता है, वह होने का आनंद है और कोई आनंद नहीं है। क्योंकि यही आदमी किसी का शत्रु होकर बैठ जाए, कल यह ही आदमी तुम्हारा शत्रु होकर बैठ जाए तो आनंद नहीं देगा। जिसको हम प्रेम कहते हैं और जिनको हम प्रेम करते हैं, वे वे ही लोग हैं जिनके पास बैठ कर हमारे होने का फूल थोड़ा सा खिल पाता है। और कुछ भी नहीं है कारण उसमें।
जिनकी मौजूदगी में हम भयभीत नहीं हैं, जिनके पास होने में हम डरे हुए नहीं हैं, जिनसे सुरक्षा नहीं करनी है हमें अपनी, बस उनके पास हमारा फूल खिल जाता है। उसके खिलने में हमें जो रस आता है, वह रस अपने आप में ही, एण्ड इन इटसेल्फ, उसके बाहर, उसका कोई लक्ष्य नहीं। फिर चाहे ध्यान में मिलता हो, चाहे प्रार्थना में मिलता हो, कहीं भी मिलता हो। जहां भी जीवन में आनंद मिलता है, वह वही क्षण है जहां हम अकारण हो पाते हैं। सिर्फ होना। जब यह नहीं मिलता है तो जीवन दुखद होता चला जाता है। जब दुखद हो जाता है, तब हम पूछते हैं कि लक्ष्य क्या है इस होने का? और गलत सवाल पूछ लेते हैं।

गलत सवाल इसलिए पूछ लेते हैं कि जीवन इतना बहुमूल्य है, उससे बहुमूल्य कुछ भी नहीं। इसलिए वह किसी का भी साधन नहीं बन सकता। हम कहीं भी उसे लगा नहीं सकते। हम कह नहीं सकते कि यह, यह कुर्सी पाने का जीवन का लक्ष्य है। यह मकान बनाना जीवन का लक्ष्य है। ये सब इतनी फिजूल बातें मालूम पड़ती हैं कि इनसे हम क्या जीएं? परमात्मा भी पाने को अगर कोई कहे कि जीवन का लक्ष्य है, तो भी वह गलत कहता है। क्योंकि उसे पता ही नहीं। पहली तो बात कि परमात्मा जीवन का ही दूसरा नाम है। इसलिए उसको लक्ष्य नहीं बनाया जा सकता। इसलिए परमात्मा भी परम है। जीवन परम है। परम का मतलब हैः दि अल्टीमेट, जिसके आगे नहीं है।
तो अगर इसे इस भांति सोचोगे, तब तो कभी हल होने के करीब बात पहुंच सकती है। लेकिन अगर तुमने सीधे सवाल और जवाब की भाषा में सोचा तो कभी हल होने के पास नहीं पहुंच सकते। कभी नहीं पहुंचोगे। क्योंकि सवाल गलत है। और सवाल गलत इतने मजे से पूछा जा सकता है। असल में दुनिया के अधिकतम लोग गलत सवाल पूछ कर मुसीबत में पड़े रहते हैं। उन्हें खुद ही पता नहीं चलता है। उन्हें खुद ही पता नहीं चलता।
समझ लो कि एक आदमी पूछ सकता है कि हरे रंग में कैसी सुगंध होती है। सवाल बिल्कुल ठीक है, भाषा में कोई गलती नहीं है। भाषा का बनाव ठीक है। हरे रंग में कैसी सुगंध होती है? हमको दिख जाएगा कि सवाल गलत है, क्योंकि हरे रंग से सुगंध का क्या लेना-देना? लेकिन एक अंधे आदमी से यह सवाल पूछो कि हरे रंग में कैसी सुगंध होती है? वह कहेगाः मुझे पता नहीं। मैं पूछूंगा, पता लगाऊंगा। क्योंकि उसे हरे रंग का ही पता नहीं है। उसे सुगंध का तो पता है, लेकिन उसे हरे रंग का कोई पता नहीं है।
अब समझ लो, एक ऐसा आदमी जो अंधा भी है और जिसकी नाक भी काम नहीं करती, उसे बास भी नहीं आती। वह कहेगा भई जरूर होती होगी। हर चीज में कोई न कोई गंध होती है। हरे रंग में भी कोई गंध होती होगी। लेकिन मुझे पता नहीं है, मैं पूछूंगा। और अगर सारी ही भीड़ इस तरह की हो, उसमें हम इस तरह का सवाल पूछें, तो उत्तर देने वाले भी मिल जाएंगे। कोई कहेगा ऐसी सुगंध होती है, कोई कहेगा वैसी सुगंध होती है। तृप्ति तुम्हारी कभी न होगी, क्योंकि तुमने एक गलत सवाल पूछा था। और गलत जवाब मिलते चले गए। वह गलत जवाब से तृप्ति नहीं होगी, लेकिन तुम्हें भी खयाल न आएगा कि सवाल ही गलत था।
आदमी ने बहुत से गलत सवाल उठा कर हजारों साल से मेहनत की है। और मेहनत करता चला जा रहा है। जैसे कि वह कहता है कि किसने बनाया जगत को? अब यह गलत सवाल पूछ लिया। अब इसका हल होने वाला नहीं है। नहीं होने का और कोई कारण नहीं है। क्योंकि कोई बनाने वाला अलग होता, तब तो हल हो जाता। असल में यह जगत और बनाने वाला एक ही है। यहां ऐसा मामला नहीं है जैसे एक चित्रकार चित्र बनाता है। यहां ऐसा मामला है जैसे एक नृत्यकार नाचता है।
तो चित्रकार जब चित्र बनाता है तो चित्र तो अलग हो जाता है, चित्रकार अलग हो जाता है। चित्रकार मर जाए तो भी चित्र जिंदा रहता है। चित्र बन जाने के बाद चित्र और चित्रकार दो हो जाते हैं। लेकिन नर्तक, एक डांसर है। वह नाच रहा है। नर्तक मर जाए तो नृत्य नहीं बचेगा। नृत्य और नर्तक दो चीजें नहीं हैं। ये बिल्कुल एक हैं। असल में नर्तक है, तब तक नृत्य है। और जब तक वह नृत्य कर रहा है तभी तक वह भी नर्तक है। नहीं तो उसके बाद नर्तक आप उसको कह भी नहीं सकते। क्योंकि वह जब तक नाच रहा है तभी तक नर्तक है।
तो ये हम जो गलत सवाल उठा लेते हैं, अब यह गलत सवाल हमने उठा लिया कि जगत को किसने बनाया? अब इसके लिए हम हजारों साल से लगे हुए हैं। कोई कहेगा, ईश्वर ने बनाया। वह जो सवाल उठाने वाला था, वह पूछता हैः ईश्वर को किसने बनाया? उसको आप डांट नहीं सकते। क्योंकि आपने पहली ही गलती स्वीकार कर ली, रोकना था तो वहीं रोकना था। उसको आप कह नहीं सकते कि तुम नास्तिक हो। वह कहता, पहला सवाल पूछा आपने, तब... । और जब आप कहते हैं कि बिना बनाए कोई चीज बन नहीं सकती, तो फिर परमात्मा बिना बनाए कैसे बन सकता है?
अब इसका कोई अंत नहीं होगा। आप कहो, परमात्मा का और बड़ा पिता है, और उसका भी बड़ा पिता है, कहते चले जाओ। हर आखिरी सवाल पर वही का वही मामला खड़ा हो जाएगा--कि इसको किसने बनाया? क्योंकि एक बुनियादी भूल हो गई सवाल में।

वह भूल यह थी कि आपने बनाने वाले को, बनाई गई चीज को दो में तोड़ लिया। हमने अब तक जो कल्पना की है परमात्मा की, वह कुम्हार जैसी की है। जैसे कुम्हार घड़े बनाता है। उससे गड़बड़ हो गई। उससे गड़बड़ हो गई। क्योंकि हम कहते हैं, घड़े बनेंगे कैसे? कुम्हार चाहिए बनाने वाला। वे तो बन गए, लेकिन कुम्हार को किसने बनाया? अब वह सिलसिला शुरू होगा जिसका कोई अंत नहीं होगा।
मेरी अपनी समझ यह है कि बजाय सवाल खोजने के, सवाल का उत्तर खोजने के, सवाल के भीतर खोजने की फिकर करनी चाहिए कि कहीं कोई भूल तो नहीं हो रही। नहीं तो एक छोटी सी भूल फिर बड़ी-बड़ी फिलॉसफी.ज खड़ी कर देंगी। और वह बुनियादी भूल में अटकाव हो जाता है, फिर कुछ हल नहीं होता। तो मैं तुमसे कहूंगा कि पहली तो बात यह है कि तुम और जीवन अलग नहीं हो। इसलिए ऐसा मत पूछो कि मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है? तुम ही जीवन हो। इसलिए ऐसा पूछो की जीवन का लक्ष्य क्या है? फिर मैं तुमसे कहूंगा कि जीवन का लक्ष्य क्या है? यह पूछने के पहले यह सोच लो कि एकाध चीज तो ऐसी होनी ही चाहिए जो अपने में लक्ष्य होगी। सब चीजें जिसका साधन बनेंगी, और जो खुद किसी का साधन नहीं होगी। अगर तुम कहो कि हम ऐसी किसी चीज को नहीं मानते तो फिर तुम्हारे प्रश्न का कभी उत्तर नहीं होगा। फिर तुम प्रश्न ही मत पूछो। और अगर तुम कहते हो कि ऐसी कोई चीज को हम स्वीकार करते हैं, एक तो ऐसी चीज होनी चाहिए जिसकी तरफ सब जाते हैं, लेकिन जो किसी की तरफ नहीं जाती।
तो मैं कहता हूंः उसको ही मैं जीवन कहता हूं। अगर धर्म की भाषा में कहना चाहूं तो उसको परमात्मा कहता हूं। वह हमारे प्रेम की बात है। किसी को परमात्मा शब्द अप्रीतिकर लगे, वह कहे जीवन है, इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। किसी को लगे कि जीवन तो बहुत साधारण शब्द है, हमें कुछ और अच्छा शब्द चाहिए, तो वह कहे परमात्मा, जो उसे कहना हो--कहे। और इस जीवन का आनंद होने में ही है।
और दूसरी बात तुमने जो पूछी वह भी इसी भूल से पैदा हुई है, इसी सवाल की भूल से। तुम पूछते हो कि मर जाते हैं फिर जन्म होता है; फिर मरते हैं फिर जीवन होता है, जैसे वस्त्र बदल जाते हैं। इस सबमें तुम जो भूल कर रहे हो, वह यही कर रहे हो। अगर तुम्हें यह समझ में आ जाए कि तुम्हीं जीवन हो, तो मरते कभी भी नहीं फिर। क्योंकि जीवन की कोई मृत्यु संभव नहीं है। सिर्फ रूपांतरण है। मृत्यु कभी नहीं है। क्योंकि मृत्यु का मतलब होता हैः समाप्त हो गई वह बात--जो थी। इस जगत में कुछ भी मर नहीं सकता इन अर्थों में, सिर्फ बदलता है।
अभी यह, यह पौधा खड़ा हो गया है। हम इसे कल काट कर फेंक दे सकते हैं। तो
हम कहेंगे, मर गया। लेकिन कुछ भी नहीं मर गया। इस टोटली जगत में कोई फर्क नहीं पड़ा। इस टोटल जगत में जितना था, उतना ही है अब भी। पौधे के कट जाने पर भी। पौधे की मिट्टी मिट्टी में चली गई होगी, पौधे का पानी पानी में चला गया होगा, पौधे के प्राण विराट में चले गए होंगे--पर सब वहीं है। कहीं कुछ चला नहीं गया। अगर हम समग्र जगत को देखें, तो जितना है उतना ही है। इसमें एक रेत का कण बढ़ नहीं सकता, और एक रेत का कण घट नहीं सकता। क्योंकि वह आएगा कहां से? और जाएगा कहां? रूपांतरण हो रहा है। तुम्हारे घर का पानी बह कर दूसरे घर में चला गया है। तुम्हारे घर में तुम कह रहे हो, पानी मर गया है। तो दूसरे घर में हो गया है। वहां लोग बैंड-बाजा बजा रहे हैं कि पानी का जन्म हो गया है। वह पानी सिर्फ यात्रा कर गया।
जीवन की कोई मृत्यु नहीं है। मृत्यु बिल्कुल ही झूठा शब्द है। लेकिन जीवन रूपांतरण है, क्योंकि जीवन गति है। तो इसलिए यह भी खयाल में ले लेना कि जीवन को कोई एक मरी हुई चीज मत समझ लेना। जीवन एक प्रोसेस है, एक चीज नहीं है। एक गति है जो चौबीस घंटे हो रही है, होती चली जा रही है, कभी ठहरी नहीं है। अभी भी तुम नहीं ठहरे हो, लेकिन हमारी भाषा यहां भी भूल करती है। हम कहते हैं, फलां आदमी बूढ़ा है। गलत है यह बात कहना।
ऐसा कहना चाहिए कि फलां आदमी बूढ़ा हो रहा है। है की स्टैटिक हालत में कोई नहीं होता। जिसको हम बूढ़ा कहते हैं, वह भी बूढ़ा हो रहा है। जब हम कह रहे हैं, उस बीच भी बूढ़ा हो गया। और दो मिनट और बूढ़ा हो गया। हम कहते हैं, नदी है। ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि नदी एक क्षण को भी है नहीं, हो रही है।

नदी ठहरी कहां? हम कहते हैं, यह बच्चा है। यह बच्चा हो रहा है। है की स्थिति में तो इस जगत में कुछ भी नहीं है। सब होने की स्थिति में है। सब चीजें हो रही हैं प्रतिपल।
तो जीवन का अर्थ ही हैः गति। जीवन का अर्थ ही हैः परिवर्तन। जीवन का अर्थ ही हैः होने की निरंतर अनंत क्षमता। तो जब यह क्षमता एक जगह छोटी पड़ जाती है, जब एक मकान तुम्हें छोटा पड़ने लगता है--तुम्हारे घर में दस बच्चे हो गए, पिता हो गए, और सारा परिवार बड़ा हो गया, मकान छोटा पड़ गया। अब तुम नए मकान की तलाश करते हो। यह मकान छोटा पड़ गया। होने ने इतना बड़ा कर लिया रूप, अब यह मकान छोटा पड़ गया। अब तुम नया मकान खोजते हो।
तो जीवन की यह धारा रोज-रोज, प्रतिदिन नया-नया खोज रही है। एक दिन तुम्हारा यह मकान, यह शरीर भी छोटा पड़ जाता है, उसकी जरूरतों के लायक नहीं रह जाता। उसे नया मकान खोजने की ही यात्रा पर निकल जाना पड़ता है। तो उस, उस जीवन ने बहुत यात्रा की है। वह पशुओं से आया है, पौधों से आया है, पक्षियों से आया है मनुष्य में है। मनुष्य पर भी यात्रा का अन्त नहीं है। मनुष्य के बाद भी यात्रा है।
तो जीवन कहीं मरता नहीं। लेकिन जहां से जीवन घर बदलता है, वहां से हम दिक्कत में पड़ जाते हैं। क्योंकि हमने घर को जीवन समझा हुआ है। तो हम दिक्कत में पड़ जाते हैं एकदम। हम कठिनाई में पड़ जाते हैं। हम कहते हैं, यह तो खत्म हो गया आदमी, हम रो-धो कर निपटारा कर देते हैं। मगर वह आदमी नई यात्रा पर निकल गया है। वह ऊर्जा, वह शक्ति जो उस आदमी को बनाती थी, नई यात्रा पर चली गई। और वह जो तुम कहते हो, टाइम गैप होगा। वह टाइम गैप होगा, वह होगा ही। वह तो सभी यात्रा में हो रहा है। वह तो प्रतिपल हो रहा है। अभी भी टाइम गैप है, अभी भी टाइम गैप है।
तुम यहां आए हो, तुम यहां से वही आदमी थोड़े ही वापस लौटोगे जो तुम आए थे। कैसे लौट सकते हो? हां कोई मरा हुआ आदमी यहां मेरे पास आ गया हो, तो वह वैसा ही लौट जाएगा जैसा आया था। नहीं तो घंटे भर मैं कुछ बात करूंगा, कुछ होगा, कुछ सोचेगा पक्ष में, विपक्ष में। वह आदमी दूसरा होकर जाने वाला है, वही नहीं होकर जा सकता। वह तो घर वालों की अगर आंख तुम्हारी बहुत पैनी हो तो वे कहेंगे कि दूसरा आदमी आ गया है, यह आदमी नहीं गया था। आंख पैनी नहीं है, बोथली है। ऊपर की शक्ल देखती है। बाकी भीतर क्या हो गया है इसकी फिकर नहीं करती। इसलिए हमें कठिनाई मालूम नहीं पड़ती। रोज सब बदल रहा है।
एक दिन जब पूरी तरह से तुम्हारा शरीर बदलता है, तब चिंता हो जाती है।
और चिंता उन्हें हो जाती है जिन्होंने तुम्हारे शरीर को ही सब कुछ समझ रखा था। वे दिक्कत में पड़ जाते हैं। क्योंकि वे कहते हैं कि अब यह आदमी गया। और उस शरीर के बाद फिर हमें वह दिखाई नहीं पड़ता। वह आदमी, उससे हमारा कोई मिलन नहीं होता। इसलिए हम कहते हैं कि गया, समाप्त हो गया। हमारे लिए समाप्त हो जाने का इतना ही मतलब है कि अब हम मिल नहीं सकते। अब वह अवेलेबल नहीं है। और कुछ मतलब नहीं है। मतलब जिस तरह वह कल तक अवेलेबल था, कि हम चाहते तो बुला लेते कि भई, क्या कर रहे हो? अब हम बुलाते हैं कि क्या कर रहे हो? तो वह कुछ उत्तर नहीं आता।
तो नॉन-अवेलेबिलिटी को हम कहते हैं मृत्यु। लेकिन हम कोई नये साधन खोजें तो शायद वह फिर अवेलेबल हो जाए। और साधन हैं। कि जो आदमी नहीं है, अब उससे संबंध बांधे जा सके, उससे बात की जा सके। जो आदमी दूर यात्रा पर निकल गया है, उससे भी संवाद किया जा सके। लेकिन फिर हमें नये साधन खोजने पड़ें। नये साधन खोजने पड़ें तो वह फिर वापस अवेलेबिलिटी की सीमा में आ जाए। वह उपलब्ध हो जाए। तब हम ऐसा न कहें कि वह मर गया। हम इतना ही कहें कि वह दूसरे शरीर की यात्रा पर चला गया।
न ही कोई मरता है कभी, और न ही कोई जन्मता है। जन्म-मृत्यु झूठे शब्द हैं। हां, जीवन-स्थान बदलता है। उससे कठिनाई होती है, उससे बहुत कठिनाई होती है।
हमारे देखने की दृष्टि की सीमा के बाहर जब कोई चला जाता है, तब मुश्किल हो जाती है। समझो कि एक बड़े वृक्ष पर एक आदमी बैठा हुआ है। तुम वृक्ष के नीचे बैठे हुए हो। अब ऊपर वृक्ष वाला आदमी कहता है कि एक बैलगाड़ी

आ रही है, आ गई। उसे दिखाई पड़ता है दूर तक। एक बैलगाड़ी उसे दिखाई पड़ रही है। तुम कहते हो, कैसी बैलगाड़ी? कोई बैलगाड़ी नहीं है। होगी भविष्य में। लेकिन वह कहता है, नहीं, वर्तमान में है। अब बड़ा मजा है। एक वृक्ष के नीचे बैठा है, और एक वृक्ष के ऊपर बैठे आदमी का भविष्य और वर्तमान भी अलग-अलग हो जाता है।
क्योंकि उसके लिए वह वर्तमान है, उसे वह दिखाई पड़ रही है कि बैलगाड़ी रास्ते पर है। तुम कहते हो, होगी भविष्य में। तुम कहते हो, भविष्य-वक्ता मालूम होते हो। बैलगाड़ी तो कहीं रास्ते पर है नहीं, रास्ता तुम देख रहे हो दोनों तरफ, ओर-छोर साफ है। रास्ते पर बैलगाड़ी नहीं है। तुम्हारी जो दृष्टि की सीमा है, उसके जरा भी पार है तो नहीं है। थोड़ी देर में बैलगाड़ी तुम्हारी दृष्टि-सीमा में आएगी। तुम कहोगे, ठीक भविष्यवाणी की थी। बैलगाड़ी आ गई। बैलगाड़ी है। घड़ी भर बाद बैलगाड़ी तुम्हारी दृष्टि की सीमा के फिर बाहर चली जाएगी। तुम फिर कहोगे कि बैलगाड़ी नहीं है। वह आदमी कहेगा, अभी भी है, अभी भी उसे दिखाई पड़ रही है। तुम कहोगे, अतीत हो चुकी, पास्ट हो गई। थी कभी, अब कहां है? रास्ता खाली पड़ा है। वह आदमी कहेगा, अभी भी है, पास्ट नहीं हो गई। अभी भी दिखाई पड़ रही है।
तो हमारी कितनी दृष्टि-सीमा है, तो जो हमारी आम दृष्टि-सीमा है, उसमें जन्म में आदमी प्रकट होता है, रास्ते पर आता है। जहां से हमें दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है कि हां, यह दिखाई पड़ा। और मृत्यु में उस जगह के बाहर हो जाता है, जहां से हमें दिखाई नहीं पड़ता। तो ये दो बिंदु जो हैं उस आदमी के जन्मने और मरने के नहीं हैं, हमारी दृष्टि-सीमा के हैं। हमारी दृष्टि जहां तक देख पाती थी वहां तक हमने यह सीमा बना ली। हमने कहाः यह एक आदमी फलां- फलां तारीख को पैदा हुआ था, और यह आदमी फलां-फलां तारीख को मर गया। यह जो दो तारीख है इस आदमी के मरने और जन्मने की नहीं, हमारी दृष्टि-सीमा के पथ को दो पत्थर लग जाते हैं। हमको लगता है, बच्चा यहां पैदा हुआ, यहां खत्म हो गया। यह आदमी इस तारीख को इस रास्ते पर प्रकट हुआ था, इतना ही कहना चाहिए। इस तारीख को इस रास्ते से अप्रकट हो गया। हम नहीं देख पाते, कहां खो गया। ऐसा अगर देखो... और मेरा मानना यह है कि सवाल बहुत उत्तर का नहीं है। सवाल प्रश्नों को बहुत-बहुत ठीक से देखने का है। और प्रश्न को ठीक देखना मैं उसी बात को कहता हूं जिससे तुम्हारा चित्त गतिमान हो जाए। चिंतन में चला जाए। और और नये विस्तार खुलते चले जाएं तुम्हें देखने के, और तुम्हारा खयाल बड़ा होता चला जाए। और ऐसा मत सोचना कि कभी कोई ऐसा फार्मूला तुम्हें मिल जाएगा, जैसे तुम अपनी किताब में लिख लोगे और कहोगे कि यह उत्तर हुआ। जिंदगी इतनी बड़ी है कि सब फार्मूले छोटे हैं। इसलिए जितने फार्मूले
अब तक बनाए गए सब बेकार साबित होते हैं। बड़े से बड़ा आदमी भी जो फार्मूला दे जाता है, वह भी बहुत जल्दी बेकार हो जाता है। उसका कारण यह नहीं कि वह आदमी बड़ा नहीं था। उसका कारण है कि फार्मूला कितना भी बड़ा हो, बड़ा नहीं हो सकता। जिंदगी बहुत बड़ी है। हमें उसकी कुछ, उसकी कल्पना भी नहीं है कि वह कितनी बड़ी है। अब यहां एक, एक पौधे में भी प्राण हैं। हम कभी नहीं सोचते उसके जन्म और मृत्यु की। क्योंकि हमारा उससे कोई संबंध नहीं है। वह भी एक दिन जन्मता है और एक दिन मरता है। लेकिन हम कभी नहीं सोचते इस भाषा में कि पौधा जन्मा और मरा। हम उसे उखाड़ कर फेंक देते हैं। हम कभी नहीं सोचते हैं कि कोई, कोई एक जीवन-पथ पर आई हुई आत्मा को अलग कर दिया। हमारे सोचने की बात है। हमारे सोचने का दायरा बड़ा छोटा है।
हम आदमी तक ही सोचते हैं। आदमी तक ही हमारा सोचना जाता है। जब यह सोचना बड़ा होने लगता है, और बड़ा होने लगता है, तो एक पशु को भी मारना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि लगता है कि हमें क्या हक है कि जीवन-पथ पर आए हुए एक व्यक्ति को हम अलग करें। हम कौन हैं? तब एक पौधे को भी उखाड़ना मुश्किल हो जाता है। हमें लगता है कि हम कौन हैं जीवन-पथ पर? और कौन कह सकता है कि पौधा हमसे कुछ पीछे है?
पौधे के अपने होने का आनंद है। और अगर होने का आनंद ही जीवन है तो हमारे होने के आनंद में और पौधे के होने के आनंद में कोई फर्क नहीं हो सकता। वह पौधे का ढंग है होने का, यह हमारा ढंग है होने का। हम जिस तरह

प्रफुल्लित हो रहे हैं, एक शांत हवा है, और ठीक भोजन किया है, ठीक प्रेम से घर में बैठे हैं; पौधे को भी पानी मिला है, ठंडी हवा आई है, वह भी इतना ही आनंदित होगा।
तो यह तो हमारा कितना दृष्टि-पथ बड़ा होता चला जाए, तब तो तुम्हें ऐसा लगेगा कि सारा का सारा जीवन है। सब तरफ जीवन है। उस जीवन में हम भी एक लहर हैं। और यह जो अनंत सागर है, अनंत लहरों वाला, यह किसी का साधन नहीं है। यह अपने में ही साध्य है। और इसको साधन बनाना बहुत खतरनाक है। यह भी खयाल में ले लेनाः इसको जिन लोगों ने साधन बनाया, उन्होंने मनुष्य को बहुत नुकसान पहुंचाया।
किसी ने कहा कि परमात्मा को पाना साधन है। तो उसने अपनी बलि दे दी फिर उसके लिए। क्योंकि फिर वह साध्य हो गया। तो वह साध्य हो गया। फिर उसने कहा कि अगर भूखे मर कर परमात्मा मिलेगा, तो मैं भूखा मरूंगा। अगर शीर्षासन करके मिलेगा, मैं शीर्षासन करूंगा। अगर किसी ने कहा, पहाड़ पर मिलेगा, तो मैं पहाड़ च.ढ़ूंगा। किसी ने कहाः अपने को कोड़े मारोगे तब मिलेगा, तो वह अपने को कोड़े मार रहा है। किसी ने कहा कि सर्दी और धूप में खड़े रहो--ऐसे मिलेगा, तो वह वैसा कर रहा है। अब वह अपने साथ साधन का व्यवहार कर रहा है। क्योंकि अब वह साध्य नहीं रह गया। समझे न?
इसलिए सारी दुनिया में जिन लोगों ने परमात्मा को साध्य मान लिया, उन्होंने अपने साथ बहुत दुर्व्यवहार किया है। करेंगे वे, क्योंकि साधन के साथ सद्व्यवहार नहीं हो सकता। असल में जिसको हमने साधन कहा, उसके साथ दुर्व्यवहार शुरू हो गया। किसी ने कहा कि स्वर्ग लक्ष्य है पाना, तो फिर स्वर्ग पाने के लिए जो भी किया जा सकता है, वह करेगा। अगर मुसलमानों ने कहा कि हिंदुओं को काट दो इससे बहिश्त मिलेगी, तो हिंदू काटे जा सकते हैं। अगर हिंदुओं ने कहा कि मुसलमान मार डालो, इससे स्वर्ग मिलेगा, तो मुसलमान काटे जा सकते हैं। तो फिर आदमी के साथ हमने साधन का व्यवहार कर लिया। किसी ने कहा कि बलि पर बकरे को चढ़ा दो, गाय को चढ़ा दो, तो मोक्ष का इंतजाम हो जाएगा। तो हमने गाय काट दी, बकरा काट दिया। आदमी भी काटे!
क्योंकि हमने, एक बुनियादी बात हम चूक गए कि जीवन किसी का भी साधन नहीं है। जीवन परम साध्य है। इसलिए धार्मिक आदमी मैं उसको कहता हूंः जिसको यह खयाल में आना शुरू हो गया कि जीवन की बलि किसी के लिए भी नहीं चढ़ाई जा सकती। जीवन परम साध्य है। नहीं तो कहीं न कहीं बलि चढ़ेगी। कोई राष्ट्र के लिए चढ़वा देगा, कोई धर्म के लिए चढ़वा देगा, कोई यज्ञ के लिए चढ़वा देगा, कोई तपश्चर्या के लिए चढ़वा देगा। बलि कहीं न कहीं चढ़ जाएगी-- उसकी, जिसकी कि बलि चढ़ाने की कोई जरूरत नहीं, जिसके लिए सब है। उसको हम किसी चीज के लिए चढ़ा देंगे।
तो इधर मेरे लिए तो इसमें बहुत से इंप्लीकेशंस हैं। यह मेरा तो मानना
यह है कि दुनिया अगर अच्छी बनानी है तो जीवन को अंतिम सत्य स्वीकार करना चाहिए। तो फिर हम जीवन के साथ दुर्व्यवहार न कर सकेंगे। नहीं तो हम करेंगे।
एक पति मरता है, वह अपनी पत्नी को सती करवा लेगा। क्योंकि पत्नी का जीवन कोई साध्य नहीं था। वह सिर्फ पत्नी थी, दासी थी पति की। अब पति मर रहा है तो उसके होने की क्या जरूरत? उसको भी कूद जाना चाहिए आग में। क्योंकि जीवन को हम कभी भी नहीं जो कि उसको आखिरी चीज मानते। इसलिए किसी भी चीज पर चढ़ा देते हैं। अब एक बेटा तुम्हारे घर में पैदा हुआ है। अब बाप को उसे डाक्टर बनाना है। और हो सकता है बेटा डाक्टर बनने को नहीं पैदा हुआ है। तो बाप उसको सब तरह से बलि चढ़ा देगा डाक्टरी के लिए, डाक्टर बना कर रहेगा। चाहे उसकी सब बलि चढ़ जाए। वह जो होने को पैदा हुआ था, उसके लिए कोई रास्ता न रह जाए, कोई फिकर नहीं। वह दुखी हो जाए, कोई फिकर नहीं। वह जिंदगी भर चिंतित रहे, कोई फिकर नहीं। फ्रस्ट्रेटिड रहे, कोई फिकर नहीं। केवल बाप ने एक लक्ष्य बना लिया कि उस बेटे का जीवन जो है वह डाक्टर होने के लिए है। तब वह डाक्टरी में उसको लगाने में लग जाएगा। वह सब तरफ से उसको डाक्टर बना कर रहेगा, चाहे उसका कुछ भी परिणाम हो।

तो अब तक हमने चूंकि सदा इस तरह सोचा है कि जीवन का कोई लक्ष्य होना चाहिए, तो हमने जीवन के साथ बहुत ही दुर्व्यवहार किया है। जिस दिन हम ऐसा सोचेंगे कि जीवन लक्ष्यातीत, लक्ष्य के पार है, सब लक्ष्य आकर उसमें मिल जाते हैं। जैसे कोई पूछे कि सागर किससे मिलता है, हम कहेंगेः नहीं, सभी नदियां आकर सागर से मिल जाती हैं। सागर किसी से मिलने नहीं जाता। सागर अपने में ही जीता है। ऐसा ही जीवन है। सारी धाराएं जीवन में आकर मिल जाती हैं। सुख की, दुख की, धर्म की, अधर्म की, राम की, रावण की--सब धाराएं जीवन में आकर मिल जाती हैं। और जीवन, जीवन कहीं नहीं जाता। अगर यह खयाल में आ जाए तो हम जीवन के साथ सद्व्यवहार कर सकेंगे। और जीवन के साथ सद्व्यवहार ही धर्म है।
इसे ऐसा सोचो, मैं नहीं कहता हूं कि मैं उत्तर दे रहा हूं। क्योंकि मैं तो कहता हूं तुम्हारा सवाल नहीं है ठीक, इसलिए इसका उत्तर तो हो नहीं सकता। मैं उत्तर नहीं दे रहा, मैं तो तुम्हारे सिर्फ सवाल का ही विश्लेषण कर रहा हूं। मैं उत्तर नहीं दे रहा हूं। यानी मैं तो सिर्फ यही कह रहा हूं कि हम इस सवाल पर सोच रहे हैं। उत्तर का सवाल नहीं है। उत्तर देने की बात नहीं है। और जो कोई तुम्हें उत्तर दे, समझना कि उसे, उसे कुछ पता ही नहीं चला। कुछ पता नहीं चला। ऐसा जिस दिन तुम्हें दिखाई पड़ेगा, जीवन की परम धन्यता। उस दिन बहुत ही अदभुत होगा। बहुत अदभुत होगा।

प्रश्नः (ध्वनि-मुद्रण अस्पष्ट)

हां, यह भी मेरे जीवन में सम्मिलित है, हां। मेरे लिए वह भी सम्मिलित है।
नहीं, नहीं आप मत लें, आप मत लें, आप तो जो लें... (44 : 48)। मैं आत्मा के लिए जीवन का प्रयोग करता हूं। जीवन सर्वग्राही शब्द है। जो भी है वह सब जीवन है। वह भी हमारी दृष्टि है। हमने जीवन में भी भेद किए हैं। कुछ जो ऊंचा जीवन है, उसको हम अलग किए हैं। कुछ जो नीचा जीवन है, उसको हम अलग किए हैं। लेकिन जीवन में कुछ नीचा और ऊंचा नहीं है। जीवन एक इकट्ठी धारा है। तो मेरी नजर में ऐसा नहीं है कि कुछ जीवन का कोई एक अलग रूप, ऊंचा रूप जिसकी मैं बात कर रहा हूं, और आप किसी और जीवन की। नहीं, जिस जीवन की आप बात कर रहे हैं--उसको ही।
जीवन सर्वग्राही है। उसमें राम भी गृहीत है और रावण भी। तो ऐसा नहीं सोच लेना कि जब मैं जीवन की बात कर रहा हूं तो राम का जीवन है, और रावण का काटता हूं। क्योंकि मेरी तो समझ यह है कि रावण अगर कट जाए तो राम का होना उतना ही असंभव है; जितना कि जड़ कट जाए तो पौधे का होना असंभव है। तो जीवन की गहराई में राम और रावण तो किसी एक ही जड़ से जुड़े हैं। और एक ही साथ हो सकते हैं। यह तो हमारी जल्दबाजी है और हमारे सिद्धांत हैं कि हम उनको दो में काट देते हैं।
कभी एक रामलीला खेलने की कोशिश करें, रावण का पार्ट न रखें उसमें। तब आपको पता चलेगा कि कैसा असंभव है यह मामला। राम को अकेले कैसे प्रकट करोगे? अकेले राम से रामलीला खेलें तो पता चलेगा कि यह, यह चलता ही नहीं काम आगे। यह एक सेकेंड नहीं चल सकती रामलीला। और चलेगी तो इतनी मोनोटोनस हो जाएगी कि कोई देखने नहीं आएगा। लेकिन हमारा मन जो हर चीज को काटता है, वह चीजों को दो में तोड़ देता है। हम कहते हैं कि अंधेरा अलग और प्रकाश अलग। लेकिन जीवन की गहराइयों में अंधेरे और प्रकाश का स्रोत एक ही है। यह तो हमारा दिमाग हर चीज को तोड़ कर चलता है। दो में बिना तोड़े हम नहीं मानते। असल में बुद्धि बिना द्वैत में तोड़े मानती ही नहीं। वह कहती हैः दो में तोड़ो ही। नहीं तो उसका काम नहीं है। फिर वहां, खत्म हो गया उसका काम। तो वह कहती हैः दो में तोड़ो। अंधेरा अलग और प्रकाश अलग। हम कहते हैंः परमात्मा प्रकाश-स्वरूप है। तो फिर अंधेरा स्वरूप कौन है? तो परमात्मा की बिना आज्ञा के अंधेरा है? तब तो परमात्मा से ज्यादा शक्तिशाली हो जाएगा। नहीं वे, वे दोनों ही उसका स्वरूप हैं--अंधेरा भी और प्रकाश भी। और जब हम बहुत गहरे में देखेंगे तो उन दोनों में विरोध न दिखाई पड़ेगा, डिग्री का

फासला दिखाई पड़ेगा। जिसको हम अंधेरा कहते हैं उसमें भी किसी प्राणी को प्रकाश दिखाई पड़ता है। सिर्फ डिग्री की बात, हमारी आंख के लिए अंधेरा हो गया। हमारी आंख जहां तक प्रकाश को पकड़ती थी, अब वहां नहीं पकड़ती।
अभी आप दोपहर की रोशनी में से घर के भीतर जाएं तो अंधेरा मालूम होता है। दस मिनट के बाद उजाला मालूम पड़ने लगता है। बात क्या हो गई? वह कमरा वही है, वहां कुछ नहीं बदला है। आपकी आंख की देखने की क्षमता में फर्क हो गया है। परमात्मा की आंख चूंकि सभी देख पाती है, जीवन की आंख--उसके लिए अंधेरा और प्रकाश अलग नहीं हो सकते। बहुत गहरे में बुरा और भला भी अलग नहीं हो सकता। हो ही नहीं सकता। हम जुड़े हैं। हमारी तकलीफ है कि हम जोड़ में चीजों को देख नहीं सकते, हम तोड़ेंगे। और जब तक हम बुरे और भले में लड़ाई न खड़ी करवा दें, और अंधेरे और प्रकाश को दुश्मन न बना दें, तब तक हमारा चित्त न मानेगा। असल में बुद्धि जहां है, अति, वहां दुश्मनी अनिवार्य है। वहां हम चीजों को शत्रुतामय ही लेंगे। वहां मित्रता में न ले सकेंगे।
तो मैं नहीं कहता हूं जीवन सारा जीवन, सारा जीवन गृहीत है मुझे। और जिसको आप बुरा कहते हैं, उस बुरे में ही अच्छे के फूल लगते हैं। जिसको आप कांटा कहते हैं, उसी गुलाब पर, गुलाब के फूल लगते हैं। इसलिए मत कहिए बुरा और भला है।
एक मुझे खयाल आता है कि एक, एक सूफी फकीर हुआ जुन्नून। तो उसने एक रात प्रार्थना की कि हे परमात्मा! सबसे अच्छा आदमी कौन है मेरे गांव में? तो उसे खबर आई कि तेरा पड़ोसी। तो वह दूसरे दिन से पड़ोसी को नमस्कार करने लगा। हालांकि उसका मन नहीं मानता था कि एक साधारण सा आदमी जो इसको नमस्कार कहता था सदा फकीर मान कर, अब उसको मैं नमस्कार करूं। उसका कभी मन नहीं माना। लेकिन अब जब परमात्मा ने यह कहा कि सबसे अच्छा आदमी यही है। फिर एक दिन उसे खयाल आया कि मैं यह भी तो पूछ लूं कि सबसे बुरा कौन है? उसने रात पूछा कि परमात्मा एक कृपा की, इतना और बता दे कि सबसे बुरा आदमी कौन है? तो उसने कहाः तेरा पड़ोसी। उसने कहाः अब तुमने मुझे मुश्किल में डाल दिया। वही पड़ोसी जिसको सबसे अच्छा कहा था? उसने कहाः वही। उसने कहाः लेकिन बहुत मुसीबत की बात हो गई। तो आवाज आई कि अच्छे और बुरे दो चीजें नहीं हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। वह तेरा पड़ोसी किसी क्षण में परम शुभ होता है, किसी क्षण में परम अशुभ हो जाता है। सुबह कुछ होता है, सांझ कुछ हो जाता है। वह तेरा पड़ोसी दोनों होता रहता है। तो, तो, तू, तू उसको जरा गौर से देखना। उसे जरा गौर से देखना, वह दोनों होता रहता है। जिंदगी बहुत ही, जिसको हम कहें, विरोधों का समागम है। वहां सब विरोध समाहित हैं।
एक और मैं पढ़ता था। एक आदमी गांव में बहुत बुरा है। इतना बुरा है कि सारा गांव उससे परेशान है। तो उस गांव के संन्यासी ने रात परमात्मा से प्रार्थना की कि इस आदमी को अब उठा ही ले, बहुत बुरा है। तो परमात्मा ने उससे कहाः कि जिसे मैं पचास साल से जिला रहा हूं, तो कुछ सोच कर जिला रहा हूं। और तुम सब मुझसे भी ज्यादा समझदार हो, उसको उठाने की फिकर कर रहे हो। आखिर मैं ही उसे जिला रहा हूं। और पचास साल से मैं उसे श्वास और जीवन दे रहा हूं। तो तुम मुझसे भी ज्यादा बुद्धिमान हो कि मुझे सलाह देते हो कि इस आदमी को उठा लूं। और जिसे मैं पचास साल से बरदाश्त कर रहा हूं, तुम न कर सकोगे?
जिंदगी बहुत विरोधों का जोड़ है। मगर हमारी बुद्धि काट कर देखती है, इसलिए कठिनाई होती है। हम कहते हैंः यह, यह, यह, यह गृहस्थ है, यह संन्यासी है; यह अच्छा है, यह बुरा है; यह मंदिर है, यह मकान है--ऐसा हम बांटते हैं। हमारे बांटने से सब मुश्किल हो जाती है। उस बांटने को मैं पसंद नहीं करता। जैसी जिंदगी पूरी है, उसे हम वैसा देखें। और उस पूरी जिंदगी को ही परमात्मा समझें, तभी कुछ होगा। और जिस दिन हम पूरी जिंदगी को परमात्मा समझें, उस दिन जिसे हम बुरा कहते हैं, उसका रूपान्तरण तत्काल शुरू हो जाता है। वह बदलना शुरू हो जाता है।

प्रश्नः (रिकार्डिंग छूट गई है)

... शास्त्र को मानता ही नहीं तो शास्त्रार्थ कैसे करूंगा? मेरी आप बात समझे न?

प्रश्नः यह आप लिख दीजिए।

न, न, न। यह, यह जो मामला है न, लिखूंगा तो शास्त्र बन जाएगा। इसलिए लिखता तो कुछ हूं नहीं। आप समझे न? कोई शास्त्र मुझे बनाना नहीं। लिखता तो कुछ हूं नहीं। समझे आप? लिखे पर तो मेरा भरोसा नहीं है। लिखे गए के तो खिलाफ कहता हूं। इसलिए मैं तो क्या लिखूं? वह शास्त्र बन जाएगा। कल आप मुझ ही को दिखाने लगे कि यह आपने कल लिखा था। मेरी आप बात समझे न? मैं, आपकी चुनौती थी, मैं तो चुनौती शब्द को भी अधार्मिक समझता हूं। क्योंकि ये, ये गंदे दिमाग के भाव हैं, चुनौती। तो मैंने तो कहा कि निमंत्रण स्वीकार है। हां, आपका निमंत्रण स्वीकार है। आप वहां आते हों, जिनको भी लाते हों, मजे से बोलें। उनको जो भी कहना हो वे कहें। न तो मुझे विवाद में रस है, और न मैं मानता हूं कि विवाद से धर्म का कोई संबंध है।

प्रश्नः आप कहते हैं यह शब्द अच्छा नहीं है...

न, न, न। मैं... न, न मैं जो, मैं जो कह रहा हूं...

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

आप, आप, आप... । मैं समझ गया आपकी बात। आप उनको लिवा लाएं जिन मित्रों को
भी वहां बात करनी है, मंच पर लिवा लाएं।

प्रश्नः नहीं, बात नहीं, ये तो शास्त्रार्थ करना है।

मेरी तरफ से तो बात ही होगी, आपकी तरफ से शास्त्रार्थ रहे, हर्जा नहीं है। मेरी तरफ से तो बातचीत ही है।

प्रश्नः आपकी बातचीत यह है कि लोग भ्रम में रह जाते हैं, आपका नाम आचार्य है।

आप लोगों का भ्रम तोड़ने के लिए लिवा लाइए।

प्रश्नः मुझे टाइम, मुझे टाइम भी तो दीजिए न बात करने का।

कहिए।

प्रश्नः दो मिनट टाइम तो दीजिए।

हां, हां, कहिए, कहिए।

प्रश्नः हम तो एक बात पूछना चाहते हैं, आप वेदों को नहीं मानते...

मैं तो, मैं तो... फिर आप प्रश्न पूछते हैं न?

प्रश्नः मैं ज्यादा नहीं बोलूंगा, मैं पांच मिनट बोलूंगा। ज्यादा नहीं बोलूंगा।

अच्छी बात है। बोलिए, बोलिए, बोलिए, बोलिए।

प्रश्नः आप वेदों को नहीं मानते, आप शास्त्रों पर विश्वास नहीं रखते। नहीं अगर रखते आप उन पर विश्वास तो जनता को कम से कम जो भ्रम में बैठ जाती है कि ये शास्त्रों पर विश्वास रखते हैं, वह तो दूर हो, एक। दूसरा यह है, आप जो चीजें साफ कहते हैं कि लेख को नहीं मानते। आपका लेख हमने पढ़ा, जिसके अंदर लिखा है कि एक लड़का, एक लड़की साथ-साथ इकट्ठे रहें, और उसके बाद फिर वह शादी करें या न करें।

समझा मैं।

प्रश्नः तो यह लेख में नहीं था?

अब मेरी यह बात सुने। आप कह लें पूरी बात, आप पूरी बात कह लें।

प्रश्नः जब मालूम था, इतना आप प्रचार नहीं कर सकते?

... कह ली आपने पूरी बात। हां, मैं जो कहता हूं वह लिखा जाता है, मैं तो नहीं लिखता। तो लेख वह नहीं है, मेरा तो सब वक्तव्य है। मैं तो कुछ नहीं लिखता। मैंने अभी कुछ कहा, वह आप लिख कर ले जाएं तो लेख हो जाएगा। लेकिन मैं कुछ नहीं लिखता, वह मेरी तरफ से लेख नहीं है। मेरी तरफ से तो वक्तव्य है, एक बात। दूसरी बात, अगर आपको लगता है कि जनता में भ्रम फैल रहा है तो उसे तोड़ने की बराबर कोशिश करें। भ्रम नहीं फैलना चाहिए। उसको तोड़ने की कोशिश करें। उसको बराबर तोड़ें। और कोई वहां तोड़ सकता हो मंच पर आकर तो वहां बुला लाएं। वहां वह बात कहे। लेकिन मेरे लिए वह बातचीत है, शास्त्रार्थ नहीं है।
क्योंकि मैं यह समझता हूं कि यह तो बड़ी प्रेमपूर्ण बात होनी चाहिए। अगर, अगर जनता का भ्रम ही तोड़ना है तो यह भी बड़ी प्रेमपूर्ण बात होनी चाहिए कि मैं, जो मुझे ठीक लगता है, मैं कहूं आपको। गलत लगता है आप कहेंगेः यह ठीक नहीं है, गलत है। मुझे लगता है नहीं ठीक है, गलत है, तो मैं कहूं। इसमें न कोई विवाद है, न कोई शास्त्रार्थ है, न कोई झगड़ा है। यह तो बड़े मजे की बात है। बड़ी मित्रतापूर्ण हो सकती है। इसमें तो कोई ऐसा कारण नहीं है। तो मेरी तरफ से बातचीत है। मेरी तरफ से बातचीत है। आप लिवा लाइए।

प्रश्नः (ध्वनि-मुद्रण अस्पष्ट)

हां, बिल्कुल ही, जो भी, जैसा आपको सुविधा लगे। हां, आपकी सुविधा से जमा लेंगे... ।

प्रश्नः आचार्य जी, निवेदन यह है कि हमारे कानों के अंदर ये शब्द आए
कि कुछ भ्रांतियां हैं, जो आचार्य जी के विषय में आप लोगों को है, ऐसा हमें कहा गया है। और उन भ्रांतियों को दूर करने के लिए, अगर आप वहां आकर कोई बात करना चाहते हैं तो आठ बजे आकर वहां कर सकते हैं। प्रार्थना यह है आचार्य जी, कि कौन सी भ्रांति है, जो भ्रांति है वह परस्पर की बात से पहले ही दूर हो जाए। एक बात मैं आपसे प्रश्न करूं, आप कह दें कि नहीं, आपने गलत समझाया तो भ्रांति यहीं समाप्त हो जाती है। हमने इसी बात को समाप्त करने के लिए एक पत्र आज प्रातः आपके पास भेजा। उसमें हमने पांच प्रश्न रखे थे, उन पांच बातों के संबंध में आपकी क्या मान्यता है? आपकी क्या स्थिति है? वह हमें पता लग जानी चाहिए। अगर तो हम आपके उत्तर से यह समझें, कि हमारा और आपका कोई मतभेद है ही नहीं, तो भ्रांति समाप्त हो गई। और अगर हम यह देखते हैं कि आपके और हमारे विचारों में कोई मतभेद है; आपकी मान्यता में, हमारी मान्यता में कोई मतभेद है तो फिर पता चल जाएगा कि इस विषय पर आपके सामने शंका समाधान करने के लिए हम लोग पहुंचें।

मैं समझा आपकी बात... ।

प्रश्नः लेकिन जो पत्र हमने आपको लिखा उस पत्र के उत्तर में जो पत्र आपका आया, उसमें आपने उस पत्र के, न तो उसको अक्नॉलेज किया, न उस पत्र के अंदर लिखी हुई किसी बात का भी आपने उत्तर दिया।

तो उसका कारण है, उसका कारण है। उसका कारण है कि मेरे साथ और आपके बीच
जो कठिनाई है, और जो रहेगी देर तक, जल्दी जा नहीं सकती--उसका कारण है। उसका कारण है कि आपके खयाल में हां और न में उत्तर हो सकते हैं, मेरे खयाल में नहीं हो सकते हैं। जिंदगी में जितने महत्वपूर्ण सवाल हैं उनका हां और न में उत्तर नहीं होता। मेरी दृष्टि जो है।
तो इसलिए, इसलिए कठिनाई क्या है, आप जो लिख कर भेज देते हैं, तो आप तो पूछते हैं कि इसका हां या न में उत्तर दे दें। तो मेरे लिए जो कठिनाई हो जाती है, मेरे लिए जिंदगी में ऐसा कोई भी सवाल नहीं है जिसका हां और न में उत्तर हो सके। जितना महत्वपूर्ण सवाल है, उतना ही हां और न के बाहर होना शुरू हो जाता है। जो उत्तर होगा या तो उसमें हां और न दोनों होंगे, या दोनों नहीं होंगे। क्योंकि मैं जो अब जैसे अभी कह रहा था कि जिंदगी में सारे विरोधों का समागम है, इसलिए कठिनाई होती है।
क्यों आपके उत्तर नहीं दिए, पिछली दफा भी भेजे थे मुझे। पर वे आप उत्तर चाहते हैं हां और न में। आप चाहते हैं कि आप ईश्वर में विश्वास करते हैं या नहीं करते? तो आप हां या न में जवाब दे दें। अब मेरे लिए तो यह इतना सैक्रेलीजियस है कि ईश्वर को हां और न में अगर कोई भी आदमी उत्तर देता है तो ईश्वर को दो कौड़ी का सिद्ध कर देता है। दो कौड़ी का। ईश्वर इतनी बड़ी बात है कि आपके हां और न में उत्तर नहीं हो सकता। इसलिए ईश्वर जैसी बड़ी बात पर आप ऐसे पूछते हैं जैसे बाजार में आप पूछते हैं कि इसका दो रुपये दाम है कि तीन रुपये, हां या न में जवाब दे दें। तो मैं उनका उत्तर नहीं दे सकता हूं। नहीं दे सकता हूं इसलिए कि मुझे तो यह लगता है कि प्रश्न ही अधार्मिक है। ये धार्मिक चित्त से उठे हुए प्रश्न ही नहीं हैं। ईश्वर है या नहीं, इसमें धार्मिक आदमी एकदम चुप रह जाएगा। सिर्फ अधार्मिक बोलेगा। दो तरह के अधार्मिक लोग हैं, एक कहेगें कि हां है, एक कहेंगे कि नहीं हैं--ये दोनों अधार्मिक हैं। लेकिन धार्मिक आदमी एकदम चुप रह जाएगा।
अब उपनिषद कहते हैं कि अगर कोई कहे कि मैंने उसे जान लिया, तो जानना कि उसने नहीं जाना। अब उपनिषद के ऋषि से आप पूछोगे कि ईश्वर है? और अगर वह कहेः हां, तो वह गया। क्योंकि वह यह कह रहा है कि मैंने जान लियाः वह है। अब उपनिषद के ऋषि के पास आप जाओगे, तो आप कठिनाई में पड़ोगे। क्योंकि वह हां और न में जवाब न देगा।
अभी एक फकीर हुआ बर्मा में, थूउन। उसके पास कुछ लोग गए। अभी मरा है एक
दस साल पहले। और उससे उन्होंने पूछा कि ईश्वर के संबंध में कुछ कहो। तो वह चुप रह गया। उन्होंने फिर कहा कि हम बड़ी दूर से आए हैं कुछ कहो, तो वह फिर चुप रह गया। उन्होंने उसे हिलाया, उसने कहा कि हम पहाड़ चढ़ कर इतने परेशान हुए। तो उसने कहा कि मैं कह तो रहा हूं, लेकिन तुम सुनते नहीं हो।
और मजाक सुनिए आप। आप चुप बैठे हैं, हम पूछते हैं, कुछ कहते नहीं हो, और कहते हैं, कि कह रहा हूं। तो उसने कहा कि मैं यही कह रहा हूं कि चुप अगर हो जाओ, मौन अगर हो जाओ, तो उसका कुछ पता लगे।
अब मेरी कठिनाई है। आप मेरी कठिनाई शायद नहीं समझ पाते, आप तो पूछ लेते हैं हां और न में जवाब दें। मैं हां और न में जवाब नहीं दे सकता हूं। मेरे पास हां और न में जवाब है नहीं। तो इसलिए कठिनाई हो जाती है। अब दूसरी बात यह हो जाती है कि आप, आप जैसे पूछते हैं कि आप वेद के निंदक हैं या नहीं? न मैं प्रशंसक हूं, और न निंदक हूं। असल में मैं किसी किताब का प्रशंसक नहीं हूं, और निंदक भी नहीं हूं। क्योंकि मेरा मानना है कि निंदा भी इनवर्टिड प्रशंसा है। वह शीर्षासन करती हुई प्रशंसा है। मेरा कोई संबंध ही नहीं वेद से। आप पूछते हैंः आप निंदक हैं या प्रशंसक हैं। आप अजीब बात पूछते हैं!

एक स्त्री सड़क पर जा रही है। आप पूछते हैंः आप इसके प्रेमी हैं या दुश्मन? मैं कहता हूंः मेरा कोई संबंध ही नहीं है इससे। आप कहते हैंः हां और न में जवाब दे दें, आप इसके प्रेमी हैं या नहीं हैं? अगर मैं कहूं इसका प्रेमी हूं, मैं झंझट में पड़ता हूं; अगर मैं कहूं कि इसका प्रेमी नहीं हूं, तब भी मैं एक एटिट्यूट देता हूं। इससे मेरा कोई संबंध ही नहीं है, इररेलेवेंट है। अब आप जब मुझसे जो सवाल पूछते हैं, उनकी कठिनाई यह हो जाती है कि आप सोचते हैं कि हर आदमी की रेलेवेंस होनी चाहिए। मेरा वेद से कोई नाता ही नहीं है। मेरा कोई लेना-देना ही नहीं है। हमारा रास्ता कहीं कटता ही नहीं है। आप पूछते हैंः निंदक हैं कि प्रशंसक? न मैं प्रशंसक हूं, न मैं निंदक हूं। वेद वहां रहें, मैं यहां रहा। हमारे बीच कोई लेन-देन नहीं है। और आप उत्तर चाहते हैं हां और न में।
अगर मैं यह कहूं--हां, मैं प्रशंसक हूं। तो आप कहेंगेः तो ठीक है, आ जाइए, आर्य-समाज में भर्ती हो जाइए। अगर मैं कहूं कि मैं निंदक हूं, अगर मैं कहूं कि मैं निंदक हूं तो आप कहेंगे, आइए विवाद कर लीजिए। मैं दोनों नहीं हूं। तो इसलिए कठिनाई है। तो इसलिए भ्रांतियां तो स्वाभाविक हैं। और मैं मानता हूं भ्रांति होना बुरी बात नहीं, बुद्धि का लक्षण है। सिर्फ बुद्धिहीनों में भ्रांति नहीं होती।
बुद्धि होगी थोड़ी तो भ्रान्ति होगी, चर्चा होगी। अच्छा है, बुरा भी नहीं है। लेकिन इसको तो अत्यंत प्रेमपूर्ण ढंग से लिया जा सकता है। इसमें कोई, इसमें कोई विरोध, और दुश्मनी, और वैमनस्य का कोई कारण नहीं है। न किसी को सही-गलत सिद्ध करने का कारण है। अच्छा तो यही है कि किन्हीं को भी आप, जिनको ठीक समझते हों वे आ जाएं। मैं बात करूंगा, वह उत्तर दे दें, उनको ठीक लगता हो। जो भी वे कहना हो--वे कहें; मुझे जो ठीक लगता है--मैं कहूं। लोग सुन लेंगे उनको, जो ठीक लगेगा वे समझ लेंगे। भ्रांतियां आप तोड़ सकेंगे, तो तोड़ देंगे। नहीं तोड़ सकेंगे, नहीं तोड़ेंगे। और बढ़नी होंगी, और बढ़ जाएंगी, और घटनी होगी और घट जाएंगी।
मुझे तो नहीं लगता कि आदमी के बस में भ्रांतियां तोड़ना और बढ़ाना है। इसलिए हम जो बन सकता है, करते हैं। उससे जो हो जाए, वह परमात्मा के हाथ में है। कर्म हमारे हाथ में और फल उसके हाथ में है। तो इसलिए आप उनको, जिन मित्रों को भी लाना हो, उनको लिवा लाइए। और... ।

प्रश्नः पहली चीज तो यह है कि मेरी बुद्धि इस बात को स्वीकार नहीं करती कि किसी भी चीज का जवाब हां और न में नहीं दिया जा सकता।

नहीं तो आप यह स्वीकार न करें।

प्रश्नः आप बोले, मैंने तो उसमें कोई किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया, फिर अगर आप थोड़ा सा...

ठीक है, ठीक है। न, समझा मैं। नहीं ठीक है। न, न, बिलकुल आप कहें। आप बिल्कुल कहें।

प्रश्नः पहली चीज तो यह है कि जहां तक स्थिति होती है चिन्तन की, उस समय मनुष्य कह सकता है कि मैं चिंतन की अवस्था में हूं। अभी मेरे मन के अंदर कन्फ्यूजन है, मैं हां या न में जवाब नहीं दे सकता। लेकिन कुछ स्थितियां ऐसी होती है जिनमें हां और न का जवाब तुरंत मिलता है। यह जितने मेरे भाई बैठे हैं, मुझे कहेंगे कि आचार्य मेरे सामने बैठे हैं या नहीं बैठे, मैं तत्काल कहूंगा कि हां बैठे हैं। कहेंगे। मेरे सामने वृक्ष है। मुझे कोई पूछे कि वृक्ष है या नहीं है, मैं तत्काल कहूंगा कि हां है।

ठीक है।

प्रश्नः नहीं नहीं, यानी कई ऐसे सवाल होते हैं, जिनके संबंध में तत्काल उत्तर दिया जा सकता है, हां में और न में।

बिल्कुल, बिल्कुल।

प्रश्नः ऐसी बात नहीं। अगर कोई व्यक्ति यह कहता है कि मैं अभी हां या
न में उत्तर नहीं दे सकता, तो यह है कि उसके अभी चिंतन में कुछ अधूरापन है, या वह चिंतन की अवस्था में किसी परिणाम पर नहीं पहुंचा इसलिए कहता है कि मैं अभी हां या ना में उत्तर नहीं दे सकता।

समझा।

प्रश्नः दूसरी बात आपकी आचार्य जी यह है कि आपने कहा कि मैं हां और न में कभी उत्तर देता नहीं, लेकिन अभी आपने जो कुछ कहा उसमें दे भी दिया। आपने स्पष्ट कह दिया कि मैं तो वेद को मानता नहीं। वेद वहां है और मैं यहां हूं। आपने तत्काल उत्तर दे भी दिया। आपने तत्काल यह कह भी दिया कि वेद के साथ मेरा कोई सरोकार भी नहीं है। वेद वहां हैं और मैं यहां हूं। तत्काल आपने उत्तर दे भी दिया। और कहां आप कहते हैं कि मेरा हां और न में उत्तर हो ही नहीं सकता। तो मेरी कुछ बुद्धि के अंदर यह बात आती है कि आप विद्वान हैं। लेकिन विद्वान भी कई विषयों के अन्दर अभी भ्रांति में होते हैं, उनकी स्थिति यह नहीं होती कि वह हर बात के अंदर चिंतन की जो परम अवस्था है, वहां तक पहुंच कर निश्चित रूप से यह कह दें कि हां, मैं यह मानता हूं, यह नहीं मानता।

समझा।

प्रश्नः शायद ऐसी कोई संभावना है कि आपके चिंतन में भी अभी वह स्थिति नहीं आई कि आप इन प्रश्नों में से एक पर या दो पर किसी वस्तु के हां या न का उत्तर दे सकें।

समझा, मैं समझा आपकी बात।

प्रश्नः तो मैं यह कहता हूं कि कुछ ऐसी बातें हैं जो बेसिक बातें होती हैं। उन बेसिक बातों का पता चल जाए हमको तो उसके आधार पर आप समझा सकते हैं।

मैं समझा, सब मैं समझ गया आपकी बात। आपने दो-तीन बातें कहीं। एक तो यह
कि आप सहमत हों मुझसे, ऐसी मेरी अपेक्षा नहीं। मैं जो कहता हूंः उसे स्वीकार करें, ऐसी अपेक्षा नहीं। वह किसी से भी नहीं, आपसे नहीं, किसी से भी मेरी अपेक्षा नहीं कि मुझे कोई स्वीकार करे, अस्वीकार करे। वह तो वही हुआ कि मैं फिर दूसरे से हां और न में उत्तर मांगने लगा। अपना निवेदन कर दे रहा हूं, आप क्या करते हैं वह आपकी मर्जी है।
दूसरी बात हां और न में उत्तर आप ठीक कहते हैंः वृक्ष सामने है या नहीं, हां और न में उत्तर हो जाएगा। बिल्कुल हो जाएगा। अगर वृक्ष जैसी ही बात परमात्मा के संबंध में होती तो हां और न में उत्तर कभी का हो गया होता। वृक्ष के संबंध में आपने न सुना होगा कि कोई नास्तिक है, जो कहता है कि वह नहीं है। लेकिन परमात्मा के संबंध में मामला इतना छोटा नहीं है, जितना आप समझ रहे हैं और जितना छोटा उसको बना रहे हैं। मैं सामने हूं, यह तो ठीक है। इसलिए आपको अमृतसर में एक नास्तिक न मिलेगा कहने वाला जो कह दे कि सामने नहीं है। लेकिन परमात्मा के लिए मिल जाएगा। परमात्मा मुझसे बहुत बड़ी बात है। मैं बहुत छोटी चीज हूं।
तो पदार्थ के संबंध में उदाहरण परमात्मा के लिए देना बड़ी गहरी नास्तिकता से होता है। आस्तिकता से नहीं होता। यह तो आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। वृक्ष का मुझसे भी पूछिए तो मैं भी कह दूंगा। और मैं समझता हूं शायद

ही विवाद खड़ा हो और चुनौती का पोस्टर लगाना पड़े। मैं भी कह दूंगा--है। लेकिन वृक्ष के संबंध में आप पूछ नहीं रहे। जिस संबंध मे आप पूछ रहे हैं, वह बहुत गहरा है। और गहरे के संबंध में यह जो आपका कहना है, यह बहुत ठीक है कि यह हो सकता है कि किसी में चिंतन कम हो, किसी का चिंतन बहुत कम हो, इसलिए हां और न में उत्तर न दे सके। यह हो सकता है। यह हो सकता है। लेकिन इतिहास कुछ और कहता है।
चिन्तन जितना कम होता है, उतने ही हां और न में उत्तर आसान होते हैं। जितना चिंतन कम होता है, हां और न में उतने ही उत्तर आसान होते हैं। चिंतन जितना गहरा होता है, हां और न की सीमाएं टूटने लगती हैं। और जिस दिन चिंतन पूर्ण गहराई पर होता है, उस दिन हां और न घुल-मिल कर एक हो जाते हैं। और इसलिए जितना चिंतन गहरा होगा उतना उत्तर मुश्किल हो जाता है, आसान नहीं। इसलिए जो परम ज्ञान को उपलब्ध हुए हैं, उनको उत्तर देना सदा मुश्किल हो गया। वेद कहता है कि वह है भी या नहीं, यह भी कहना मुश्किल है। तो आपसे तो कमजोर, कमजोर रहा होगा।
... नहीं, नहीं बात कर लेंगे। पहले पूरी बात तो कर लूं।

प्रश्नः... वेद में लिखा है कि वह है कि नहीं?

न, न, आप, आप, आप पूरी बात तो सुन लें।

प्रश्नः हां जी।

... आप पूरी बात तो सुन लें।
जितनी गहरी चेतना गई है कभी भी, उतना ही आदमी का जो आश्वस्त रूप है, वह डगमगा जाता है। क्योंकि जितना वह गहरा जाता है, उसके पैर के नीचे की जमीन निकल जाती है।
सागर के तट पर खड़े होकर निर्णय लेना बहुत आसान है, सागर में घूम कर निर्णय लेना बहुत मुश्किल है। सागर के तट पर खड़े होकर कह सकते हैं गहराई कितनी है। सागर में घूम कर जब गहराई का पता चलना शुरू होता है, तब पता चलता है कि कहने के बाहर है गहराई। तो जितना चिंतन गहरा होगा, उतना निर्णय मुश्किल है, ऐसी मेरी समझ है। वह आप मानें, ऐसा जरूरी नहीं है। दूसरी बात, सत्य का निर्णय चिंतन से कभी होता नहीं। सत्य का निर्णय तो चिंतन के अतीत जाने से होता है। सत्य का निर्णय विचार करने से होता नहीं। सत्य का निर्णय तो निर्विचार में डूबने से होता है।
लेकिन विवाद तो विचार का ही हो सकता है। चर्चा तो विचार की हो सकती है। इसलिए मैं मानता नहीं कि विवाद से, विचार से, प्रवचन से कभी कोई सत्य का निर्णय हुआ है, या कभी हो सकता है। वह प्रवचन से उपलब्ध हो सकता है, ऐसा कभी हुआ नहीं। नहीं तो हम सबको उपलब्ध हो गया होता। विचार हम सब करते हैं, प्रवचन हम सब सुनते हैं, शास्त्र हम सब पढ़ते हैं। तो उसकी अनुभूति विचार की अनुभूति ही नहीं है, वह तो निर्विचार मौन की अनुभूति है। तो उसका निर्णय विवाद से कैसे हो? इसलिए जब मुझसे कोई कहता है कि शास्त्रार्थ कर लें, विवाद कर लें, तब मुझे हैरानी लगती है कि यह मामला ऐसा है!
यह मामला ऐसा है कि जिसका निर्णय ही तर्क और विचार से होने वाला नहीं है। उसका निर्णय तर्क और विचार से करने चलें, वह होगा नहीं। हां, विवाद का मजा आ जाएगा। अहंकार की तृप्ति हो जाएगी। कोई जीत सकता है, कोई हार सकता है। लेकिन इससे सत्य का कोई लेना-देना नहीं है। अगर मैं और आप विवाद करें तो हो सकता है तर्क में आप मुझसे जीत जाएं, इससे भी तय नहीं होता कि सत्य निर्णित हुआ। हो सकता है कि मैं जीत जाऊं। उससे भी तय नहीं होता कि सत्य निर्णित हुआ। सत्य का कोई निर्णय दूसरे की अपेक्षा में है ही नहीं। सत्य का निर्णय एकदम स्वानुभूति का है।
और यह जो मैंने आपसे कहा कि वेद। वेद के संबंध में न मैं प्रशंसा करता हूं, न मैं निंदा करता हूं। तो जब मैंने यह कहा कि वेद वहां रहा, मैं यहां रहा--तो इसमें मैं कोई, कोई वेद के संबंध में कोई भी वक्तव्य नहीं दे रहा

हूं। सिर्फ इतना ही कह रहा हूं, वेद का अपना होना है, मेरा अपना होना है, आपका अपना होना है। इस संबंध में मैं कोई निर्णय ही नहीं ले रहा हूं कि कोई निर्णय लूं। क्योंकि निर्णय हम उस संबंध में लें जिससे हमें लगता हो कि सत्य का मार्ग मिलेगा। मेरी दृष्टि में शास्त्र से सत्य का कोई मार्ग नहीं जाता। इसलिए शास्त्र के संबंध में कोई निर्णय मैं नहीं लेता।
यानी मैं मानता हूं शास्त्र जो है, वह सत्य के मार्ग से उतर कर है। उसका सत्य से कोई., सत्य के मार्ग से कोई वास्ता नहीं है। किसी शास्त्र का, वेद का सवाल नहीं है--कुरान, बाइबिल का सवाल नहीं है। किसी शास्त्र का, मेरी बोली हुई जो किताब है वह भी सत्य नहीं दे सकती। कोई किताब सत्य नहीं दे सकती। अब इसलिए बड़ी मुश्किल हो जाती है। मुश्किल यह हो जाती है, कि जब कोई किताब सत्य नहीं दे सकती, तो मैं निंदा नहीं कर रहा हूं किसी किताब की। किसी विशेष किताब से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। मैं किताब मात्र के लिए मेरी अपनी दृष्टि आपको सृजन कर रहा हूं कि किताब सत्य की अभिव्यक्ति है, अनुभूति का स्रोत नहीं। अब ये सारी जो बाते हैं, ये सारी बातें किसी को भी करने की उत्सुकता हो तो वह करने को तैयार है। और कोई सोचता हो कि पहले मेरे बाबत पक्का निर्णय कर लें कि मेरा क्या-क्या मानना है, और तब विवाद हो सके तो, तो मुश्किल मामला है।
मुश्किल इसलिए मामला है, मुश्किल इसलिए मामला है कि तब तो उसे चार-छह महीने मेरे पास रहना पड़े, तो फिर वह समझे मेरी बात को। धीरे-धीरे मुझे देखे, समझे और उसको फिर कुछ खयाल में आ जाए। क्योंकि मैं तो कोई डेफिनिट स्टेटमेंट देता नहीं। उसको कुछ समझ में आ जाए वह उसको डेफिनिट स्टेटमेंट मान ले, तो मान ले, तो कुछ... ।
तो, चूंकि इसलिए आप जब मुझे लिख कर भेज देते हैं, तो मेरी जो कठिनाई हो जाती है वह यह हो जाती है कि उसको मैं कैसे हस्ताक्षर करके, हस्ताक्षर खाली कागज पर करके दे सकता हूं। क्योंकि खाली कागज में मेरा वक्तव्य आ जाता है। क्योंकि मैं मानता हूं ऐसे खाली कागज जैसे किसी दिन हो जाएं, तो मिल सकता है परमात्मा। तो खाली कागज पर जब भी दस्तखत चाहिए हों मुझसे, आप ले लें। सिद्धांत पर मैं दस्तखत नहीं करता, क्योंकि मैं मानता हूं किसी सिद्धांत से परमात्मा के लेने-देने का कोई संबंध नहीं है।

प्रश्नः परमात्मा के मुतल्लक ही आप बात करते हैं, उसके अलावा भी बात करते हैं?

मैं उसके अलावा कोई बात नहीं करता। उसके अलावा कोई बात नहीं करता।

प्रश्नः आप परमात्मा के अलावा भी बातें करते हैं, आपका लेख वह आपका बोला हुआ हो, छपाया है, आपकी मर्जी से... उसके अंदर यह लिखा है कि एक आदमी, एक लड़का एक लड़की को लेकर एक साल तक उसके साथ रह जावे या, या इसे प्यार समझ लो, करता रहे, उसके बाद वह शादी करे या न करे। ये चीजों को अगर आप उपदेश कहते हैं, बहुत दूर का उपदेश तो नहीं है, यह कोई बहुत दूर का उपदेश नहीं है। इस देश का है, इसका तो विचार हो सकता है। आप भले लिख कर न कहें, वाणी से कहें इन बातों पर। यह बात गलत है, समाज के लिए गलत है। यह कोई ईश्वर की बात तो नहीं है। आपने कहा कि मैं ईश्वर की बात करता हूं?

मैं तो ईश्वर के सिवाय... न, आप प्रश्न उठा देते हैं न। हां।

प्रश्नः देखिए इसके अलावा आप खाली ईश्वर की बात को जाते हैं। आप कहते हैं कि मैं किसी और चीज के आधार पर नहीं जाता। दुनिया के अंदर ऐसा कोई नहीं है, जो किसी का आधार न हो, हर चीज के सच और झूठ को देखने के लिए कोई आधार होता है। हर चीज के लिए। उसका अगर आधार नहीं तो आप कुछ कहेंगे, कल एक आदमी और कहेगा, मैं कुछ कहता हूं कि शायद... संसार को चलाने के लिए खाली बातों से नहीं बात चल सकती, कोई न कोई शास्त्र या कोई आधार मुकर्रर करना पड़ता है। आज नहीं करोड़ों वर्ष पहले से ही मुकर्रर करना पड़ता था। वे लोग भी तो मानते थे

कि यह बात शास्त्र की है या नहीं है। इसके लिए कोई चीज को आधार तो मान कर आप चलते हैं। आपका आधार क्या है? मैं नहीं कहता आप वेद को मानें, मैं नहीं कहता आप बाइबिल को मानें, मैं नहीं कहता आप कुरान को मानें। मगर आपका कोई आधार है? ईश्वर है, इसके लिए भी आप कहते हैं कि ईश्वर है। अभी आपसे कोई प्रश्न करेगा, आप कह सकेंगे कि ईश्वर है या नहीं। यदि मैं जवाब नहीं दूंगा तो फिर आपको निश्चय ही नहीं है, तो फिर लोगों को क्या कहोगे? इसके लिए ईश्वर है, हां या न में जवाब देना ही पड़ेगा आपको।

समझा।

प्रश्नः अगर ईश्वर नहीं है, तो आप इसके लिए इतने लोगों को भ्रम में क्यों डालेंगे? ईश्वर है या नहीं, इसके लिए एक उत्तर तो बन गया। इसके लिए ईश्वर के मुतल्लक भी, है या नहीं, यह कहना ही पड़ेगा। इसलिए आप बताइए कि इस तरह हम लोगों का भ्रम तो और बढ़ जाएगा।

समझा मैं। अब इसमें दो-तीन बातें है, समझनी चाहिए। पहली बात तो यह कि मैं तो ईश्वर के अतिरिक्त और किसी की बात नहीं करता हूं। क्योंकि मेरे लिए ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। तो मेरे लिए तो विवाह की समस्या भी ईश्वर की ही समस्या है। और मेरे लिए तलाक की समस्या भी ईश्वर की ही समस्या है। क्योंकि मेरे लिए ईश्वर के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। तो मेरे लिए राम की समस्या भी और रावण की समस्या भी, ईश्वर की समस्याएं हैं।
तो अगर मैं कभी यह कहता हूं कि विवाह के लिए मेरा कोई वक्तव्य है तो मेरे लिए तो वह धर्म की ही समस्या है। क्योंकि मेरे लिए सारी समस्याएं ही धर्म की हैं, एक। दूसरी बात, कि यह जो आप कहते हैं कि कोई आधार चाहिए। कोई आधार चाहिए, तो मेरी दृष्टि में, मेरी समझ में, अपनी समझ के अतिरिक्त और कोई आधार न है, न हो सकता है। क्यों?
क्योंकि अगर मैं यह भी निर्णय करूं कि वेद मेरा आधार है, तो भी यह मेरी समझ का निर्णय है। अल्टीमेटली मेरी समझ ही निर्णायक है। वेद नहीं। अगर मैं कहूं कि कुरान आधार है, तो भी मेरी समझ का निर्णय है। और कल मैं इसको बदलूं तो दुनिया में मुझे कोई रोकने वाला नहीं है। कल मैं कह दूंः कुरान आधार नहीं है, तो भी मेरी समझ का निर्णय है। जब मेरी ही समझ से निर्णय लेना है कि वेद आधार है या नहीं तो फिर मेरी ही समझ आखिरी आधार बन जाती है। फिर और कोई आधार नहीं है।
तो मेरी दृष्टि में अपनी समझ ही आधार है। और जो यह आप कहते हैं कि सबकी समझ अलग-अलग हो जाएगी। है ही, हो नहीं जाएगी। सबकी समझ अलग-अलग है ही। और जो आप यह कहते हैं कि समाज कैसे चलेगा? समाज कैसे चलेगा? सबकी समझ अलग-अलग हो जाएगी। सबकी समझ अलग-अलग है ही। और समाज के चलने का जुम्मा न तो मुझ पर है, और न आप पर है। और जिस पर है उसने सबको अलग-अलग समझ दी हुई है। और उसने, अगर उस, अगर वह भी हम जैसा समझदार होता तो हम सबको एक सी समझ दे देता तो झंझटें बिल्कुल आसान हो जाती हैं, झंझट बिल्कुल न होती। हम सबको व्यक्तिगत सूझ-बूझ दी गई है, और हम सबकी व्यक्तिगत सूझ-बूझ ही हमारा मूल आधार है।
इसलिए मेरे लिए न तो कोई शास्त्र, न कोई सिद्धांत आधार है, मेरे लिए मेरी समझ आधार है। और, और जब मेरी... मैं कहता हूं मेरी समझ मेरे लिए आधार है तो मैं यह नहीं कहता कि मेरी समझ को आप अपना आधार बनाएं। आपकी समझ आपके लिए आधार होगी। और अगर आप मेरे संबंध में भी कोई निर्णय लेंगेः अच्छा या बुरा, पक्ष में या विपक्ष में, तो वह आपकी समझ का निर्णय होगा। उससे मेरा कोई लेना-देना नहीं।
रह गई बात यह कि लोग भ्रमित हो रहे हैं। यह आपकी समझ का खयाल है। यह मेरी समझ का खयाल नहीं है। मुझे लगता है कि जिससे उन्हें लाभ हो सके, वह मैं कर रहा हूं। आपको लगता है कि उससे हानि हो रही है, आप लोगों को समझाएं कि इससे हानि हो रही है। और लोग आपके लिए भी उपलब्ध हैं, मुझे भी उपलब्ध हैं। आप दोनों बातें समझा दें। फिर उनको जो ठीक लगे, वे समझ लें। फिर भी उनकी ही समझ अंत में आधार बनेगी। मेरे हिसाब में तो जिन कारणों से लोग

भ्रमित हो रहे हैं, उनको मैं तोड़ने की कोशिश करता हूं। आपको लगता है मेरे कारण भ्रमित हो रहे हैं, आप मेरी बातों को तोड़ने की कोशिश करें। इसमें कोई भी झगड़ा नहीं है। इसमें कहीं भी कोई झगड़ा नहीं है। हम दोनों का काम एक ही है।
मैं भी यही चाहता हूं कि लोग, लोग भ्रमित न हों, आप भी यही चाहते हैं कि लोग भ्रमित न हों। जिस वजह से मुझे लगता है, वे भ्रमित हो रहे हैं, मैं उसकी खिलाफत करूंगा। आपको लगता है मेरी वजह से हो रहे हैं, आप मेरा विरोध करेंगे। लेकिन इसमें कोई शत्रुता नहीं है। काम हम दोनों का एक ही है। हम एक ही रास्ते पर काम कर रहे हैं। इसमें कुछ विरोध जैसी बात नहीं है। तो इसको बहुत मजे से लें, इसको गंभीरता से न लें। इसको बहुत मजे से लें। और जिन-जिन सवालों को आपको उठाना है, उन-उन सवालों को उठा लें, उन-उन सवालों को उठा लें। और उन सवालों पर लोगों को सुनने दें। और लोगों को सोचने दें, लोग क्या सोचते हैं?

प्रश्नः ओशो, एक प्रश्न मैं आपसे पूछना चाहता हूं?

हां कहिए।

प्रश्नः वह यह है कि आप कहते हैं कि मेरी मान्यता मेरा अपना विचार है।
तो मैं आपसे यह प्रार्थना करना चाहता हूं कि देखिए आदमी अधूरा है...

है ही।

प्रश्नः... तो मैं, मेरी आंखें काम न करती हों,

हां, हां।

प्रश्नः मेरे कान काम न करते, आकाश न होता...

ठीक है। एकदम ठीक है।

प्रश्नः मेरे पैर काम न करते हों, और टैक्सी न होती।

ठीक है।

प्रश्नः तो क्योंकि हम अधूरे हैं तो मैं आपसे यह प्रार्थना करना चाहता हूं कि कुरान और बाइबिल की बात तो छोड़ दें, वह बाद में आएगी।... लेकिन जिस तरह आंख के लिए भगवान ने सूरज बनाया, कान के लिए परमात्मा ने आकाश बनाया, मेरी जिह्वा के लिए रस बनाया, और इस तरह एक-एक इंद्री के लिए एक-एक चीज बनाई भगवान ने। इस तरह मेरे मन के लिए भी, उसे लाइट देने के लिए, जैसे निदान हर चीज का होता है, तो वेद शुरू में आए। इसलिए हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि जब आप कुरान और बाइबिल को वेद के साथ मिलाते हैं तो पीड़ा होती है। क्योंकि वेद तो आदि के हैं। सारी दुनिया मानती है कि वेद आदि का ग्रंथ है। तो भगवान ने जो विधान बनाया, शुरू के आदमियों का नाम था बीच के नहीं। क्योंकि वह अधूरा नहीं है, वह अपूर्ण नहीं है इन ज्ञान की तरह, जो अनुभव से कोई सीखता है।

समझा।

प्रश्नः तो वह सब चीजें पहले का सीखा हुआ है। तो मेरे कहने का भाव यह
है एक तो बाहर से क्योंकि इनसान अधूरा है...

समझा।

प्रश्नः... इसलिए हम आप पर विश्वास नहीं कर सकते...

समझा।

प्रश्नः... हम कहते हैं कि यदि आप भी हमें किसी जंगल में न भेज दें... ।

ठीक है।

प्रश्नः और दूसरी बात यह है कि मैंने आपकी पुस्तक पढ़ी, संभोग से... ।

एक बात इसकी करूं, फिर दूसरी करें तो अच्छा है।

यही मैं कह रहा हूं कि इंसान अधूरा है। बिल्कुल ठीक कहते हैं। इसलिए इंसान का कोई भी निर्णय पूरा नहीं हो सकता। और आपका यह निर्णय कि वेद भगवान का बनाया हुआ पूरा नहीं हो सकता, यह निर्णय आपका है। यह निर्णय आपका है न। निर्णय तो हम लेंगे। चूंकि जो भी निर्णय हम लेंगे, वह अधूरे होने वाले हैं। मैं तो, आप तो मेरी बात कह रहे हैं और अपने खिलाफ कह रहे हैं। मैं यही तो कह रहा हूं कि हमारे सब निर्णय अधूरे हैं, इसलिए हमारा कोई भी निर्णय अंधा होकर मानने योग्य नहीं है। हमारे सब निर्णय सोचने योग्य हैं। आप कहिए कि ये वेद भगवान का बनाया हुआ है, यह सोचने योग्य है। आपका वक्तव्य है यह।
और आप एक मनुष्य हैं, जैसा मैं एक मनुष्य हूं।

प्रश्नः दूसरा सवाल है एक...

... उनकी मैं पूरी बात उनसे कर लूं। उनका सवाल... आप अपना सवाल अलग करेंगे तो अच्छा होगा।
हम ही चूंकि निर्णायक हैं इस बात के भी, कि वेद भगवान का बनाया हुआ है
या नहीं। क्योंकि मैं यह निर्णय ले सकता हूं कि नहीं है। यह आप बात समझे न? या मैं निर्णय ले सकता हूं--है। इस बात पर भी, चूंकि किसी भी सत्य पर निर्णय अंतिम हमारा होने को है, तो इसलिए अंततः अधूरा आदमी ही निर्णय लेगा। और अधूरे आदमी के सभी निर्णय अधूरे हैं। यह नहीं कहता कि मेरी बात पूरी है। यह नहीं कहता मैं। मेरी बात उतनी ही अधूरी है, जैसी कोई भी अधूरी बात होगी। और इसलिए सोचने के योग्य है, मानने-वानने के योग्य नहीं है कि मेरी बात आप मान लें। सोचने के योग्य है। सब बातें सोचने के योग्य हैं।
और जब आप यह कहते हैं कि आपको चोट लगती है कि मैं वेद के साथ कुरान और बाइबिल को कह देता हूं। वह बाइबिल वाला मेरे पास आता है। वह कहता हैः उसको भी चोट लगती है कि आप बाइबिल के साथ वेद का नाम ले देते हैं। वह भी मुझसे यह कहने वाला आदमी मिल जाता है मुझे। कुरान वाले को भी चोट लगती है। सो चोट के मामले में आप तीनों में कोई भेद नहीं है। चोट के मामले में कोई भेद नहीं है। चोट उनको भी लगती है कि कहां आप वेद का नाम ले रहे हैं, कुरान के साथ। तो चोट की तो बात मत करिए। अगर चोट की बात करते हैं, चोट तो लगेगी ही।
असल में कोई भी बात जो आपसे थोड़ी भिन्न होगी, उसमें चोट लगेगी ही। लेकिन विचारशील आदमी का लक्षण ही यह है कि उस चोट को समझने की कोशिश करे। उस चोट को अगर हम दुश्मनी बना लें, और गाली-गलौच बना लें, तब तो मजा चला जाता है। कुछ चोट तो लगेगी। आप जब मुझसे कुछ मेरे खिलाफ कहेंगे, तो चोट लगेगी, चोट लगनी चाहिए। चोट हमारे जिंदा होने का लक्षण है। फिर उस चोट को समझने की कोशिश करनी चाहिए कि कहां तक उस चोट का क्या उपयोग हो सकता है। और कहां तक हम सोच-विचार सकते हैं।
मेरा अपना जो निजी मामला है, वह इतना ही है कि मैं आपको अगर सोच-विचार में डाल दूं, तो मेरा काम पूरा हो जाता है। इसलिए आप मेरे काम में पड़े हुए हैं। आप इस खयाल में मत रहना कि आप मेरे काम में नहीं पड़े हुए। आप मेरे काम

में पड़े हुए हैं। मेरा काम ही इतना है कि मैं आपको सोच-विचार में डाल दूं। और सोच-विचार में आप पड़ जाएं तो मेरा काम पूरा हो गया। क्या आप निर्णय लेंगे वह आपका होने वाला है?

प्रश्नः मैं आपसे प्रार्थना करना चाहता हूं कि आप तो ऐसी बातें न करें जैसी हमारी सरकार करती है, कि सबको खुश करना। और जो आदमी सबको खुश करता है, किसी को खुश नहीं कर पाता।

नहीं, अगर मैं सबको खुश करने वाला होता तो आप यहां आए न होते। तो आप यहां न आए होते। आपको मैं कभी का खुश कर लिया होता। वह तो आप बात ही मत सोचिए। न वह तो आप कहिए ही मत।

प्रश्नः मैं आपसे यह प्रार्थना कर रहा हूं कि एक गुरु ये कहते हैं कि भगवान ने जब आंख दी, सूरज दिया; भगवान ने जब कान दिए, आकाश दिया, तो जब आप यह कहते हैं कि कुरान है तो हातिम है, तो आपको युक्तिपूर्वक कहता हूं कि...

समझ गया। कहिए, कहिए।

प्रश्नः... कुरान आया बाद में, चौदह सौ साल हुए मुसलमानों को बने...

हां, हां।

प्रश्नः... और आंख बनी सृष्टि के आदि में...

समझ गया।

प्रश्नः... और कोई ऐसा विधान बनना चाहिए कि सृष्टि के आदि में हो,

मैं समझ गया। मैं समझ गया।

प्रश्नः... न तो बीच में आए। जब आप बीच में आए तो इसका मतलब है कि पीछे- पीछे पहले जो नालायक था...

समझ गया, समझ गया।

प्रश्नः... बाद में उसको अक्ल आई और उसमें कुछ इंप्रूवमेंट...

आप... आप ठीक युक्ति देते हैं।

प्रश्नः मैं आपसे यह प्रार्थना करना चाहता हूं क्योंकि वह इंप्रूवमेंट के बाहर है...

मैं समझ गया।

प्रश्नः... वह सब इंप्रूवमेंटों का बाप है।

ठीक है।

प्रश्नः... इसलिए उसने जो बात शुरू में की वह पूरी थी...

मैं समझ गया।

प्रश्नः... तो शुरू में वेद आया...

मैं समझ गया।

प्रश्नः... जब आप वेद को और कुरान के साथ, और बाइबिल के साथ करवाते हैं
तब मुझे वही बात...

मैं समझ गया। मैं आपकी बात...

प्रश्नः... आती है जो हमारी सरकार करती है।

मैं आपकी बात समझा। जैसे आप युक्ति देते हैं न, युक्ति के साथ एक बड़ा मजा है। सदा उसकी विरोधी युक्ति उतने ही वजन की होती है। उसमें वजन कम नहीं होता। आप जैसे युक्ति देते हैं कि वेद पहले आया, और भगवान को जो ठीक बात देनी थी, वह पहले दे देनी थी। सेक्स लड़के में चौदह वर्ष में आता है, पहले नहीं आता। सेक्स चौदह वर्ष में... आंख तो पहले आ जाती है लेकिन सेक्स चौदह वर्ष में आता है, पहले नहीं आता। कुरान और बाइबिल वाला कहता है कि जब लड़का प्रौढ़ हो जाता है, तब सेक्स आता है। बच्चे को देने योग्य नहीं है। तो ज्ञान प्रौढ़ को दिया जाता है। और जब दुनिया प्रौढ़ हो गई... यह मैं अपनी बात नहीं कह रहा। जब दुनिया प्रौढ़ हो गई और इस योग्य बुद्धि हुई लोगों की कि उनको ज्ञान दिया जा सके, तब कुरान और बाइबिल दिए गए। अब क्या करिएगा? आपकी दलील, उनकी दलील में कोई फर्क नहीं है। आपकी दलील और उनकी दलील में कोई फर्क नहीं है। ज्ञान बच्चे को दिया जाए या जवान को दिया जाए या बूढ़े को दिया जाए। और आप भी मानेंगे कि छोटे बच्चे की बजाए बूढ़े की बात ज्यादा काम की है--क्यों? बच्चा तो पहले आया। उसको ज्ञान पहले ही दे देना था, तब बूढ़े को क्यों?
बूढ़े को आप बच्चे से ज्यादा ज्ञानी समझ रहे हैं। क्योंकि वह बाद के अनुभव के जगत से आया। वह कुरान और बाइबिल वाला यह कहता है, जैसा आप कहते हैं। और दोनों बचकानी बातें हैं, मेरे लिए दोनों युक्तियां नहीं हैं। न आपकी युक्ति, न उसकी युक्ति। मेरे लिए दोनों बचकानी बातें हैं। वे दोनों बचकानी इसलिए हैं कि वह भी यही कहता है कि जब मनुष्य इस योग्य हुआ, आंख तो बहुत पहले दे दी क्योंकि वह अयोग्य को भी दी जा सकती है। लेकिन ज्ञान अपात्र को नहीं दिया जा सकता है।
वह तब दिया जब आदमी पात्र हुआ। जब इस योग्य हुआ कि आदमी अब ज्ञान को झेल सकेगा, तब उसको दिया। वह मैच्योर हुआ, तब उसको दिया गया। अब इन दलीलों में क्या मतलब है? अब इन दलीलों से क्या हल है? यानी यह मेरे लिए तो अर्थ की ही नहीं हैं ये दलीलें। इसलिए दलील में तो पड़ें मत, क्योंकि दलील तो बहुत बचकाना खेल है। उसमें कुछ मतलब नहीं है।

प्रश्नः अरबों साल से है, यह अब चौदह सौ साल से है। यह जो आप अधूरा समझाते हैं?

क्या?

प्रश्नः आप अपने इतिहास को उठा कर देखें, तो असंख्य सालों से आपका इतिहास है। यह अभी चौदह सौ साल से है, वह करोड़ों-करोड़ों, कई दफा हो चुके हैं।

हां, हां।

प्रश्नः यह दलील तो टिकती नहीं है आपकी।

यह, यह ठीक कहते हैं।

प्रश्नः यह जो दलील आपने अभी दी है...

यह जो आप लोगों का है न... ।

प्रश्नः नहीं, नहीं, नहीं मैं ये पूछता हूं?

हां, कहिए।

प्रश्नः अगर चौदह सौ साल की दलील को आप प्रौढ़पन देंगे, तो यह हमारे शास्त्र तो लगभग अभी कलियुग को हुए चार लाख बत्तीस हजार वर्ष... ।

आपके शास्त्र के मुताबिक न? आपके शास्त्र को कोई माने तब न।

प्रश्नः हमारे शास्त्र के साथ प्रमाण है?

हां, हां।

प्रश्नः उसके लिए, अभी इसके लिए पूरी जांच-पड़ताल हुई। मैं प्रमाण देता हूं कि हमारी चीजें प्रामाणिक हैं...

हां, हां।

प्रश्नः... और उनकी प्रामाणिक नहीं हैं। मगर यहां पर आप कोई मुसलमानों
की तरफ से कोई नुमाइंदा तो हैं नहीं कोई, मैं आपको प्रमाण दूं।

नहीं, नहीं मुझे...

प्रश्नः बात सुन लीजिए... आप उनकी तरफ से नुमाइंदा तो नहीं हैं।

नहीं।

प्रश्नः यहां तो सब जनों का विचार हो रहा है

हां, हां।

प्रश्नः सब जनों के विचार के अंदर जो प्रौढ़ की बात आपकी है, यह बिल्कुल नहीं बनती, क्यों? क्योंकि ये कई दफा प्रौढ़ हो चुके हैं। कई दफा युग बदल चुके हैं। कई दफा यह हो चुका है। इसलिए प्रौढ़ होने की यह दलील आपकी यह सिर्फ एक बात है कि चतुरता से किसी को...

न, न, न।

प्रश्नः आप बात तो कीजिए जिसके लिए हम आए हैं...

मैं, मैं समझ... मेरे लिए तो... ।

प्रश्नः आप अगर हमसे शास्त्रार्थ नहीं करना चाहते, हम मुंह जबानी शास्त्रार्थ कर लेंगे।

न, न, न, आप नहीं समझे। आप नहीं समझे।

प्रश्नः तो मुंह जबानी का मतलब लिख कर दें।

न, न। मैं समझ गया।

प्रश्नः दलील से नहीं करते हैं?

मैं... मैं समझ गया आपकी...

प्रश्नः आप अगर यह बात कहें कि चार उनके चेले आप बैठा कर करें...

न, न, न... ।

प्रश्नः यह कोई दलील नहीं है।

न, न, न... ।

प्रश्नः आप अगर लिख कर दें तो अच्छा है।

न... ।

प्रश्नः नहीं लिख कर करते तो जबानी... ।

न, न, उनसे तो करिए ही मत।

प्रश्नः यह आप क्यों कहते हैं कि जबानी शास्त्र नहीं होता?

न, आप तो बात करिए मत। आप आपस में मत करिए।

प्रश्नः दलील जो होता है, वह लिख करके होता है...

समझ गया।

प्रश्नः... हम तो चाहते हैं कि लिख कर हो तो ज्यादा अच्छा है। बोलना कम पड़े, वह लिखा जाए पहले, पीछे उसके बाद बोला जाए।

न-न, आप तो बड़ा अच्छा चाहते हैं।

प्रश्नः हम इधर से, एक-दो पंडित इधर से बोलते हैं, वे पहले लिख करके बोल दें। आप लिख करके बोल दें उसके बाद जनता उसे सुन ले। यह ठीक है।

मैं तो कुछ लिखता नहीं। मैं तो कुछ लिखता नहीं।

प्रश्नः खाली बोलते हैं?

हां, खाली बोल दूंगा, आप बोल कर मजे से बात करें। जो भी बात करनी है, मजे से करिए।

प्रश्नः आप बोलते हैं न, आप हमारे साथ स्थान, समय पंडित हम अपना नियुक्त करेंगे।

हां, हां, हां, बिल्कुल... आप बिलकुल नियुक्त... ।

प्रश्नः हम लोग सदा आपसे शास्त्रार्थ कर सकते हैं।

न, न, न, किसी भी दिन आइए।

प्रश्नः आपके साथ शास्त्रार्थ करने में हमें गौरव होगा। इसके लिए समय, कितने-कितने मिनट तक बोलने का टाइम होगा।

हां, बिल्कुल जैसा आप कहें, बिल्कुल।

प्रश्नः स्थान...

हां, हां।

प्रश्नः समय, पंडित वह सब नियुक्त कीजिए।

बिल्कुल करिए न।

प्रश्नः और उस पर बोल-बोल कर...

न, न, बड़े मजे से, बड़े मजे से।

प्रश्नः... आप अपने विषय, किस विषय पर आप शास्त्रार्थ करेंगे, सारी चीज। क्योंकि हां के, न के अंदर आप सवाल-जवाब देते नहीं।

नहीं देते।

प्रश्नः अभी वह है या नहीं, यह भी आप जवाब नहीं देते।

वह भी चर्चा करेंगे।

प्रश्नः नहीं चर्चा की बात नहीं है।

वह भी चर्चा करेंगे।

प्रश्नः आपने--...

मेरे लिए तो चर्चा की ही बात है।

प्रश्नः आपकी दृष्टि में ईश्वर है या नहीं, यह भी पता नहीं। क्योंकि हां-न में तो जवाब कोई।

मेरे लिए तो, मेरे लिए क्या है? मेरे लिए क्या है? वह उसके लिए ही चर्चा करेंगे। आप किसी को भी लिवा लाइए।

प्रश्न: आप निश्चित कहिए आपके लिए क्या है? ये हम चर्चा करने के लिए बैठे हैं।

आप जो निश्चित करने की बातें करते हैं न, वही तो मेरा विरोध है। मेरा कहना ही यह है, मेरा कहना ही यह है कि निश्चित सिर्फ तुच्छ बातें होती हैं। जितनी विराट चीज है, उतनी अनिश्चित! जितनी असीम है, उतनी अनिश्चित है! जितनी महान है, उतनी अनिश्चित है!

प्रश्नः आप मांग रखिए, हम मांग मंजूर करेंगे।

हां। तो...

प्रश्नः जो मांग चाहिए...

हां, हां।

प्रश्नः वह लिखिए...

हां, हां।

प्रश्नः हम लिख लेते हैं, आप बोलते रहिए। उस पर ही बातचीत होगी।

आपको जो करना होः लिखिए, जो करना हो करिए। मुझे उसमें कोई तकलीफ नहीं है।

प्रश्नः हम जो कहेंगे, वह कहेंगे आप छोटी है। छोटी बात आप करना नहीं चाहते। आप बड़ी कीजिए।

हां। नहीं मैं... आप बिल्कुल लिवा लाइए। जिनको लाना है सांझ की मीटिंग में लिवा लाइए बस।

प्रश्नः यह बात नहीं। आप अभी निश्चित करेंगे कि इन-इन विषयों पर बातचीत होगी।

मुझे तो खुद ही पता नहीं, कि सांझ मैं क्या बोलूंगा। आप तो समझते नहीं। आपकी तकलीफ यह है, आपकी तकलीफ, आप मुझे नहीं समझ पा रहे हैं। आपकी तकलीफ यह है कि मैं कोई पंडित नहीं हूं।

प्रश्नः वे कहते हैं हमें ही पता नहीं कि हम क्या बोलेंगे!

... मैं पंडित नहीं हूं कि कोई जो पहले से तय करके बोलने आता है। मैं तो बैठ जाऊंगा। जो निकलेगा वह बोलूंगा। मैं कोई पंडित नहीं हूं जो इधर से तय करके जाता हूं कि यह भाषण करना है। तो मैं तो जो निकलेगा, वह बोलूंगा। उसमें...

प्रश्नः यह बात पहले निश्चित नहीं करते, यह बात नहीं होती। निश्चित
तो होता है कोई एक सिद्धांत को आज... ।

अब आप अपनी तरफ से कह रहे हैं न।

प्रश्न: कल आप दूसरी जगह और कुछ कह सकते हैं।

बिल्कुल कहूंगा।

प्रश्नः क्योंकि आपका कोई सिद्धांत ही नहीं है?

उसमें कोई अड़चन नहीं है मुझे।

प्रश्नः तो फिर समझने वाले क्या समझेंगे?

समझने वाले समझने की कोशिश करेंगे, इस आदमी के पास कोई निश्चित सिद्धांत नहीं है, और क्या समझेंगे?

प्रश्नः क्या समझेंगे? आप उलझा रहे हैं।

बहुत अच्छा। इतना भी काम हो जाए तो काफी है।

प्रश्नः हमने एक बात रखी, उसी बात पर कहिए। हमने एक बात रखी कि आपने यह लिखा...

हां।

प्रश्नः... कि एक साल तक एक लड़का, एक लड़की... ?

हां-हां, बिल्कुल इस पर बात करेंगे। आपको जिस पर बात आपको उठानी है, वह उठाइए।

प्रश्नः हम वे सारी बातें, उसके लिए समय निश्चित करके, आप यह कीजिए, सारी बातें उसमें पांच ईश्वर, जो-जो आप कहें।

मैं तो जो बोलूंगा, आपको मैं कहे देता हूं। मैं वहां, मैं वहां...

प्रश्नः आपने आज कुछ कह दिया, कल आप कहीं कुछ और... ?

कहूंगा, कहूंगा। क्योंकि कल मैं मर नहीं जाऊंगा, समझ लें आप।

प्रश्नः आप भ्रम फैलाने आए हैं?

बिल्कुल, भ्रम फैलाने ही आया हूं, ऐसा ही समझ लें आप।

प्रश्नः जो सारी व्यवस्था है, उसमें आप उथल-पुथल करने आए हैं।

करना है, करना है, करना है। यह बिल्कुल करना है, यह आप ठीक समझे। यह आप बिल्कुल ठीक समझे।

प्रश्नः और आप उथल-पुथल करना चाहते हैं।

मैं अव्यवस्थित आदमी हूं, अराजक आदमी हूं, समझे आप? मैं सारी व्यवस्था मिटाना ही चाहता हूं--हां। (अस्पष्ट 92 : 28...)करूंगा, आप इसका विरोध करे-- हां। मैं तो यह कोशिश करूंगा। मैं तो बिल्कुल...

प्रश्नः हम इस तरह से करना चाहते हैं जिसका लुत्फ सभी लोगों को मिल सके, अशब्द न कहें हम।

वह तो आपके ऊपर निर्भर करेगा।

प्रश्नः आप जब यह शब्द कहते हैं...

वह तो आपके ऊपर निर्भर करेगा...

प्रश्नः आप जब यह शब्द कहते हैं कि मैं यह करने आता हूं तो उसका जवाब हमारे पास वह है कि हम दूसरे ढंग से रुला पाएं। ---- फिर आप कहते हैं कि मैं गलत करने आया हूं।

सुनिए मेरी, आपकी बात मैंने सुन ली, आपकी बात मैंने सुनी, आपकी बात मैंने सुनी। मैं जो आज कहूंगा, उसके लिए कल बंधा हुआ नहीं हूं। समझे आप।...

प्रश्नः पर जानिए बहुत...

नहीं, मेरी बात तो सुन लें आप पूरी...

प्रश्नः... तब आपका सिद्धांत देख कर...

न, न, न। पर मेरी, पर मेरी सुननी पड़ेगी न आपको। आप, मैं अपनी... । आप मुझे समझ तो लें न, ताकि आपको आसानी पड़े। आपको आसानी पड़ेगी उसमें।

प्रश्नः बताइए।

मुझे तो जो मैंने आज कहा है, उसके लिए मैं बंधा नहीं हूं--क्यों? क्योंकि कोई भी अपने अतीत से नहीं बंध सकता। कल के लिए मैं कुछ भी नहीं कह सकता। कल तक मैं जिंदा रहूंगा, चौबीस घंटे आगे बढ़ूंगा। उस आगे बढ़ने में कल मुझे क्या ठीक लगेगा, वह मैं कहूंगा।

प्रश्नः यहां जो विचार की बात हो रही है...

मेरी आप बात समझ लें न। मेरा, मुझे आप समझ लेंगे तो आपको आसानी पड़ेगी।

प्रश्नः पूरी तरह, ठीक है, ठीक है।

और मैं व्यवस्था-विरोधी हूं...

प्रश्नः बहुत अच्छा कहा है आपने, बहुत अच्छा। आपने कहा है...

मैं व्यवस्था-विरोधी हूं।

प्रश्नः बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। फिर कहिए एक दफा।

समझे न आप, व्यवस्था-विरोधी।

प्रश्नः आज जो कहा है, कल उसके खिलाफ भी कह सकते हैं?

हां, बिल्कुल कह सकता हूं। उसकी पूरी संभावनाएं हैं। इसकी संभावना है।

प्रश्नः यह क्यों कहते हैं आप?

न, न। अभी... ।

प्रश्नः जब आपको आपनी ही बात पर... बहुत अच्छा है। यह चीजें अगर आप लिख दें...

हैं बिना ही लिखी, आप लिखी समझें, इसमें क्या हर्जा है? मगर खयाल रखें
कि इनके खिलाफ कल कह सकता हूं। इसका खयाल रखें।

प्रश्नः अगर मैं...

हां इनके खिलाफ कल कह सकता हूं।

प्रश्नः मतलब ये है आप मदारी की तरह...

आप मुझे समझ लें, उस हिसाब से चलें। उस हिसाब से ठीक होगा--हां।

प्रश्नः जहां से...
उससे ठीक... । हां इसमें... ।
प्रश्नः फिर ठीक है महाराज! फिर ठीक है। जैसी आप दलील से बात कहते हैं,
आज क्या कहूं आपसे। कल यह दलील कहते-कहते आपने यह लिख दिया कि महाराज, एक साल तक लड़की-लड़का इकट्ठा रहें...
हां, हां...
प्रश्नः और उसके बाद फिर शादी करें, न करें।
हां, हां।
प्रश्नः कोई लिख दे बहन और भाई की शादी हो जाए तो आप...
लिख सकता है, ऐसे लोग हैं।
प्रश्नः आपके बीवी बच्चे ठीक नहीं है...
... ऐसे लोग हैं।
प्रश्नः क्या हर्जा है इसमें?
... ऐसे लोग हैं।
प्रश्नः क्योंकि घर का माल घर में रह जाए क्या हर्जा है? ... ऐसे लोग हैं, ऐसे लोग हैं।
प्रश्नः जाति को मानना नहीं...
हां, हां।
प्रश्नः समाज को मानना नहीं...
ऐसे...
प्रश्नः... उसके लिए क्या नुकसान?
ऐसे लोग हैं।
प्रश्नः मगर दुनिया के अंदर कोई ऐसा आदमी नहीं है किसी पद्धति के अंदर... आप बिना किसी पद्धति के बात करते हैं?
आप बिल्कुल ठीक कहते हैं।
प्रश्नः ऐसे विचारों के लिए भूमि तैयार कर रहे हैं?
जी?
प्रश्नः ऐसे विचारों के लिए भूमि तैयार कर रहे हैं?

बिल्कुल, बिल्कुल कर रहा हूं। आप बिल्कुल ठीक कहते हैं।
प्रश्नः आप भूमि तैयार कर रहे हैं?
बिल्कुल भूमि तैयार कर रहा हूं।
प्रश्नः ठीक कह रहा हूं...
बिल्कुल तैयार कर रहा हूं।
प्रश्नः आप रास्ते पर नहीं हैं?

...

प्रश्नः परमात्मा का जो स्वरूप है, जिसको आपने नाम दिया, वह कैसा और कौन सा देना चाहते हैं?
जरूर। परमात्मा को समझने जाइएगा तो कभी नहीं समझ पाइएगा। समझ की बात नहीं है।
प्रश्नः अभी तो आप कह रहे थे...
नहीं यह मैं, मैं जो आपको जो कह रहा हूं, आपको जो मैं कह रहा हूं
प्रश्नः किसी का आधार नहीं मानते...
नहीं, मैं कह...
प्रश्नः वे चीजें समझ से बाहर हैं...
नहीं, मैं नहीं कह रहा कि आधार मानिए। मैं यही कह रहा हूं कि आप समझ से
ही मेरी बात समझने की कोशिश करिए, कि परमात्मा समझ के बाहर का मामला है; भीतर का नहीं है। जब तक आप समझने की कोशिश में रहेंगे, तब तक आप परमात्मा को न समझ पाएंगे, और सब समझ लेंगे। और सब समझ लेंगे।
प्रश्नः तो क्या स्वरूप है उसका?
उसका स्वरूप नहीं है, क्योंकि सभी कुछ वही है। स्वरूप उसका होता है जो
सब कुछ न हो--कुछ हो।
प्रश्नः अच्छा उसका कोई विधान भी है?
नहीं, कोई विधान नहीं है।
प्रश्नः उसका कोई विधान नहीं है?
वह परम स्वतंत्र है।
प्रश्नः परम स्वतंत्र का भी तो कोई विधान होता है? परम स्वतंत्रता ही विधान है उसका।

प्रश्नः जैसे भारत बना, भारत परम स्वतंत्र हुआ?

यह परम स्वतंत्र नहीं है। यह दूसरे की गुलामी की जगह अपनी गुलामी है।
यह परम स्वतंत्र नहीं है।

प्रश्नः आचार्य जी हमारा भारत जो था, यह परतंत्र था?

यह दूसरे का परतंत्र था, अब अपना ही परतंत्र है।

प्रश्नः यह स्वतंत्र हुआ, स्वतंत्र होने के बाद इसका कोई अपना विधान बना, भारतीय जो दृष्टिकोण थे, वह इसने अपनाए।

हां-हां।

प्रश्नः... कि ये हमारे भारतीय दृष्टिकोण हैं।

हां ये... ।

प्रश्नः ये हमारा विधान है।

यह भारतीय ढंग की गुलामी है।

प्रश्नः ऐसे जो परमात्मा है, परम स्वतंत्र जो आप कह रहे हैं, जो परमात्मा है, वह परम स्वतंत्र है। मगर जो परम स्वतंत्र परमात्मा है, उसका कोई विधान भी तो है न।

विधान परतंत्रता का होता है, स्वतंत्रता का नहीं होता।

प्रश्नः कैसे?

----...

प्रश्नः आप कर्म का फल मानते हैं?

एक मिनट... एक मिनट, इनकी बात कर लूं, आपकी बात करता हूं।

प्रश्नः आप कर्म का फल मानते हैं या नहीं?

मैं बात तो कर लूं इनसे पूरी, फिर आपकी बात कर लूं।

प्रश्नः हां कर लीजिए, कर लीजिए।

स्वतंत्रता का कोई विधान नहीं होता।

प्रश्नः स्वतंत्रता का कोई विधान नहीं होता?

विधान सब परतंत्रता के होते हैं। पराई परतंत्रता के हों तो हम परतंत्रता कहते हैं, अपनी ही परतंत्रता के हों तो हम स्वतंत्रता कहते हैं। अंग्रेज की परतंत्रता थी, तो परतंत्रता थी। अब हम ही बैठ गए उस परतंत्रता को, हम ही थोप कर अपने ऊपर, तो वह स्वतंत्रता है। स्वतंत्रता का...

प्रश्नः... और शासन क रे?

स्वतंत्रता का कोई विधान नहीं है। परमात्मा का कोई विधान नहीं है। प्रश्नः यही बात पहले अनुचित थी?
हां तो इस पर, यही तो मैं कहता हूं यह सब चर्चा करें।
प्रश्नः आप कर्म के फल को मानते हैं? मैं बुरा करता हूं तो उसका फल मुझे भोगना पड़ेगा कि नहीं?
तत्काल। तत्काल भोग लेते हैं, कभी और नहीं भोगना पड़ेगा। कभी और नहीं भोगना पड़ेगा।
प्रश्नः अगर तत्काल भोग लेते हैं तो कोई पैदा होते ही अंधा होता है, कोई पैदा होते ही पचास लाख का मालिक होता है तो उसका क्या मतलब है?
उसके भी मतलब हैं।
प्रश्नः क्या?
अब उसके लिए आराम से आइए तो बात करें। क्योंकि वह विवाद का नहीं... मतलब हैं उसके। अंधा जो पैदा होता है, उसके मतलब हैं।
प्रश्नः नहीं-नहीं आप बताएं।
हां, तो बिल्कुल इसके लिए कल दोपहर आ जाएं, इसको अलग से बात करें।
प्रश्नः नहीं-नहीं, आप करिए, दोपहर को क्या आना है?
कल दोपहर आ जाएं।
प्रश्नः यहां पर आप करिए। आप के पास कोई
न, न, न, न... । यह, यह जो, यह जो बात है न, यह जो बात है न...
प्रश्नः उसको छोड़ दीजिए।
मैं आपको...
प्रश्नः अपनी आत्मा से पूछिए?
न-न-न। मैं सम...
प्रश्नः... कि कर्म-भोग तो सबको भोगना पड़ेगा।
हां न, भोगिए न, कौन मना कर रहा है?
प्रश्नः भोगना पड़ेगा? आप कहते हैं, तत्काल भोगते हैं...
यही तो मैंने कहा, यह, यह जो बात आपने उठाई न, यह जो बात आपने उठाई, कल तीन बजे फिर आ जाएं, फिर इसको उठा लें।
प्रश्नः नहीं, तीन बजे क्या आना?

अब तो वक्त हुआ।
प्रश्नः इसी बात पर आप शास्त्रार्थ करिएगा?
फिर आप तो हां और न वाले हैं। आप समझ ही नहीं पा रहे हैं मेरी बात। प्रश्नः तो हां-न तो पूछते ही हैं?
आप तो ऐसा पूछते हैं कि... न। मुझे तो...
प्रश्नः हां-न वाली... हम तो समझ रहे हैं।
मुझे तो समझने, मुझे तो समझने की...
प्रश्नः आप कहते हैं कि आप नहीं समझ रहे हैं?
मुझे तो समझने की आपको उत्सुकता ही नहीं।
प्रश्नः मुझे भी आपको समझाने की आवश्यक्ता नहीं है?
फिर कैसे आ गए?
प्रश्नः हम तो इस बात के लिए आए हैं...
फिर कैसे आ गए?
प्रश्नः कि आप यह बताइए... कर्म-फल... ?
यहां आप कैसे आ गए? किसी कर्म-फल के कारण आ गए, मालूम पड़ता है।
प्रश्नः आप किस कर्म-फल के कारण यहां आ गए? हमारे पाले पड़ गए आपको? आपका भी कर्म-फल पड़ गया हमारे ऊपर?
ये जो बातें आपको और करनी हैं, वह कल तीन बजे आकर करिए। तीन से साढ़े चार का वक्त होगा। और शाम... ।

प्रेम नदी के तीरा
दसवां प्रवचन

नींद और मौत एक जैसी होती है

... होता है जब तक जानना नहीं होता।

प्रश्नः लेकिन जब जान जाए----

तब तो कोई सवाल ही नहीं उठता।

प्रश्नः तब तो जान भी गया और मान भी गया?

फिर तो मानने का सवाल ही नहीं उठता।

प्रश्नः मान तो गया ही...

नहीं-नहीं, ...

प्रश्नः जो जान गया किसी चीज को, फिर तो मानने और जानने में क्या अंतर
रह गया?

मानने का... ।

प्रश्नः मानना पहली सीढ़ी है, जानना दूसरी सीढ़ी है।

मैं ऐसा नहीं कहता, मैं ऐसा नहीं कहता।

प्रश्नः आप नहीं कहते। लेकिन आप अगर किसी चीज को जान जाएंगे... ?

उसके बाद तो जानने का सवाल ही नहीं है। आप परमात्मा को मानते हैं, दीवाल को नहीं मानते, इसको आप जानते हैं। इसलिए आप किसी से न पूछेंगे कि दीवाल को मानते हैं या नहीं मानते।

प्रश्नः ऐसा हो सकता है कि मैं दीवाल को मानता नहीं हूं, मैं दीवाल को जानता भी हूं और दीवाल को मानता भी हूं। इसमें तो कोई अंतर फिर नहीं रह जाता।

मेरी बात आप समझ लें। आप क्या करते हैं उससे मुझे मतलब नहीं है। मेरा कहना यह है कि मानना तभी तक जरूरी है, जब तक जानना घटित नहीं होता। जैसे ही जानना घटित हो गया, मानने न मानने, दोनों की बातें व्यर्थ हो गई। तो मेरा जो जोर है वह इस बात पर है कि धर्म के संबंध में जो लोग मानते ही चले जाते हैं, वे जानने से वंचित रह जाते हैं। जो नहीं मानते चले जाते हैं वे भी जानने से वंचित रह जाते हैं। और जानने की घटना जिस दिन घटेगी, उस दिन मानने में उत्तर नहीं दिया जा सकता।
आप मुझसे अगर कहें कि क्या आप परमात्मा को मानते हैं? तो मैं कहूंगा
कि नहीं, मैं जानता हूं। इसलिए यह कहूंगा, इसलिए यह कहूंगा कि मानने को मैं समझता ही यह हूं कि वह न जानने की अवस्था में लिया गया निर्णय है। जानने की अवस्था में मानने का निणर्य लिया ही नहीं जा सकता। ऐसी मेरी समझ है। वह आपको ठीक लगे, न लगे--वह सवाल नहीं है बड़ा।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

नहीं, अगर आप कुछ कर रहे हैं तब तो मैं विचलित नहीं करता। लेकिन अगर आप कुछ गलत कर रहे हैं तो मैं जरूर विचलित करूंगा। और अगर गलत करने वाले को विचलित न करने के लिए गीता कहती हो, तो बड़ी खतरनाक बात कहती है। गलत करने वाले को तो विचलित करना ही पड़ेगा। वह गीता भी, कृष्ण भी पूरे वक्त अर्जुन को विचलित कर रहे हैं। वह जो करना चाहता है, वह भागना चाहता है युद्ध से। वे उसको विचलित कर रहे हैं, पूरी किताब ही उसको विचलित करने से पैदा हुई है। कृष्ण पूरा काम ही यह कर रहे हैं कि अर्जुन जो करना चाहता है उसको विचलित कर रहे हैं; और जो नहीं करना चाहता, उसको करवाने के लिए कह रहे हैं। नहीं तो वह किताब ही कभी पैदा न होती। और अगर किसी को विचलित नहीं करना है-- तब तो बुद्ध का बोलना फिजूल गया, क्राइस्ट का बोलना फिजूल गया, नानक का समझाना फिजूल गया। क्योंकि किसी न किसी को विचलित करने के लिए ही है वह। एक आदमी शराब पी रहा है। आप उसे विचलित नहीं करेंगे तो क्या करेंगे?
और एक आदमी कुछ गलत किए जा रहा है जिससे परमात्मा तक नहीं पहुंच सकेगा; आप विचलित नहीं करेंगे तो क्या करेंगे? तो विचलित न करने का मतलब इतना ही हो सकता है कि किसी को ठीक मार्ग से विचलित न करें। लेकिन ठीक मार्ग पर कोई है या नहीं, गलत मार्ग से तो विचलित करना ही होगा।

प्रश्नः ठीक मार्ग पर कोई हंड्रेड परसेंट न हो, पांच-दस परसेंट हो, उससे तो विचलित हो जाएगा।

तो पंचानबे परसेंट से विचलित करना पड़ेगा, पांच परसेंट से न करेंगे। बाकी जहां गलत है, वहां से तो गलती कहनी पड़ेगी। उससे आपको परेशानी हो, रास्ता बदलने में परेशानी होती है। आप दो मील चल कर आ गए हैं। अब मैं आपसे कहता हूं कि लौटिए चौरस्ते से, फिर से रास्ता पकड़िए। आपको परेशानी होती है। लेकिन आप बड़ी छोटी परेशानी से डर रहे हो। और जितने बढ़ते जाएंगे, लौटना पड़ेगा ही। आज नहीं, अगले जन्म में लौटना पड़ेगा ही। लौटे बिना रास्ता नहीं है। अगर गलत रास्ता है तो लौटना पड़ेगा ही, इसलिए जितनी जल्दी लौट जाएं उतना अच्छा है। हां, लेकिन मुझे भी दिक्कत है और आपको भी दिक्कत है। क्योंकि जो आदमी दो मील चला आया उससे मैं कहूं कि तुम गलत चल आए तो पहले तो वह भी जिद्द करता है कि नहीं गलत नहीं चला आया। क्योंकि दो मील चल आया है वह। वह चाहता है कि कोई कहे कि ठीक चला। ताकि यह जो श्रम हुआ, बेकार न चला जाए। तो वह भी राजी नहीं होता, दिक्कत डालेगा। और मुझे भी पेरशानी होती है उसको समझाने में। मैं भी कहूं कि बिल्कुल ठीक चल रहा है तो वह भी प्रसन्न होता है, और मेरी भी प्रसन्नता है।
जो लोग आपको विचलित नहीं करते, उनकी आपके प्रति कोई सहानुभूति नहीं है। अगर सहानुभूति है तो गलत दिखाई पड़े तो विचलित करना ही होगा। चाहे आप हजार मील चल आएं हों और गलत चल आएं हैं तो वापस लौटना पड़ेगा। और उचित है जितनी जल्दी लौट जाएं। क्योंकि रुके नहीं रहेंगे, कल तक और दो मील चल लेंगे, और दस मील चल लेंगे। इसलिए जितनी जल्दी लौट जाएं उतना अच्छा। तो मेरा तो काम विचलन करने का है।

प्रश्नः आप विचलित करते हैं किसी को, जिसको विचलित आप कर रहे हैं, अब
वह गलत कर रहा है या आप गलत कर रहे हैं, इसकी कसौटी कौन सी है?

कोई कसौटी नहीं है। अगर वह ठीक चल रहा है तो वह मेरे पास पूछने ही नहीं आएगा, पहली बात। क्योंकि मैं उसके पास पूछने नहीं गया कभी। वह ठीक नहीं चल रहा है, इसलिए इधर-उधर पूछता फिर रहा है। क्या जरूरत है पूछने की? क्या जरूरत है उसको? आप डाक्टर से जाकर पूछिएगा कि मैं बीमार हो आया, कि आप बीमार हैं। तो आप गए काहे के लिए डाक्टर के पास? आपको शक है। आपको पता है, आपको पता है कि कहीं गड़बड़ चल रही है। कहीं पहुंच भी नहीं रहे, कुछ पा भी नहीं रहे, इसलिए खोजते फिर रहे हैं। खोज का मतलब ही यह है।
जिस दिन आपको लग जाएगा कि ठीक रास्ता मिल गया और ठीक चल रहे हैं, आनंद मिल रहा है, बात खत्म हो गई। मेरे पास किसलिए आएंगे? किसी के पास किसलिए

जाएंगे? बात खत्म हो गई। और फिर मैं आपसे कह दे रहा हूंः मैं आपको विचलित कर रहा हूं। यह तो नहीं कह रहा कि आप विचलित हो ही जाएं। मुझे जो ठीक लग रहा है वह मैं कह रहा हूं और अगर आपको लगता है कि ठीक नहीं है, मत विचलित हों। कोई मैं धक्का देकर तो विचलित कर नहीं रहा।

प्रश्नः आपकी बात ठीक है, आप विचलित कर रहे हैं। लेकिन हम कहते हैं कि
हम आपको विचलित करें।

आप करिए न, तो आपको कौन मना कर रहा है? आपको मैं कहां मना कर रहा हूं?

प्रश्नः आप तो कहते हैं कि आप विचलित करते हैं?

मैं कहां मना कर रहा हूं आपको? आप मुझे विचलित करें, इसलिए मैं कहां मना कर रहा हूं आपको?

प्रश्नः न जी देखो आप, ये तो उलटा सवाल है, अगर हमको आप कह देते हैं कि
आप गल्त रास्ते पर जा रहे हो तो यह बात आती है। मगर हम समझते हैं कि आप गल्त रास्ते पर जा रहे हो----

हां, तो आप मुझे समझाएं न। आप मुझे समझाएं। लेकिन तब मैं आपके पास आऊंगा।

प्रश्नः नहीं, नहीं। कई दफा जाना भी पड़ता है, आप देखिए, कहां से चल कर हमारे पंजाब के अंदर आए हैं, अमृतसर के अंदर आए हैं------।

मैं समझा, मैं आपकी बात समझा। आपको लगे कि मैं गलत चल रहा हूं तो मुझे समझा दें। आप विचलित करने की कोशिश करें, उसमें क्या हर्ज है?

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

कोई कसौटी नहीं है, कोई कसौटी नहीं है। जिस आदमी को, ठीक रास्ते पर जो आदमी है, उस आदमी को आंतरिक प्रतीति होती है कि वह ठीक है। और जो गलत है उसे प्रतीति होती है कि वह गलत है। जैसे कि आपके पैर में कांटा गड़ जाए तो आप कहते हो कि मुझे दर्द हो रहा है। लेकिन क्या कसौटी है कि आपको दर्द हो रहा है? हम कैसे मानें कि आपको दर्द हो रहा है? फिर कांटा निकाल लिया। आप कहते हैंः अब दर्द नहीं हो रहा है। क्या कसौटी है कि आपको अब दर्द नहीं हो रहा? आपका अनुभव ही आपकी कसौटी है। आपका अनुभव ही आपकी कसौटी है।

प्रश्नः नोट करना, मैं रोज पव्वा, डेढ़ पव्वा शराब पी लेता हूं। और मुझे बड़ा आनंद आता है। इतना सुरूर आता है कि मैं मग्न हो जाता हूं, मेरे गुनाह की मुझे कोई फिकर नहीं होती, न कोई चिंता होती है, न ही कोई झिझक। तो बताइए कि अब दुनिया सारी कहने वाली है कि यह गलत काम है।

दुनिया को आप गलत समझिए।

प्रश्नः देखो, सयाने से सयाना आदमी जितना भी है वह भी कहता है कि यह गलत काम है। लेकिन मैं समझता हूं मुझे आनंद आता है। क्या मैं अपने आनंद को पहचानता हूं? अपने आनंद की तरफ चला जाता हूं, और हर बंदा मुझे कहता है कि तुम गलत काम कर रहे हो, कभी उसने वह काम किया नहीं होता और मुझे कहता है कि तुम गलत काम कर रहे हो। वह गलत है या वह गलत है?

न-न-न। आप तब डेढ़ ही क्यों पीते हैं, अच्छा करना है तो तीन पव्वा पीएं। हां, होश में काहे को आते हैं कि दूसरे आपसे कुछ कहने आएं। आप तो डूबे ही

रहें उसमें। आप क्यों पंचायत में पड़ गए हैं किसी की? जब आपको आनंद आ रहा है तो सारी दुनिया गलत कहे तो भी फिकर छोड़ें, आप तो आनंद लें पूरा अपना। न-न-न, मेरी बात नहीं समझ रहे हैं आप। आप पूरा आनंद लें।

प्रश्न: आपने कहा कि जो लोग गलत काम करेंगे उनको विचलित करना ही पड़ेगा, आपने ये लफ्.ज कहे। अगर आप को हक बनता है कहने का कि हम विचलित करने के लिए तैयार हैं, हम करेंगे, तो फिर दूसरे आदमी को यह क्यों कहा जाए कि तुम क्यों ऐसा-ऐसा करते हो... ?

कहां कह रहा हूं? कहां कह रहा हूं? नहीं बिल्कुल नहीं कहा। आपसे मैं
यह कह रहा हूं कि आपको लगता है आनंद शराब पीने में, आप पीए चले जाएं। मुझे आनंद लगेगा आपको विचलित करने में तो मैं आपको विचलित करने की कोशिश करूंगा, आप विचलित मत हों।

प्रश्नः नहीं, कसौटी कौन सी है?

कसौटी कोई भी नहीं है। कसौटी, आपके अनुभव के अतिरिक्त कोई कसौटी नहीं है। है ही नहीं, उसका कोई उपाय नहीं है।

प्रश्नः कोई तो कसौटी होनी चाहिए... ?

तो उसको खोजिए आप। मैं कहता हूं कि कोई कसौटी नहीं है। आप कसौटी खोजिए फिर। आप कसौटी खोजिए। मैं कहता हूं कि कोई कसौटी नहीं है। आप कसौटी खोजिए। कभी मिल जाए तो मुझे बताइए।

प्रश्नः मैंने आपसे अभी यही प्रश्न करना है कसौटी का। मैंने सुना है
कि आप ऐसी प्रैक्टिस कराते हैं कि इस प्रैक्टिस के अंदर आप स्मरण करवाते होंगे या कोई और चीजें होंगी?

होंगी नहीं, आप आए हैं।

प्रश्नः मैं नहीं आया, क्योंकि... पर उसके मुतल्लक... ।

फिर छोड़िए उसकी बात... उसके मुतल्लक मत करिए। क्योंकि जहां आप आए नहीं, उसकी बात मत करिए।

प्रश्नः इस शरीर के अंदर झील है, जिसके कि तमाम बिंदु उस झील के अंदर,
और वे कैद हैं। उस सारे शरीर में विभिन्न सेंटर हैं और कुछ जो इस शरीर के अंदर कैद हैं, वे निःशब्द में भी हैं। निःशब्द तो असीम है, ... एक है टुकड़े- टुकड़े में है। ये जो टुकड़े-टुकड़े सब शरीरों में हैं, इसका स्वरूप निःशब्द नहीं, शब्द है। और इसका सेंटर सुखमणी में भी है और यहां पर इसका स्वरूप शब्द है। क्या इस शब्द को जोड़ने से यह निर्विचार हो सकती है योनि? क्योंकि बिना शब्द के यह ठहरती नहीं है। जब भी इनसान को मृत्यु का समय आता है, पहले पैर ठंडे होते हैं और आंखों की पुतलियां मिटती हैं, क्योंकि यह जो चीज है यह अपने मुकाम तक पहुंचती है। यहां पर आती है। और यहां पर जैसे इसके विचार हुए हैं, जैसा इसने अभ्यास किया हुआ है, अगर पहले यहां आने का अभ्यास किया हुआ है, तो यह निर्विचार हो जाएगी। तो यहां आने का मार्ग... मैंने बहुत कोशिश की आपके वचनों को सुनने की... पर बात बनती नहीं।

तो बनाओ। झांक कर बनाओ।
अगर मालूम ही हो गया... एक बड़ी कठिनाई यह होती है कि अगर तुम्हें यह सब मालूम हो गया तो मुझसे किसलिए पूछ रहे हो? यानी तुम जो बातें बोल रहे हो वे सब ऐसी हैं जैसे मालूम हो गया हो। कहां सुखमणी है? कहां शब्द है? कहां

निःशब्द है? मरते वक्त क्या होता है? क्या नहीं होता?--वह सब तुम्हें मालूम हो गया तो मुझसे बेकार पूछ रहे हो। नहीं, अगर मालूम नहीं हुआ, अगर मालूम नहीं हुआ तब तो पूछने में कोई सार्थकता है।

प्रश्नः लेकिन पूछना इसलिए पड़ा कि आपका उपदेश है कि जहां पर अनीति और झूठ नहीं, यहां पर शब्द है वह सुनने की जरूरत नहीं है। उसके बिना ही यह निर्विचार हो जाएगा।

अगर तुम्हें वहां शब्द हो रहा है...

प्रश्नः ऐसी बात मैं जानता भी नहीं हूं, और है भी नहीं, और होगी भी नहीं।

नहीं, अगर ऐसा पक्का ही है तो फिर मुझसे क्या पूछना है? कठिनाई यह है
कि जब हमें ज्ञान है ही किसी बात का तो प्रश्न नहीं बनाना चाहिए। क्योंकि ज्ञानी प्रश्न बनाए तो बड़ी दिक्कत होती है। प्रश्न का मतलब ही यह होता है कि हमें पता नहीं, तो हम खोजने निकले हैं। अगर हमें पता ही है--

प्रश्नः प्रश्न तो कोई इंस्पेक्टर भी कर सकता है। प्रश्न कोई इम्तिहान लेने वाला भी कर सकता है... एक छोटा बच्चा हूं।

नहीं-नहीं, बच्चा काहे को?

प्रश्नः अपनी शंका के लिए आपसे पूछ रहा हूं।

हमारी सारी कठिनाई यही है। बहुत सा सुन लेते हैं, पढ़ लेते हैं, वह हमारे मन में बैठ जाता है। तब सवाल जो हैं वे हमारे पढ़े-लिखे-सुने से उठने शुरू हो जाते हैं। और ऐसे सवाल जो हैं वे शास्त्रीय हो जाते हैं। उनका कोई बहुत जीवन से संबंध नहीं रह जाता। न तो तुम्हें यह पता है कि भीतर कुछ है, न तुम्हें यह पता है कि भीतर कुछ नहीं है। तुम कहते हो कि कोई कहता है कि भीतर कुछ नहीं है, कोई कहता है कि भीतर कुछ है।
जब हमें यही पता नहीं कि भीतर कुछ है तो कहां उसका सेंटर है? कहां से उसमें गति होगी? ये सारे के सारे प्रश्न हाइपोथेटिकल हो जाते हैं। अभी तो इसकी फिकर करो, तो पहले तो इस... बात सुनो न, पहले पूरी बात सुनो।... बात की फिकर करो पहले, भीतर मुड़ने की फिकर करो पहले। ताकि तुम्हें पता चले कि भीतर कुछ है या नहीं। अगर कुछ नहीं है तब तो सेंटर वगैरह खोजना पागलपन हो जाएगा। तो पहले मुड़ कर भीतर देखो कि वहां कुछ है।
जिस ध्यान की मैं प्रक्रिया तुमसे कह रहा हूं उससे तुम भीतर मुड़ कर देख सकोगे कि शरीर के अलावा भी भीतर कुछ है। और जैसे ही तुम देख सकोगे कि भीतर कुछ है, वैसे ही तुम सेंटर की बात कभी न पूछोगे, क्योंकि जो भीतर है वह सेंटरलेस है। उसकी कठिनाइयां हैं। उसकी कठिनाइयां ये हैं, उसकी कठिनाइयां ये हैं कि जो चीज भी असीम है उसका कोई सेंटर नहीं हो सकता। जो चीज सीमित है उसका सेंटर होता है। जो चीज असीम है उसका कोई सेंटर नहीं होगा। और या फिर हर जगह सेंटर होता है। दो में से कुछ एक बात होती है।
तो पहले तो भीतर प्रवेश करो और यह जानने की कोशिश करो कि भीतर कुछ है? अगर भीतर कुछ नहीं है तब तो कुछ सवाल ही नहीं उठता सेंटर वगैरह का। अगर भीतर कुछ है तो भी मैं तुमसे कहता हूं कि सेंटर वगैरह का सवाल एकदम विदा हो जाएगा। क्योंकि जैसे ही तुम भीतर झांकोगे तुम पाओगे वहां जो है वह असीम है। और उसको न तो डिवाइड किया जा सकता है; न सेंटर बनाया जा सकता है; न उसकी कहीं कोई सर्कमफ्रेंस है और न कहीं कोई सेंटर है। वह ज्यामिट्री की चीज नहीं, कि वहां कोई सेंटर हो। ये सारे सेंटर वगैरह की जो बातचीत है, ये सब हम किताब में पढ़ लेते हैं, बिना जाने इस पर हम बात करने लगते हैं, सवाल उठाने लगते हैं। और तब ये सारे सवाल हमें कहीं नहीं ले जाते।

तो मेरी तो सारी फिकर एक्सपेरिमेंटल है, स्पेकुलेटिव नहीं है। मैं इसकी बहुत चिंता नहीं करता कि सिद्धांतवादी क्या कहते हैं? मैं इसकी चिंता करता हूं कि तुम्हारे अनुभव में कितना आता है। तो सबसे पहले भीतर मुड़ो और इस बात का पता लगाओ कि भीतर कुछ है। इसका जिस दिन तुम्हें पता लग जाए, उस दिन तुम फिर इस बात की पता लगाने की कोशिश करो कि कोई सेंटर हो सकता है इसका? वह सेंटरलेस है।
और निःशब्द की जो बात कह रहे हो... नहीं मुझे तकलीफ नहीं है, मुझे तकलीफ नहीं है। लेकिन आधा घंटे का ही वक्त है, और इन सबको कुछ पूछना हो? हो सकता है, हो सकता है और टु दि पॉइंट न हो। तो मजा यह है कि अगर तुम्हें पता ही है तो मुझसे... ।
दो बातों पर ध्यान देना पड़ेगा। एक तो जो बहुत मीडियाकर व्यक्तित्व हैं, न तो बहुत बुरे हैं, न बहुत अच्छे हैं। साधारण जन हैं। और न तो पापी हैं बहुत बड़े, न पुण्यात्मा हैं बहुत बड़े। साधारण-जन को दूसरे-जन्म में प्रवेश करने में सेकेंड भी नहीं लगते। इधर मरा, उधर जन्म हुआ। साधारण-जन को। क्योंकि साधारण-जन के लिए सदा ही उसके योग्य गर्भ उपलब्ध होते हैं। इसलिए देर की कोई जरूरत नहीं होती। लेकिन अगर बहुत बुरा व्यक्ति है, तो वक्त लग जाएगा। और बहुत अच्छा व्यक्ति है, तो भी वक्त लग जाएगा।
क्योंकि बहुत अच्छे गर्भ भी मुश्किल से उपलब्ध होते हैं और बहुत बुरे गर्भ भी मुश्किल से उपलब्ध होते हैं। इसलिए हिटलर जैसा आदमी मरेगा, तो वर्षों प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। जन्मों भी प्रतीक्षा हो सकती है। क्योंकि हिटलर जैसे गर्भ की स्थिति उपलब्ध होनी चाहिए, जो रेयर है। तो जितनी श्रेष्ठ, जितनी निकृष्ट आत्मा होगी, उस हिसाब से टाइम का फर्क पड़ेगा। तो जिन आत्माओं को बुरा होने की वजह से प्रतीक्षालय में रुकना पड़ता है, उनको हम प्रेत कहते हैं। भूत-प्रेत कहते हैं। ये बुरी आत्माएं हैं जो प्रतीक्षा कर रही हैं अपने गर्भ की। जिन भली आत्माओं को प्रतीक्षा करनी पड़ती है उनको हम देवता कहते हैं। ये भी वे आत्माएं हैं जो प्रतीक्षा कर रही हैं योग्य गर्भ की। साधारण आदमी को जरा भी देर नहीं लगती। वह तत्काल दूसरा जन्म खोज लेता है।
और दूसरी बात आप पूछते हैं कि पुरुष-स्त्री में बदलाहट हो सकती है। साधारणतः स्त्री से पुरुष की तरफ बदलाहट ज्यादा होती है। पुरुष से स्त्री की तरफ बदलाहट कम होती है। और उसका कुल कारण इतना है, कोई भी स्त्री स्त्री होने से प्रसन्न और सुखी नहीं है। उसकी आकांक्षा पुरुष होने की जीवन भर चलती है। लेकिन उलटी बदलाहट भी होती है। पर उसकी संख्या कम है। और मनुष्य चाहे स्त्री हो या पुरुष, इससे कोई योनि का अंतर नहीं पड़ता। इससे उनके स्टेज का कोई अंतर नहीं पड़ता। चेतना का विकास दोनों का बराबर होता है। एक ही तल पर दोनों होते हैं। उलटा कभी नहीं होता।
ऐसा कभी नहीं होता कि पुरुष जो है वह मरे, यानी मनुष्य मरे और पशु हो जाए, ऐसा नहीं होता। या तो विकास आगे होता है, या उसी योनि में परिभ्रमण होता रहता है। लंबे समय तक होता रहता है। लौटना संभव नहीं होता। कोई मनुष्य मर कर जानवर नहीं होता। हां, जानवर मर कर मनुष्य हो सकते हैं। इस जगत के विकास में पीछे लौटना होता ही नहीं। यहां सब चीजें आगे ही जाती हैं। अगर आप आगे नहीं जाएंगे तो जहां हैं वहीं पुनरुक्ति करते रहेंगे। तो एक आदमी मनुष्य के जन्म में सैकड़ों बार घूम सकता है अगर आगे नहीं बढ़ता है तो। पीछे लौटने का कोई उपाय नहीं। और टाइम की जो बात है वह डिपेंड करती है बहुत सी बातों पर।
पहला तो अच्छे और बुरे होने पर बहुत कुछ निर्भर करता है। साधारण होने
पर सरलता से रूपांतरण हो जाता है। लेकिन यह जो मैं कहूं, तो इसको आपको मानना ही पड़े और क्या करिएगा? इस तरह की बात जब आप पूछते हैं, और कोई कहे तो आप क्या करिएगा? मानना ही पड़े।
इसलिए इस तरह के सवालों को मैं धार्मिक नहीं कहता। क्योंकि जिन सवालों का जवाब मानना पड़े, वे सवाल धार्मिक नहीं रह जाते। वह कोई मतलब नहीं है। क्योंकि मैं कह रहा हूं, हो सकता है सब गलत कहूं। आपके पास मानने

के सिवाए फिलहाल कोई उपाय नहीं होगा। इसलिए इस तरह की बातों को मान मत लेना, इस तरह की बातों को भी जानने की कोशिश करनी चाहिए।
आप अपने पिछले जन्मों का स्मरण कर सकते हैं, यह सांइटिफिक, उसकी वैज्ञानिक प्रक्रिया है कि आप अपने पीछे जन्म का स्मरण करें। और वह स्मरण आपको बहुत सी चीजें जानने की स्थिति में ला देगा। वह आपको यह भी बता सकेगा कि पिछली मौत और इस जन्म के बीच कितना फासला है। हालांकि वे फासले भी बड़े जटिल हैं। क्योंकि हमारा जो टाइम-मैजरमेंट है वह बहुत कठिन मामला है।
आप, एक सेकेंड के लिए झपकी लग जाती है आपकी और आप एक सपना देखते हैं जिसमें कि वर्षों लगने चाहिए सपना देखने में। आप सपना देखते हैं--कि बच्चे हैं, जवान हो गए, प्रेम हो गया, विवाह हो गया, बच्चे हो गए, उनकी शादी कर रहे हैं। और झपकी टूटती है और आप कहते हैं कि मैंने इतना लंबा सपना देखा। सामने वाला आदमी कहता है कि इतना लंबा आप देख नहीं सकते, क्योंकि एक सेकेंड मुश्किल आपकी आंख बंद रही। तो एक सेकेंड में आप इतना लंबा सपना देख सकते हैं।
असल में ड्रीम-टाइम अलग तरह का टाइम है। और आपके जागने का समय अलग तरह
का समय है और नींद का समय आपका अलग तरह का था। समय के बोध में फर्क है। तो जैसे ही आदमी मरता है, वैसे ही टाइम-स्केल भी बदल जाता है। इसलिए इधर के टाइम-स्केल में हम बता नहीं सकते कि वह पांच दिन में जन्म गया, कि छह दिन में जन्म गया, कि सात दिन में जन्म गया। क्योंकि दिन और रात हमारा टाइम-स्केल है। जैसे ही शरीर छूटा, यह टाइम-स्केल के आप बाहर हो जाते हैं। और दूसरा टाइम-स्केल काम करना शुरू करता है, जो बहुत अलग बात है।
इसलिए जो हमने नियम बनाए हैं कि तीन दिन बाद कुछ करेंगे, तेरह दिन बाद कुछ करेंगे, ये बहुत एप्रोक्सिमेट हैं। ये साधारणतः इस तरह बनाए गए हैं कि साधारणतः तीन दिन में वह आदमी जन्म ले लेगा। अगर तीन दिन रुक गया तो तेरह दिन में जन्म ले लेगा; अगर तेरह दिन रुक गया तो साल भर में जन्म ले लेगा। इसलिए हम साल भर तक मृतक का कोई न कोई संस्कार करते चले जाते हैं। वह सिर्फ इसलिए कि यह ज्यादा से ज्यादा संभावना हमारे टाइम में है।
लेकिन यह सब बिल्कुल एप्रॉक्सिमेट है, यह एक्.जेक्ट नहीं है। यह एक्.जेक्ट हो नहीं सकता। क्योंकि हमारा और जन्म के मरने के बाद शरीर के छूटते ही जो समय की धारणा है, उसमें बुनियादी फर्क पड़ जाता है। लेकिन ये सारी बात मानने की हो जाए, इसलिए मैं इसमें बहुत उत्सुक नहीं होता।
मैं इसमें उत्सुक होता हूं कि इसके थोड़े प्रयोग करने चाहिए। इसमें थोड़े से प्रयोग करने चाहिए। जैसे मजे की बात है कि आप, इतनी जिंदगी हो गई, आप रोज सोते हैं रात, लेकिन अब भी आप नहीं बता सकते कि नींद जब आती है तो कैसी होती है। रोज नींद आती है। रोज आप नींद में जाते हैं। लेकिन नींद क्या है? यह रोज नींद में जाकर भी आप नहीं कह सकते। और उसका कारण है। क्योंकि जब तक आप जागे रहते हैं तब तक नींद नहीं होती, और जब नींद आती
है तब आप जागे नहीं होते। दोनों का कहीं मेल नहीं हो पाता। अगर आप जागे रहें और नींद आ जाए तो आप पहचान लें कि नींद क्या है? लेकिन आप जागे रहेंगे तो नींद आएगी नहीं। आप नहीं होते मौजूद, अचेतन हो जाते हैं, तब नींद आती है तो आप कभी नहीं पहचान पाते। जब हम नींद तक को नहीं पहचान पाते तो मौत में तो हम बिलकुल ही नहीं पहचान पाएंगे। मौत तो महानिद्रा है।
तो मेरा जोर इस बात पर है कि जिस आदमी को इसके संबंध में खोज-बीन करनी हो, उसे नींद से शुरू करना चाहिए कि वह अपनी नींद के प्रति जागना शुरू करे। सोते वक्त होशपूर्वक रहे कि कब नींद आती है, उस क्षण में क्या होता है भीतर। अगर दो-चार महीने प्रयोग किया, तो आप पकड़ लेंगे। और आपको नींद आ जाएगी और होश भी रहेगा। इधर सब शरीर सो जाएगा और भीतर एक होश की धारा भी रहेगी। जिस दिन आप नींद को पकड़ लेंगे, उस दिन आप अपनी मौत को भी पकड़ पाएंगे। उसके पहले नहीं पकड़ पाएंगे। और जिस दिन मौत को आप पकड़ पाएंगे, चाहे पिछले जन्म की मौत को पकड़ने की बात हो, उस दिन आपको पता चलेगा कि यह तो सारा स्केल अलग है, बताना मुश्किल है।
यानी करीब-करीब स्थिति ऐसी है कि जैसे कोई एक द्वीप हो जहां फूल नहीं खिलते और पत्थर ही पत्थर हैं। और वहां का एक निवासी किसी दूसरे मुल्क में

जाए कि जहां फूल खिलते हैं। वह वापस लौटे और उस गांव के लोग उससे पूछें कि वहां तुमने क्या देखा? वह कहे, हमने फूल देखे। और उस गांव के लोग पूछें कि वे कैसे होते हैं? उस गांव में तो कोई फूल नहीं खिलते। रंग-बिरंगे पत्थर जरूर होते हैं। तो वह आदमी रंग-बिरंगा पत्थर उठा कर बता दे कि कुछ इससे मेल खाते फूल होते हैं। हालांकि पत्थर से फूल का क्या मेल होता है? लेकिन उस आदमी की तकलीफ कि वह किस चीज से कहे कि कैसे होते हैं?
तो करीब-करीब जिनको भी मृत्यु के अनुभव से गुजरना हुआ है, उन्होंने जो बातें भी कही हैं वह हमारी भाषा में कहनी पड़ी हैं। और हमारी भाषा और उस अनुभव में कोई ताल-मेल नहीं है। इसलिए सब सिद्धांत ऐसे ही हैं जैसे फूल को कोई पत्थर से बता रहा हो। इसलिए वह एक्.जेक्ट सही कभी नहीं होते। इसलिए मेरी बात को पकड़ लेने की जरूरत नहीं है। न उस पर कोई आग्रह रखने की जरूरत है कि वह ठीक है कि गलत है।
फिकर यह ही करनी चाहिए कि हम थोड़े से जिन्दगी में प्रयोग करना शुरू करें। रात सोते वक्त होशपूर्वक सोने की कोशिश करें। सुबह नींद जब टूटती है तब होशपूर्वक नींद के बाहर आने की कोशिश करें। अगर इसमें आप सफल हो गए तो आने वाली मृत्यु में आप होशपूर्वक जा सकेंगे। और अगर मृत्यु में होशपूर्वक जा सके तो आने वाले जन्म में भी होशपूर्वक जा सकेंगे कि नींद सोने जैसी है। वह जन्म सुबह जागने जैसा है। और बीच का जो गैप है, उसका आप पता लगा पाएंगे कि वह कितना है। हालांकि बता न पाएंगे लोगों को कि वह कितना है। क्योंकि वहां टाइम-स्केल बिल्कुल दूसरा हो जाता है। लेकिन इसको सैद्धांतिक रूप से समझने का कोई भी मतलब नहीं है। यह सिर्फ कहानी मालूम होती है। क्योंकि हमारे लिए इसका कहां संबंध, इसका कहां जोड़ बैठता है।
पर हम इस तरह के सवाल पूछते हैं। और सोचते हैं कि शायद इस तरह के सवाल पूछने से कुछ हल होगा। कुछ भी हल नहीं होगा। इस तरह के सवाल हमारी जिज्ञासा बताते हैं। लेकिन हल कुछ भी नहीं होता, सब किताबों में लिखा हुआ पड़ा है, और हम सब पढ़ लेते हैं, सुन लेते हैं। इससे कुछ हल नहीं होता। थोड़े से प्रयोग करने की तरफ उत्सुक होना चाहिए। छोटे-छोटे प्रयोग बहुत बड़े काम को प्रकट कर देंगे।
तो नींद पर प्रयोग करिए, अगर आपको मौत और दूसरे जन्म के बीच फासले का अनुभव करना है। इसमें एक और मजा आएगा कि अगर आप जागते हुए सो सकें और जागते हुए सुबह उठ सकें तो रोज आप कहते हैं कि रात में छह घंटे सोया, यह दिन के स्केल में कहते हैं आप। जब आप एक दफा रात के छह घंटे अनुभव करेंगे तो फिर आप कभी भूल कर यह न कह सकेंगे कि मैं छह घंटे सोया। यह दिन का स्केल है, रात का स्केल ही नहीं। अभी रात के लिए, और नींद के लिए हमने कोई घड़ी नहीं बनाई। तब आप बिल्कुल गुमसुम हो जाइएगा। कोई पूछेगा कि रात हम कितनी देर सोए? तो आप कहेंगे कि दिन के समय में पूछते हो तो हम बता सकते हैं, लेकिन रात के समय का अभी तक कोई मैजरमेंट नहीं है। कोई घड़ी नहीं है जो बताए कि रात हम कितना सोए हैं, कितनी देर सोए?
मैं एक स्त्री को देखने गया रायपुर में। वह नौ महीने से बेहोश है। वह कोमा में पड़ी है। और डाक्टर कहते हैं कि तीन साल तक बेहोश रहेगी। रह सकती है जिंदा। तो उसे बेहोशी में इंजेक्शन दिए जा रहे हैं, दवाई दी जा रही हैं, होश में कभी आएगी नहीं, डाक्टर कहते हैं अब। लेकिन जिंदा रह सकेगी तीन साल तक। अगर यह स्त्री तीन साल बाद होश में आ जाए तो यह यही कहेगी कि अभी हम सोए थे और अभी हम उठे। इसको तीन साल का कोई फासला नहीं होगा। इसे पता ही नहीं चलेगा कि बीच में तीन साल गुजर गए। हमें तीन साल गुजरे हैं जो हम जाग रहे हैं। उसे कोई पता नहीं चलेगा। उसको पता चलना बहुत मुश्किल, क्योंकि बेहोशी का कोई टाइम-स्केल अभी हमारे पास नहीं है।
तो जन्म और मृत्यु के बीच कितना समय गिरता है, वह अनुभव की बात है। पर मैंने मोटी बात कही कि जो साधारण जीवन में हैं--न बहुत बुरे, न बहुत अच्छे। जैसे अधिक लोग हैं--थोड़े अच्छे भी, थोड़े बुरे भी--इनके लिए बहुत देर नहीं लगती। देर कह रहा हूं, समय नहीं कह रहा। और अब यह जरा कठिन मामला है। दरअसल यूरोप में एक बहुत अदभुत आदमी हुआ, फ्रेंच विचारक, उसने टाइम और ड्यूरेशन, दो शब्दों का प्रयोग करता है। वह कहता हैः समय अगल बात है और

ड्यूरेशन अलग बात है। समय तो वह है जो हम घड़ी से नापते हैं, और देरी वह है जो हम भीतर अनुभव करते हैं। और जरूरी नहीं है कि समय और देरी एक सी हो। अगर आप अपने प्रेमी के पास बैठे हैं तो घड़ी तो कहेगी कि घंटा बीत गया;
और आप कहते हैं, क्षण नहीं बीता। क्षण ड्यूरेशन है। आप अगर अपने दुश्मन के पास बैठे हैं तो घड़ी तो कहती है कि पांच मिनट बीते हैं; आप कहते हैं, लगता है दो घंटे बीत गए। यह ड्यूरेशन है। तो अगर बहुत सुखी आदमी मर रहा हो, आनंदित आदमी मर रहा हो, तो मौत और नये जन्म में कितना ही बड़ा फासला हो उसे छोटा मालूम पड़ेगा। क्योंकि उसके आनंद की वजह से सब निर्भर होगा। अगर दुखी आदमी मर रहा हो, तो मौत और जन्म के बीच में कितना ही छोटा फासला हो, उसे बहुत लंबा मालूम पड़ेगा।
ईसाइयों का एक खयाल है कि नरक जो है वह इटरनल है, अनंत है। एक दफा जो आदमी नरक में गिर गया, वह गिर गया। अब वह कभी लौट नहीं सकेगा। इसकी बड़ी मुश्किल रही, ईसाई इसका जवाब नहीं दे पाते, क्योंकि यह बड़ी बेहूदी बात लगती है। एक आदमी ने कितने ही पाप किए हों, कितने ही पाप किए हों तब भी सजा अनंत नहीं हो सकती। पाप की एक सीमा है तो सजा की भी एक सीमा होनी चाहिए। और बर्ट्रेंड रसल ने एक किताब लिखी है, जिसमें उसने बड़ा मजाक उड़ाया है
इस बात का। एक किताब लिखी है, जिसका नाम हैः वॉय आई एम नॉट ए क्रिश्चियन? मैं ईसाई क्यों नहीं? और बहुत से कारणों में एक कारण यह भी बताया है कि ईसाइयों का इटरनल कंडेमनेशन का सिद्धांत मेरी समझ के बाहर है। लिखा कि अगर मैंने जो पाप किए और जो नहीं किए, सिर्फ सोचे; अगर वह सब भी मैं सख्त से सख्त अदालत के सामने प्रकट कर दूं, तो मुझे चार-पांच साल से ज्यादा का दंड नहीं दिया जा सकता। तो इतने से पाप के लिए, किए और न किए, सोचे--उन सबके लिए भी अगर मुझे अनंतकाल तक नरक में रहना पड़े तो यह तो बड़ी ज्यादती है। उसकी बात समझ में पड़ती है। लेकिन ईसाई इसका उत्तर नहीं दे पाते।
क्योंकि बड़ी कठिनाई है। क्योंकि जीसस की बात का उत्तर ईसाई दें भी कैसे? वह जीसस जो कह रहा है, उसका मतलब, जीसस की हैसियत हो तो ही समझ में आ सकती है, नहीं तो नहीं आ सकती। बहुत मुश्किल है। यह तो जीसस को भी दिखाई पड़ रहा होगा कि यह इटरनल कंडेमनेशन शब्द बड़ा खतरनाक है, यह कैसे हो सकता है? और जीसस जैसा भला आदमी जो हर तरह के पाप को माफ करने को राजी है। जो उसे सूली पर लटका रहे हैं उनके लिए भी परमात्मा से कहता है, इनको माफ कर देना, क्योंकि ये जानते नहीं क्या कर रहे हैं? वह इटरनल कंडेमनेशन दिलवा नहीं सकता पापी को। फिर क्या मतलब होगा?
मेरा अपना खयाल है। और मेरा खयाल यह है कि जो आदमी जितना पापी है, उतना दुखी है। और दुख का एक क्षण भी इटरनल मालूम होता है। दुख का एक क्षण भी। तो नरक का एक क्षण भी ऐसा ही लगेगा जैसे अनंत... उसका कोई अंत ही नहीं आ रहा। हम सब कहते हैं, सुख क्षणिक है। सुख क्षणिक है, लेकिन उसके क्षणिक होने का एक कारण और भी है कि सुख क्षणिक मालूम होता है। जब वह आता है तो आ भी नहीं पाता है और लगता है गया। और दुख आता है तो लगता है कि जाता ही नहीं।
तो जो व्यक्ति मरेगा उसकी चित्त दशा पर निर्भर करेगा कि जन्म और मृत्यु के बीच का ड्यूरेशन उसे कितना मालूम पड़ा है। अगर वह आनंदित आदमी है तो उसे लगेगा, क्षण भर में सब बीत गया। अगर वह दुखी आदमी है तो वह कहेगा कि अनंतकाल लग गए। यह हजार बातों पर निर्भर करेगा। और इसलिए कोई बहुत फिक्सड सिद्धांत नहीं हो सकता। उपाय भी नहीं हैं होने के। तो ये सामान्य बातें हैं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

उनका सवाल अच्छा है, सभी सवाल अच्छे होते हैं। लेकिन गैर-जरूरी हैं।
यह सब हम मान कर सवाल उठा देते हैं कि जब दुनिया नहीं थी। ऐसा कभी भी नहीं था जब दुनिया नहीं थी। ऐसा कभी होगा भी नहीं जब दुनिया नहीं होगी। हां, यह हो सकता है हमारे इस पृथ्वी के ग्रह पर न हो जाए। किसी दूसरे ग्रह पर जीवन शुरू हो जाए।

अब वैज्ञानिक कहते हैं कि इस समय कम से कम पचास हजार प्लेनेट्स पर जीवन है। कम से कम पचास हजार प्लेनेट्स पर। यह पृथ्वी अकेली जीवंत नहीं है। इस तरह के कम से कम पचास हजार। सारे विश्व में प्लेनेट्स हैं जिन पर जीवन है और हो सकता है हमसे भी विकसित जीवन किन्हीं पर हो। कोई कठिनाई नहीं है। हो सकता है कि हमसे बहुत ही अलग तरह का जीवन कहीं पर हो। कोई कठिनाई नहीं है। हो सकता है, पंद्रह इंद्रियों वाले प्राणी हों, पचास इंद्रियों वाले प्राणी हों, कोई आश्चर्य नहीं है। तो जब हम कहते हैं कि दुनिया जब नहीं थी, तो हम एक चीज मान कर चल पड़ते हैं कि ऐसा भी कोई वक्त था, जब दुनिया नहीं थी। ऐसा कोई वक्त नहीं था। दुनिया सदा से है।
असल में दुनिया का मतलब ही यह है कि जो सदा से है, उसका नाम दुनिया है। ऐसा कभी नहीं था कि नहीं थी, और फिर हो गई। नहीं से तो कुछ भी नहीं होता। इस पृथ्वी पर भी जो जीवन आया है वह भी, अब वैज्ञानिक कहते हैं कि सिवाय किसी दूसरे प्लेनेट के आने के और कोई उपाय नहीं है। वह किसी प्लेनेट से ही आया है। और अभी तो हजार तरह के प्रमाण मिलने शुरू हुए हैं जिनको कि, जैसे कि अभी हमने चांद पर आदमी भेजा। तो हम आदमियों के साथ कुछ कीटाणु भी भेज ही दिए चांद पर। ये कीटाणु कल विकसित हो सकते हैं। और विकसित होते-होते, करोड़ दो करोड़ वर्ष में चांद पर जीवन पूरा पल्लवित हो सकता है। और तब चांद के लोग पूछेंगे कि यहां जीवन कहां से आया?
जीवन सदा यात्रा करता है। अब यह हमारी पृथ्वी है, यह शायद चार हजार साल में जीने के योग्य नहीं रह जाएगी। यहां से जीवन उजड़ जाएगा। हो सकता है उस जीवन के उजड़ने की वजह से ही प्राणों में चांद पर और मंगल पर पहुंचने की आकांक्षा प्रबल है। जीवन अपने को बचाने की बड़ी अचेतन प्रक्रिया में जुड़ा रहता है। एक सेमर, सेमर आप जानते हैं न, रुई? सेमर की रुई होती है। वह जो वृक्ष... तो वह रुई इसीलिए पैदा करता है सेमर कि उसका बीज उसके नीचे न गिर जाए। क्योंकि नीचे गिर जाएगा तो इतने बड़े वृक्ष के नीचे नया पौधा पैदा नहीं हो सकता। उसमें रुई पैदा करता है कि हवा में वह रुई उड़ कर बीज को दूर ले जाए। नीचे न गिर पाए बीज। नीचे गिरेगा तो नया पौधा पैदा नहीं होगा, जीवन नष्ट हो जाएगा। तो वह सेमर का बीज उड़ने के लिए रुई पैदा करता है। रुई लग कर वह उड़ जाता है हवा में, और वहां गिर जाता है जहां पैदा हो सकेगा।
जीवन हजार तरह के उपाय अपने को बचाने की कोशिश में लगा रहता है। यह पृथ्वी सदा से जीवंत नहीं थी। लेकिन यह पृथ्वी दुनिया नहीं है। दुनिया बहुत बड़ी है और यह पृथ्वी एक बहुत छोटी सी चीज है। शायद कहना चाहिए कि बहुत ही छोटा हिस्सा है जिसका कि कोई हम... ।
मैं शायद पढ़ रहा था कि अगर हम सारे विश्व को सिकोड़ डालें, कंडेंस कर लें, और इतना बड़ा हो जाए, जितना बड़ा कि हमारी पृथ्वी है, अगर सारे विश्व को हम सिकोड़ कर इतना छोटा कर लें जितनी हमारी पृथ्वी है तो हमारी पृथ्वी रेत के एक कण के बराबर होगी। उसको खोजना मुश्किल हो जाएगा कि वह कहां है? इतना ही अनुपात है उसका। लेकिन हम इसको सारी दुनिया समझ कर बैठ जाते हैं तो कठिनाई हो जाती है।
दुनिया बड़ी है और कहीं जीवन बन रहा है, कहीं जीवन बिगड़ रहा है। एक बूढ़ा आदमी मौत के करीब जा रहा है, और एक बच्चा जिंदगी के करीब आ रहा है। एक प्लेनेट मरने के करीब जा रहा है, तो दूसरा प्लेनेट जीवंत हो रहा है। जैसे कि और चीजें बन और बिगड़ रही हैं, वैसे ही सूरज और तारे भी बन और बिगड़ रहे हैं। कहीं कोई सूरज ठंडा पड़ रहा है, कहीं कोई सूरज वापस जीवंत होकर गरम हो रहा है।
हमारा सूरज भी ज्यादा दिन नहीं चलेगा। उसकी भी मौत का वक्त करीब आया आता है। लेकिन दूसरे सूरज हैं जो कि जीवंत हुए जा रहे हैं, जो अभी बच्चे हैं और बड़े हो रहे हैं। जैसे यहां छोटे से जीवन में हम देखते हैं कि बच्चे बड़े हो रहे हैं, बूढ़े समाप्त हो रहे हैं। ऐसे ही विराट विश्व में कोई जगत, कोई दुनिया, कोई पृथ्वी, कोई प्लेनेट मर रहा है, कोई प्लेनेट पैदा हो रहा है। और अंतहीन है उनकी संख्या। अभी वैज्ञानिक कहते हैं कि, जो उनकी गणना में आता है, तो करीब कोई चार अरब सूर्यों की गणना उनकी गणना में है।

चार अरब सूर्यों के अपने परिवार हैं। जैसे हमारे सूर्य का परिवार है-- चांद है, और मंगल है, और बृहस्पति है, और पृथ्वी--ऐसे चार अरब सूर्यों के अपने परिवार हैं। और यह चार अरब सूर्य आखिरी गणना नहीं है। यहां तक अभी हमारे साधन पहुंचते हैं। उसके आगे भी... और बड़े मजे की बात यह है कि यह सारा विश्व भी कोई एक जगह ठहरा नहीं है, एक्पैंडिंग है। यह भी फैल रहा है। जैसे कोई गुब्बारे में हवा भर रहा हो--फैलता जा रहा है, और बड़ा होता जा रहा है। इस, इस तरह के जो हम प्रश्न उठाते हैं, वे इसलिए उठा लेते हैं कि हम समझते हैं कि, हम समझते हैं कि यह पृथ्वी सारा जीवन है। तो कब कैसे आ गया किसी जीवन की मूल धारा से इस पृथ्वी तक? जब यह पृथ्वी युवा हो जाती है, जीवन को झेल सकती है तो जीवन आ जाएगा। जब यह बूढ़ी हो जाएगी और मर जाएगी तो जीवन हट जाएगा। और कभी ऐसा नहीं था कि जगत नहीं था, और कभी ऐसा नहीं होगा कि जगत नहीं होगा। जो है सदा, उसी का नाम जगत है, लेकिन वह रोज बदलता है। तो जब हम पूछते हैं कि सृष्टि कैसे हो गई? तो हम बात ही गलत पूछते हैं। सृष्टि कभी हो नहीं गई, सृष्टि है, वह जो हो रही है। पूरे वक्त हो रही है।
अब एक मित्र पूछ रहे हैं कि "इसका प्रयोजन क्या है?"
असल में आदमी का मन कभी प्रयोजन के बाहर सोच ही नहीं पाता। हम सदा सोचते हैं कोई प्रयोजन होना चाहिए। लेकिन कोई अगर आपसे पूछे कि आप जब प्रेम में होते हैं तो प्रयोजन क्या होता है? कोई आपसे पूछे कि जब आप आनंदित होते हैं तो प्रयोजन क्या होता है? आनंदित होने का क्या प्रयोजन है? आप कहेंगे कि आनंद तो अपने में काफी है, कोई प्रयोजन की जरूरत नहीं। प्रेम अपने में काफी है, प्रयोजन की कोई जरूरत नहीं।
यह जगत और यह अस्तित्व अपने में काफी है, इसके बाहर किसी प्रयोजन की कोई जरूरत नहीं है। यह है, यही काफी है। इसके बाहर प्रयोजन की जरूरत नहीं, लेकिन आदमी अपने मन को जगत से लगाता है। तो वह आदमी तो बिना प्रयोजन के कुछ भी नहीं करता, और कोई करे तो उसको हम पागल कहते हैं। वह दुकान करता है तो प्रयोजन से करता है कि कमाई करे; कमाता है तो प्रयोजन से करता है कि मकान बनाए; मकान बनाता है तो प्रयोजन से बनाता है कि उसके भीतर रहे। लेकिन हम कभी नहीं पूछते कि अगर हम सारे प्रयोजन के भीतर पहुंचते जाएं तो आखिरी प्रयोजन यह रहेगा कि मैं आनंद से रहूं। तब हम पूछ सकते हैं कि आनंद से क्यों रहें? क्या प्रयोजन है? तब आप एकदम मुश्किल में पड़ जाएंगे। आप कहेंगे कि नहीं, यहां बात खत्म हो जाती है।
मकान भी इसलिए बनाते हैं; धन भी इसलिए कमाते हैं; मित्र भी इसलिए; शत्रु भी इसीलिए; संघर्ष भी इसीलिए; शांति भी इसीलिए--कि आनंद से रहें। लेकिन आनंद का क्या प्रयोजन है? आनंद निष्प्रयोजन है। जगत अपने ही आनंद में है। इसका कोई प्रयोजन नहीं, कोई परपज नहीं। और अगर कोई बताए कि इसका यह परपज है, तो हम फिर पूछ सकेंगे कि उस परपज का क्या परपज? उससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।
तो इसे हम ऐसा कहें, चाहे धर्म की भाषा में कहें तो धर्म कहता है कि परमात्मा का आनंद है। उसकी लीला है। अगर विज्ञान की भाषा में कहें, तो कहना होगा कि परपजलेस है। धर्म की भाषा में कहें तो लीला है। लीला का भी मतलब वही होता है। लीला का मतलब होता हैः जिसमें कोई परपज नहीं है। खेल का मजा है। कोई कारण नहीं है, बच्चे खेल रहे हैं बाहर, रेत के मकान बना रहे हैं और गिरा रहे हैं। कोई पूछे कि क्या प्रयोजन? तो हम कहेंगे कि खेल रहे हैं। कोई प्रयोजन नहीं है। अभी थोड़ी देर बाद खेल खत्म होगा, लात मार कर अपने घर में वापस आ जाएंगे। जीवन है निष्प्रयोजन। या कहें तो कह लें कि आनंद ही प्रयोजन है। और, और तो कोई प्रयोजन है नहीं।

प्रश्नः... फिलिपिंस की एक युवती है जो अस्सी हजार शब्द एक घंटे में प.ढ़ जाती है और उसके लिए प्रॉब्लम यह है कि वह उसके पन्ने जो हैं किताब के छल नहीं सकती इतनी जल्दी से वह पढ़ती है। आपके इन प्रवचनों में आपने कहा था कि दो ढंग हैं पढ़ने केः एक आर्डिनरी और एक एक्सट्रा आर्डिनरी। तो इस बात से जो आप बताएंगे, विद्यार्थी-जगत को बहुत लाभ होने वाला है। अगर वह ऐसा कर सकें तो मेरे खयाल में विद्यार्थी-वर्ग और भी बहुत आगे जा सकते हैं।

दिमागी तौर पर भी आपके पढ़ने का जो ढंग है उसको उसे अच्छी तरह दर्शाएं, क्योंकि मैंने सुना है आपने लाखों किताबें पढ़ रखी हैं और वे किताबें आप जरूर साइकिक ढंग से पढ़ रहे होंगे। क्योंकि मेरी उम्र के आप हैं। मैंने जिंदगी में पांच हजार किताबें पढ़ रखी हैं, और मैं हैरान हूं कि आपने कैसे पढ़ा, वह जरूर बताएं, यह जरूर टेक्नीकल चीज है।

यह थोड़ा टेक्नीकल और साइंटिफिक मामला है उसका। पहली बात तो यह कि जब
भी हम पढ़ते हैं या मन से कोई भी काम करते हैं तो मन में खास तरह की विद्युत तरंगें दौड़नी शुरू होती हैं। जिनको अल्फा वेव्स कहते हैं। वे दौड़नी शुरू होती हैं। हर आदमी पढ़ता है तो उसकी अल्फा वेव्स कितनी गति से दौड़ रही हैं, इतनी ही गति से वह पढ़ पाता है। और अब तो अल्फा वेव्स को नापने के उपाय उपलब्ध हो गए हैं। तो उनको हम नाप सकते हैं कि भीतर अल्फा वेव्स कितनी चल रही हैं। जितनी तीव्र गति अल्फा वेव्स की होगी, उतनी ही तीव्र गति पढ़ने की होती है।
और अब तो वैज्ञानिकों ने एक छोटा सा यंत्र बनाया हैः अल्फा फोन, जिसको आपकी खोपड़ी पर लगा कर आपकी वेव्स को गति भी दी जा सकती है। बाहर से भी उनको बढ़ाया जा सकता है। वे तेजी से चलने लगती हैं। तो अगर अल्फा वेव्स को भीतर तेज किया जा सके तो आपके पढ़ने की, समझने की, सारी गति तेज हो जाती है। यह अल्फा वेव्स को अगर कम किया जा सके तो आप एकदम शांत हो जाते हैं। ध्यान में जिन लोगों की अल्फा वेव्स नापी गई हैं, तो बहुत शिथिल हो जाती हैं।
जापान में झेन फकीर होते हैं, तो उनके माइंड की अल्फा वेव्स के बड़े परीक्षण किए गए हैं। तो ऐसा लगता है कि बड़ी मुश्किल से एकाध वेव चलती है। तो ध्यान वह स्थिति है जहां अल्फा वेव्स कम से कम है। और चिंतन, मनन, अध्यन वह स्थिति है जहां अल्फा वेव्स ज्यादा से ज्यादा है। अब तक इसका खयाल नहीं था कि किस वजह से कोई व्यक्ति ज्यादा पढ़ सकता है, तेजी से पढ़ सकता है। अब साफ है कि उसके कारण क्या हैं। स्मृति कितनी बना सकता है, वह भी अल्फा वेव्स पर निर्भर करता है। किस मात्रा में और किस गति से उसकी अल्फा वेव्स चलती हैं।
जब आप शराब लेते हैं, या एल एस डी ले लेते हैं, या मेस्कलीन ले लेते हैं
तो भी अल्फा वेव्स पर ही असर पड़ता है। जब आप आनंदित होते हैं तो आपकी अल्फा वेव्स अलग होती हैं, और जब आप दुखी होते हैं तब अलग होती हैं। आपका मस्तिष्क लाखों सेल्स से बना है। और प्रत्येक सेल छोटा सा यूनिट है बिजली का, जो पूरे वक्त वेव्स फेंक रहा है। उनके कोआर्डिनेशन पर सब कुछ निर्भर करता है।
अब यह कोआर्डिनेशन दो तरह से हो सकता है। इसके यौगिक रास्ते भी हैं। लेकिन वे बड़े लंबे रास्ते हैं, और इसके वैज्ञानिक रास्ते अब विकसित हो रहे हैं जो बड़े आसान हैं। और कभी-कभी जैसा मैरिया का आपने नाम लिया, फिलिपिंस में वह जो मैरिया को घटित हुआ है, ऐसा और भी कई बार अनेक लोगों को इतिहास में घटित हुआ है। लेकिन यह एक्सीडेंटल है। यह कोई करके नहीं हुआ है। यह एक्सीडेंटल है, किन्हीं भी कारणों से, किन्हीं भी शारीरिक कैमिकल कारणों से उनकी अल्फा वेव्स की गति बहुत तेज है, अति तीव्र है। और उसके हजार कारण हो सकते हैं। जिनको हम बुद्धिमान कहते हैं, विचारवान कहते हैं, वह सब अल्फा वेव्स पर निर्भर करता है सारा मामला। इसको, इस अल्फा वेव्स को योग के ढंग से बढ़ाने के भी उपाय हैं।
अब जैसे की ओम का पाठ है। अब यह बड़े मजे की बात है कि ओम का पाठ, जो अल्फा वेव्स को गति देता है, और कुछ नहीं है। उसका धर्म से कोई लेना-देना नहीं है। लेकिन यह खयाल में नहीं है। उसका धर्म से कोई संबंध नहीं है। ओम की जो ध्वनि है, वह अल्फा वेव्स को गति देती है। और ध्वनियां जो हैं वे भी वेव्स हैं। साउंड जो है वह भी वेव है। वह अल्फा वेव्स को गति देती है। और ओम जो है वह मूल ध्वनि है।
मनुष्य के, जितनी ध्वनि मनुष्य कर सकता है, उसके सब मूल स्वर उसमें हैं--ए यू एम, अ उ म। ये तीन मूल ध्वनियां हैं। ये बेसिक साउंड्स हैं। इन तीनों की चोट से आपकी अल्फा वेव्स की रिदम बढ़ जाती है। और इसलिए चाहे ओम

हो, या इस तरह के और शब्द भी दूसरे लोगों ने उपयोग किए, लेकिन वे सब ओम के ही रूपांतरण हैं। जैसे मुसलमान आमीन कहते हैं, वह ओमीन का ही रूपांतरण है। या ईसाई आमीन कहते हैं, वह भी ओमन का रूपांतरण है। हैं वे सब ओम के ही रूप। ओम की ही चोट। आमीन भी वही काम करता है। जरा जोर से भाव से कोई आमीन कहे, तो उसकी अल्फा वेव्स पर चोट पड़ती है। उससे गति बढ़ती है।
लेकिन यह सब, जिसको कहना चाहिए कि अंधेरे में टटोलना था। अंधेरे में टटोलना था। अब तो हम बहुत जल्दी बच्चों को अल्फा फोन का प्रयोग कर सकेंगे। आज नहीं कल, स्कूलों में इसका प्रयोग हो सकेगा। और अल्फा फोन दोनों काम कर सकता है--कि वह आपकी गति को बढ़ा भी दे और कम भी कर दे। क्योंकि एक कठिनाई है। अगर आप किसी भी और प्रक्रिया का उपयोग करते हैं, और अगर वेव्स बहुत बढ़ जाएं, तो रात आप सो भी न सकेंगे।
मैरिया को सोने में बहुत तकलीफ पड़ेगी। उसकी नींद खत्म हो जाएगी। क्योंकि जिसकी वेव्स दिन भर इतनी ज्यादा रहेंगी, वह रात भर बीत जाएगी, वेव्स कम नहीं होंगी। इसलिए जिस दिन आप चिंतित होते हैं, उस दिन सो नहीं पाते। उसका कोई कारण नहीं, अल्फा वेव्स कारण हैं। इतनी जोर से वेव्स चल रही हैं कि रात जब आप सोते हैं तब वेव्स थकती नहीं और उनकी गति चलती रहती है, कंपन चलता रहता है। इसलिए सो नहीं पाते। परीक्षा देने वाला विद्यार्थी, वह रात नहीं सो पाता। उसकी अल्फा वेव्स जोर से चल रही हैं। तो वह रात भर परीक्षा देता रहता है। सपने में देता रहता है, करवट बदलता रहता है, लेकिन उसकी अल्फा वेव्स जोर से चल रही हैं।
ये वेव्स को अब तो कम भी किया जा सकता है। जिसको आप ट्रेंक्वेलाइजर कहते हैं, वह अल्फा वेव्स को कम करता है और कुछ नहीं है। एक ट्रेंक्वेलाइजर की गोली आप रात में लेते हो, वह अल्फा वेव्स को क्षीण कर देती है, आप सो जाते हैं।
तो ये जो... उपाय तो हैं, उपाय तो सब हैं। लेकिन सभी उपाय सभी पर काम नहीं कर सकते। क्योंकि सभी की कैपेसिटी इतनी है। और अगर एक मस्तिष्क में जितना काम हो रहा है उससे ज्यादा काम करवा लिया जाए तो टूट भी सकता है, नुकसान भी हो सकता है। और, लेकिन फिर भी, हम सब अपने मस्तिष्क से जितना काम लेते हैं, वह बहुत कम है। पंद्रह परसेंट से ज्यादा नहीं है। कोई भी आदमी, बड़े से बड़े आदमी जो पृथ्वी पर पैदा हुए हैं, उन्होंने पंद्रह परसेंट से ज्यादा मस्तिष्क से काम अब तक नहीं लिया। चाहे आइंस्टीन हो, चाहे बुद्ध हो और चाहे कृष्ण हो। पंद्रह परसेंट से ज्यादा कैपेसिटी का अभी तक उपयोग ही नहीं किया। तब भी इतने बड़े लोग पैदा हो सके हैं।
अगर हंडरेड परसेंट कैपेसिटी का उपयोग किया जा सके तो हम तो बिल्कुल सुपरमैन पैदा कर लेंगे। लेकिन शायद अभी आदमी का शरीर भी इस योग्य नहीं कि इससे ज्यादा कैपेसिटी का उपयोग हो, इससे ज्यादा कैपेसिटी का उपयोग हो सकता है उसे तोड़ जाए। अब संभव हो जाएगा, अब संभव हो जाएगा। क्योंकि आदमी के मन को हम बहुत से कामों से मुक्त कर सकते हैं। अभी हम फिजूल काम... उसको याद करवाने पड़ते हैं।
एक बच्चे को हम गणित सिखा रहे हैं; भाषा सिखा रहे हैं; न मालूम क्या- क्या सिखा रहे हैं। उसकी सारी अल्फा वेव्स इन चीजों से भर जाती है। बड़ा काम करने योग्य कुछ बचता नहीं उसके पास। युनिवर्सिटी से निकलते-निकलते, करीब-करीब वह जितना कर सकता था, अपनी वेव्स का उपयोग कर लेता है। फिर इसके बाद युनिवर्सिटी के बाद वह उपयोग करता ही नहीं कभी। अब यह संभव हो सकता है, क्योंकि कंप्यूटर के विकास से यह आसानी हो गई कि अब जो बेकार का काम है वह हम कंप्यूटर से ले लें। तो मस्तिष्क के पास बहुत शक्ति, बहुत विश्राम बचेगा। लेकिन अगर आप, आप उपयोग करना चाहें, तो कुछ विशेष ध्वनियों का उपयोग करके पढ़ने की गति को बढ़ाया जा सकता है। उसमें ओम बहुत सहयोगी है, ओम बहुत सहयोगी है। पर उसकी, उसकी विशेष रिदम और विशेष ढंग और विशेष परिस्थिति है उपयोग करने की।
जैसे कि तिब्बत में एक घंटा बनाया हुआ है उन लोगों ने। वह बड़ा अदभुत है। वह अल्फा वेव्स को बहुत बढ़ाता है। तिब्बतन जो घंटा होता हैः वह बर्तन की तरह गोल होता है, और उसको ऐसा ठोक कर नहीं बजाते, बर्तन के अंदर एक लकड़ी

का डंडा डाल कर ऐसा गोल घुमा के बजाते हैं। वह खास धातुओं से बनाते हैं और खास व्यवस्था से। और जब उसको तीन बार घुमा कर चोट की जाती है, तो ओम मणि पद्मे हुम्, इसकी पूरी आवाज घंटा करता है। इसकी पूरी आवाज घंटा करता है। तो साधक बैठ जाएंगे कमरा बंद करके, और एक व्यक्ति निरंतर एक नियमित गति से ओम मणि पद्मे हुम्, उस घंटे में बजाता रहेगा। वे सारे लोग सिर्फ उसकी ध्वनि को एब्जार्ब करते रहेंगे। उससे उनके अल्फा वेव्स में बहुत अंतर पड़ता है, इसलिए तिब्बतन की जो स्मृति है वह आज पृथ्वी पर किसी की भी नहीं। वह जो, वह स्मृति को बढ़ाने के लिए वे वेव्स बड़े काम की हैं। आप जो मंदिर में घंटा लटकाए हुए हैं वह भी कभी किसी मतलब से लटकाया गया था, लेकिन अब कोई मतलब का नहीं है वह। वह किसी मतलब से लटकाया गया था वहां कि वह दिन भर बजता रहे वहां। कोई भी आए उसे बजाता रहे, तो वह विशेष वेव्स पैदा करता है मंदिर में। और उन वेव्स में जब आप मंदिर में प्रवेश करते हैं तो आपकी अल्फा वेव्स बदल जाती हैं, और कोई कारण नहीं है। वे कोई भगवान सो रहे हैं उनको जगाने के लिए नहीं है घंटा। लेकिन घंटा आपने बजाया, सारा मंदिर एक वेव से भर गया। फिर आप उस वेव में प्रवेश किए तो आपकी, तो आपकी अल्फा में फर्क पड़ता है। पर उसके बजाने का सारा टेक्नीक है, सारी व्यवस्था है। और नहीं तो वह सिर्फ सिर दुखाने वाला है, और कुछ नहीं। तो इसकी मैं आपसे बात करूंगा, उसके कुछ उपाय हैं।

प्रश्नः ओशो, यह ध्यान के लिए संगीत का प्रयोग भी किया जा सकता है न?

किया जा सकता है, लेकिन खतरे भी हैं। अगर ध्यान के लिए संगीत का प्रयोग करें तो संगीत में लीन मत होना, नहीं तो फिर ध्यान में न जाकर बेहोशी में चले जाओगे। प्रयोग किया जा सकता है। संगीत सुनना, लीन मत होना, साक्षी होना। सितार बज रहा है तो साधारण हमारा मन होता है कि लीन हो जाओ, डोलने लगो सितार के साथ। अगर लीन हो गए तो ध्यान के लिए कोई फायदा नहीं होगा। विश्राम मिलेगा, रिलेक्सेशन मिलेगा, लेकिन लीन मत हो जाना। सितार बज रहा है, तुम सिर्फ विटनेस रहना। तुम डोलने मत लगना। तुम सिर्फ साक्षी रहना कि यह बज रहा है। यह ध्वनि आ रही है, तुम देखते रहना। तुम इन ध्वनियों के साथ आइडेंटिफाइड मत हो जाना। एक मत हो जाना। तो फायदा होगा। और अगर लीन हो गए तो नुकसान हो सकता है।
इसलिए मुसलमानों ने संगीत को इसलिए निषेध किया, क्योंकि उसमें लीन होने की संभावना ज्यादा है, बजाय साक्षी होने के। इसलिए उसको निषेध किया कि वह संगीत का उपयोग नहीं करेंगे। नहीं तो बाकी बहुत धर्मों ने संगीत का उपयोग किया, इस्लाम ने इंकार किया। क्योंकि उसमें नब्बे मौके लीन होने के हैं, दस मौके पर ही आदमी जाग सकता है। संगीत सुलाने वाली चीज है, जगाने वाली चीज कम है। लेकिन अगर जाग सको, और ऐसी चीज में जाग सको जो मूलतः सुलाने वाली है तो बड़े परिणाम होंगे। लेकिन वह प्रयोग का ध्यान रखना पड़ेगा। नहीं तो लीन हो जाना आसान होता है।

प्रश्नः ओशो, नैरोलीन को नोबल प्राइज मिला है, नैरो नोबल प्राइज। तो उसके लिए कहते हैं कि जब वह मुरली बजाता है तो आदमी समाधिस्थ हो जाता है।

समाधिस्थ नहीं हो जाता, लीन हो जाता है। क्योंकि नैरोलीन बेचारा खुद अभी समाधि खोजता फिर रहा है। अभी तो वह योगियों के पास जाता है, जिसको, बजाने वाले को अभी समाधि न मिली हो तो उसको सुनने वाले को मिल जाए, जरा मुश्किल मामला है। लेकिन हां, समाधि एक भूल हो जाती है। वह लीनता को समाधि समझ लेता है। तुम लीन हो जाओगे, नैरोलीन बजाएगा तो वह अदभुत बजाने वाला है, अदभुत बजाने वाला है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

अल्फा वेव्ज से संबंध है। अल्फा वेव्ज से संबंध है। अल्फा वेव्ज पर अंतर लाता है, कभी बढ़ा भी सकता है कोई नाम, घटा भी सकता है कोई नाम। तो वह एक-एक व्यक्ति को देखते ही दिया जा सकता है। इसलिए हर नाम हर एक के काम का नहीं है। हर नाम हर एक के काम का नहीं है। क्योंकि हो सकता है आपको, अल्फा वेव्ज कम करना ही आपके लिए उपयोगी हो। तो फिर दूसरी तरह का नाम उपयोग करना पड़े। दूसरे शब्द और ध्वनि उपयोग करनी पड़े। और बढ़ाना उपयोगी हो तो दूसरे उपयोग।
एक विद्यार्थी के लिए और तरह के अल्फा वेव्ज चाहिए, एक वृद्ध आदमी के लिए और तरह के चाहिए। अभी विद्यार्थी को याद करना है, बूढ़े को भूलना है। दोनों के अल्फा वेव्स अलग होने चाहिए। इसलिए नाम बिल्कुल इंडिविजुअल दिया जा सकता है। कोई किताब से पढ़ कर नाम जपने से... उससे तो खतरा ही है। उससे तो ऐसे ही, जैसे किताब पढ़ कर कोई दवाई लेने लगे। दवाई बिल्कुल इंडिविजुअल ट्रीटमेंट है। आपके लिए कोई दवाई होगी उस पूरी किताब में। लेकिन सब दवाइयां आपके लिए नहीं हैं। और कोई दवाई आपके लिए जहर हो सकती है। और इसलिए करीब-करीब ऐसा हो गया... हर आदमी राम-राम जप रहा है। खतरनाक है। किसी के लिए काम का हो सकता है, किसी के लिए खतरे का हो सकता है। किसी के लिए हरेकृष्ण उपयोगी हो सकता है, किसी के लिए बिल्कुल उपयोगी न हो।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

वह एक-एक व्यक्ति के लिए... क्योंकि उसके मस्तिष्क के लिए क्या जरूरी है, यह सवाल है बड़ा। हर चीज जरूरी नहीं है उसके लिए।

प्रश्नः गुरु से ही पता लगेगा।

हां, गुरु कहिए। मैं कहूंगा, एक्सपर्ट...

प्रेम नदी के तीरा
ग्यारहवां प्रवचन

प्रामाणिकता सर्वोपरि है

अंगुलीमाल जो कह रहा है, वह एक क्षण में बदल जाता है। इतनी ताकत का आदमी है। ताकत जो है, उसकी कोई दिशा नहीं है। दिशा हम देते हैं। एक अर्थ में बुरे होने की क्षमता सौभाग्य है। क्योंकि क्षमता तो है। बुरे हुए यह गलती की है। और क्षमता है। और मजे की बात यह है कि बुरा होना हमेशा भले होने से कठिन है। यहां भ्रम तौर से ऐसा नहीं दिखाई पड़ता, लेकिन बुरा होना अच्छे होने से बहुत कठिन है।

प्रश्नः कांशसली बुरा होता है?

कांशसली... बहुत कठिन है और बहुत शक्ति मांगता है। क्योंकि प्राणों की पूरी आकांक्षा तो सदा ऊपर जाने की है, और आप उसे नीचे ले जाते हैं। बड़ी ताकत लगती है। और जद्दोजहद दुनिया से तो है ही, अपने से भी है। बुरा आदमी दोहरी लड़ाई लड़ता है। अच्छा आदमी इकहरी लड़ाई लड़ता है। अच्छा आदमी सिर्फ आस-पास की दुनिया से लड़ता है। बुरा आदमी आस-पास की दुनिया से तो लड़ता ही है, अपने से भी लड़ता है। और अपने से लड़ता है नीचे जाने के लिए... और भीतर तो कोई निरन्तर ऊपर उठना चाहता है। वह, वह जो ऊपर उठने की चाह है, वह कहीं भी पीछा नहीं छोड़ती। अब रह गई बात ताकत की।
इसलिए जो मीडियाकर हैं, जो बीच के हैं, वे हमेशा अभागे हैं। और उनमें कोई बल नहीं है। वे अगर चोरी नहीं करते तो इसका कारण यह नहीं है कि वे चोरी नहीं करना चाहते हैं। उसका सौ में निन्यानबे मौकों पर कारण यह है कि वे इतना बल नहीं जुटा पाते कि चोरी करें। और इसको वे समझते हैं कि कोई गुण है। यह कोई गुण नहीं हुआ। और चूंकि वे चोरी करने का ही बल नहीं जुटा पाते, इसलिए कभी साधु होने का बल तो वे कभी जुटा पाने वाले नहीं। और आप हैरान होंगे, साधु इसीलिए हार रहे हैं दुनिया में कि सब मीडियाकर साधु बन गए हैं। और सब ताकतवर लोग बुरे लोग हैं। इसलिए बुरे लोगों से साधु जीत नहीं पाते हैं। क्योंकि साधुबुरा आदमी नहीं है।
और साधु बिल्कुल बोगस है। वह मीडियाकर है। वह चोरी नहीं कर सकता था।
वह दुकान पर बेईमानी नहीं कर सकता था। इसलिए वह मंदिर में बैठ गया। मंदिर में बैठ जाना कोई पॉजिटिव एक्ट नहीं है उसका। सिर्फ बचाव है। वह बच गया। और इसलिए ही साधु हार जाता है बुरे आदमी से। बुरा आदमी बहुत शक्तिशाली है। इसलिए हिटलर जीत जाते हैं, नेपोलियन जीत जाते हैं। उनकी दुनिया जीतती चली जाती है। और अच्छा आदमी बिल्कुल इंपोटेंट साबित होता है। वह कहता रहता है, कहता रहता है, कोई सुनता नहीं। जब हिटलर और नेपोलियन जैसे ताकत के लोग अच्छे आदमी बनते हैं, तब दुनिया बदलती है। नहीं तो नहीं बदलती। उतनी ताकत चाहिए।

प्रश्नः मगर वह बदलने के लिए भी कोई तो उनके जीवन में कुछ ऐसी हैपनिंग्स हैं?

जरूर हैपनिंग्स हैं। हां, बिल्कुल ही हैपनिंग्स हैं। हां, बिल्कुल हैपनिंग्स हैं। असल में आप अगर बुरे ही होते चले जाएं, तो भी वह मौका आ जाएगा जहां से आप लौट पड़ेंगे। आप जाएं तो कहीं। हर चीज जाकर लौटती है। हर चीज की सीमा है। लेकिन जो सीमा तक नहीं जाते, वे कभी नहीं लौटते।
लेकिन मैं कहता हूं कि अगर एक आदमी शराब पीता हो, तो मैं कहता हूं कि थोड़ा बहुत, बहुत मत पीते रहो। क्योंकि तुम कभी नहीं लौट सकोगे। शराब ही पीनी है तो फिर पी ही डालो, और उस सीमा तक जो कि आखिरी तुम्हें मालूम पड़े।
और निश्चित तुम वापस लौट आओगे। लौटने के लिए वर्तुल पूरा तो होना चाहिए।
हां, कहीं से जाकर, किसी सीमा से जाकर लौट सकते हैं।

प्रश्नः लौटने का वह भी तरीका है एक?

बीच से कभी कोई नहीं लौटता। और बीच से लौटा हुआ, फिर वापस लौट सकता है। क्योंकि बीच से लौटा हमेशा अधूरे से लौटा है। आधा अनुभव उसका बाकी रह गया। बुरा होने का अनुभव भी अगर पूरा हो जाए तो आदमी को अच्छा होने के सिवाय बचता क्या है? आप यह जान कर हैरान होंगे कि हम वही होने को कभी राजी नहीं हैं, जो हम हैं। हम कुछ और होना चाहते हैं। हम निरंतर कुछ और होना चाहते हैं। और अच्छे का मतलब ही एक है।
और मेरी जो परिभाषा है अच्छे और बुरे की--मैं बुरे की परिभाषा उसे कहता हूंः वह स्थिति, जिससे आप कभी राजी न हो सकें। आपको जिस स्थिति से निरंतर हटना ही पड़े। चाहे और बुरे में जाना पड़े। लेकिन जिससे आप राजी न हो सकें। जो सतत आपको भगाती रहे, कहीं और, कहीं और, कहीं और। और अच्छे को कहता हूं मैं वह स्थिति, जहां आप राजी हो सकें, जो भगाए न। और जो कहे यहीं, यहीं, यहीं। तो बुरे के साथ एक डाइनैमिज्म है। इसलिए बुरा कोई चिंतनीय नहीं है। बुरा चिंतनीय तब है, सिर्फ एक स्थिति में बुरा चिंतनीय है कि उसके ऊपर लिबास अच्छे का हो। और सेल्फ-डिसेप्शन शुरू हो जाए। यानी वह खुद ही समझे कि मैं अच्छा हूं, और वह बुरा है। तब खतरा शुरू होता है। नहीं तो कोई खतरा नहीं है। एक बुरे, सीधे निपट बुरे आदमी से कोई हर्जा नहीं है। और यह आदमी वापस लौट आएगा। यह खालिस आदमी है। यह बुरे से राजी नहीं हो सकेगा, वापस आना पड़ेगा। कन्वर्शन होगा।
लेकिन अगर यह ऐसा आदमी है जो है बुरा, और अपने को अच्छा समझता है तो कनवर्शन में बहुत वक्त लग जाएंगे। जन्म भी लग सकते हैं। क्योंकि इसने एक ऐसा धोखा खड़ा कर लिया है जिसमें अपनी स्थिति मुश्किल में पड़ गई। यह है बुरा, जिसे बदलना चाहिए था, और यह मानता है अच्छा। और अच्छा बदलना चाहता नहीं। अब यह डिच में पड़ गया है। जैसा है वह बदलना चाहिए। और जैसा मानता है वह बिना बदले रहना चाहेगा। इसलिए कई बार जो ऊपर से दिखाई पड़ता है कि यह, यह फलां आदमी बुरी स्थिति में है और फलां आदमी अच्छी स्थिति में, अक्सर उलटा होता है।
आत्म-वंचना की स्थिति में जो लोग हैं, वे सबसे बुरी स्थिति में हैं।
जो जानते हैं कि हम बुरे हैं, पहचानते हैं कि हम बुरे हैं, और किसी तरह के धोखे में नहीं हैं--उनकी स्थिति बड़ी अदभुत है। उनका लौटना, आने के करीब है। ये लौट आएंगे। और ये उतनी ही गति से लौटेंगे जितनी गति से गए हैं। इनकी जड़ें जितनी नीचे गई हैं, उतना ऊपर इनका शिखर पहुंच जाने वाला है। अब यह भी मजे की बात है कि जो लोग नीचे कभी भी नहीं गए हैं, एक अर्थ में उनका जीवन अधूरा है। उसमें, जिसको रिचनेस कहें, नहीं है। इसलिए... ।

प्रश्नः ऐसे भी हुआ है, जो बच्चे गुरुकुल में भेजे गए, गुरुकुल से पास होने के बाद ऐसा उलट-फेरा मारा उन्होंने कि जितनी वह शक्तियों में बड़े हुए हों, उनका बिल्कुल ही फ्रीज हो जाए।

अनुभव की... वह सत्य ढंग से अच्छे बन गए आदमी में नहीं होती। हो ही नहीं सकती। जो बुरे के बहुत गहरे अनुभव से गुजरा है, उसी के अनुभवों में रिचनेस होती है। और वही आदमी जो बहुत बुरे से गुजरा है, भले के रस को और स्वाद को भी उपलब्ध होता है। इसलिए जीवन की व्यवस्था इस दृष्टि से बड़ी अर्थपूर्ण है। यहां अंधेरे से भी गुजरना इसीलिए है कि प्रकाश दिखाई पड़ सके। और यहां बुरे से भी गुजरना इसीलिए है कि किसी दिन भले का स्वाद आ सके। और यहां पदार्थ की यह लंबी यात्रा भी इसीलिए कि परमात्मा का अनुभव हो सके। ये दिखाई पड़ने वाली उलटी चीजें, उलटी बिल्कुल नहीं हैं। किसी एक तीसरी इकाई को दोनों तरफ से समृद्ध करती हैं।
जैसे काले पत्ते पर कोई सफेद लकीर से लिखता है। और सफेद पत्ते पर सफेद लकीर से भी लिखे तो हर्ज नहीं है। लिख तो जाएगा, पढ़ा नहीं जा सकेगा। और जो लिखा हुआ पढ़ा न जा सके, उसके लिखे होने का मतलब क्या है? लिखते हैं हम काले पर, और लिखते हैं सफेद से। वह काले पर उभर कर दिखता है। तो इसलिए बुरे का भी

जीवन की व्यवस्था में उतना ही अर्थ और प्रयोजन है, जितना भले का। अशुभ का भी उतना ही महत्वपूर्ण अर्थ और प्रयोजन है, जितना शुभ का। और रावण व्यर्थ नहीं है, निष्प्रयोजन भी नहीं है। और रावण के बिना राम का कोई अर्थ भी नहीं है। और इसलिए जो जानते हैं वे राम का गुणगान न करेंगे और रावण की निंदा न करेंगे।
वे कहेंगेः राम और रावण एक ही कथा के दो हिस्से हैं--जिनके दोनों के बिना कथा होती नहीं, बनती नहीं। और मजा यह है कि राम को जो भी निखार मिल रहा है वह रावण की वजह से।
जैनों की कथाओं में रावण को भविष्य का तीर्थंकर... यह बड़ा महत्वपूर्ण है। यह कथा ब.ड़ी अर्थपूर्ण है--होने वाले भविष्य का तीर्थंकर। क्यों? वह बुरे की अंतिम सीमा तक पहुंच गया है, अब भले का वर्तुल शुरू होगा। फ्यूचर (10 : 25 अस्पष्ट...)। क्योंकि बुरे को जहां तक छुआ जा सकता है, छू लिया गया। अब लौटना शुरू होगा। काला पत्ता तैयार होगा, अब सफेद लकीर लिखी जाएगी। तो इसलिए अगर कोई बहुत गौर से देखे तो कोई राम पहले है; कोई रावण थोड़ी देर बाद फिर राम है। समय का अंतराल है, स्थिति का अंतराल नहीं है। और इस अनंत समय में...
... दीपंकर खूब हंसने लगा है, और पास भिक्षु इकट्ठे हुए हैं। वे पूछने लगे, क्यों हंसते हैं? तभी उस दीपंकर ने... झुका और बुद्ध के चरण छुए। तो बुद्ध तो बहुत घबरा गए। उन्होंने कहा कि यह क्या करते हैं? मैं छूऊं आपके पैर, सो ठीक है। आप मेरे छुएंगे? यह क्या करते हैं? दीपंकर ने कहा कि तुझे समय का पता नहीं, आज मैं बुद्ध हूं, कल तू हो जाए। और जो पूरे समय की धारा को जानते हैं वहां आगे और पीछे का कोई मतलब नहीं है, क्योंकि धारा अनंत है। धारा अगर सीमित हो तो आगे और पीछे होता है कोई। अगर न धारा का यहां कोई छोर है, न वहां कोई छोर है तो कौन है आगे, कौन है पीछे? आज तू अज्ञानी है, कल तू ज्ञानी हो जाएगा। होना ही पड़ेगा। कोई अज्ञानी कभी भी ज्ञानी बने बिना कैसे रुक सकता है?
वह जो अज्ञान की जो यात्रा चल रही है, वह ज्ञान की ही यात्रा का प्राथमिक चरण है। तो बुरे की जो यात्रा चल रही है, वह भले का ही प्राथमिक चरण है। और इसलिए खतरा जो है वह बुरे की यात्रा पर जाने वाले के लिए नहीं है। खतरा जो है वह उन मीडियाकर्स के लिए है जो जाते बुरे की यात्रा पर हैं, जा भी नहीं पाते, क्योंकि हिम्मत नहीं जुटा पाते। जाते बुरे की यात्रा पर हैं, आकांक्षा भले की किए जाते हैं; तब जिच पैदा हो जाती है। जाते बुरे की यात्रा पर हैं, होते बुरे हैं, और मान बैठते हैं भला। तब मुश्किल खड़ी हो जाती है। तब दोहरा रोल हो जाता है। इकहरा रोल बना रहे हैं।
रावण जाने कि रावण होना है। ठीक है, रावण हैं। और जरा भी फिकर न करें राम-वाम की। क्या जरूरत है राम की फिकर होने की? अगर राम निकलने हैं तो रावण होने से ही निकलेंगे। और नहीं निकलने हैं तो बेमानी बात है, कोई होगा राम, तो होगा। उससे मुझे क्या लेना-देना है? मैं जो हो सकता हूं अब, वह मुझे होना है। और अगर इतना बल, और हिम्मत हम हर व्यक्ति को दे सकें, कि जो उसे होना है, वही उसे होना है। कोई की नकल नहीं, कोई की कॉपी नहीं, किसी का अनुकरण नहीं।
बुरा होना है तो बुरा होना है, वह भी ऑथेंटिक। बुरा होने में भी एक ऑथेंटिसिटी है न। भला ही तो ऑथेंटिक नहीं होता, बुरा भी ऑथेंटिक होता है। हां, यह एक अलग ही बात है। बुरा होने की ऑथेंटिसिटी। कि अगर मैं झूठ बोलता हूं तो फिर मैं सच बोलूंगा ही नहीं। ऑथेंटिक झूठ बोलने वाले का मतलब यह होता हैः यह कस्द रहा है कि अब सच मुझसे नहीं होगा। और सच बोलूंगा तो इसको बेईमानी समझूंगा। मतलब, मैं झूठ बोलने वाला हूं।
एक फकीर मुल्ला नसरुद्दीन हुआ। जिस गांव में वह था, उस गांव के सम्राट
को यह खयाल पैदा हुआ कि राज्य में झूठ बोलना बंद करवा दूं। तो मुल्ला को बुलाया क्योंकि वह ज्ञानी था। तो गांव के लोगों ने कहा कि मुल्ला से पहले पूछो। क्योंकि ऐसा कभी सुना नहीं कि झूठ बंद हो गया है। और कानून से कभी झूठ बंद हुआ हो, ऐसा कभी सुना नहीं। और ऐसा कभी जाना नहीं जगत में, कि ऐसा

कोई वक्त आया हो एक क्षण को भी, कि झूठ न रहा हो। फिर भी मुल्ला से पूछो, वह मुल्ला आया।
सम्राट ने कहा मैंने तो तय किया है, कि झूठ को उखाड़ फेंकूं। और साधारण
तय नहीं किया है। झूठ बोला कोई आदमी पकड़ा और मैंने उसको फांसी पर लटकाया, उसी वक्त। कुछ निर्दोष भी मरेंगे, मुझे फिकर नहीं है। लेकिन रोज झूठ बोलने वाले दरवाजे पर लटके हुए मिलेंगे। और कल सुबह से तारीख शुरू होती है नये वर्ष की। कल सुबह ही दरवाजे पर खोज-बीन की जाएगी, कोई झूठ बोलता फंस जाए तो वहीं उसे लटका देना है। तुम क्या कहते हो मुल्ला, इसको रोक दें, झूठ बोलने को?
मुल्ला ने कहाः कल दरवाजे पर मिलेंगे। राजा ने कहाः हम यह पूछते हैं, तुम... उसने कहाः कल दरवाजे पर मिलेंगे। मैं पहला आदमी रहूंगा दरवाजे पर, आप पहले ही मौजूद हो जाएं। दरवाजा खुलेगा और मैं भीतर प्रवेश हो जाऊंगा। पर सम्राट ने कहा कि तुम्हारा मतलब क्या है? उसने कहाः वह दरवाजे पर बात करेंगे। सुबह दरवाजे पर सम्राट खड़ा है। दरवाजा खुला। मुल्ला अंदर घुसा। अपने गधे पर सवार है। सम्राट ने पूछाः मुल्ला, कहां से चले आ रहे हो, कहां जा रहे हो? मुल्ला ने कहाः फांसी पर जा रहा हूं। सम्राट ने कहाः क्या मतलब? मुल्ला ने कहाः फांसी पर लटकने को जा रहा हूं। सम्राट ने कहाः सरासर झूठ बोल रहे हो, फांसी पर लटकवा देंगे। मुल्ला ने कहाः तो लटकवा दो। वही हम कह रहे हैं कि हम फांसी पर लटकने जा रहे हैं। और अगर तुमने लटकाया तो हम जो बोलते थे, वह सच हो जाएगा। और अगर तुमने नहीं लटकाया, तो झूठ बच कर निकला जा रहा है। क्या करते हो? झूठ जाता है। राजा ने कहाः यह तो बड़ी मुश्किल में डाल दिया। तो मुल्ला ने कहा कि छोड़ो तुम यह बकवास। यह तय करना ही मुश्किल है कि क्या सच है और क्या झूठ? तो कौन फैसला करेगा? दूसरा तो तय कर ही नहीं सकता, उस मुल्ला ने कहा। खुद ही आदमी तय कर ले तो काफी है।
और आदमी अगर तय कर ले, और ऑथेंटिक हो, झूठ पर हो जाए तो कोई फिकर नहीं।
और मैं मानता हूं कि उसकी आत्मा पैदा हो जाए अगर झूठ पर भी ऑथेंटिक हो जाए। ऑथेंटिसिटी, प्रामाणिकता लाती है--बल, गति लाती है। और एक आदमी एक दिशा में चला जाए पूरी तरह। तो यह मेरा कहना है, कि बुरे का मतलब यह है कि जिस पर आप ठहर नहीं सकते। ठहर ही नहीं सकते। वह ऐसा है जैसे जलते तवे पर कोई खड़ा हो जाए। वह ठहर ही नहीं सकता बुरे पर। उसे बुरे को तो छोड़ना ही पड़ेगा, छोड़ना ही पड़ेगा। वह और बुरे को पकड़ता जाए और छोड़ता चला जाए। अंततः उसे बुरे को छोड़ना पड़ेगा। और इस बुरे की यात्रा से गुजर कर जिस दिन वह भले की तरफ आना शुरू होगा उस दिन जो इसकी समृद्धि होगी--अनुभव की, वह जो बुरे की रेखा खिंच गई है, उस पर जो सफेद की लिखावट आएगी, वह चमक और है।
और इसलिए वह बोथले साधुओं में कभी नहीं होती। जिन्होंने बुरे को नहीं जाना, और जो किताब पढ़ कर भले हो गए--उनमें कभी कोई चमक नहीं होती। चमक हो ही नहीं सकती। वह चमक बुरे के अनुभव से आती है। वह भले की लिखावट से आती है। लेकिन आती बुरे के अनुभव से है। और यही कठिनाई है कि बेईमान दुनिया में, बुरा आदमी दुनिया में ज्यादा चमकदार, और साधु बिल्कुल बोथले बोगा। क्योंकि साधु मीडियाकर है। जो बुरा करने की हिम्मत नहीं जुटा पाया, वह साधु दिखाई पड़ रहा है। और जो बुरा करने की हिम्मत नहीं जुटा पाया उससे भला तो कुछ हो सकता नहीं, बस वह खड़ा रहता है, लेकिन बुरा नहीं करता। उसकी निगेटिव एक स्थिति है कि वह बुरा नहीं करता, वह चोरी नहीं करता, झूठ नहीं बोलता।
एक फकीर था, गुरजिएफ। तो लोग उसके पास आते, साधु आते, फकीर आते। और उस,
वह पूछता कि तुम करते क्या हो? एक बहुत बड़ा साधु उससे मिलने आया। और वह उससे पूछता है कि तुम करते क्या हो? वह कहता कि मैं झूठ नहीं बोलता। उसने कहा कि मैं समझा कि तुम झूठ नहीं बोलते, लेकिन यह न करना हुआ। यह न करना हुआ। मैं पूछता हूं, तुम करते क्या हो? कहता है कि मैं मांसाहार नहीं करता, मैं हिंसा नहीं करता। उसने कहाः यह न करना हुआ। तो तुम करते क्या हो? वह कहता है, मैं चोरी नहीं करता। किसी को दुख नहीं पहुंचाता। तो गुरजिएफ कहता हैः इस आदमी को बाहर कर दो। यह आदमी कहता हैः हम यह नहीं करते, हम यह नहीं करते।

सवाल यह है ही नहीं कि तुम क्या नहीं करते? क्योंकि न करने से कहीं कोई आत्मा पैदा हुई है? तुम करते क्या हो? इससे तो बेहतर है तुम चोरी करो।
क्योंकि वह करना तो होगा।
गुरजिएफ ने कहाः तू चोरी कर। करना तो होगा। एक्शन तो होगा। उससे बीइंग तो पैदा होगी।

प्रश्नः मगर क्या अच्छा, क्या बुरा? क्या अच्छा, क्या बुरा, क्या इनसान खुद ही जज करेगा?

इसके सिवा कोई और मार्ग नहीं है। और जज करने की कोई बहुत कठिनाई नहीं है। हां, एक तो यह बात कि जिस पर आप ठहर न सकें। और तब वह बच्चों जैसे काम करता रहता है। अब एक बूढ़ा आदमी रुपये इकठ्ठे कर रहा है, इसे बच्चा समझिए। क्योंकि यह काम बच्चे जैसा कर रहा है। यह काम बिल्कुल बच्चों जैसा कर रहा है। यह कर क्या रहा है? इधर मौत सामने खड़ी है और वह आदमी तिजोरी भर रहा है। ताले लगा रहा है। अब यह बिल्कुल बच्चा है। इसकी कोई स्पिरिचुअल एज नहीं है किसी तरह की। यह गुड्डा-गुड्डियों से खेलने वाला है। वह दूसरी तरह के गुड्डे-गुड्डियों से खेल रहा है।
अब छोटे बच्चे हैं, वे गुड्डा-गुड्डियों से खेल रहे हैं। और एक आदमी बड़ा है, और रामचंद्र जी की बारात लिए चला जा रहा है। और गुड्डा-गुड्डी रख कर जुलूस निकाल रहा है, शोरगुल मचा रहा है, यह बच्चा है। इसकी बुद्धि गुड्डा-गुड्डियों से ज्यादा आगे नहीं गई। इसने गुड्डा-गुड्डी दूसरे बनाए हैं। अच्छे नाम रखे हैं, बड़े नाम रखे हैं। इसकी अक्ल बहुत नहीं है। इसकी मेंटल एज नहीं है कोई। और तब कई दफा... इसलिए कोई हम... कई तरह की उम्र हमारे भीतर हैं, कई तरह की उम्र हमारे भीतर हैं। और मेरी तो तलाश, और मेरी तो अपील उस उम्र से है--वह जो भीतर है।
और यह जो आप पूछते थे कि बुरे को पहचानें कैसे? तो दो बातें हैं। एक तो जिस पर आप रुक न सकें हैं, जिस जगह पर कभी भी खड़े न हो सकें, उस जगह को बुरी मानें। यानी मेरा कहना यह है कि जो भला है, जो आनंदपूर्ण है, वहां रुकने का मन होता है। वहां मन होता है कि यहां ठहरें, यहीं ठहर जाएं। वहां मालूम होता है कि विराम है। विश्राम है। वहां मालूम होता है, आ गई जगह। बुरी जगह का मतलब है कि आप वहां पहुंच तो जाते हैं, लेकिन पहुंचते से मन कहता है कि चलो। आगे चलो। एक आदमी दस लाख रुपये इकट्ठे करता है और मन कहता है कि और करो, और करो, और करो। वह करता चला जाता है। और मन कहता है और करो।
एक सूफी फकीर था इजिप्त में, जुन्नून। और सम्राट था इजिप्त का, वह उसके पास कभी-कभी आता था। बहुत दिन से फकीर नहीं आया था राजधानी में तो सम्राट खुद ही बिना खबर किए उसके झोपड़े पर गया। उसकी औरत बैठी है, बगिया में काम कर रही है। फकीर कहीं पीछे काम करने गया है खेत पर। तो उसने सम्राट को आया देख कर उससे कहा कि आप बैठें, मैं उसे बुला लाती हूं। तो वहीं जहां मेंड़ पर, जहां वृक्ष परवह काम कर रही थी, उसने कहाः बैठ जाएं। तो सम्राट कहने लगाः मैं यहां टहलता हूं, तू बुला ला। उसकी औरत ने कहा कि कब तक आप टहलते रहेंगे, देर लगेगी, दूर वह है। चलें आप अंदर झोपड़ी में बैठ जाएं। उसने सोचा शायद मेंड़ पर बैठना सम्राट को ठीक नहीं लग रहा। उसे भीतर ले गई। उसने चटाई डाल दी और कहाः आप इस पर बैठ जाएं। सम्राट फिर वहीं टहलने लगा। उसने कहाः तू बुला ला, मैं यहीं टहलता हूं। औरत को गुस्सा आया, उसने अपने पति को लौटते वक्त रास्ते में कहा कि कैसा आदमी है यह सम्राट? इससे मैंने दो-चार बार कहा बैठ जाओ। वृक्ष के नीचे कहा, वहां नहीं बैठा। अंदर लाई, दरी बिछा दी, वहां नहीं बैठा। कैसा आदमी है? फकीर कहने लगाः तू नहीं जानती, सम्राट सिंहासन से नीचे नहीं बैठेगा। सिंहासन पर बिठाएगी, फौरन बैठ जाएगा। वे जो, जहां बैठने को तूने जो जगह बताई हैं, वहां नहीं बैठेगा। और उस औरत से वह कहने लगाः तू यह भी ध्यान रखना, आदमी का मन भी ऐसा ही है-- सम्राट। जब तक सिंहासन न मिल जाए, नहीं बैठेगा। तुम बताओगी इस पर बैठ जाओ, वह जाएगा, वहां जाकर नहीं बैठेगा। और कुछ चाहिए, और कुछ चाहिए, और कुछ चाहिए।

बुरा मैं उसे कहता हूं, जहां मन कहे कि और आगे। भला मैं उसे कहता हूं
कि जहां मन कहे कि बस यहीं। माइंड की, जो-जो हम कर रहे हैं, जिस चीज का मन कहता है, बस यहां मिल गई मंजिल--यहां। मन कहे, रुको यहां। ऐसे क्षण हैं, जिनमें आप मर जाना चाहें, कहें कि बस। ऐसे क्षण हैं जिनमें आप मर जाना चाहें कि कहें, बस। अब और क्या? जाना, और इतना ऊंचा जाना कि बस यहीं। और ऐसे क्षण हैं, जिनमें आप अनंतकाल तक भागते रहें और ठहरना न चाहें।
तो एक तो मैं पहचान कहता हूं, जहां मन ठहरना न चाहे। जहां मन कहे कि चलो, और पहुंचते ही से कहे कि फिर चलो। दूसरी बात यह है कि आमतौर से कहा जाता है बुरा वह है जो दूसरे को दुख दे। मैं ऐसा नहीं कहता। मैं कहता हूं कि दूसरे के दुख का तो आपको पता ही नहीं चलता। बुरा वह है जो आप को दुख दे। और ऐसा नहीं कि अगले जन्म में दे। इसको मैं बेईमानी का हिसाब कहता हूं। यह अगले जन्म में कैसे हो सकता है। अभी आग में हाथ डालूंगा तो अभी जल जाऊंगा, अगले जन्म में थोड़े ही जलूंगा। बुरा वह है जो अभी इसी वक्त दुख दे। और बुरा बहुत दुख देता है। और भला वह है जो इसी वक्त सुख दे। नगद। आगे नहीं। और भला बहुत सुख देता है। इतना छोटा सा भला कि एक कोई बच्चा रास्ते पर गिर पड़ा और आपने उठा कर उसे किनारे पर ला दिया। अपने आप रास्ते पर चले गए हैं आप। किस ऊंचाई पर पहुंच गए हैं! कैसी छलांग लग गई है!
और एक बीमार है, और आपने एक फूल तोड़ कर उसके हाथ में दे दिया। और आप लौट प.ड़े। आप दूसरे आदमी हैं। जो फूल देने गया था वह नहीं हैं आप। वह दूसरा ही सम्राट लौट रहा है। और एक छोटा सा एक्ट, इसमें कोई मतलब नहीं है। कई बार आप सिर्फ मुस्कुरा दीजिए एक आदमी को देख कर, और आप कुछ और हो गए हैं। और आप जरा जोर से किसी को आंख करके देखें, और एक गाली देकर देखें, और एक चोट करके देखें। और आप पाएंगे कि आप नीचे ऐसे गिर गए हैं जैसे कोई पहाड़ से गिरा दिए गए हों। दूसरे का सवाल ही नहीं है। यह भी हो सकता हैः आप ऐसा बुरा करें, जिससे दूसरे को फायदा हो जाए। लेकिन ऐसा बुरा आप नहीं कर सकते जिससे आपको फायदा हो जाए। तो वह दूसरा बहुत दूर है आपसे, बहुत फासले पर है।
तो दो बातें मैं मानता हूं बुरे की डेफिनिशन में। एक तो जहां आप ठहर न सकें, और मन कहे चलो। बस चलो, आगे चलो। और दूसरा, जहां मन दुख पाए। अगर ये दो बातों की थोड़ी जांच चलती रहे तो बहुत कठिनाई नहीं कि हम पहचान लें कि कहां बुरा है। और इससे ठीक उलटा भला है--जहां मन रुकने का होने लगे कि यहां ठहर जाओ। अब कहां और खोजना है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, मन कहेगा। मन बिल्कुल कहेगा। मन बिल्कुल कहेगाः लेकिन जब तक नहीं मिला, तभी तक। वही मैं दुख की परिभाषा कर रहा हूं। वही बुरे की परिभाषा कर रहा हूं। मन कहेगा कि यहां सुख है, जहां नहीं मिला। जैसे ही मिला और मन कहेगा, मामला खत्म हुआ। आगे चलो। मन कहेगाः यह औरत मिल जाए तो बहुत सुख होगा, लेकिन मिली नहीं है यह औरत, यह मिल जाए। और मिलते ही से मन कहेगाः वह जो पड़ोस में दूसरी औरत है, वह मिल जाए।
बायरन की शादी हुई। बायरन ने कोई सात औरतों से प्रेम किया है और शादी नहीं की। और आखिर एक औरत ने उसको मजबूर कर दिया शादी के लिए। तो उसको शादी करनी पड़ी। पर आदमी बहुत, जिसको मैं ऑथेंटिक बुरा आदमी कहता हूं, उन लोगों में से था। जिसके बुरे होने में भी एक गौरव, मजा, एक शान है। हां एक शान है। अच्छे आदमी होते हैं कई ऐसे बोगस और लीच, कि गोबर-गणेश हैं, उनमें कुछ अच्छा नहीं है। कभी बुरा आदमी इतना शानदार होता है कि उसकी चमक खुशी भर देती है। बायरन उन बढ़िया बुरे लोगों में से था।
वह उस औरत का हाथ पकड़ कर चर्च से नीचे उतर रहा है। घंटियां बज रहीं हैं अभी चर्च की। शादी हुई है। और वह सीढ़ियां उतर रहा है, मेहमान विदा हो रहे हैं। और सड़क पर एक औरत एक आदमी का हाथ पकड़े जा रही है। और बायरन अपनी औरत से बोला, बस। उसकी औरत ने कहाः क्या हुआ? सब खत्म। उसने कहा, मतलब तुम्हारा? वह गाड़ी में आकर औरत को बिठाया, उसने कहाः मैं तुमसे कहता हूं, एक क्षण को तुम नहीं थी, वह औरत सब हो गई। और कल तक मैं सोच रहा था कि तुम मिल जाओगी तो

क्या होगा? कितनी खुशी होगी? और तुम ही हो अभी विदा। अभी चर्च से विदा हो रहा हूं शादी करके। सीढ़ियां नहीं उतरा हूं, अभी घर नहीं पहुंचा हूं। लेकिन तुम मेरी मुट्ठी में हो और बेकार हो गई हो। हाथ तुम्हारा मेरे हाथ में है और बेकार हो गया। अब तुम मेरी हो और बात बेकार हो गई।
यह मेरी बात समझ रहे हैं न? पा लिया, मामला खत्म हो गया।
तो मन जब तक कहेगाः जरूर जब तक नहीं पा लिया कि यह पा लो तो बहुत सुख है। और पाते ही से मन कहेगा कि वहां है सुख। और मन हमेशा कहेगाः जहां आप नहीं हो, वहां है सुख। यही तो मैं कह रहा हूं। यही तो उसकी दौड़ है। और जहां आप पहुंचे, वहीं वह कहेगा कि यहां क्या रखा हुआ है? बेकार आ गए, मेहनत हो गई, और आगे बढ़ो। यहां कुछ भी नहीं था। भूल हो गई, चूक हो गई। लेकिन मन धोखा कभी नहीं देता। यह धोखा नहीं है। यह तो सीधा-साफ मामला है। यह धोखा क्या है? धोखा कुछ नहीं है। मन यह कहता है कि यहां सुख नहीं है। वहां हो सकता है, क्योंकि वहां हम नहीं हैं। वहां चलो तो पता चलेगा।
हां, और अनुभव का मतलब है कि जब आप हजार जगह से गुजर चुके, और आप ने हर जगह पाया कि जहां पहुंचे, पहुंचने के पहले लगा कि सुख है, पहुंचते ही से लगा कि सुख नहीं है; लगा कि दुख है। और जैसे ही पहुंचे कि मन ने कहा कि आगे बढ़ो, कुछ भी नहीं है यहां। मजबूरियां हैं कि आप नहीं बढ़ पाते। तो बहुत दुख होता है। मजबूरियां हैं सिर्फ, जिनसे आप नहीं बढ़ पाते। नहीं तो मन तो रोज बढ़ाए। अभी आप कहते हैं कि आठ तलाक करो। आठ तलाक से काम नहीं चलेगा एक जिंदगी में। एक जिंदगी बहुत बड़ी है। आठ तलाक से काम नहीं चलेगा। अगर तलाक को बिल्कुल ही नियमित कर दो मन के अनुसार, तो रोज भी एक हो सकता है, और वह भी कम वक्त में।
क्योंकि यह सवाल है। सवाल यह नहीं है। सवाल यह नहीं कि कितना? मजबूरियां हैं बहुत तरह की जो, जिनकी वजह से आप रुकते हैं और दुख झेलते हैं। मैं यह कहता हूं, मन जहां से कहता है-- भागो, भागो, और आगे, और आगे। और जहां-जहां पहुंचते हैं, वहीं-वहीं दुख देता है--वहां बुरा है। और जहां मन कहता हैः यहां, वहां नहीं, और देर तो ठीक है। यहां, यहां आनंद है--जहां मैं हूं। अब धोखे की क्या बात है? वहां धोखा हो सकता है, क्योंकि वहां मैं नहीं हूं। जब मैं पहुंचुंगा, तब पता चलेगा। यहां, इस वक्त।
अगर यह हमें साफ होने लगे, डिस्टिंकशन तो इतना बारीक है लेकिन अगर थोड़ा हम प्रयोग करते रहें और दिन के चौबीस घंटे में जांच-पड़ताल थोड़ी सी भीतर जारी रखें, कि यह जो मैंने एक्ट किया है, यह मुझे सुख दिया या दुख दिया। मैंने... यह जो पहुंचा जिस जगह मन की मैं, यहां मैं रुकना चाहता था, कि हट जाना चाहता था, ऐसी एक छोटी परख चलती रहे। तो आपको दो-चार महीने में इतना साफ दिखाई पड़ेगा, इतना साफ कि आप, घटना घटेगी और आप जानते हैं कि बुरी घट रही है कि भली घट रही है। यह अवेयरनेस आ जाए तो जिंदगी बदल जाती है। मैं यह नहीं कहता कि बुरे को छोड़ो। मैं यह कहता ही नहीं। मैं यह नहीं कहताः अच्छे को करो। मैं यह कहता ही नहीं। मैं यह कहता हूं कि तुम सिर्फ पहचानो कि क्या अच्छा है और क्या बुरा? और बुरा छूटने लगेगा। और अच्छा होने लगेगा। वह छोड़ने में क्या है, सवाल नहीं है।
उसकी आत्मा को चलाना बहुत मुश्किल है। रूप तो बचाना बिलकुल आसान है
कि ब्रह्मचारी चोटियां बढ़ाए हुए बैठ जाएं। चद्दर-वद्दर लपेट लें। उसी ढंग से रहें। यह सब हो सकता है। लेकिन आत्मा को बचाना बहुत मुश्किल है। हां, क्योंकि असल में... कालात्मा बदल गई। टाइम-स्केल बदल गया। वह टाइम-स्केल बदल गया। और, और ध्यान रखिए ये चिमन भाई, अगर उस पुरानी आत्मा को बचाना हो, तो रूप को बिल्कुल नहीं बचाया जा सकता। तो ही आप उस आत्मा को बचा सकते हैं। नहीं हो सकती। बिल्कुल नहीं हो सकती है। अगर उस आत्मा को बचाना है तो बिल्कुल ही नये रूप में बच सकती है वह। और मुश्किल यही हो गई कि परंपरावादी जो चित्त है वह पुराने रूप पर, उसका आग्रह भारी है। पूरा आग्रह है।... पूरा का पूरा। कोई मूल्य नहीं है।
कई बार ऐसा होता है कि पुराने रूप को पहचानना तो बिल्कुल सरल है। क्योंकि अंधा भी पहचान सकता है। और इसलिए हम रूप को बचा लेते हैं। और रूप के बचाने में ही आत्मा मर जाएगी। हां... बिल्कुल पूरा हो जाए, क्योंकि रूप

बिल्कुल जड़ चीज है। उसे बचा लेने में कोई कठिनाई नहीं है। बिल्कुल जड़ है।
उसमें कोई कठिनाई नहीं है। मगर जो आत्मा थी वह बहुत लिक्विड है। बहुत तरल है। उसको आप जैसे ठोंक-पीट करके बांधें कि वह गई। उसको हर युग में अपना नया रूप लेना पड़ता है। हर युग में नया रूप लेना पड़ता है।

प्रश्नः नये रूप की तो कोशिश हुई... आदमी ने यह तो मेहनत किया थोड़े ही।
मगर वही पुराना... चौबीस साल में यह हालत कर दिया?

नहीं कुछ नहीं किया। कुछ किया ही नहीं। कुछ नहीं किया। स्वभाव जैसा बनाते हैं, वैसा बन जाता है। मनुष्य-स्वभाव जैसी चीज ही नहीं है। एब्सोल्यूटली नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न, न, न। सब कुछ आता है। लेकिन मनुष्य-स्वभाव जैसा कुछ भी नहीं है। यही
तो फ्रीडम है मनुष्य की। वह जैसा बनाना चाहे, वैसा बना सकता है। और जो हमको दिखता है मनुष्य-स्वभाव, वह मनुष्य-स्वभाव नहीं है। वह लंबे संस्कारों का परिणाम है केवल। इसलिए तो आप दुनिया में पच्चीस तरह के मनुष्य देखते हैं। मनुष्य-स्वभाव जैसी कोई चीज नहीं है।
आप मेरा मतलब समझे न? मेरा मतलब यह हैः जैसे कुत्ते का एक स्वभाव है, बिल्ली का एक स्वभाव है; इस अर्थ में मनुष्य का कोई स्वभाव नहीं है। और यही फर्क पड़ गया है एवोल्यूशन में कि पहली दफा एक ऐसा प्राणी पैदा हुआ है जिसका कोई ठोस स्वभाव नहीं है। और वह जैसा होना चाहे वैसा हो सकता है। जैसे हम, उदाहरण के लिएः किसी कुत्ते को हम यह नहीं कह सकते कि तुम आधे कुत्ते हो। लेकिन एक आदमी को कह सकते हैं कि तुम बिल्कुल अधूरे आदमी हो। आप कुत्ते को क्यों नहीं कह सकते कि आधे कुत्ते हो? सब कुत्ते बराबर कुत्ते हैं। हर कुत्ता पूरा कुत्ता है। कुत्ते होने में कोई रंच भर आप फर्क नहीं कर सकते कि यह कुत्ता कुछ कम कुत्ता है, वह कुत्ता कुछ ज्यादा कुत्ता है--क्यों?
कुत्ते का स्वभाव है फिक्स्ड। उससे कुछ बनाना-वनाना नहीं है। वह बना हुआ पैदा होता है। और आप जो हैं आप बिल्कुल अनबने पैदा होते हैं। और सब आपको बनाना है। यही फ्रीडम है, और यही घबड़ाने वाली है। और इसलिए आप कुछ भी बन सकते हैं। कोई भी रूप ले सकते हैं। और यह रूप भी कभी ऐसा नहीं है कि आप इसको एक क्षण में न तोड़ दें। एक क्षण में तोड़ भी सकते हैं।
इसे अगर गौर से देखें, तो यह जो ह्यूमन फ्रीडम है, यही अदभुत बात है।
और आप ज्योतिष पर काम करते हैं, यह बड़े मजे की बात है। सौ में निन्यानबे मौकों पर ज्योतिष काम करेगा। एक मौके पर काम नहीं करेगा। और जिस मौके पर काम नहीं करता, वहीं आप हो। बाकी मामले में आप मशीन हैं। बाकी मामले में आप मशीन हैं। जहां-जहां ज्योतिष काम करता है, वहां आप हो ही नहीं। आदमी नहीं हो आप। इसका मतलब हुआ कि प्रिडिक्टेबल हो। प्रिडिक्टेबल का मतलब यह है कि आप बंधे हुए हो। कहा जा सकता है कि कल आप यह करोगे।
बुद्ध के जीवन में एक बहुत बढ़िया घटना आती है कि बुद्ध के पैरों में
वे चिह्न हैं जिनको ज्योतिषी कहेंगे, इनको चक्रवर्ती सम्राट होना चाहिए। और वे हो गए भिखारी। सब गड़बड़ हो गया ज्योतिष। वह निकले हैं नदी के किनारे। रेत पर उनके पैर का चिह्न बन गया। गीली रेत है। और एक ज्योतिषी काशी से लौटता है। बारह वर्ष अध्ययन किया है, वह सब कुछ जान कर आ रहा है। उसने रेत पर पड़े हुए पैरों के चिह्न देखे। उसने कहा, यह क्या मामला है? रेत पर नंगे पैर, इस छोटे से गांव के किनारे चक्रवर्ती चलेगा? सब गड़बड़ हो गया, बारह साल मैं पढ़ कर लौटा हूं। ये किताबें सब बांध कर लाया हूं। ये बेकार हो गईं। अगर यह चक्रवर्ती यहां चलता है गांव के पास, नंगे पैर, भरी दोपहरी में। इन किताबों को इसी नदी में फेंक कर घर जाना चाहिए। समझना चाहिए, बारह साल बेकार हो गए। मगर इस आदमी को खोज तो लें, यह आदमी कहां है?

तो वह उन पैरों को खोजता हुआ उस झाड़ के पास पहुंचा जहां बुद्ध बैठे हुए हैं। देख कर मुश्किल में पड़ गया। आदमी तो भिखारी है, लेकिन आदमी चक्रवर्ती है। आदमी का चेहरा तो लगता है वह कोई सम्राट ही है। पर आदमी तो भिखारी है। फटे कपड़े पहने हुए हैं। हाथ में भिक्षा-पात्र रखे हुए हैं। जाकर बुद्ध के पास वह बैठ गया और कहा कि मुझे बिगूचन में डाल दिया। बारह साल मेहनत करके लौटा हूं। ये सब शास्त्र नदी में फेंक दूं। पैरों में चिह्न हैं आपके चक्रवर्ती होने के, और आप भिखारी हैं! भिक्षा-पात्र लिए बैठे हैं!
बुद्ध ने कहा कि तुम्हारा ज्योतिष ठीक कहता है। लेकिन मैं ज्योतिष के बाहर हो गया। मैं आदमी हो गया हूं। अब तुम्हारा काम नहीं बनेगा। अगर मैं कुछ न करता तो मैं चक्रवर्ती हो ही जाता। वह एक धारा थी, अंधी। जिसमें जो हो रहा था वह होता। मैंने कुछ गड़बड़ कर दी। अब तुम्हारा ज्योतिष मुझ पर काम नहीं करेगा। तुम्हारा कोई नक्षत्र मेरे संबंध में कुछ भी नहीं कहेगा। अब मैं बाहर हो गया। अब मैं आदमी हो गया हूं।
मेरा मतलब समझे न? फ्रीडम। अब, अब बुद्ध अनप्रिडिक्टेबल हो गए। अब आप प्रिडिक्ट नहीं कर सकते कि यह आदमी क्या कहेगा? क्या करेगा? यह कल क्या होगा? यह अभी घड़ी भर... क्या होगा, कुछ नहीं कहा जा सकता। हां, यह गणना के बाहर हो गया।
यह जो, हमारी चेष्टा यही होनी चाहिए अंततः कि हम निःस्वभाव में लीन हो जाएं। वहां, जहां कि कोई स्वभाव नहीं है। परिपूर्ण स्वतंत्रता। स्वभाव परतंत्रता है। यानी वह कल हम जैसे थे वैसे ही फिर वही कल होने की मजबूरी। मतलब तो यह होता न कि मेरा स्वभाव है क्रोध करना। अगर मैं यह कहूं तो इसका मतलब यह है कि मैं मजबूर हूं। आज आपने गाली दी थी, मैंने क्रोध किया। कल भी आप गाली दोगे, मैं वैसे ही क्रोध करूंगा। जैसे बटन दबाने से आज पंखा चला, कल भी चलेगा। तो मैं आदमी कहां रहा? इस बात की पॉसिबिलिटी है कि आज आपने गाली दी और मैं क्रोधित हुआ। और कल आप गालियां देने आओ, मैं गले लगा लूं। यह, यह जो मामला है न, इसकी संभावना है। और इसकी जो संभावना है, वह इस बात की सूचना है कि मनुष्य के पास कोई यंत्रवत स्वभाव नहीं है। यही उसकी स्वतंत्रता है। और ऐसी स्थिति बनती चली जाए कि हम प्रतिपल ऐसे जीएं कि पिछले पल और हमारा आने वाला पल बंधा हुआ न हो। यह मुक्त होने का अर्थ, जीवन-मुक्ति का जो अर्थ होगा, जीवन-मुक्ति का जो अर्थ होगाः वह यह कि कल जो बीत गया, उससे मेरा यह क्षण बंधा हुआ नहीं। मैं जो कह रहा हूं, वह एक डिसकंटिन्यूअस मामला है, वह कंटीन्यूटी के बाहर है। वह कंटीन्यूटी जो कल तक थी वह मैं नहीं हूं। और कल मैं जो होऊंगा, वह कुछ और होगा, वह जो आज नहीं है। ऐसी जो चित्त दशा है वहां परम आनंद है। क्योंकि वहां परम स्वतंत्रता है।
और नहीं तो परतंत्रता है। एक आदमी कहता है कि मैं सिगरेट पीने को मजबूर हूं, क्योंकि मेरी आदत है। आदत का मतलब है कि तुम आदमी नहीं हो। आदत का मतलब कि तुम एक मशीन हो। तुम वक्त पर पुकारते हो कि बस बारह बज गए, अब सिगरेट चाहिए। और तुमको सिगरेट डालनी पड़ती है। यह डालना और निकालना और बारह बजे यह रोज होना, यह बिल्कुल मैकेनिकल एक्ट है।
हां, अगर बहुत गौर से देखें, बहुत गौर से देखें तो हम जितने वे लोग भोजन करते हैं, शायद ही कभी हममें से कोई उस वक्त भोजन करता हो जब भूख लगती है। हम सब भोजन करते हैं आदतवश, भूखवश नहीं। और यह बिल्कुल दूसरा मामला है। भूख बिल्कुल दूसरा मामला है। और आदत बिल्कुल दूसरा मामला है। आप, ग्यारह बज गए, रोज ग्यारह बजे भोजन करते हैं। तो ठीक ग्यारह बजे पेट कहता है कि वक्त हो गया, खाना खा। और यह भी हो सकता है, घड़ी किसी ने एक घंटा आगे- पीछे कर दी। और आपको पता नहीं है, अभी दस ही बजे हैं। लेकिन आप हमेशा ग्यारह बजते हैं, आपको फिर भूख लग गई, वक्त हो गया। चल कर खाना खाया। आप मेरा मतलब समझे न? यह बिल्कुल मेंटल एसोसिएशन है ग्यारह बजे का। भूख-वूख नहीं लगी है।
और अगर हम ठीक भूख पर खाएं। क्योंकि जब भूख लगे तब की हम प्रतीक्षा करें। तो खाने में जो स्वाद होगा उसका हमें पता ही नहीं है। क्योंकि

ग्यारह बजे खा लेना सिर्फ भोजन डालना है। क्योंकि शरीर की जिसको जरूरत कहें, वह तो अभी पैदा नहीं हुई। शरीर ने मांगा ही नहीं। अभी मजबूरी में लार भी छोड़ेगा शरीर। मजबूरी में पेट में जगह भी देगा। आप डाल रहे हैं। आप डिब्बे की तरह व्यवहार कर रहे हैं। आप मेरा मतलब समझ रहे हैं न?
और इसीलिए दुनिया में भोजन तो बहुत बढ़ गया है। लेकिन भोजन का अर्थ बिल्कुल खो गया है। मुश्किल से कोई आदमी भोजन कर रहा है। मुश्किल से कोई आदमी भोजन का रस अनुभव कर रहा है। और तब परिणाम यह होता है कि फिर हमें इतर व्यवस्था करनी पड़ती है। क्योंकि खुद भोजन में तो कोई रस नहीं रहा है, इसलिए इतर व्यवस्था करनी पड़ती है। ऐसा भोजन बनाओ जो स्वादिष्ट मालूम पड़े। यह सारा इंतजाम करना पड़ता है। यह सारा इंतजाम सिर्फ उस समाज में बढ़ता है जिस समाज में भोजन आदत बन गई है। नहीं तो इसकी कोई जरूरत नहीं है। और सब ऐसे ही हो गया है।
आप वक्त पर सो जाते हैं रोज। क्योंकि बारह बजे सोना है या दस बजे सोना है। और मैकेनिकल रूटीन है, इसलिए आप सो जाते हैं। चाहे नींद आती हो या न आती हो। और आप वक्त पर उठ जाते हैं, चाहे नींद टूटती हो चाहे न टूटती हो। सभी ऐसा हो गया है। हम आदतें फिक्स कर रहे हैं ऊपर से, बिठा रहे हैं। और तब बड़ी परेशानी होती है।
एक जवान था, वह दस घंटे सोता था; वह बुड्ढा हो गया, अब उसको चार घंटे नींद आती है। लेकिन वह आठ घंटा सोना चाहता है। फिर वह कहता हैः बड़ी मुसीबत हो रही है। सब नींद गड़बड़ हो गई है, नींद नहीं आ रही है।... हां, वह जरूरी नहीं है। मगर वह उसकी आदत तो आठ घंटे सोने की पड़ी है। और अब आठ घंटे सोने की कोशिश में वह चार घंटे सोने का मजा भी खो रहा है। तो आठ घंटे का खयाल आ रहा है। चार घंटे की इंटेंसिटी। वह मुश्किल में पड़ गया है। अब वह परेशानी में रहा है। और यह, यह, यह रोज होता रहेगा। यह रोज होता रहेगा।

प्रेम नदी के तीरा
बारहवां प्रवचन

स्मृति के विसर्जन में चैतन्य का जागरण

... और जब हम पूछते हैं कि संसारी का क्या मार्ग हो? तो असल में हमारा मतलब यह है कि हम संन्यासी नहीं हैं। सामान्य घर-गृहस्थी में हैं। हम क्या करें? यही है न मतलब हमारा। हम कहां हैं? हमारा... खोज ले सकता है। क्योंकि आत्मा प्रति क्षण उपस्थित तो है मेरे भीतर। मैं कहीं बाहर घूम रहा हूं, और भीतर जाने का मार्ग नहीं पाता हूं। निरंतर यह सुनने पर भी कि भीतर जाना है, मेरा सारा घूमना बाहर ही होता है। और भीतर हो जाना, नहीं हो पाता। तो असल में कुल इतना समझ लेना है कि बाहर मैं किन वजहों से घूम रहा हूं? कौन से कारण मुझे बाहर घुमा रहे हैं? अगर वे कारण मेरे हाथ से छूट जाएं तो मैं भीतर पहुंच जाऊंगा। अगर ठीक से समझें तो भीतर पहुंचने के लिए किसी मार्ग की जरूरत नहीं है। जिन मार्गों के कारण हम बाहर घूम रहे हैं, अगर वे भर हम छोड़ दें, उनका कारण भर नकारात्मक हो जाए स्थिति, तो हम पहुंच जाएंगे। जैसे मैं एक डगाल को खींच कर पकड़े हूं वृक्ष की, और अगर कोई मुझसे कहे
कि कैसे यह डगाल अपनी जगह वापस जाए? तो मैं इतना ही कहूंगा कि अगर मैं छोड़ दूं तो यह अपनी जगह वापस पहुंच जाएगी। बाहर आने की वजह से तनाव पड़ा है। अपने में पहुंच जाने में तो कष्ट नहीं है, दिक्कत नहीं है। आत्मा को जब हम पूछते हैं, तो मैं वही तो हूं। मैं स्वयं ही तो आत्मा हूं। तो मुझे अपने तक पहुंचने में तो कोई तकलीफ नहीं। बाहर तक जिन वजहों से, जिन कारणों से, जिन रास्तों से आ गया हूं--उन्हीं रास्तों को समझ लेने की जरूरत है। सबसे बड़ा रास्ता जो मुझे बाहर लाया हुआ है, वह विचार है--विचार। विचार मुझे बाहर लाया हुआ है। अगर निर्विचार हो जाऊं तो भीतर पहुंच जाऊंगा।

प्रश्नः निर्विचार और आलस्य में कुछ फर्क है?

जी?

प्रश्नः निर्विचारपना है, समझो लेटा हआ हूं। कुछ ऐसा विचार नहीं करता हूं, और फिर वह कितनी देर तक... समझो पूरा चौबीस घंटा मैं कर सकता हूं।

न... ।

प्रश्नः... और उसमें कोई फर्क नहीं रह जाता है?

चौबीस घंटे करने की बात नहीं है। अगर दस मिनट भी परिपूर्ण निर्विचार में जा सकते हैं आप, तो चौबीस घंटे धीरे-धीरे आप पाएंगे कि सब काम करते हुए, पड़े रहने की कोई जरूरत नहीं है। सब काम करते हुए, बात करते हुए, बोलते हुए-- भीतर एक शून्य स्थापित बना रहेगा। एक बारगी, थोड़ा सा समय तोड़ कर चौबीस घंटे में से आधा घंटा, पंद्रह मिनट। उस पंद्रह मिनट में प्राथमिक रूप से सब क्रियाएं छोड़ कर शून्य में जाना पड़ता हैपहले-पहले। और जब एक दफा शून्य का अनुभव हो गया, तब तो क्रियाओं के बीच भी शून्य में रहा जा सकता है। चौबीस घंटे पड़ा नहीं रहना है। आधा घंटा जरूर पड़ा रहना है--शुरुआत में।
वह इसलिए कि काम में अगर हम बहुत व्यस्त हैं तो विचार को छोड़ना कठिन होगा शुरू में। विचार छोड़ना ही कठिन हैं। फिर काम में और व्यस्त हैं। और काम के कारण ही हममें विचार चलते हैं तो छोड़ना कठिन होगा। इसलिए शुरुआत में आधा घंटा निष्क्रिय ध्यान करना चाहिए। कोई क्रिया नहीं कर रहे हैं। चुपचाप पड़े हुए हैं। और सिर्फ विचार को शून्य करने का भाव कर रहे हैं। सिर्फ विचार को शून्य में ले जाने का भाव कर रहे हैं।
जब आधा घंटा निष्क्रिय ध्यान आ जाए, निष्क्रिय शून्यता आ जाए, फिर सक्रिय ध्यान करना चाहिए। फिर क्रिया कर रहे हैं और साथ में चित्त शून्य रहे, इसका उपाय भी कर रहे हैं। चल रहे हैं सड़क पर, चल भी रहे हैं और चित्त

शून्य रहे--इसका भी भाव कर रहे हैं। खाना खा रहे हैं, खाना भी खा रहे हैं, और चित्त शून्य रहे--इसका भी भाव कर रहे हैं। फिर धीरे-धीरे वह जो निष्क्रियता में उपलब्ध हुआ, उसका उपयोग सक्रियता में करना होता है। और जब वह सक्रिय रूप से भी पूरा हो जाए तब जानना चाहिए कि वह स्थिर हो गया। जब वह चौबीस घंटे सतत बना रहे--उठते-बैठते, सोते-जागते वह स्थिति बनी रहे, बनी रहे--तब जानना चाहिए कि वह सक्रिय ध्यान उपलब्ध हो गया। और जब सक्रिय ध्यान उपलब्ध हो जाए तो जीवन में अदभुत आनंद का अनुभव होगा।

प्रश्नः आप जो बोलते हो कि जागरूकपना अगर है तो उन दोनों का समन्वय कैसे स्थित करेंगे?

वह सक्रिय ध्यान का ही प्रयोग है जागरूकता। समस्त क्रियाओं के प्रति, चित्त की क्रियाओं के प्रति शून्य में जाने का भी माध्यम जागरूकता ही है। जैसे आधा घंटा आप पड़े रहेंगे तो क्या करेंगे? उस आधे घंटे में आपके चित्त में जो भी विचार चल रहे हैं, उनके प्रति केवल जागरूक होना है। केवल साक्षी होना है, और क्या करिएगा? साक्षी भर हो जाना है। देखते रहना है चुपचाप, वे चलें। लेकिन हमारे देखने में बाधा आती है। हम तल्लीन हो जाते हैं। साक्षी नहीं रह पाते। हम कब उन्हीं विचारों में एक हो गए इसका पता नहीं रहता। यह बोध मिट जाता है, मूर्च्छा आ जाती है।
एक विचार आया मन में, कोई स्मृति आई, हम देखने वाले नहीं रह जाते। उसी विचार और उस प्रवाह के हिस्से हो जाते हैं। यह मूर्च्छा है। और इसके विपरीत जागरूकता है कि हम उसके हिस्से नहीं हो रहे। विचार आ रहा है, हम ऐसे ही देख रहे हैं जैसे कि हम फिल्म पर, हम पर्दे पर फिल्म देखते हैं। हम चुपचाप देख रहे हैं। हम कोई उसके साथ आइडेंटिटी नहीं कर रहे अपनी। अपने को जोड़ नहीं रहे। हम खड़े हैं, और हम देख रहे हैं।
थोड़े दिन के अभ्यास से यह खड़ा होना आसान हो जाएगा। अभी तो एकदम से दिक्कत होती है। क्योंकि क्षण भर हम खड़े रहेंगे, फिर हमको एकदम होश आएगा कि अरे हम तो उसी में ही संलग्न हो गए। तो निरंतर इसका उपयोग करने से, आधा घंटा रोज, कुछ ही दिनों में आधे घंटे में तो स्पष्ट रूप से आप जागरूक रह पाएंगे। और जब आधा घंटा में जागरूक रह पा सकते हैं तो फिर उसका विकसित प्रयोग ही है। धीरे-धीरे क्रियाओं में भी, और संक्रियाओं में भी जागरूकता आ जाए।
गांधी जी के पास शुरू-शुरू विनोबा जी गए थे। तो विनोबा जी में अपनी एक बात है कि वह किसी भी काम को परिपूर्ण कुशलता से करना उनको हर एक बात में अक्सर ध्यान रहता है। जो भी काम करना है, उसकी पूरी कुशलता पानी है। जब उन्होंने चरखा कातना शुरू किया तो उन्होंने इतनी अच्छी पोनी बनाई कि गांधी जी दंग रह गए। और उन्होंने कहा कि इससे अच्छी पोनी बनाने वाला हमारे पास कोई आदमी नहीं है। फिर उन्होंने चर्खे में भी इतने सुधार किए कि गांधी जी दंग रह गए। फिर वह सूत भी इतना महीन कातने लगे कि गांधी जी ने कहा कि यह सूत कातने का आचार्य है। यह सब होने के बावजूद भी जब विनोबा जी ने एक दिन गांधी जी से पूछा कि मैंने सबसे अच्छी व्यवस्था कर ली। चरखा मेरा आपसे बेहतर हो गया है, मेरी पोनी आपसे अच्छी हो गई है, मेरी कातने में कुशलता आ गई है लेकिन मेरा धागा टूट-टूट जाता है। और आपका धागा खराब पोनी में भी नहीं टूटता?
गांधी जी ने कहाः उसका संबंध चरखे से नहीं, उसका संबंध चित्त से है। तुम स्मरण रखना, जब तुम मूर्च्छित हो जाआगे, तभी धागा टूट जाएगा। तुम धागे को चला रहे हो, चित्त कहीं और चला गया, धागा टूट जाएगा। गांधी जी ने कहाः मैं अमूर्च्छित कातता हूं। जब कात रहा हूं तो चित्त में कुछ और विचार ही नहीं है। बस कातने की क्रिया भर के प्रति जागरूकता रह गई है, और कात रहा हूं। न चित्त कुछ सोच रहा है; न विचार कर रहा है; न कोई स्मृति आ रही है; न कोई और भविष्य की कल्पना बन रही है--बस चरखे के उस कतते धागे के अतिरिक्त मेरे चित्त में इस समय कुछ भी नहीं है। सिर्फ धागा कत रहा है, और मैं हूं; धागा नीचे जा रहा है, और मैं हूं; धागा ऊपर जा रहा है, और मैं हूं। मैं केवल

एक देखने वाला मात्र रह गया हूं। और धागे की क्रिया चल रही है। क्रिया है और भीतर जागरूकता है, इसलिए धागा नहीं टूटता। गांधी जी बाद में इसलिए अपने चरखा कातने को प्रार्थना कहने लगे। ध्यान कहने लगे। वह कहने लगे मेरा ध्यान तो चरखा कातने में ही हो जाता है।
अगर बुद्ध या महावीर को समझें तो हम हैरान हो जाएंगे। इनके चौबीस घंटे की क्रियाएं ध्यान में थीं। वे जो भी कर रहे हैं, वे ध्यान में हैं। क्रिया कर रहे हैं। चित्त परिपूर्ण शांत है और जागरूक है। हमारा जीवन इस तरह के ध्यान के बिल्कुल विपरीत है। हम चौबीस घंटे मूर्च्छा की तलाश कर रहे हैं। चौबीस घंटे हम किसी तरह का इनटाक्सिकेंट खोज रहे हैं। चाहे सिनेमा में खोजते हों; चाहे गीत सुनते हों, वहां खोजते हों; चाहे ग्रंथ पढ़ते हों, वहां खोजते हों; चाहे मंदिर में जाकर भजन-कीर्तन करते हों, वहां खोजते हों--हम चौबीस घंटे यह खोज रहे हैं कि किसी तरह मैं अपने को भूल जाऊं। और हम इसी को सुख भी कहते हैं।
जहां-जहां हम अपने को भूल जाते हैं, हम कहते हैंः बड़ा सुख आया। असल में हमें अपना खुद का स्मरण बहुत दुखद है। और हमारा होना, हमारा एक्झिस्टेंस ही दुख है। तो हम उसे पच्चीस वर्षों से खोज रहे हैं, वे रास्ते फिर चाहे कोई भी हों। जहां-जहां हमको थोड़ी देर को तल्लीनता आ जाती है, हम अपने को भूल जाते हैं। वहीं हमको सुख मालूम होता है। ध्यान का मार्ग बिल्कुल विपरीत है। ध्यान का कहना है कि जहां-जहां हमें तल्लीनता है, वहीं-वहीं हम मूर्च्छित हैं। किसी में तल्लीन नहीं होना है। जागरूक--समस्त के प्रति जागरूक होना है।

प्रश्नः अगर जो कार्य करते समय तल्लीन हो?

अगर आप ठीक से समझिएगा, किसी कार्य में अगर आप पूरे तल्लीन हैं, पूरे तल्लीन हैं... । तल्लीनता बिल्कुल दूसरी बात है और जागरूकता बिल्कुल दूसरी बात है। अगर किसी कार्य में आप पूरे तल्लीन हैं तो आप शेष जगत के प्रति एकदम मूर्च्छित हो जाएंगे। एक आदमी के मकान में आग लग गई है और वह भागा चला जा रहा है। कोई उसे रास्ते में नमस्कार करता है उसको दिखाई नहीं पड़ता, उसे सुनाई नहीं पड़ता। असल में वह एक बात में तल्लीन है कि उसके मकान में आग लग गई। वह वहां भागा जा रहा है। अभी उसका चित्त सब जगह अनुपस्थित है, वहीं उपस्थित है।
और जागरूकता बिलकुल दूसरी चीज है। जागरूकता आर्थिक चित्त सब जगह समानरूपेण उपस्थित है। चित्त किसी एक केंद्र्र पर जाग कर सब तरफ नहीं सो गया है। चित्त केवल जाग रहा है, चाहे कोई भी केंद्र हो। तल्लीनता का हम इसलिए मूल्य मानते हैं जीवन में कि हमारी गैर-तल्लीनता कार्य में अकुशलता बन जाती है। जैसे एक आदमी कोई काम कर रहा है और चित्त उसका और कहीं लगा हुआ है। इसको हम कहते हैं, यह तल्लीन नहीं है। असल में यह और कहीं तल्लीन है। अगर हम ठीक से समझें, इसको यह नहीं कहना चाहिए कि यह तल्लीन नहीं है। असल में यह अन्य किसी जगह पर तल्लीन है। तल्लीन तो यह है, यहां तल्लीन नहीं है। इसलिए हम कहते हैं, काम में तल्लीन हो जाओ।
तो एक तो यह आदमी है कि काम कुछ कर रहा है, और तल्लीन कहीं और है। दूसरा आदमी वह है कि जहां जो काम कर रहा है, और वहीं तल्लीन है--वह और शेष जगह अनुपस्थित है। और तीसरा आदमी वह हैः जो केवल जागरूक है और काम कर रहा है। वह तल्लीन कहीं भी नहीं है। ऐसा आदमी जो किसी काम में तल्लीन नहीं है, केवल जागरूक है--स्वयं में तल्लीन होगा। मेरी बात समझ रहे हैं न? अगर वह कहीं भी तल्लीन नहीं है और सिर्फ जागरूक है जगत के प्रति, तो वह स्वयं में तल्लीन होगा। और स्वयं में तल्लीनता आनंद है। पर में तल्लीनता सुख है; और स्वयं में तल्लीनता आनंद है।
पर में तल्लीनता से हम स्वयं को भूल जाते हैं। और समस्त पर के प्रति तल्लीनता टूट जाए, पर के प्रति केवल अवेयरनेस रह जाए, केवल होश मात्र रह जाए तो उस स्थिति में वह जो तल्लीन होने की हमारी क्षमता है--क्षमता हम में जरूर है। वह जो तल्लीन होने की क्षमता है, वह कहीं और में तल्लीन अगर हमने

नहीं होने दिया तो वह क्षमता स्वयं में तल्लीन हो जाएगी। वह व्यक्ति स्वस्थ होगा, वह स्व में स्थित होगा। वह अपने में खड़ा हो जाएगा। वह कहीं और नहीं डूबा हुआ है, वह स्वयं में डूब जाएगा। ऐसा व्यक्ति समस्त कार्य करेगा। क्योंकि वह जागरूक तो है, मूर्च्छित नहीं है। और उसकी क्रियाएं सब कुशल होंगी। क्योंकि वह किसी भी कार्य को परिपूर्ण जागरूकता से करेगा। लेकिन साथ-साथ एक अदभुत बात होगी। वह प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक क्रिया को करते हुए भी अपने से चित नहीं होगा। अपने से डिगेगा नहीं। अपने में खड़ा रहेगा, सुस्थिर होगा। ऐसे व्यक्ति को गीता ने स्थितप्रज्ञ कहा है। जिसकी प्रज्ञा बिल्कुल स्थिर... और यह शब्द बड़ा बढ़िया उन्होंने चुना है। जिसकी प्रज्ञा अपने में बिल्कुल ठहर गई है, जिसका ज्ञान बिल्कुल अपने में ठहर गया।
तो ज्ञान हमारे स्वयं में ठहर जाए, उसके लिए शून्यता का और जागरूकता
का प्रयोग। शून्यता और जागरूकता में बड़े भेद नहीं हैं। जागरूकता प्रक्रिया है, परिणाम शून्यता है। जागरूक होने का हम प्रयोग करेंगे, परिणाम में शून्यता उपलब्ध होगी। पहले वह निष्क्रिय होगी, फिर उसे सक्रिय करना होगा।
और जब वह अखंड चौबीस घंटे हो जाए तो ऐसा आदमी संन्यासी है। वह कहां रहता है, इससे मेरे लिए कोई संबंध नहीं। वह कैसे रहता है, इससे कोई संबंध नहीं।

प्रश्नः इसकी शुरुआत करना आधा घंटा, तो कौन सा टाइम अच्छा है?

बहुत अच्छा है रात्रि को। जब सब शांत हो जाए उस वक्त आधा घंटा बैठ कर प्रयोग कर लें। और अगर नहीं हो तो सुबह अच्छा है, अगर उस वक्त थक जाते हों ज्यादा। दिन भर के काम-काज के बाद और बैठा रहना या उठना, आधा घंटा प्रयोग करना संभव न होता हो तो फिर सुबह जब उठे बिस्तर पर ही बैठ जाएं। उस वक्त आधा घंटा कर लें, या फिर जो आपको ठीक पड़े।

प्रश्नः इसके लिए कोई भी स्थिति अच्छी है? बैठने की या आराम की स्थिति अच्छी है?

नहीं-नहीं, जितने आराम से बैठे हैंउतना। कोई स्थिति की बात नहीं। आराम ही महत्वपूर्ण है। यानी अन्य किसी और चीज को महत्व देने की जरूरत नहीं है। महत्व उसी प्रक्रिया को देने का है जो आपको सुखद मालूम हो। लेट कर सुखद मालूम हो तो लेट कर कर सकते हैं। क्योंकि चाहे आप लेटे हों, चाहे आप बैठे हों, और चाहे आप खड़ें हों--आत्मा एक ही स्थिति में है। आपके लेटने, उठने, बैठने से कोई अंतर नहीं पड़ता। बस वह इतना उपयोग है कि वह आपकी स्थिति शरीर की ऐसी हो कि वह ही एक आचरण का कारण न बने। इतना ध्यान रख कर, और कभी भी उस प्रयोग को करें। थोड़े दिन में ही बहुत अदभुत अनुभव होगा। बहुत अदभुत!

प्रश्नः इनके लिए कोई अध्ययन, कुछ... ?

कोई खास नहीं, कोई खास नहीं।

प्रश्नः... समझो, कोई विचार आया, ऐसी कोई दिक्कत आई, फिर आप हो तो आपको पूछ लूंगा, आप नहीं हो तो कुछ... ?

नहीं उसमें कोई दिक्कत नहीं है। प्रयोग ही न करें वही एक दिक्कत है। मेरे देखने में, जानने में, एक ही दिक्कत है कि हम प्रयोग ही न करें। बाकी कोई दिक्कत नहीं है।

प्रश्न: निर्विचार रहना?

हां, निर्विचार।

प्रश्नः फिर आए विचार, उसे हटा देना?

हटाएंगे कैसे आप? हमको यही कठिनाई है, जो इस जगत में सारे लोगों को दिक्कत है, निर्विचार होना समझ में आ जाता है। पर वह हमको भाव यह लगता है कि निर्विचार का मतलबः हटा देना। हटाइएगा कैसे? हटाना नहीं है, जागरूक होना है। विचार आया उसको देखना, उसके द्रष्टा-मात्र रह जाना। आने दें, हटाने का भाव ही छोड़ें। हटाना भी उसमें उलझ जाना है। न हटाना है, न कुछ... । एक बुद्ध के जीवन में एक उल्लेख है। वह... लगता है पिछली बार उसकी चर्चा की। एक, पूरे एक जंगल से गुजरते थे। उनका एक भिक्षु आनंद उनके साथ था। वह एक वृक्ष ने नीचे रुके। उन्हें प्यास लगी। उन्होंने आनंद को कहा कि तू जाकर पास से पानी ले आ। तो आनंद बोला कि यह मार्ग मेरा परिचित है, आगे एक छोटा सा पहाड़ी नाला है फरलांग-दो फरलांग पर से, उस पर से पानी ले आऊं? और या फिर पीछे तीन मील लौटने से नदी है, जहां से हम होकर आए, उससे पानी ले आऊं? बुद्ध ने कहाः उस नाले से ही पानी ले आओ। वह नाले पर गया लेकिन जब वह नाले पर पहुंचा तो उसके आगे ही अभी पांच-सात बैलगाड़ियां उस नाले से निकल गई थीं। तो वह एकदम गंदा और कचरे से भर गया। और सारे पत्ते दबे हुए, सड़े हुए ऊपर फैल गए थे। छोटा सा नाला था।
वह पानी पीने योग्य नहीं है, ऐसा मान कर वह वापस लौट आया। उसने बुद्ध
को कहा कि वह पानी तो पीने योग्य नहीं, मैं वापस पीछे जाता हूं। बुद्ध ने कहाः इस दुपहरी में पीछे मत जाओ, तुम उसी पानी को ले आओ। बुद्ध की बात भी नहीं टाल सका, फिर वहीं गया। लेकिन वहां उसका फिर साहस नहीं हुआ कि इस पानी को मैं कैसे ले जाऊं। और उनके लिए यह पानी पीने को कैसे दूं? और फिर वापस लौटा। मुश्किल यह थी कि वह उसी रास्ते के बीच में तो वह रुके थे। वह फिर वापस लौटा। उसने कहा क्षमा करें, वह पानी लाने का साहस मेरा नहीं है। बुद्ध ने कहाः तू मान, उसी पानी को ले आ। वह बड़े अचंभे में पड़ गया। वह जानता था कि फिर मुझे वापस लौटना, तो बहुत आग्रह किया। लेकिन बुद्ध ने कहा कि लाना हो तो उसी को ला, अन्यथा मत ला। उसे मजबूर वहीं जाना पड़ा।
वहां जाकर वह देख कर हैरान हुआ। वे पत्ते तो बह गए थे और कचरा नीचे बैठ गया था। वह पानी को भर कर लाया, वह बड़ा हैरान हुआ। उसने जाकर बुद्ध को कहा कि बड़ा अदभुत अनुभव हुआ। वे पत्ते तो सब बह गए, कचरा नीचे बैठ गया और पानी तो बिल्कुल निर्मल हो गया। बुद्ध ने कहाः मन का शांत करने का सूत्र भी यही है। तुम किनारे बैठ जाओ और जो विचार बहते हैं, बहने दो; जो विचार बैठ जाएं, बैठ जाने दो; तुम बिलकुल किनारे बैठे रहो, तुम छेड़-छाड़ मत करो। और अगर तुम किनारे बैठ कर केवल देख सकते तो तुम थोड़ी देर में पाओगे कि सब पत्ते बह गए, और सब कचरा नीचे बैठ गया। और अगर तुम कूद पड़े धारा में उसको शांत करने के लिए, फिर वे शांत होने को नहीं। और दबे हुए उखड़ आएंगे, और पत्ते बैठे हुए उभर आएंगे। शांत होना मुश्किल हो जाएगा।
चित्त के प्रति तटस्थ जागरूक होने का प्रयोग तब सार्थक है, कुछ करना नहीं है। लेकिन हमारे सारे उपदेश सुन-सुन कर हमको ऐसा लगता है कि कुछ करना है। वह "कुछ करना" घातक हो जाता है। कुछ करना नहीं है। वह करने का भ्रम ही हमारा असली भ्रम है। असल में हम केवल द्रष्टा मात्र हैं। इसलिए हम केवल देख सकते हैं। और अगर हम केवल देखने का उपयोग कर लें थोड़ा सा, हम अचानक पाएंगे कि चित्त तो गया, बह गया। पर वह हम हटाने में लग जाते हैं। हटाने में फिर कुछ रास्ता नहीं बनता। हटाने में आप उलझ जाते हैं।
और जितनी आप जोर से हाथ मारते हैं, उतनी जोर से उलझ जाते हैं। और तब फिर आप पच्चीस एक्सप्लेनेशंस खोज लेते हैं--कि अपने पुराने पाप कर्म होंगे, फलां होगा, ढिकां होगा। इससे नहीं हो रहा है अभी कुछ, उदय नहीं है कर्म का इसलिए--ये सब पच्चीस बातें खोज लेते हैं। तो यह सिर्फ उस नासमझी को--जो आप कर रहे हैं, छिपाने के उपाय से ज्यादा नहीं है। यह कोई एक्सप्लेनेशंस माने के नहीं हैं।

नहीं, घड़ी को सुधारना न जानता हो और कोई आदमी सुधारने बैठ जाए और बिगड़ जाए तो सोचने लगे कि पुराने कर्मों का फल है। क्योंकि यह घड़ी तो बिगड़ती चली जाती है। और हम क्या... अभी कर्मों का उदय नहीं कि घड़ी ठीक हो। और कुल बात इतनी है कि वह उस टेक्नीक को नहीं समझ रहा जिससे यह घड़ी ठीक होगी। ध्यान बिल्कुल टेक्नीक की बात है। कुछ करने की बात नहीं, समझ लेने की बात है। देखें थोड़े दिन प्रयोग करके। अधैर्य हमारा, हमारा इतना ज्यादा है कि हम प्रयोग ही नहीं कर पाते, बस यही गड़बड़ हो जाती है।

प्रश्नः मैं आपकी बातें पहली बार सुन रहा हूं।

थोड़ा देखें, बहुत अदभुत होगा। बहुत अदभुत!

प्रश्नः प्राणायाम भी कोई कहता है इसमें कुछ सहायक है?

नहीं, मेरे मानने में तो कुछ सहायक नहीं है। और इसलिए मैं हर एक चीज को इंकार कर देता हूं कि वे सहारे अगर मैं थोड़े से भी कोई कहूं तो आप थोड़े दिन में पाएंगे कि यह तो गौण हो गया। उस सहारे ही की आप फिकर कर रहे हैं और वही काम... कोई सहायक नहीं है। यानी निपट मैं एक छोटी सी बात ही आपकी दृष्टि में रखे रहना चाहता हूंः कोई भी दूसरी चीज को बीच में नहीं आने देना। कोई सहायक नहीं है। और यूं तो फिर जीवन का हर काम सहायक है। खाने-पीने, सोने- उठने, बैठने से लेकर--सब।
प्राणायाम स्वास्थ्य में सहायक होगा। स्वास्थ्य के लिए उपयोगी होगा।
पर वह भी बहुत सोच-समझ कर करने जैसा है, नहीं तो अस्वास्थ्य लाने में भी उपयोगी हो जाता है। जीवन और शरीर के बाबत तो मेरी धारणा यह है कि उसको बहुत सहज, निसर्गतः जीने देना चाहिए। जितना सहज उसको निसर्गतः जीने दें, जितना उसमें कुछ उलटा-सीधा न करें, उतना अच्छा है। प्राणायाम का उतना मूल्य नहीं है, जितना स्वच्छ वायु का शरीर में पहुंच जाने का मूल्य है। वह कभी घंटे भर के लिए खाली स्वच्छ स्थान में बैठ कर धीमे से थोड़ी गहरी श्वास ले लें, तो शरीर को लाभ पहुंचेगा। और श्वास की जो रिदम है, वह मन के शांत करने में सहयोगी हो जाती है।
असल में सब रिदम शांति लाती है। किसी तरह की रिदम हो, किसी तरह की गतिबद्धता हो, वह शांति लाती है। वहां, बर्मा में या कुछ और मुल्कों में तो ध्यान के लिए अनिवार्य मानते हैं श्वास में रिदम पैदा करना। यदि आधे घंटे को बैठ जाएं और श्वास के आने-जाने को देखते रहें। श्वास भीतर गई तो स्मरणपूर्वक भीतर जाने दें, बाहर गई तो स्मरणपूर्वक बाहर जाने दें। फिर भीतर गई तो स्मरणपूर्वक... वह जागरूक का प्रयोग करें। तो उसमें दोहरे फायदे होंगे। श्वास थोड़ी देर में रिदम पकड़ लेगी। रिदम का परिणाम स्वास्थ्य पर अच्छा होगा।
और दूसरा वह जो मैं जागरूकता कह रहा हूं, वह श्वास के माध्यम से जागरूकता विकसित होने लगेगी। और वह जागरूकता जो श्वास के संबंध में विकसित हो गई, उसी जागरूकता का प्रयोग मन के संबंध में, विचार के संबंध में किया जा सकता है। और सच तो यह है कि अगर आप स्वास्थ्य के प्रति भी जागरूक हो जाएं तो भी चित्त में विचार-शून्य हो जाएंगे। श्वास और विचार बंधे हुए हैं। अगर पांच मिनट बैठ कर आप श्वास को देखते रहें, श्वास-प्रश्वास को, आप अचानक पाएंगेः मन शून्य हो गया।
असल में किसी भी चीज के प्रति जागरूकता का प्रयोग करें तो चित्त शून्य हो जाएगा। अगर इस हाथ को यहां से यहां तक ले जाएं, और होश से देखते रहें, और आप पाएंगे कि चित्त शून्य हो गया। अगर आप रास्ते पर चलें और कदम-कदम पर जागरूकता रखें--बायां पैर उठा, और नीचे गया; दायां पैर उठा, और नीचे गया--पूरा होश रखें, तो आप एक पांच मिनट बाद पाएंगे कि आप चल रहे हैं और चित्त शून्य हो गया। जहां भी जागरूकता का प्रयोग कर लें, वहीं चित्त शून्य हो जाता है।

मूर्च्छा चित्त है, और जागरूकता चित्त-शून्यता है। सहयोगी किसी बात
को न मानें। नहीं तो धीरे-धीरे धर्म के जो अदभुत परिणाम हो गए हैं जगत में, वे सहयोगी बातें बताने की वजह से हो गए हैं। और तब धीरे-धीरे ऐसा होता है कि वे सहयोगी बातें हमारे लिए इतनी महत्वपूर्ण हो जाती हैं।
तो मैंने बिलकुल नियमित रूप से उनकी बात करनी बंद कर दी। थोड़ा बहुत सहयोग जरूर मिल सकता है, बाकी मैं उसकी बात बंद किया है। नहीं तो लोग मुझसे पूछते हैं कि आहार कौन सा सहयोगी होगा? कपड़े कौन से सहयोगी होंगे? यह कौन सा... जरूर कुछ सहयोग हो सकता है। लेकिन अगर उनकी बातें इतनी की गई हैं, कि कुछ लोग हैं जो जिंदगी भर आहार ठीक करने में व्यय कर देते हैं। यानी कुछ लोगों ने जिंदगी भर कपड़े कैसे पहनने हैं, इसमें ही व्यय कर देते हैं।
अब जैसे जैन, यहां इन्होंने (अस्पष्ट 25 : 45) अब तक पच्चीस सौ वर्ष आहार ठीक करने में व्यय किए। (अस्पष्ट 25 : 49)ढाई हजार वर्षों का इनका इतिहास आहार-शुद्धि का इतिहास है। उससे आत्मा-वात्मा का कोई संबंध नहीं रहा। वह एक बहुत गौण बिन्दु था जिससे थोड़ा सहयोग मिल सकता था। लेकिन वह इतना ज्यादा आउट ऑफ प्रोपोरशन महत्वपूर्ण हो गया, कि वह किसने बनाया? और कैसे बनाया? और किसने छुआ? और किसने नहीं छुआ? वह इतनी महत्वपूर्ण बात हो गई कि हमारा साधु करीब-करीब अपने जीवन का अधिकतम हिस्सा खाने की शोध में व्यय करता है, आत्मा की शोध में नहीं। वह सारे अनुपात से ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया।
वैसे ही प्राणायाम और दूसरी चीजें भी कुछ संप्रदायों में अतिशय महत्वपूर्ण हो गईं। और तब यह हो गया कि कुछ साधु बेचारे दिन-रात व्यायाम करने में व्यय करते हैं, आत्मा की शोध में नहीं। और हमारा चित्त इतना ज्यादा डिसेप्टिव है, इतना ज्यादा वंचित है कि अगर उसे कोई भी चीज पकड़ा दी जाए तो वह मूल पर जाने की बजाए... तो वह तो जाना नहीं चाहता, मूल पर जाने में उसकी मृत्यु। जो हमारा माइंड है, वह पूरा का पूरा बचना चाहता है कि कहीं ध्यान में न चला जाए। तो कोई भी बचने का अगर उसको थोड़ा सा रास्ता मिल जाए मूल से हटने का, तो तत्काल उसको पकड़ लेता है। और सोचता है पहले इसको पूरा कर लूं, तब तो असली बात करेंगे। अब जब वह यह पूरी कभी होगी नहीं; असली बात होने का कभी प्रश्न नहीं उठेगा।
इसलिए मैंने सख्ती से यह तय किया कि कोई सहयोगी नहीं। बात इतनी ही है करनी। तो इतनी ही बात करनी है। इतना जरूर मेरा अनुभव है कि अगर इसका प्रयोग जारी किया, तो जो-जो चीजें सहयोगी हैं वे धीरे-धीरे अपने आप आती चली जाएंगी। अगर इसका ठीक से प्रयोग किया, थोड़े दिन में आपको पता चलेगा कि श्वास लेने का आपका ढंग बदल गया है; थोड़े दिन में आपको पता चलेगा, आपका सोने का ढंग बदल गया है; थोड़े दिन में आपको पता चलेगा, आपके भोजन का ढंग बदल गया है। यह आपको अचानक पता चलेगा। क्योंकि चित्त जैसे-जैसे शांत होगा, चित्त की अशांति से जो-जो चीजें संबंधित थीं, वे विलीन होने लगेंगी।
जैसे हमारे चित्त की अशांति से हमारा आहार संबंधित है। जितना चित्त अशांत है, उतना मादक, उत्तेजक आहार प्रिय होता है। हम सोचते हैं यह प्रिय होना कोई गलती की बात है। असल में चित्त की अशांति से साथ मादक और उत्तेजक आहार प्रिय होगा। और अगर चित्त को बिना बदले कोई आहार को बदलेगा तो उसे बड़ा त्याग मालूम पड़ेगा कि भारी कष्ट कर रहे हैं, बड़ा त्याग कर रहे हैं। लेकिन अगर चित्त शांत हो जाए, आहार में एकदम परिवर्तन हो जाएगा। अपने से परिवर्तन हो जाएगा।
एक महिला मेरे पास, एक बंगाली महिला अभी आती रही हैं। अविवाहित हैं। मुझे उनकी मां ने आकर बताया कि हमारे बंगालियों में अविवाहित लड़की मांस-मछली छोड़े तो अपशगुन समझते हैं। वह असल में विधवा मांस-मछली छोड़ देती हैइसलिए। तो उन्होंने आकर मुझको कहा कि इसने मांस-मछली खाना छोड़ दिया तो हमको तो बड़ी परेशानी हो गई। समाज में बदनामी होगी। तो आपसे हम प्रार्थना करने आए हैं कि इसको कह दें कि यह खाए। तो मैंने कहा कि मैंने तो कभी उसको रोका नहीं कि वह न खाए। इसलिए मैं कोई कहने वाला नहीं हूं कि वह खाए। वह ध्यान करने आती है, ध्यान का यह परिणाम होगा।

उस लड़की को भी मैंने पूछा कि तुमने यह बंद क्यों किया? उसने कहा कि बंद करने का कोई सवाल नहीं है। मुझे आश्चर्य है कि मैं इतने दिन तक खाया कैसे? जैसे-जैसे मन शांत हुआ है, यह बिल्कुल फिजूल सी बात मालूम होने लगी। इसको कैसे खाऊं, यह सवाल है? इसको खाने नहीं खाने का तो प्रश्न ही नहीं है।
सभी ढेर घटनाएं घटती हैं। जिन लोगों ने ध्यान का थोड़ा सा प्रयोग किया, उनके आचरण में, व्यवहार में, पच्चीसों बातों में अंतर पड़ना शुरू हो गया। हमारी श्वास जो है चित्त की अशांति के कारण, बार-बार गैर-रिदमिक हो जाती है। अनुभव किया होगाः क्रोध में श्वास का रिदम टूट जाएगा। तीव्र कामवासना में श्वास का रिदम टूट जाएगा। किसी भी उत्तेजना में श्वास का रिदम टूट जाएगा। श्वास कंपती हुई, झटके से और लंबी और छोटी चलने लगेगी। उसमें जो गतिबद्धता है, लयबद्धता है वह विलीन हो जाएगी। वह डिसहार्मोनियस हो जाएगी।
तो चौबीस घंटे में हम इतनी बार उत्तेजित होते हैं कि श्वास कई बार डिसहार्मोनियस होकर शरीर को नुकसान पहुंचाती है। उसके प्रतिकार के रूप में प्राणायाम है कि श्वास को हम लयबद्धता दे दें। यानी इस बीमारी के लिए वह प्रतिकार है। लेकिन अगर चित्त शांत हो जाए तो यह बीमारी ही नहीं होती। उसके, उसके प्राणायाम करने का कोई सवाल ही नहीं उठता। बीमार होते हैं इसलिए स्वास्थ्य के लिए औषधि लेनी पड़ती है। और अगर हम स्वस्थ हो जाएं तो औषधि व्यर्थ हो जाती है।
मूल बात को ही पक--ड़ें ध्यान में। और उस पर ही प्रयोग को जारी रखें। धीरे-धीरे जो गौण हैं वे अपने आप दीखने लगेंगे। और सहयोगी हैं वे दिखाई पड़ने लगेंगे। और उनका काम शुरू हो जाएगा। और जो सहयोग-योग पर पहले चिंतन करेगा, वह मूल तक नहीं पहुंच पाएगा। तो मेरी पूरी एम्फेसिस जो है... वह जान कर ही आपको कोई और सहयोग की बात नहीं करता। नहीं तो इतना बड़ा प्रपंच है सहयोग का कि वह उसके धुएं में मूल बात कहां खो जाएगी, पता नहीं।
इतने ग्रंथ हैं। मैं तो हैरान हो गया हूं, जैन-दर्शन पर सैंकड़ों अभी किताबें लिखी गई हैं। उनमें ध्यान पर एक अध्याय भी नहीं है। तो बहुत हैरान हो गया कि वह दर्शन पर और धर्म पर लिखी हुई किताब, उसमें ध्यान पर एक अध्याय भी नहीं है। ऐसी किताब में हमने देखा कि हजार पृष्ठ की किताब है, ध्यान पर दो पन्ने कहीं एक जगह लिखे हुए। बाकी ये सब सहायक हैं। जिनसे, जिनका इतना विस्तार हो गया है, जिन पर इतना ज्यादा वाद-विवाद, इतना उपद्रव है, और वह एक मौलिक बात गौण हो गई।

प्रश्न: तपश्चर्या कितनी सहयोगी होगी ध्यान करने में...

ध्यान ही तपश्चर्या है। आज मैं सुबह या कल रात चर्चा भी किया। तपश्चर्या का हमको जो अर्थ पकड़ गया है, हमको मोटे अर्थ बहुत जल्दी पकड़ जाते हैं। जैसे अभी मैं वहां गया, तो वहां इस पर बात हो रही थी। महावीर के उपवास, महावीर की तपश्चर्या, महावीर ने साढ़े बारह वर्ष तक तपश्चर्या की। हमको लगता है तपश्चर्या की, और मुझको लगता है तपश्चर्या हुई। और "की" और "हुई" में मैं बहुत फर्क कर लेता हूं।
एक साधु मेरे पास थे। वह मुझसे कहे कि मैं बड़े उपवास करता हूं। मैंने कहाः जब तक तुम उपवास करते हो तब तक वह तपश्चर्या नहीं है। जब उपवास हो तब वह तपश्चर्या है। तो वह बोलेः उपवास कैसे होगा? हम नहीं करेंगे तो होगा कैसे? हम करेंगे तभी तो होगा? मैंने उनसे कहा कि तुम ध्यान का थोड़ा प्रयोग करो, तुम अचानक कभी-कभी पाओगे कि उपवास हो गया। फिर बाद में छह महीने बाद वे मेरे पास आए। हिंदू साधु थे, और उन्होंने कहा कि जिंदगी में पहली दफा एक उपवास हुआ।
मैं सुबह पांच बजे उठ कर ध्यान करने बैठा, उस वक्त अंधेरा था। जब मैंने वापस आंख खोली तो मैं समझा, अभी सुबह नहीं हुई क्या? पूछने पर पता चला, रात हो गई थी। पूरा दिन बीत गया, मुझे न तो समय का पता है, न किसी और बात का। उस दिन भोजन नहीं हुआ। उन्होंने मुझे आकर कहाः एक उपवास मेरा हुआ।

इसको तो मैं उपवास कहता हूं। और हम जो करते हैं, वह अनाहार है। वह उपवास नहीं है। वह भोजन न करना है। यह उपवास है। उपवास शब्द का भी अर्थ हैः उसके निकट वास। वह आत्मा के निकट वास है। उस वास में भोजन का स्मरण नहीं आएगा। तो वह तो हुआ उपवास। और एक है अनाहार, कि हम खाना न खाएं, उसमें भोजन-भोजन का ही स्मरण आएगा। वह तपश्चर्या की हुई हुई, वह तपश्चर्या अपने से हुई।
महावीर ने तपश्चर्या की है, इस... बात ही भ्रांत है। या कोई कभी तपश्चर्या करता है? सिर्फ अज्ञानी तपश्चर्या करते हैं। ज्ञानियों से तपश्चर्या होती है। होने का अर्थ यह है कि उनका जीवन, उनकी पूरी चेतना कहीं ऐसी जगह लगी है, जहां बहुत सी बातों का हमें खयाल आता है, वह उन्हें नहीं आता। हम सोचते हैं कि वह त्याग कर रहे हैं। और उनके तईं बात यह है कि उनको स्मरण भी नहीं आ रहा। हम सोचते हैं कि उन्होंने बड़ी बहुमूल्य चीजें छोड़ दीं। हम सोचते हैं उन्होंने बड़ा कष्ट सहा। और वह हमारे मूल्यांकन में भेद है। असल में वैल्युएशन हमारे और उनके अलग हैं।
जिस चीज को महावीर सार्थक समझते हैं, हम उसे व्यर्थ समझते हैं। जिसको
वे व्यर्थ समझते हैं, हम सार्थक समझते हैं। तो जब हम उनको, हमारी दृष्टि से सार्थक को छोड़ते देखते हैं तो हम सोचते हैं कितना कष्ट झेल रहे हैं, कितनी तपश्चर्या कर रहे हैं? और उनकी तईं स्थिति बिल्कुल दूसरी; जो व्यर्थ है, वह छूटता चला जा रहा है।
महावीर ने घर छोड़ा। हां वह बिलकुल सहज छूट रहा है। तपश्चर्या करनी नहीं है, केवल ज्ञान को जगाना है। जो-जो व्यर्थ है वह छूटता चला जाएगा। दूसरों को दिखेगा कि आप तपश्चर्या कर रहे हैं। और आपको दिखेगा कि आप निरंतर ज्यादा आनंद को उपलब्ध को होते चले जा रहे हैं। दूसरों को दिखेगा, बड़ा कष्ट सह रहे हैं। और आपको दिखेगा कि हम तो बड़े आनंद को उपलब्ध होते चले जा रहे हैं। धीरे-धीरे आपको दिखेगा कि मैं तो आनंद को उपलब्ध हो रहा हूं। दूसरे लोग कष्ट भोग रहे हैं। और दूसरों को यह दिखेगा कि आप कष्ट उठा रहे हैं। और वे आपके पैर छूने आएंगे और नमस्कार करने कि आप बड़ा भारी काम कर रहे हैं।
तपश्चर्या दूसरों को दीखती है, स्वयं को केवल आनंद है। और अगर स्वयं
को तपश्चर्या दिखती है तो अज्ञान है, और कुछ नहीं। वह पागलपन कर रहा है। अगर उसको स्वयं को भी दिखता है कि मैं बड़ा तप कर रहा हूं, बड़ी तपश्चर्या, बड़ी कठिनाई--तो वह बिल्कुल पागल है। वह नाहक परेशान हो रहा है। और उससे केवल उसका दंभ विकसित होगा। आत्मज्ञान उपलब्ध नहीं होगा।
जो तपश्चर्या करता हैः वह दंभी है, वह अहंकारी है। और वह अहंकार का पोषण करता है, जब वह सुनता है कि उसने तीस उपवास किए। और चारों तरफ लोग फूल-मालाएं लिए खड़े हैं। तो जो सुख मिल रहा है--वह इन फूल-मालाओं का, और इन लोगों के आदर का, और सम्मान का है। तपस्वी कहलाने का है। और जिसमें सचमुच तपश्चर्या हुई हो, उसे पता भी नहीं पड़ता कि उसने कुछ किया है। अगर आप उसका सम्मान करने जाएं तो उसे सिर्फ हैरानी भर होती है कि आपको क्या हो गया है? उसे तपश्चर्या का बोध नहीं होता।
तो मेरी दृष्टि में तो एक ही तपश्चर्या है, और वह तपश्चर्या यह है कि जागरूकता को पैदा करें। मूर्च्छा को तोड़ें। चित्त की विकार-विकल्प की स्थिति को विसर्जित करें। निर्विकार, निर्विकल्प समाधि को उत्पन्न करें। और उसके परिणाम में जो-जो परिवर्तन होंगे, वे दूसरों को दिखाई पड़ेंगे कि तपश्चर्या हो रही है।
अब जैसे महावीर का उल्लेख। महावीर को लोगों ने मारा, ठोंका, पीटा। उनको कष्ट दिए। हमको लगता हैः यह आदमी कितना सहा! कितना तपस्वी था! लोग मार रहे हैं, और वे सह रहे हैं--हमको ऐसा लगता है। क्योंकि असल में महावीर की जगह हम अपने को रख कर सोचते हैं। अगर लोग हमको मार रहे हैं, और हमको उन्हें न मारना पड़े तो कितना कष्ट होगा? कितनी तपश्चर्या होगी? और जहां तक महावीर का संबंध है, उन्हें केवल यह हैरानी हो रही होगी कि इन बेचारों को कैसी पीड़ा है कि यह मारने पर उतारू हो गए हैं।

एक साधु थे उत्तर प्रदेश में। उनको अनेक लोग मानते थे। बड़े-बड़े राजा- महाराजा उनकी सेवा में जाते थे। किसी राजा ने बहुत से स्वर्ण-पात्र उनको भेंट कर दिए। देवहरवा बाबा उनका नाम था। पूरा का पूरा एक बड़ा बोरा भर कर भेज दिए। तो वहां तो झोपड़े में सांकल भी लगाने को नहीं थी। तो रात को एक चोर उसको उठा कर... । तो देवहरवा बाबा नंगे पड़े रहते थे उस झोपड़े में। उन्होंने अंधेरे में देखा कि कोई उठाने आया है, तो उनको आंसू आ गए। कि बेचारा इतनी रात आया, जरूर तकलीफ में होगा। वह पहली बात उनको जो खयाल में आई, इतनी रात आया! अरे दिन में ही आ जाता। जरूर ज्यादा तकलीफ में है। नहीं तो कौन इतनी रात, ठंडी रात, और इधर आना! इतनी परेशानी, इस पहाड़ी नाले को पार करना, पहाड़ी में आना। अंधेरे में डर भी लगा होगा। रास्ते में दिक्कत भी हो सकती है। और यह बेचारा आया, जरूर तकलीफ में है।
वह बोरा था वजनी, और वह आदमी था कमजोर। तो वह उसको उठाता था, वह पूरा उठता नहीं था। मोह था धन में, उसमें से कुछ छोड़ सकता नहीं था। तो उनको भारी कष्ट होने लगा कि ये बेचारा है कमजोर, और बोरा है वजनी। उस राजा को मैं पहले ही कहा था कि थोड़े ही भेंट कर, इतने क्या करेगा? आज अगर उसने थोड़े ही भेंट किए होते तो यह उसे बड़ी आसानी से ले जाता। और इस मूरख को यह भी पता नहीं कि अपनी ताकत से ज्यादा काम नहीं करना। दुबारा आ जाना। इतनी भी क्या जल्दी है? उन यह, उनको यह भी लगा कि इसको मैं उठ कर सहारा दे दूं। मगर कहीं यह चौंक न जाए, कहीं भाग न जाए, यह भी एक दिक्कत थी। और किसी के काम में अपने को बाधा नहीं बनना चाहिए, यह भी खयाल था। फिर भी जब उनसे नहीं सहा गया तो वह उठे, वह उसको पीछे से उठा रहा था ऊपर, तो उन्होंने उसको हाथ लगाया। उसको दरवाजे के बाहर तक पहुंचाया। बाहर जाकर कहा कि भैया, इससे आगे मैं नहीं जा सकता। अब तू ले जा। लेकिन एक बात भर स्मरण रख--तो वह तो बोरा गिर पड़ा घबराहट में, जब उसने इनकी आवाज सुनी। वह तो हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। इन्होंने उससे कहाः एक बात भर स्मरण रख, हमेशा अपनी ताकत के हिसाब से काम करना। समझे न? बोरा बड़ा है और ताकत तेरी कम है। थोड़ा दूध-मलाई खा, थोड़ा ताकतवर बन। तब बड़े, तब बड़े बोरे उठाया करना। अभी छोटे बोरे, अभी छोटे बोरे ही उठाना ठीक है। वह तो पैर पर गिर पड़ा। वह तो बोरा चोरी नहीं गया। वह तो उनका भक्त हो गया। लेकिन वह घटना बड़ी महत्वपूर्ण है। उस आदमी को कैसे दिखेगा? उसका मूल्यांकन भिन्न है।
जिन लोगों ने महावीर को जाकर मारा होगा, उनको क्या दीखा होगा? उनको दीखा होगा, ये बड़े उद्विग्न हैं, बड़े परेशान हैं। नहीं तो मुझे काहे को मारने आते? परेशानी है इनके भीतर कुछ, जो इनके मारने में प्रकट हो रही है। सिर्फ इस वजह से दया और करुणा भर आई होगी। इस वजह से कोई, कोई और दूसरा प्रश्न नहीं उठता है। हमको लगता है, उन्होंने बड़ा कष्ट सहा। उनको लगा होगा कि यह जो मारने आया है, बड़े कष्ट में है।
तप का, और कष्ट का, और पीड़ा का, और सहने का--ये सारे शब्द गलत हैं। मनुष्य को जो आनंदपूर्ण है उसके अनुसार व्यवहार करता है। हमको जो आनंदपूर्ण है हम उसको मान कर व्यवहार करते हैं। उनको जो आनंदपूर्ण है, वे उसको मान कर व्यवहार करते हैं। और दोनों के आनंद की दृष्टि में जमीन-आसमान का अंतर है। इसलिए जो हमको तप है, वह उनको आनंद है; और जो हमको आनंद है, वह उनके लिए अज्ञान है। वह हम पर दया से भरे हुए हैं कि हम मूर्ख हैं। हम किन चीजों में अपने समय को खो रहे हैं। और हम उनके ऊपर श्रद्धा से भरे हुए हैं कि कितने महान हैं कि बड़ा, बड़ा त्याग कर रहे हैं!

प्रश्नः... वह जो समझता है कि मैं बराबर अच्छा करता हूं... तपश्चर्या करता है?

वह भी अगर थोड़ी सी समझ का उपयोग करे तो उसे दिखाई पड़ेगा कि तपश्चर्या
से अहंकार मजबूत हो रहा है, उससे अज्ञान उत्पन्न हो रहा है। इसमें देर न लगेगी। और उसके समस्त व्यवहार में वह दिख जाएगा। साधु जितने अहंकारी हैं इस जगत में, मुश्किल से एकाध प्रतिशत को छोड़ कर जो वस्तुतः साधु हैं, उतना दूसरा आदमी नहीं मिलेगा। वह आस-पास के लोगों को भी दीखता है। उनको भी

दीखता है जो वहां मौजूद हैं। लेकिन पच्चीस व्याख्याएं करके उसको समझा लेते हैं।
मैं अभी एक, इलाहाबाद में बड़ा यज्ञ था, वहां गया। वहां उन्होंने सारे संप्रदायों के साधुओं को बुलाया हुआ था। उन्होंने इतना बड़ा मंच बनाया कि उस पर सौ साधु इकट्ठे बैठ सकें। उसने लाख चेष्टा की, हाथ-पैर जोड़े कि सारे साधु एक दफा बैठ जाएं मंच पर। दो साधु एक साथ बैठने को राजी नहीं हुए। क्योंकि कोई किसी से नीचे नहीं बैठ सकता। दो शंकराचार्य मौजूद थे। लेकिन दोनों बैठने को राजी नहीं हुए। क्योंकि दोनों का सिंहासन एक दूसरे से ऊंचा होना चाहिए। आखिर उस सौ आदमियों के मंच पर, सौ बोलने वालों के मंच पर एक-एक आदमी को भाषण करवाना पड़ा। बाकी लोग सुन भी नहीं सके बैठ कर, कि वह अपने शिविर में... बोला आदमी, अपने शिविर चला गया। दूसरा साधु बोला, उसे उसके शिविर में पहुंचा दिया। कोई दो साधु मंच पर इकट्ठे होकर नहीं बैठ सके। तो हैरानी होगी कि मामला क्या है?
अभी पूरे मुल्क में यह दिक्कत है, दो साधु मिल जाएं तो कौन किसको पहले नमस्कार करे--यह दिक्कत है। इसलिए दो साधु मिलना नहीं चाहते कि पहले कौन किसको नमस्कार करे? दो साधु इसलिए भी नहीं मिलना चाहते कि कौन किससे मिलने जाए? आप उनसे मिलने गए थे, या वे आपसे मिलने आए थे? यह बड़ा महत्वपूर्ण है। हमें दीखता नहीं। अन्यथा जो तथाकथित साधु है, इस तरह के कामों में लगा हुआ है। वह इतने दंभ का पोषण करता है जिसका कोई हिसाब नहीं।

प्रश्नः (ध्वनि-मुद्रण अस्पष्ट)

यह सब बहुत महत्वपूर्ण नहीं है विचार करने के लिए। यह बहुत महत्वपूर्ण नहीं है कि यह कैसे आया और क्या हुआ? महत्वपूर्ण यह जानना है कि यह कैसे आ सकता है। दो ही बातें महत्वपूर्ण हैंः एक तो हम मौजूद हैं, और दुख से भरे हैं। अज्ञान से भरे हैं। एक बात तो यह विचारणीय है कि हम दुख से और अज्ञान से भरे हैं। कितने जन्मों से हैं आए या नहीं, ये सब तो हाइपोथेसिस हैं। ये तो हमारी मान्यताएं हैं। इनमें पच्चीस ढंग की मान्यताएं हैं। कोई मानता होगा कि नहीं आए; कोई मानता है पहला ही जन्म है; कोई मानता है पचास जन्म हैं, इनसे कोई लेना-देना नहीं है। महत्वपूर्ण मुद्दे के तथ्य इतने हैं जिनमें कि हमें कुछ सोचना नहीं पड़ेगा--जो कि मौजूद हैं। जिनमें हमें कोई चीज परिकल्पना नहीं करनी पड़ेगी--जो कि वर्तमान है।
वर्तमान इतनी बात है कि मैं और आप मौजूद हैं, और दुख से भरे हैं। और जिस स्थिति में हैं, उससे तृप्त नहीं हैं। यह एक तथ्य ऐसा है जैसा किसी धार्मिक को विभिन्न सोचने की जरूरत नहीं है। यह वास्तविक तथ्य है। बाकी तो फिर ठीक है, विस्तार है सोचने का। यह वास्तविक तथ्य है कि मैं दुख से भरा हुआ हूं। यह भी वास्तविक तथ्य है कि इस दुख से मैं सहमत नहीं हूं। इसके ऊपर उठना चाहता हूं। तब एक ही बात खोजने की रह जाती है। ऊपर उठना कैसे हो सकता है? बाकी बातें गौण हैं। और बाकी बातों का बहुत मूल्य नहीं है। क्योंकि आप क्या करिएगा सोच कर भी? इससे क्या फर्क पड़ता है? ये थोड़ी सी बातें महत्वपूर्ण हैं। यानी हमारे बहुत चिंतन में से हमको उतनी थोड़ी सी बातें पकड़ लेनी चाहिए जो कि वस्तुतः महत्वपूर्ण हैं।

प्रश्नः... सत्य को कोई पकड़ भी ले, न भी पकड़े; कोई छः महीने के बाद पकड़ सकता है; कोई अभी शुरुआत कर सकता है; कोई कल कर सकता है तो उसकी शुरुआत कल से हो जाएगी। किसी की नहीं भी होगी, उसका क्या?

उस... सवाल... किसी की छह महीने बाद होगी, किसी की साल भर बाद होगी। यह संसार, आप नहीं रहेंगे, मैं नहीं रहूंगा, तब भी रहेगा। तब भी किसी की शुरुआतें होती रहेंगी, और नहीं होती रहेंगी। लेकिन मैं इसकी चिंता करके क्या करूंगा? मेरे किस उपयोग की होगी यह चिंता कि कौन छह महीने पीछे? कौन छह महीने बाद? कौन हजार साल पहले, कौन हजार साल बाद? मेरे किस उपयोग की

होगी? कहीं ऐसा तो नहीं है कि यह मैं शुरू न करूं इसके लिए कोई उपाय और कोई बहाना खोज रहा हूं। न... पर बड़ा रहस्य यह है कि हम बहुत अच्छी बातों के पीछे भी हो सकता है कि बहाने खोज लेते हों। जैसे मैं आज शुरू न करूं तो मैं सोचूंगा, अभी उदय में नहीं आया है। जब उदय में आएगा तभी तो होगा। अब मेरे बस में क्या है? अभी तो उदय में नहीं होगा, जिसके उदय में है वह अभी करेगा। जिसके उदय में छह महीने बाद, वह छह महीने बाद करेगा। कहीं यह उदय की धारणा केवल अपने न करने की स्थिति को छिपाने का उपाय न हो।

प्रश्नः (ध्वनि-मुद्रण अस्पष्ट)

हां, हमारी सामर्थ्य करने की। हम कर सकते हैं। अगर हम न कर सकते होते
तो हममें यह आकांक्षा ही नहीं हो सकती थी कि हम शांत हो जाएं। यह आकांक्षा कि शांत होना चाहिए, इस पुरुषार्थ के छिपे हुए रूप की सूचना है कि हम हो सकते हैं। यह आकांक्षा कि आनंद मिलना चाहिए, उस सूक्त पुरुषार्थ की सूचना है कि आनंद मिल सकता है। नहीं तो यह प्यास नहीं हो सकती थी। यह आकांक्षा नहीं हो सकती थी। यह भीतर हमारे जो, निरंतर चाहे हम कुछ भी करें; चाहे हम करें, और चाहे हम न करें; हमारे भीतर जरूर एक केंद्र पर यह आकांक्षा बनी ही है। न, वह आकांक्षा सूचना है किसी सोए हुए पुरुषार्थ की। और अगर हम चेष्टा करें तो वह पुरुषार्थ जाग सकता है, और यह आकांक्षा प्राप्ति में परिणित हो सकती है। वह हममें कहीं सोया हुआ है। और उस सोए हुए को जगाने के बहुत उपाय हैं। धार्मिक लोगों ने किए हैं, लेकिन हम हर तरकीब को गलत कर देते हैं।
एक कथा है। बुद्ध शुरू-शुरू में, जब ज्ञान को उपलब्ध हुए तो वह काशी आए। वह काशी के बाहर एक वृक्ष के नीचे ठहरे थे। अकेले थे। उस वक्त कोई भीड़ न थी, कोई संग न था। कोई जानने वाला न था। अभी उन्होंने किसी को उपदेश भी नहीं दिया था। लेकिन ज्ञान उन्हें उपलब्ध हुआ था। और उसका प्रकीर्ण प्रकाश उनसे दिखाई भी पड़ने लगा था। अनुभव लोगों को होने लगा था, कुछ हुआ है। काशी का नरेश संध्या को अपने रथ को लेकर नगर के बाहर निकला था। बहुत चिंतित था। कई भार थे उस पर राज्य के। तो वह सांझ को भ्रमण पर निकला था। सारथी से उसने बीच में एकदम रोक कर कहा कि रोक दो! यह कौन मनुष्य इस वृक्ष के नीचे लेटा हुआ है? बुद्ध, सांझ को सूरज डूबता था, एक वृक्ष से टिके बैठे हुए थे। उसने कहाः रोक दो, यह कौन मनुष्य इस वृक्ष के नीचे लेटा हुआ है? इतना आनंदमय, इतना शांत। और इसके पास कुछ दिखाई भी नहीं पड़ता। थोड़ी देर मैं इससे मिलूं। वह उतर कर बुद्ध के पास गया और उसने कहाः तुम्हारे पास कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता, फिर इतने शांत और निश्चिंत कैसे लेटे हो? मेरे पास तो सब कुछ है लेकिन न निश्चिंतता है, न शांति है। बुद्ध ने कहाः एक दिन तुम जिस स्थिति में हो, मैं भी था। और आज के दिन मैं जिस स्थिति में हूं, चाहो तो तुम अभी उस स्थिति में भी हो सकते हो। मैं दोनों स्थितियों से गुजर गया, तुम अभी एक से गुजरे हो। और अगर मुझे देखो तो तुम्हारा पुरुषार्थ जाग सकता है। अगर तुम मुझे देख कर अपमानित हो जाओ तो तुम्हारा पुरुषार्थ जाग सकता है। और तुम एक सिंह-गर्जना कर सकते हो कि मैं भी होकर रहूंगा।
यानी मेरी धारणा में तो यही बात है कि महावीर, बुद्ध, और कृष्ण, और ईसा--इनको देख कर अगर हम अपमानित हो जाएं तो पुरुषार्थ जाग जाए। लेकिन हम इतने होशियार हैं कि हम अपमानित नहीं होते, उलटा उनका सम्मान करके अपने घर चले आते हैं। उनके पैर में सिर झुका आते हैं। असलियत यह है कि उन्हें देख कर हमें अपमानित हो जाना चाहिए। कहीं हमारे भीतर यह आकांक्षा जग जानी चाहिए, कि अगर इनको उपलब्ध हो सका तो मैं... । लेकिन इससे बचने के लिए कि हमारा पुरुषार्थ न जगे, हम कहेंगे कि--वे भगवान हैं, वे तीर्थंकर हैं, वे अवतार हैं, उनको हो सकता है। हम साधारण-जन हमको कैसे होगा? ये तरकीबें हैं। ये हमारे हिसाब कि हम बच जाएं तो उनको अवतार, उनको तीर्थंकर, उनको भगवान कह कर छुटकारा पाते हैं कि हम साधारण-जन, आप ठहरे भगवान! आप हैं विशिष्ट, आप कर सकते हैं, हम कैसे करेंगे?

और एक बहुत बहुमूल्य पुरुषार्थ के जागने का अवसर हम तीर्थंकर कह कर
खो देते हैं। उन्हें अति सामान्य मानने की जरूरत है, जैसे हम हैं। लेकिन उसमें हमको बहुत दुख होगा। उसमें हमें बहुत आत्मग्लानि होगी। अगर हम महावीर को भी अति सामान्य मानें, कि वह भी ठीक हमारे जैसे हैं तो फिर हमें बहुत आत्मग्लानि होगी, कि फिर हम क्या कर रहे हैं? अगर वे भी हमारे जैसे हैं, और इस स्थिति को पा सके, तो फिर हम क्या कर रहे हैं बैठे हुए? यह आत्मग्लानि न हो, इसलिए हम उनको कहते हैं कि तुम तीर्थंकर हो, तुम भगवान हो और हम साधारण-जन हैं।
हम पूजा ही कर सकते हैं, हम कुछ और नहीं कर सकते। यह सेल्फ-डिसेप्टिव
जो हमारा दिमाग है, वे उसके खोजे हुए रास्ते हैं ये सारे सिद्धांतः तीर्थंकर के, अवतार के, भगवान के, फलां के, ढिकां के। सच बात यह है कि वे ठीक हमारे जैसे लोग हैं। एक दिन, और फिर एक दिन अचानक हमारे जैसे नहीं रह जाते हैं। वह जो क्रांति उनमें घटित होती है, वह हममें भी घटित हो सकती है अगर हम उनको सामान्य मान लें। और चेष्टा की--महावीर, बुद्ध ने पूरी चेष्टा की कि उनको एक सामान्य आदमी आप मान लें। इसलिए ईश्वर से इनकार किया। ईश्वर के अवतार से इनकार किया। बाकी हम बहुत होशियार हैं, हमने नये शब्द खोज लिए, कि न सही अवतार, तीर्थंकर सही; न सही तीर्थंकर, बुद्ध सही--मगर हो भगवान, हम तुम्हें पूजेंगे। पुरुषार्थ के जागरण का कुल अर्थ इतना ही हैः कुछ हममें प्रसुप्त है, कोई एक शक्ति प्रसुप्त है हममें, जो अगर जाग सके, अगर हम उसे पुकार सकें तो वह शक्ति हमारे भीतर इस क्रांति को घटित कर सकती है। और न पुकारें उसको, तो चलता है जीवन। चलता चला... ।
बाकी एक्सप्लेनेशंस कोई खोजना मुझे रुचिकर नहीं है। वास्तविक तथ्यों
को पकड़ लें कि ये तथ्य हैं हमारे सामने। हम दुखी हैं, यह एक तथ्य है। पीछे जन्म था या नहीं, यह कोई तथ्य नहीं है। आगे जन्म होगा या नहीं, यह कोई तथ्य नहीं है। तथ्य यह है कि मैं दुखी हूं। और यह भी एक तथ्य है कि दुख से ऊपर उठने की मेरी आकांक्षा है। तब एक बात ही रह जाती है कि--दुखी हूं, दुख से ऊपर उठने की आकांक्षा है। तो दुख से ऊपर उठने का उपाय खोज लूं। इससे ज्यादा और कोई अर्थ की बात नहीं है। और अर्थ--फिर तब पांडित्य है, फिर बहुत शास्त्र हैं। और उनको मजे से पढ़ा जा सकता है, और उनका अध्ययन किया जा सकता है। और ढेर साधु हैं जो उनकी व्याख्याएं समझा सकते हैं। और उससे चलता है, उससे कोई, उससे कुछ होता नहीं।

प्रश्नः (ध्वनि-मुद्रण अस्पष्ट)

वे जो फर्क कर लेते हैं, मैं नहीं कह रहा अपनी बात। वे जो फर्क कर लेते हैं, केवल ज्ञान तो अनेकों को उपलब्ध हुआ है। लेकिन केवल ज्ञान उपलब्ध होने पर जो तीर्थ का प्रवर्तन करते हैं, यानी जो सब धर्म को वापस स्थापित करते हैं, ताकि उसके मार्ग से और लोग भी केवल ज्ञान तक पहुंच सकें। केवल ज्ञान उपलब्ध करना, वे स्वयं मुक्त हो जाते हैं। केवल ज्ञान उपलब्ध करके तीर्थ का प्रवर्तन करना, धर्म को पुनर्स्थापित करना। ऐसे पुनर्स्थापक उनके हिसाब से चौबीस होते हैं। धर्म को पुनर्स्थापित करने वाले लोग हैं। यानी एक तीर्थंकर स्थापना देकर जब, उसका एक वक्त होता है कि कुछ वर्ष बीतने पर वह धर्म फिर विलीन हो जाएगा। वह मार्ग फिर अवरुद्ध हो जाएगा, उसको जो पुनर्स्थापित कर देगा, वह केवल ज्ञानी तीर्थंकर है। फिर उन्होंने पच्चीस एक्सप्लेनेशंस खोजे हुए हैं वह पिछले जन्म में तीर्थंकर होने का कर्म-बंध करता है, फिर वह तीर्थंकर हो सकता है। जो वैसा कर्म-बंध नहीं करता, वह तीर्थंकर नहीं होगा। लेकिन मेरा ऐसा कुछ, मेरी कोई यह मेरी धारणाएं नहीं हैं।
मेरी धारणा तो यह है कि जो भी सद्धर्म को उपलब्ध होता है और सद्धर्म
के संबंध में बोलता है, वह तीर्थंकर है। मेरी बात कह रहा हूं मैं। जो भी सद्धर्म को उपलब्ध होता है, और अगर नहीं बोलता उसके संबंध में, तो तीर्थंकर नहीं है, केवल सद्धर्म को उपलब्ध है। केवल ज्ञानी है। और यह जो बोलना और न बोलना है, बोलना न बोलना है, तो मेरी दृष्टि में इस भांति सोचने

पर लाखों तीर्थंकर हैं जगत में। हमेशा हुए हैं, हमेशा होंगे। और उसमें उन सबको गिन लेता हूंः जो कभी भी, जिसने कभी भी स्वयं सत्य को उपलब्ध होकर सत्य के संबंध में किसी को भी कहा हो, उस दिशा की तरफ कोई भी इंगित किया हो-- चाहे एक को ही किया हो, तो भी वह तीर्थ का प्रवर्तन करता है।
और यह भी करना नहीं है उसकी तरफ से कुछ। जैसे यह उपलब्ध होता है, वैसे
ही बहुत सहज, सहज प्रेरणा, बहुत सहज भाव से उस अनुभूति को दूसरों से कहने की उसको हो जाती है। इसमें कुछ चेष्टित नहीं है कि इसको, वह कोई जाकर और चेष्टा करके और विचार करके, योजना करके किसी को कहता हो। यह लगभग ऐसा ही है कि अगर मेरे हृदय में परिपूर्ण प्रेम भर गया है, अगर सतत चौबीस घंटे मेरी चेतना प्रेम से भर गई है तो मेरे करीब जो भी आएगा उसको मैं प्रेम के सिवाय कुछ दे नहीं सकूंगा।
एक राबिया नाम की मुसलमान फकीर स्त्री हुई है। कुरान में कहीं एक वचन हैः शैतान को घृणा करने के संबंध में। राबिया ने वह वचन काट दिया। कुरान में किसी तरह का संशोधन करना बहुत कुप्रीति, बहुत पाप की बात है। और यह तो हद पाप की बात थी कि उसमें किसी वचन को कोई काट ही दे। एक बायजीद नाम का फकीर उसके घर ठहरा था। उसने सुबह-सुबह कुरान पढ़ने को मांगी। यह देख कर कि वचन कटा हुआ है, बहुत हैरान हुआ। उसने कहा कि यह (अस्पष्ट... 58 : 38)सुधार किसने किया है इसमें! यह कौन नासमझ, जो कुरान में भी सुधार करता है? राबिया ने कहा कि मैंने खुद ही किया है। बायजीद तो दंग हो गया कि तुम पागल हो! राबिया ने कहा कि जब से मेरा हृदय शांत हुआ, उसमें घृणा है ही नहीं, तो अब मैं शैतान को घृणा कैसे करूं? शैतान भी मेरे सामने खड़ा हो जाए तो मैं जितना प्रेम ईश्वर को कर सकती हूं, उतना ही उसको कर सकती हूं। क्योंकि वह मेरे भीतर रहा नहीं। अब मैं प्रेम और घृणा करती नहीं, मैं प्रेम से भर गई हूं--तो प्रेम ही होता है। जो ज्ञान से भर गया है, उसे सहज ज्ञान प्रकीर्ण होगा।
हम भी अज्ञान को प्रकीर्ण करते हैं। अगर हम इसको समझ लें, तो हम ज्ञानी के ज्ञान के प्रकीर्ण करने को भी समझ लेंगे। हमको पता न भी हो कि आत्मा क्या है? तो भी हम बताने को जरूर किसी को मिल जाएंगे। और उसको बताएंगे कि आत्मा यह है, और धर्म यह है। हम अज्ञान को प्रकीर्ण करते हैं। अज्ञान को फैलाते हैं। वैसे ही एक स्थिति ज्ञान की--जब व्यक्ति उपलब्ध हो जाता है, तो सहज जैसे हम अज्ञान को फैलाते रहते हैं, वैसे सहज वह ज्ञान को फैलाने लगता है। तो उसमें कोई चेष्टित नहीं है। जगत में जितने लोगों ने भी धर्म को उपलब्ध करके उसके संबंध में किसी को भी इशारा किया हो, तो ये सारे लोग मेरे लिए तीर्थंकर हो जाते हैं। तो यह मेरी अपनी बात कह रहा हूं। परंपरागत जैसा जैन सोचते हैं, उनका हिसाब वैसा है।

प्रश्नः ज्ञान क्या है?

हां, उसकी बात करता हूं पूरे वक्त में। नहीं, इतना ही... मैं, मैं जो पूरी बात करता हूं, मेरे लिए तो दो स्थितियां हैं हमारी। ज्ञान की एक स्थिति वह हैः जब हम कुछ जानते हैं। जैसे मैं ज्ञान से इस वस्तु को देख रहा हूं, ज्ञान से आपको देख रहा हूं। ज्ञान से जब मैं किसी को जानता हूं, ज्ञानपूर्वक किसी न किसी को जान रहा है। यह ज्ञान की मिश्रित स्थिति है। इसमें ज्ञान भी है, ज्ञाता पीछे छिपा है। और ज्ञेय सामने खड़ा हुआ है। मैं हूं जानने वाला, वह पीछे छिपा है। आप, जिसको मैं जान रहा हूं मेरे सामने खड़े हैं, और दोनों के बीच का जो संबंध है, वह ज्ञान है।
तो मुझे दो बातों का पता चल रहा हैः एक तो ज्ञेय का, और ज्ञान का। और ज्ञाता का पता नहीं चल रहा। एक ज्ञान की स्थिति यह है। और एक ज्ञान की स्थिति वह है कि ज्ञेय तो कोई भी नहीं है--ज्ञान है, और ज्ञाता का पता चल रहा है। ये तीन बिंदु हैं न--ज्ञेय है, ज्ञान है, और ज्ञाता है। हमें तो ज्ञेय का पता चलता है, और ज्ञान का पता चलता है। ज्ञाता का पता नहीं चलता। यह मिथ्या ज्ञान है। जो जान रहा है उसका तो पता नहीं चल रहा, जो जाना जा रहा है उसका भर पता चल रहा है। ज्ञेय न हो; ज्ञाता रह जाए, और ज्ञान रह जाए, तो

वह सम्यक ज्ञान है। ज्ञाता का पता चल रहा है और ज्ञान की क्षमता का पता चल रहा है, वह सम्यक ज्ञान है। मिथ्या ज्ञान से सम्यक ज्ञान पर परिवर्तन होगा।
अगर ठीक से इस बात को समझें तो जब ज्ञेय पता नहीं चलेगा, तो ज्ञाता भी पता नहीं चलेगा। क्योंकि वह अंतर-संबंधित था। तो ज्ञेय था, इसलिए हम उसे ज्ञाता कहते थे। जब ज्ञेय कोई भी नहीं रहा, तो उसे ज्ञाता भी नहीं कहेंगे। तब मात्र ज्ञान का अनुभव होगा। केवल मात्र ज्ञान है, इसका अनुभव होगा। उस केवल मात्र ज्ञान के अनुभव को केवल ज्ञान कहा है। केवल ज्ञान की शक्ति भर का बोध होगा। न कोई जान रहा है, न कोई जाना जा रहा है, केवल जानने की क्षमता का स्पंदन हो रहा है। प्योर कांशसनेस भर रह गई है। किसी चीज के प्रति कांशस नहीं है। कोई कांशस नहीं है, केवल प्योर कांशसनेस रह गई है।
यह प्योर कांशसनेस समाधि में भी अनुभव होगी। लेकिन समाधि में यह थोड़ी देर टिकेगी और विलीन हो जाएगी। अगर यह सतत चौबीस घंटे अनुभव होने लगे तो केवल ज्ञान हो जाएगी। केवल ज्ञान की जो प्राथमिक अनुभूतियां हैं, वे समाधि में मिलनी शुरू होंगी। और जब समाधि पूरे चौबीस घंटे पर फैल जाएगी तो वह केवल ज्ञान हो जाएगा।
ज्ञान मात्र का शेष रह जाना, ज्ञाता और ज्ञेय दोनों का मिट जाना है। अभी हमको एकदम से दिक्कत होगी कि वह ज्ञान मात्र कैसे रह जाएगा? क्योंकि अभी तो हम जब भी जानते हैं ज्ञान को, तब किसी को जान रहे हैं। अभी मैं केवल कह सकता हूं। लेकिन अगर ध्यान का प्रयोग चले, और किसी दिन समाधि में लगेगा कि अकेला मैं ही रह गया था। केवल ज्ञान मात्र रह गया था। न कोई जान रहा था, ना कोई जाना जा रहा था--केवल ज्ञान था। केवल एक कांशेसनेस भर रह गई थी। उस वक्त पहला अनुभव मालूम होगा, जो कि सूचना देगा कि मात्र ज्ञान के अकेले रह जाने का क्या अर्थ है।
तो कुछ बातें ऐसी हैं, कि शब्द तभी उनको बता पाते हैं जब साथ में अनुभूति भी हो। और सच तो यह है कि हमारे सामान्य जीवन के भी शब्द जब अनुभूति हो, तभी कुछ बता पाते हैं। जैसे मैंने कहाः किवाड़, तो मेरा शब्द आपको कुछ सूचना दे पाता है, क्योंकि आप भी किवाड़ को जानते हैं। अगर आप किवाड़ को नहीं जानते तो शब्द तो मेरा आपके कान में गूंजेगा--किवाड़, लेकिन कोई अर्थ बोध नहीं होगा। शब्द अर्थ नहीं देता। अर्थ तो स्वयं की, उसी वस्तु की सामान्य अनुभूति से आता है। मैंने कहाः किवाड़, अगर आप भी किवाड़ से परिचित हैं तो मेरा शब्द सार्थक हो जाएगा। और मैंने कहाः किवाड़, और आप किवाड़ से परिचित नहीं हैं, तो मेरा शब्द केवल ध्वनि रह जाएगा, उसमें अर्थ नहीं होगा।
तो सामान्य जीवन में भी शब्द तभी बोधपूर्ण होते हैं जब उनकी सामान्य अनुभूति होती है। धर्म के जीवन में दिक्कत है। वहां शब्द ही गूंजते रह जाते हैं। मैंने कहाः आत्माध्वनि है, शब्द नहीं है यह। जब तक कि वहां भी अनुभूति न हो, तब तक यह केवल ध्वनि है। इससे कुछ बोध नहीं होता कि--क्या? एक कान पर शब्द गूंजता है--आत्मा, और विलीन हो जाता है। अर्थ तो इसमें तब आएगा, जब थोड़ी सी अनुभूति भी दूसरी तरफ आएगी।
कबीर से एक मुसलमान फकीर फरीद मिला था। फरीद निकला था यात्रा को। कबीर उन दिनों मगहर काशी के पास रहते थे। जब वह करीब से निकला तो कबीर के भक्तों ने कहा कि ऐसा करें कि फरीद को दो दिन रोक लें। तो आप दोनों में चर्चा होगी तो हमें बड़ा आनंद आएगा। कबीर बोला कि तुम चाहो तो रोक लो, चाहो तो आनंद भी ले लेना, चर्चा शायद ही हो। वे समझे कि कबीर ने यह मजाक में कहा है। फरीद के भी शिष्य जो उसके साथ जा रहे थे, उन्होंने कहा कि बड़ा भला हो कि दो दिन कबीर का आश्रम पड़ेगा, वहां रुक जाएं। आपकी चर्चा होगी, हमको बड़ा आनंद होगा। उसने कहा कि तुम चाहो तो रुक जाओ, आनंद भी शायद तुम्हें हो, लेकिन चर्चा शायद ही हो। ये जब भक्त मिले, तो दोनों ने कहा कि ऐसा-ऐसा कहा था। वे दोनों मिले, दोनों गले मिले, दोनों खूब हंसे। दो दिन रहे, लेकिन अदभुत कथा है कि दोनों कुछ बोले नहीं। दो दिन बाद कबीर विदा भी कर आए गांव के बाहर, दोनों गले मिल लिए, लेकिन वह बातचीत हुई नहीं। दोनों के भक्त बहुत परेशान हुए और उन्होंने लौट कर पूछा कि हम तो थक गए दो दिन राह देख कर, वे

कुछ तो बोलते? कबीर ने कहाः बोलते क्या? जो वे जानते हैं, वह मैं जानता हूं। फरीद ने भी कहाः जो वे जानते हैं, वह मैं जानता हूं। अनुभूति बिल्कुल सामान्य एक, एक सी है। बोलने को कुछ है नहीं।
यही धार्मिक जीवन की अदभुत बात है कि अगर अनुभूति बिल्कुल एक सी हो
जाए आत्मिक-जीवन की, तो बोलने को कुछ नहीं रह जाता। और जब तक अनुभूति एक सी नहीं, तब तक जो बोला जाता है वह कोई अर्थ नहीं देता। तब तक बोला जा सकता है, लेकिन अर्थ नहीं होता। और जब अनुभूति एक सी हो जाए तो बोलने को कुछ नहीं रह जाता--तब अर्थ मिल सकता है। तब जिसे हम कहें, केवल ज्ञान। तो कुछ समझाया जा सकता है। लेकिन समझाने से कुछ बोध होता होगा बहुत, यह नहीं पकड़ में आता। इसलिए हमको अक्सर लगता है कि तृप्ति तो नहीं हुई उस बात को समझने से। तृप्ति नहीं होगी। तृप्ति तो उस दिन होगी, जब थोड़ी सी झलक उस बात की मिल जाए जब केवल ज्ञान मात्र रह गया है।
तो मैंने तो यह अनुभव किया, धीरे-धीरे मैं यह कहना भी शुरू किया किग्रंथ--जो धर्म के हैं, वे साधना के बाद पढ़ें तो उनमें कुछ आनंद आएगा। साधना के पूर्व पढ़ें, उनमें कोई आनंद उपलब्ध नहीं होगा। थोड़ी साधना हो तो कई शब्द इतने अर्थपूर्ण हैं कि साधना उनके अर्थ को खोल देगी। तब एक-एक शब्द आपको अनुभूति को खोलता हुआ मालूम होगा। मेरी तो धारणा विपरीत सी है। मेरा तो मानना ही यह है कि योग के जितने ग्रंथ हैं, वे साधक के पढ़ने के नहीं हैं। वे सिद्ध के पढ़ने के हैं। हालांकि तब पढ़ने की कोई जरूरत नहीं रह जाती, पढ़ें या न पढ़ें। लेकिन सिद्ध के पढ़ने के हैं। और वे केवल पहचानने के लिए हैं कि जो मुझे मिला उसको पुराने सिद्धों ने क्या नाम दिए? इससे ज्यादा कोई मायने नहीं हैं।
हर परंपरा शब्द देती है। जैसे जैनों की परंपरा है, बौद्धों की, हिंदुओं की, योगियों की परंपराएं हैं। हर परंपरा शब्द देती है। जब पहली दफा साधक को समाधि का अनुभव होता है तो उसे कुछ नहीं सूझता इसको मैं क्या कहूं? कुछ कहने को शब्द होते ही नहीं।
समझ लीजिए कि मैं इस घर में आया और मैंने पहली दफा कोई चीज इस कमरे में रखी देखी तो मैं उसे देखूंगा जरूर, अनुभव जरूर करूंगा। लेकिन शब्द क्या दूं? शब्द तो परंपरा से दिए जाते हैं। तो जब पहली दफा व्यक्ति आत्म-साक्षात करेगा तब उसको समझ में नहीं आता, क्या शब्द दूं? तो अगर वह बौद्ध की परम्परा में पला है तो उसके ग्रंथ उसको बताएंगे कि इसको क्या नाम देना है? अगर वह जैनों की परंपरा में पला है तो उसकी परंपरा के ग्रंथ बताएंगे कि इस अनुभूति को क्या नाम देना है? उसमें, ग्रंथों में लक्षण भी दिए हुए हैं, नाम भी दिए हुए हैं। लक्षण उसको सूचना देंगे कि ठीक यह बात घट गई है, और नाम उसे मिल जाएगा।
परंपराएं केवल नाम देती हैं, ज्ञान नहीं देतीं। ज्ञान अनुभव से आता है। नाम परंपरा से मिल जाते हैं। और उलटी हमारी स्थिति है, हम पहले नाम पढ़ लेते हैं। ज्ञान-व्यान तो आता नहीं, वे नाम सीख जाते हैं। और फिर उन्हीं में से हम प्रश्न पूछते रहते हैं और जिंदगी भर उलझते रहते हैं कि--वह क्या है? और फलां क्या है, ढिकां क्या है--उससे कुछ हल नहीं होता। बिल्कुल फिकर छोड़ दें नामों की, शब्दों की, सिद्धांतों की--कोई चिंता न करें। एक ही चिंता करें कि मेरे भीतर कुछ घटित हो जाए।

प्रश्नः (ध्वनि-मुद्रण अस्पष्ट)

आप कह रहे हैं, थोड़ा सा ज्ञाता और ज्ञेय को गहराई से समझा जाए तो उपयोगी होगा। जब भी मैं किसी वस्तु को जान रहा हूं, किसी भी वस्तु को जान रहा हूं, तब उस जानी हुई वस्तु का प्रभाव मुझ पर छूटता है। मैं आपको देखा, एक प्रतिबिंब, एक प्रभाव मेरे भीतर छूटा। कल जब मैं आपको दुबारा देखूंगा, तो मैं आपको नहीं देखूंगा, उस प्रतिबिंब के माध्यम से आपको देखूंगा। वह प्रतिबिंब मेरे बीच में आ जाएगा कि कल भी देखा था, यह वही है। और उसके माध्यम से मैं आपको देखूंगा। हो सकता है रात्रि आपको बिलकुल बदल गई हो। हो सकता है आप बिल्कुल दूसरे आदमी हो गए हों। हो सकता है आप क्रोध में आए थे,

और अब प्रेम में आए हों। लेकिन मेरा जो कल का ज्ञान है, वह आज खड़ा होगा। वह मेरी स्मृति होगी। उसके माध्यम से मैं आपको जानूंगा।
हम असल में चौबीस घंटे जो भी जान रहे हैं, जो वास्तविक है उसको नहीं जान रहे। जो स्मृति का संकलन है उसके माध्यम से उसकी व्याख्या कर रहे हैं। इस स्मृति के माध्यम से हम उसकी व्याख्या कर रहे हैं--जो ज्ञेय है। इसलिए हम ज्ञेय को भी नहीं जान रहे। बीच में स्मृति का पर्दा है, अगर आप कल मुझे गाली दे गए और आज फिर मिलने आए हैं, तो मैं जानता हूं यह दुष्ट कहां से आ गया? हो सकता है आप क्षमा मांगने आए हों। हो सकता है आप कहने आए हों कि कल भूल हो गई। हो सकता है आप कहने आए हों, कल मैं होश में नहीं था। बेहोश था, शराब पीए था। लेकिन मैं यह सोच रहा हूं कि यह सज्जन कहां से आ गए हैं? और मेरे बीच वह कल का पर्दा आपका खड़ा हो जाएगा, मैं आपके चेहरे को नहीं देखूंगा जो अभी मौजूद है। मैं उस चेहरे को बीच में पहले देखूंगा जो कल मौजूद था।
स्मृति ज्ञेय के और ज्ञाता के बीच में हमेशा खड़ी है। इसलिए हम ज्ञेय
को भी नहीं जान पाते। और स्मृति का जो संकलन है, उसी को हम ज्ञाता समझ लेते हैं। जो भ्रम होता हैः ज्ञेय को हम नहीं जान पाते, स्मृति बीच में आ जाती है। और स्मृति का जो संकलन, जो एकुमुलेशन है मेमोरी का, हम समझ लेते हैं-- यही मैं जानने वाला हूं।
जैसे अगर कोई आपसे पूछेः आप कौन हैं? तो आप क्या बताइएगा? आप कुछ स्मृतियां बताइएगा। मैं फलां का लड़का हूं, यह एक स्मृति है। तीस साल में मैंने ये-ये अनुभव लिए, उनमें से कुछ बताएंगे। इतना पढ़ा हूं, यहां नौकरी करता हूं, यहां ये हूं, यहां वह हूं--ये सारी आपकी मेमोरीज हैं तीस वर्ष की। इनका एकुमुलेशन आप हैं। इसलिए कभी-कभी यूं होता है कि किसी चोट से अगर स्मृति विलीन हो जाती है, उससे पूछिए कि आप क्या हैं? तो वह खड़ा रह जाता है। उसको याद ही नहीं पड़ता कि कोई स्मृति हो।
थोड़ी देर आप कल्पना करिए कि अगर आपकी स्मृति पोंछ दी जाए, और आपसे फिर पूछा जाए, आप क्या हैं? तो आप खड़े रह जाएंगे। आपको कुछ उत्तर नहीं सूझेगा कि मैं क्या हूं? क्योंकि आप जो भी उत्तर देते हैं, वह स्मृति से है। स्मृति का जो संग्रह है, उसी को हम समझ लेते हैं--मैं हूं।
स्मृति ज्ञेय को भी नहीं जानने देती, स्मृति का संग्रह ज्ञाता को भी नहीं जानने देता। स्मृति के पीछे ज्ञाता छिपा हुआ है, और स्मृति के आगे ज्ञेय बैठा हुआ है। बीच में स्मृति की धारा है, उस तरफ ज्ञेय है; इस तरफ ज्ञाता है, बीच में मेमोरी है। मेमोरी न ज्ञेय को जानने देती है, न ज्ञाता को जानने देती है। अगर मेमोरी का, स्मृति का विसर्जन हो जाए तो मैं ज्ञेय को पहली दफा देखूंगा। और पहली दफा इंसटेंटिनियस।
अलग-अलग घटना नहीं घटेगी यह, क्योंकि ज्ञाता और ज्ञेय साथ ही जाने जाएंगे। जिस क्षण मैं ज्ञेय को देखूंगा, उसी क्षण ज्ञाता भी। यह अलग नहीं जाने जाएंगे, दोनों एक साथ। दोनों एक साथ अनुभव होंगे। और वह साथ होना इतना गहरा होगा कि मुझे ऐसा नहीं मालूम होगा कि ज्ञेय अलग, ज्ञाता अलग। मुझे असल में ज्ञान का अनुभव होगा। मुझे केवल कांशसनेस का अनुभव होगा। अगर मेमोरी विसर्जित हो जाए तो केवल ज्ञान का अनुभव होगा। जो हम कहते हैंः महावीर ने या किन्हीं और ने अपने समस्त पुराने कर्मों से अपना छुटकारा पा लिया। तो मैं पाता हूं कि कर्म असल में सिवाय स्मृति के और कुछ भी नहीं। कर्म-बंध का अर्थ स्मृति-बंध है। कर्म-बंध का अर्थ है मेमोरी। वह जो हम कहते हैं, कर्म चिपक जाते हैं। कर्म नहीं चिपकता, केवल स्मृति चिपक जाती है। किए हुए की स्मृति चिपक जाती है; किए हुए का संसार चिपक जाता है। जिसको महावीर निर्जरा कह रहे हैं, वह असल में डीमेमोराइज्ड... एक ही बात है। कुछ भी कह सकते हैं। इम्प्रेशंस जो हैं, वे संस्कार कह लें, स्मृति कह लें। क्योंकि हम स्मृति उसको कहते हैं जो हमको याद है। और अनेक संस्कार हममें ऐसे हैं जो हमको याद नहीं हैं। लेकिन जो याद नहीं है, वह भी हमारे अचेतन में मौजूद है। और सब याद किए जा सकते हैं। मैं अभी वहां प्रयोग किया, तो आपको पिछले जन्म याद दिलाए जा सकते हैं। एक पूरी स्मृति की धारा याद हो

जाएगी आपको। एक-एक पर्दा भीतर मौजूद है, उघाड़ा जा सकता है। और आपको फिल्म की तरह सब दौड़ने लगेगा--यह हुआ, यह हुआ, यह हुआ।
और अगर आपकी सारी स्मृति उघाड़ दी जाए तो आप हैरान होंगे कि एक दफा जो संस्कार पड़ा है चित्त पर, वह मौजूद है। सब संस्कार स्मृति हैं। और सच तो यह है कि अगर मैं आपसे अभी पूछूं कि उन्नीस सौ पचास में एक जनवरी को आपने क्या किया? आपको कुछ याद नहीं है। तो आप कहेंगे, इसकी तो विस्मृति हो गई। इसकी विस्मृति नहीं हुई, यह अभी मौजूद है। और मैं अभी आपको बेहोश करूं, हिप्नोटाइज्ड करूं, और आपसे पूछूं तो आप एक तारीख को ऐसे दोहरा देंगे जैसे अभी देख रहे हैं।
मैं कुछ दिन प्रयोग करता था तो मैं बहुत हैरान हुआ, वह तो कुछ भूलते
ही नहीं हैं। फिर मुझे यह दिक्कत हुई कि पता नहीं एक तारीख को आपने किया या नहीं, या बेहोशी में आप कुछ भी अनर्गल बोलते हैं। फिर मैं कुछ लोगों पर नियमित रूप से ध्यान रखा। उनसे आज मिला तो नोट कर लिया कि उनसे मेरी क्या बात हुई थी? वे क्या कर रहे थे? छह महीने बाद उनको बेहोश करके पूछा, वह तो उन्होंने बताया कि आप दो बजे मिले थे और यह-यह मुझसे कहा था। होश में तो उनको पता ही नहीं कि आप उस दिन मिले भी थे, या नहीं मिले थे।
फिर मैं धीरे-धीरे पिछले जन्मों में भी प्रयोग किया। आप हैरान होंगे, मां के गर्भ में भी आप पर जो संस्कार पड़े हैं, वे स्मरण दिलाए जा सकते हैं। जिस क्षण कंसेप्शन हुआ मां के पेट में आपका, वह संस्कार भी स्मरण दिलाए जा सकते हैं। फिर धीरे से उस पार, उस जन्म के जो संस्कार हैं, वे भी स्मरण दिलाए जा सकते हैं। सारे जन्म-मरण की पूरी कथाएं स्मरण आ सकती हैं। वे सब मेमोरी हैं।
और अगर मेमोरी से कोई बिल्कुल मुक्त हो जाए, तो वह निर्जरा है। अगर ये सारी मेमोरीज झड़ जाएं, और इनसे व्यक्ति पृथक हो जाए, और जान ले कि मैं इन मेमोरीज में नहीं हूं; इनके बाहर और अलग हूं। और अगर यह कंडीशनिंग जो मेमोरी से पैदा हुई है, यह सब विसर्जित हो जाए--तो मोक्ष है। स्मृति से मुक्त होना मोक्ष है, और स्मृति में घूमना संसार है। उस स्मृति के विसर्जन में जो भी है, वह दिखेगा। स्मृति के विसर्जन में चैतन्य का जागरण है। इसके प्राथमिक प्रयोग विचार के विसर्जन से शुरू होंगे, क्योंकि स्मृति भी केवल विचार के प्रवाह का अंत है। और कोई खास बात नहीं है।

प्रश्नः (ध्वनि-मुद्रण अस्पष्ट)

न, फर्स्ट और सेकेंड का कोई सवाल नहीं है। असल में फर्स्ट और सेकेंड
का सवाल मेमोरी में है। जैसे मैं यहां बैठा हूं, मैंने इस तरफ से देखना शुरू किया। तो जरूर मैं किसी को पहले देखता हूं, फिर किसी को दूसरा देखता हूं, फिर किसी को तीसरा देखता हूं। लेकिन जब मैं पहले को देख रहा हूं तब भी दूसरा उसी वक्त पूरा का पूरा मौजूद है, जब मैं तीसरे को देख रहा हूं तब भी दो मौजूद हैं। हम यहां सारे लोग साइमलटेनियसली मौजूद हैं। लेकिन मैं जब देखता हूं, मेरी मेमोरी में जब मैं स्मरण करूंगा तो मैंने पहले एक को देखा, फिर दूसरे को देखा, फिर तीसरे को देखा। जगत में जो एक्झिस्टेंस है, वह साइमलटेनियस है। केवल मेमोरी में पास्ट, प्रेजेंट और फ्यूचर है। जगत में यह कहीं भी नहीं है। जगत में अतीत है ही नहीं। जगत में भविष्य है ही नहीं। जगत में सतत वर्तमान है। जगत में कहीं कोई अतीत संगृहीत नहीं होता। जगत में कहीं कोई भविष्य खुलने को नहीं है।
जगत एक इटरनल नाव है। एक इटरनिटी है, जो प्रत्येक क्षण... पूरा जगत एक सतत प्रवाह है, एक्चुअल जगत जो है। हां, हमारी स्मृति में अतीत, वर्तमान और भविष्य होते हैं। इसलिए टाइम जो है, समय जो है, वह केवल मेमोरी से पैदा हुई चीज है। टाइम कहीं है नहीं। प्रेजेंट जो है, वह मेमोरी के हिस्से हैं। वह मेमोरी के हिस्से हैं। इसलिए जिसकी मेमोरी चली जाएगी, वह टाइमलेसनेस में चला जाएगा। उसे टाइम का पता नहीं रहेगा।
इसलिए लोगों ने कहाः समाधि जो है, वह समयातीत है। समय के बाहर है, कालातीत है। वह काल के बाहर है। समाधि में समय नहीं है, काल नहीं है,

क्षेत्र नहीं है--केवल होना मात्र है। स्मृति में जो सीक्वेंस है--कुछ चीजें पहले हैं, कुछ चीजें बाद में हैं, कुछ चीजें आगे हैं। उसकी वजह से, उस सीक्वेंस की वजह से टाइम बनता है। अगर सारी मेमोरी विलीन हो जाए, थोड़ी देर को समझिएः आपकी सारी मेमोरीज अगर विलीन हो गई, तो पहले आपका जन्म हुआ और बाद में मृत्यु हुई, यह आपको पता नहीं चल सकता। बहुत अजीब सा लगेगा अगर सारी मेमोरीज विलीन हो गई, तो आपका जन्म पहले हुआ और मृत्यु बाद में हुई, ऐसा नहीं कहा जा सकता। शायद उस मैमोरीलेस स्थिति में ये घटनाएं, साइमलटेनियस में ये घटनाएं हुईं ही नहीं। आपको पता ही नहीं पड़ेगा कि कब आप जन्मे, कब आप मरे। क्योंकि कब जो है--आगे और पीछे का संबंध--वह स्मृति का है।
स्मृति विलीन हुई तो कब आगे-पीछे विलीन हो गया, सीक्वेंस विलीन हो गया... इसलिए बहुत अदभुत बात जो मुझे दिखाई पड़ने लगी, महावीर पच्चीस सौ साल पहले मुक्त हुए हैं। और आप अभी मुक्त हो जाएं। तो हमको लगता है कि पच्चीस सौ साल बाद मुक्त हुए। लेकिन कांशसनेस का जो जगत है, वहां दोनों साइमलटेनियस मुक्त हो रहे हैं। एक ही साथ मुक्त हो रहे हैं। पर यह बात तो अजीब सी होगी, इसका कोई मान्य नहीं होगा दिखने में ऊपर से। यह हमारी मेमोरी है जो पच्चीस सौ साल आगे-पीछे करती है। चैतन्य के जगत में सब एक साथ मुक्त हो रहे हैं, और एक साथ बद्ध। वहां कोई समय नहीं है, वहां कोई आगे-पीछे नहीं है। हां, वह एडजस्ट टूगेदर।

प्रश्नः आदमी जब मैड हो जाता है, उसकी क्या हालत होती है?

हां अगर इसको, आदमी जब पागल हो जाता है तो आदमी अकेला स्मृति रह गया। उसे अब बिल्कुल भी होश नहीं है अपने स्व का। केवल मेमोरी रह गई। आप हैरान होंगे, वह जिस दिन पागल होता है, उस दिन के बाद की उसे कोई मेमोरी नहीं रहती। उसके पहले की मेमोरी रहती हैं सब। अगर एक आदमी आज सुबह पागल हो गया तो वह जितनी बातें करेगा, वह आज की सुबह के पहले की हैं। आज की सुबह के बाद की कोई बात नहीं करेगा। आज की सुबह के बात की कोई मेमोरी नहीं बन रही है। अब आज से सुबह के पहले की सब मेमोरी हैं, उन्हीं को दोहराएगा। उन्हीं को बोलेगा, उनकी बकवास करेगा। वह वही बातें करता रहेगा। उसने होश बिल्कुल खो दिया। और जिस घड़ी उसने होश खो दिया, उस क्षण तक की जितनी मेमोरी हैं, अब वही रिपीट होती रहेंगी। और इसीलिए हमको वह पागल दिखेगा। क्योंकि वह हमेशा असंगत होगा। क्योंकि वह वर्तमान में उसका कोई, उस पर कोई प्रभाव पड़ ही नहीं रहे। उस पर सब प्रभाव पीछे के रह गए हैं।
इसलिए पागल में और मुक्त में करीबी अनुभव में एक सी कुछ बातें मालूम होंगी। एक में सिर्फ पीछे के अनुभव रह गए हैं। वर्तमान के कोई अनुभव नहीं पैदा हो रहे। वह भी हमको पागल लगेगा। क्योंकि वर्तमान से उसकी कोई संगति नहीं है। और मुक्त और सिद्ध भी हमको कुछ न कुछ पागल प्रतीत होगा। क्योंकि न उसमें अतीत के कोई स्मरण रह गए हैं, न भविष्य के, न वर्तमान के। उसमें भी हमें थोड़े से पागलपन की झलक मालूम होगी।
इसलिए सारे साधुओं को, सारे संतों को हम चाहे कितना ही आदर दें, हमको
यह थोड़ा बहुत शक बना ही रहता है कि ये कुछ पागल तो नहीं हैं। हमारा जो भाव है, वह कहीं न कहीं उनके पागल होने का बना रहता है। और कहीं किसी किनारे पर वे पागल के करीब मालूम होते हैं। उनकी आंख में भी वही वैक्यूम दिखाई पड़ेगा जो पागल की आंख में दिखाई देता है--वही वैक्यूम। वही आपको देखते हुए भी जैसे आपको नहीं देख रहे हैं, वही बात है। आपसे बोलते हुए भी जैसे आपसे नहीं बोल रहे हैं, वही बात है। आपके बिल्कुल करीब होकर भी जैसे आपसे दूर हों, वही बात। आंख में वैक्यूम मालूम होगा, जैसे आपका कोई प्रतिबिंब उनकी आंख में नहीं बन रहा। आपकी वह कोई मैमोरी नहीं पकड़ रहे हैं।
इसलिए बड़े से बड़े सिद्ध की आंख में झांक कर आपको जो पहला अनुभव होगा,
वह पागल का होगा। तो उसकी आंख में जो अनुभव होगा, वह पागल का होगा। तो एक थो.ड़ी सी दोनों में करीबी बात है। दोनों में स्मृति का एक, संबंध एक सा हो गया है। एक की स्मृतियां टूट गई हैं, विक्षोभ के कारण। उसके पहले जितनी

बनीं हैं, वे विक्षुब्ध उसमें तैर रही हैं। उसका सब जीवन असंगत हो गया। एक में स्मृतियां टूट गई हैं, अविक्षुब्ध शांति के कारण। उसमें भी कुछ लहरें नहीं उठ रही हैं। एक में विक्षोभ के कारण सब टूट खंडित हो गया है; एक में शांति के कारण सब खंडित हो गया है। दोनों बिल्कुल अलग कोनों पर खड़े लोग हैं। लेकिन दोनों में एक बात कहीं कुछ समान है। इसलिए भक्त उनको, जिनका भक्त है, उसको साधु समझ लेते हैं--सिद्ध। और गैर-भक्त उसको पागल भी समझते रहते हैं तो कोई अंतर नहीं पड़ता।

प्रश्नः (ध्वनि मुद्रण अस्पष्ट)

बहुत फर्क है, फर्क बहुत है। फर्क इतना ही है कि हिप्नोटिस्ट जो है, सम्मोहित जो कर रहा है, इस सम्मोहन में भी घटना करीब-करीब वैसी घट रही है जैसे स्वयं ध्यान करने पर घटी। करीब-करीब वैसे ही। इसमें भी सूक्ष्म शरीर बाहर निकाला जा सकता है, भेजा जा सकता है, देखा जा सकता है। लेकिन यह दूसरे के द्वारा इनड्यूस्ड है, और जबरदस्ती है, और फोर्स्ड है। यह दूसरे के द्वारा आपमें की गई घटना है।
समाधि स्वयं के द्वारा की गई घटना है। दूसरे के द्वारा की गई घटना से आपको कोई लाभ नहीं है, शायद नुकसान है। आपको कोई लाभ नहीं है। वह आपसे कुछ साइकिक काम करवा ले सकता है। लेकिन आपको कोई लाभ नहीं, वरन आपको नुकसान है। आपकी जो अपनी रिदम और हार्मनी है, आपके साइकिक शरीर की, उसको इसके प्रयोग से नुकसान पहुंचेगा। बाधा होगी। और जब स्वयं आप अपने प्रयोग से सहज बाहर निकलते हैं तो आपको नुकसान नहीं है, बल्कि अपने भीतर के कुछ राजों और कुछ रहस्यों का अनुभव होता है। हिप्नोसिस बेहोशी है, बेहोशी में आपमें कुछ होता है; और समाधि परिपूर्ण जागरूकता है, जागरूकता में कुछ होता है।
जागरूकता में जब कुछ होता है स्वयं के भीतर तो आप अपने जगत और जीवन के रहस्य के कुछ नए तथ्यों से परिचित होते हैं। वह परिचय आपको आत्म-साधना में सहयोगी होता है। हिप्नोसिस में आप तो परिचित होते नहीं, आप तो बेहोश हैं। आपको कोई लाभ नहीं होता, लेकिन घटना करीब-करीब एक सी ही घटती है।

प्रश्नः वह विधि जो है, बीमारियां सब अच्छी करते हैं?

हां, वह तो हो सकती हैं, वह तो हो सकती हैं।

प्रश्नः वह फोर्स से होती है?

वह फोर्स से होती है।

प्रश्नः कुछ दूसरे का पोर्सन जिसको बाहर निकाल कर अपना नीड डाल सकता है?

हिप्नोटिस्ट? हां, ऑटो-हिप्नोटाइज भी कर सकता है आदमी को। ऑटो- हिप्नोटाइज भी कर सकता है। वह भी कर सकता है।

प्रश्नः... वह हिप्नोसिस है?

वह हिप्नोसिस ही है।

प्रश्नः पुरानी स्मृतियों में... ?

हां, वह हिप्नोटाइज करने बिना कोई रास्ता नहीं है। पुरानी स्मृतियां जगानी हों, तो हिप्नोटाइज के बिना कोई रास्ता नहीं है। और या फिर (अस्पष्ट... 9 0 : 11) हिप्नोटाइज अपने को खुद करना पड़े तब कोई रास्ता है। इस

मुल्क में हिप्नोटिज्म का प्रयोग बहुत प्राचीन है। लेकिन उसका उपयोग उस ढंग से कभी नहीं किया गया, जैसा वे पश्चिम में कर रहे हैं। इस मुल्क में हिप्नोटिज्म का उपयोग भी साधना के पक्ष में किया गया। हिप्नोटिज्म के माध्यम से व्यक्ति को कई सहायताएं पहुंचाई जा सकती हैं साधना में। वे सहायताएं इसमें उनको पहुंचाई गईं। हिप्नोटिज्म का और कोई प्रयोग कभी नहीं हुआ। पश्चिम में वह इसके दूसरे प्रयोग शुरू किए हैं। क्योंकि उनकी आत्म-साधना से उनका कोई संबंध नहीं है। तो वहां घातक परिणाम आने शुरू हुए। तभी तो उन्होंने वहां, अमरीका में हिप्नोटिज्म के खिलाफ एक कानून भी बनाने का विचार है। क्योंकि उसके बहुत घातक परिणाम हो सकते हैं। दूसरों को बहुत नुकसान पहुंचाया जा सकता है।

प्रश्नः... लाभ भी... ?

हां वह भी, वह लाभ भी पहुंचाया जा सकता है।

प्रेम नदी के तीरा
तेरहवां प्रवचन

निर्णय न लें, उपलब्ध रहें

प्रश्नः... यानी किसी बात के बनने में हम एक विचार खोज करके एक कोई नियोजन करते हैं एंड स्टिल दे विल वन थिंग जिसका हम नियोजन नहीं कर पाते हैं... दिस इ.ज ए... एक्सीडेंड।

नहीं, मैं इसलिए पूछता हूं कि असल में ऐसी कोई भी घटना इतना ही बताती
है कि जीवन क्या है? और कैसे चलता है? और कैसे समाप्त हो जाता है? न हम इसे जानते हैं, न इस पर हमारा कोई चरम अधिकार मालूम होता है--घटना इतना ही बताती है। इतना निगेटिव।

प्रश्नः चरम अधिकार नहीं है, इतना तो बताती जरूर है।

बिल्कुल निगेटिव न। नहीं, लेकिन किसी का चरम अधिकार है वह। हम, वह जो,
वह जो कोई पॉवर, कोई परमात्मा है, वह हम जोड़ रहे हैं। घटना सिर्फ इतना बताती है कि हमें पता नहीं कि जीवन कैसे चलता है और कैसे समाप्त हो जाता है। हम नियोजक नहीं हैं पूरे। कुछ ऐक्ट्स छूटा रह जाता है। और वह सब कुछ कर देता है, और हमारी सारी व्यवस्था व्यर्थ हो जाती है। जीवन एक रहस्य है जिसका ओर-छोर हमारी पकड़ में नहीं आता है। इतनी बात भर पता चलती है, इतना निगेटिव भर पता चलता है। पाजिटिव हम जोड़ रहे हैं कि--दैव है, भाग्य है, परमात्मा है कोई शक्ति--वह हम जोड़ रहे हैं। वह इस घटना से कहीं भी आता नहीं।
और मेरा कहना है कि वह हम क्यों जोड़ रहे हैं? क्योंकि वह बिल्कुल अनावश्यक है। आवश्यक इतना है, जितना मैं कह रहा हूं। इससे ज्यादा घटना से कुछ भी नहीं आता। वह हम क्यों जोड़ रहे हैं? वह जोड़ कर फिर हम इस खयाल में पड़ रहे हैं कि हमको पता है कि घटना क्यों हो गई। फिर हम उसी भ्रम में पड़े जाते हैं। फिर वह जो मिस्टरी थी जिंदगी की, वह हमने फिर पोंछ दी। हमने कहा कि भगवान हैं। और हम फिर ज्ञाता बन गए। फिर हमको पता चल गया, कि हमको मालूम है कि भगवान हैं। एक बड़ी शक्ति है वह सब कर रही है। जिस भूल से हमें वह घटना बचा सकती थी, वह भूल हमने वापस जोड़ दी। फिर हम ज्ञानी बन गए हैं। वही भूल हमें घटना के पहले थी, वही भूल घटना के बाद हो गई।
तो घटना ने जो हमें एक सिचुएशन पैदा की थी, जहां हम अज्ञानी मालूम पड़ते हैं, हम उससे फिर बच गए। मेरा मतलब समझ रहे हैं न? यानी एक घटना ने हमें उस हालत में ला दिया था कि हमारा सारा अहंकार टूट जाना चाहिए था--किहम जानते हैं, वह नहीं टूटा। हमने नया अहंकार खड़ा कर लिया कि हम जानते हैं कि यह सब भगवान करवा रहा है। भाग्य करवा रहा है, विधि करवा रही है। यह सब उससे हो रहा है। हम फिर जानने लगे। तो घटना चूक गई, हमें कहीं ले जा सकती थी घटना। सारी जिंदगी के बाबत हमारा रुख बदल सकती थी।
तो मैं यह नहीं कहता कि वह ट्रैजिडी हो गई। वह ट्रैजिडी हुई या नहीं,
वह पता नहीं। लेकिन दूसरी जो बात हम सोच रहे हैं वह ट्रैजिडी है। वह, वह दो व्यक्तियों का बचना ट्रैजिडी होता है कि जाना, यह तय करना मुश्किल है। वे बचते तो ज्यादा दुख भोगते, ज्यादा पी.ड़ा भोगते कि चले गए तो सुख में गए। यह, यह तय करना मुश्किल है। यह बहुत मुश्किल है तय करना। इसको कोई तय नहीं कर सकेगा कभी। लेकिन ट्रैजिडी दूसरी है।
वह घटना हमें कहीं संकेत करती थी बड़े। उस घटना से हम चूक गए। उस संकेत
से हम चूक गए। हमने फिर जल्दी से ज्ञान की स्थिति वापस ग्रहण कर ली। एक धक्का दिया था घटना ने और हमको अज्ञानी बना दिया था। हम सम्हल कर खड़े हो गए कपड़े झाड़ कर। हमने कहा कि हमको पता है, इसमें कोई शक्ति काम कर रही है। हम फिर वापस उसी जगह खड़े हो गए जहां इस एक धक्के ने हमको हिला दिया था। और हो सकता था हम सदा के लिए हिले हुए रह जाते।

अगर आप सदा के लिए हिले हुए रह जाते तो आपकी जिंदगी बिल्कुल दूसरी हो जाती। क्योंकि तब आप कल तक जितना आयोजन कर रहे थे और सोचते थे कि मैं यह आयोजन कर लूंगा। वह आपको पता चलेगा कि मैं करूं जरूर, लेकिन फल की कोई फिकर न करूं। क्योंकि वह कुछ तय नहीं रहा मामला। यह, यह घटना जो, जो थी, तो करूं जरूर, लेकिन अब ऐसा न सोचूं कि इससे यह होगा जो मैं चाहता हूं। और आपको एक, एक ह्युमिलिटी का अनुभव होगा जिंदगी में।
इन घटनाओं का साफ अगर बोध हो जाए तो एक विनम्रता का अनुभव होगा कि हमारी कोई शक्ति नहीं, कोई सामर्थ्य नहीं। लेकिन वह ह्युमिलिटी का बोध नहीं हो पाएगा। माइंड की ट्रिक फिर काम कर देगी। और उसने कहा कि अरे हस्तीमल जी, यह सब हां, एक शक्ति है, जो सब चला रही है। और, और उस शक्ति से कुछ लेना-देना नहीं है इसमें। हस्तीमल जी वापस अपनी जगह खड़े हो गए। और वह फिर ऐट ईज हो गए। और कल जो कर रहे थे, वह फिर जारी रखेंगे। और उसमें कहीं कोई फर्क नहीं आएगा।
तो इसलिए मैंने पूछा कि वह दूसरा तो बिल्कुल ही अननेसेसरी बात आ गई। नेसेसरी उतना था। और अगर हम जीवन में जितना अनिवार्य है जीवन की सूचना, उतना ही लें तो हमारी जिंदगी रोज नये-नये तल पर उभरती चली जाती है। खुलती चली जाती है। और हमें अदभुत बातें दिखाई पड़नी शुरू होती हैं जो हमें कभी भी दिखाई नहीं पड़ सकेंगी। क्योंकि वह ज्ञान हमें अंधा बना देता है।
अब जैसे यही है, हमने मान लिया कि ट्रैजिडी हो गई। यह हमने सोचा- विचारा नहीं। क्योंकि हम मान कर बैठे हुए हैं कि दो जवान, अभी शादी हुई सात दिन बाद और, और मर गए। तो बड़ी ट्रैजिडी हो गई। यह हम बिल्कुल मान कर बैठे हुए हैं। यह हमने सोचा नहीं कि ट्रैजिडी क्यों हो गई? यह ट्रैजिडी क्यों है? कौन कह सकता है कि सात दिन उन्होंने खूब प्रेम किया? और अगर ये सत्तर साल जीते तो दोनों सत्तर साल की कलह के बाद मरते। और सात दिन में ये दोनों प्रेम के साथ मर गए हैं। और इनका अंतिम क्षण प्रेम से भरा हुआ था। और सत्तर साल बाद वे सिर्फ क्रोध और घृणा से और द्वेष से भरे हुए होते--कौन कह सकता है? इन दो व्यक्तियों के साथ जो हुआ है, ये दो व्यक्ति सात दिन में इतने प्रेम से भरे थे, सत्तर साल में भी इतने प्रेम से भरे रहते--यह कौन कहता है? सत्तर साल में क्या नहीं हो जाते इनके बीच के फासले, कितनी दरार नहीं हो जाती, कितने झग.ड़ नहीं लेते, कितने दुश्मन नहीं हो जाते--कौन कह सकता है? ये दोनों प्रेम में थे, और प्रेम में चले गए। और प्रेम में जाना एक अदभुत अनुभव है; और घृणा में जीना भी एक, एक विकृत अनुभव है।
जो हो गया है उसके बाबत हम बहुत जल्दी नतीजे कैसे ले लेते हैं कि वह दुखद हुआ या सुखद हुआ? नतीजे हम पहले से लिए हुए हैं। घटना सिर्फ उसके अनुकूल पड़ जाती है, हम नतीजे ले लेते हैं। और फिर वह जो ह्यूमिलिटी हममें पैदा होनी चाहिए, वह नहीं पैदा होती। वह जो विनम्रता हममें पैदा होती है, क्योंकि जीवन इतना रहस्यपूर्ण है कि उसके बाबत निर्णायक होने का हमें सच में कहीं भी कोई हक नहीं है। कोई भी हक नहीं हमें निर्णायक होने का।
जीवन की घटना के सामने सिर्फ मौन खड़े रह जाने के सिवाय कोई उपाय नहीं है। कि हम चुप खड़े रह जाएं और देख लें कि यह हुआ है। क्या हो गया है इस पर जो जजमेंट हम लेते हैं? क्योंकि ट्रैजिडी, हमने कहा कि जजमेंट हमने ले लिया। हमने यह मान लिया कि इनका जीना हर हालत में सुखद था, इनका मर जाना हर हालत में दुखद है। यह खतरनाक निर्णय है। क्योंकि जो लोग जी रहे हैं, उनको देख कर यह बिल्कुल पता नहीं चलता कि उनका जीना सुखद है। मरने वालों का तो हमें पता नहीं, लेकिन जो लोग जी रहे हैं, उनको देख कर ऐसा कहीं भी पता नहीं चलता कि उनका जीना कोई सुखद है। तो मरने वाला दुखद हैः यह निर्णय हमारा इस निर्णय पर खड़ा हुआ है कि जीने वाला सुख में है। और यह निर्णय ही बिल्कुल भ्रांत मालूम होता है।
अगर मां के पेट में बच्चा नौ महीने रहता है। अगर पेट की नाड़ियां, नसें, हड्डियां, पसलियां सब अगर सचेत हों, कांशस हों तो बच्चे का जन्म उनको ऐसा लगता होगा कि गया बच्चा। गया, मर गया। क्योंकि जहां बच्चा था, वह उनसे विलीन हो गया। बच्चा जब पैदा हुआ तो पेट की जो नौ महीने की व्यवस्था थी, वह अगर सोचती होगी तो इसके सिवा क्या नतीजा लेती होगी कि बच्चा गया बेचारा।

ट्रैजिडी हो गई। स्वाभाविक है। क्योंकि वह बच्चा उनकी तरफ से तो गया, बियांड हो गया। अब उन्हें पता नहीं कि वह क्या हुआ, और क्या नहीं हुआ।
हम सोचते हैं कि एक आदमी मृत्यु में गया, और हम सोचते हैं ट्रैजिडी हो गई। गया आदमी। हम नहीं जानते कि वह कहां गया? वह उसका नया जन्म है, वह किसी नये तल पर गया। क्या हुआ, हमें कुछ भी पता नहीं। और जब तक हमें पता नहीं हम कैसे निर्णायक हो जाते हैं कि जो हो गई, वह ट्रैजिडी है? और मौत के संबंध में चूंकि हमने यह मान ही रखा है, कि मौत ट्रैजिडी है ही। उसके इतने नुकसान हुए हैं जिसका कोई हिसाब नहीं है। क्योंकि उसकी वजह से मौत के प्रति एक भय पैदा हो गया है। एक घबड़ाहट पैदा हो गई है। और यह मजे की बात है राव साहब कि मौत के प्रति हम जितनी घबड़ाहट से भर जाएंगे, जीना हमारा उतना ही मुश्किल हो जाएगा।
जीने के लिए मौत का एक निरंतर अभय का भाव चाहिए। लेकिन जो ट्रैजिडी है, उससे आप अभय कैसे हो सकते हैं। यह, यह भाव चाहिए। लेकिन मौत के प्रति हमारा भय है एक। हम भय की सूचना दे रहे हैं। हमको पता नहीं है यह कि जो हो गया, वह बुरा हुआ है। हां, बुरा हो गया है। मतलबः मरना बुरा होना है, और जीना अपने आप में एक, एक सुखद घटना है। तो इसका मतलब यह हुआ कि हम अपनी जाहिर कर रहे हैं कि हम मरने से डरते हैं। और जीना, जीना चाहते हैं, जीना चाहते हैं, जीना चाहते हैं।
और मजा यह है कि जो आदमी मरने से जितना डर रहा है, वह उतना ही मुश्किल
से जी सकता है। उसका जीना कभी सुख हो ही नहीं सकता। जीना केवल उन लोगों का सुख हो सकता है जो प्रतिपल मौत को अंगीकार करने को तैयार हैं। जिनके लिए मौत भी एक सुख है, वे लोग जिंदगी को सुख बना लेते हैं। चूंक हमने मान रखा है कि मौत एक दुखद घटना है तो बचपन से ही वह हमारे दिमाग में प्रवेश हो जाता है--कि मौत। तो मौत से जीवन भर हम भयभीत, डरे हुए, कंपे हुए खड़े रहते हैं। और यह कंपन इतना ज्यादा है कि इस कंपन की वजह से हम जी नहीं पाते। क्योंकि जीने के लिए जैसा निष्कंप मन चाहिए वह मौत से डरे हुए आदमी का कभी नहीं हो पाता। वह पहले यह सोचता है कि कहीं मर तो नहीं जाऊंगा। तो काम में हाथ रखना है--कहीं नुकसान तो नहीं हो जाएगा, कहीं यह तो नहीं हो जाएगा, तब आगे बढ़ना है।
तो न तो वह प्रेम कर पाता है, क्योंकि आप जान कर हैरान होंगे कि प्रेम करीब-करीब मरने जैसी घटना है। अगर दो शब्द पर्यायवाची हैं, तो प्रेम और मौत बिल्कुल पर्यायवाची है। एक आदमी को प्रेम करने का मतलब है कि करीब-करीब मर जाना। इतना अपने को शून्य और समाप्त कर लेना। तो मरने से डरने वाला आदमी, कभी प्रेम नहीं कर पाता। क्योंकि प्रेम में उसको पूरी तरह मिटना पड़ता है। तो विद एंड करता है, रोकता है अपने को कि मैं मर जाऊंगा। मौत से डरा हुआ आदमी कभी प्रेम नहीं कर पाता, मौत से डरा हुआ आदमी कभी ध्यान नहीं कर पाता। क्योंकि ध्यान फिर मरने की घटना है। वह फिर एक इनर डेथ है जहां जाकर फिर मरने जैसा हो जाता है, कि गया। वह प्रेम से भी बड़ी घटना है मरने की। तो वह मृत्यु से डरा हुआ आदमी कभी ध्यान नहीं कर पाता; वह मृत्यु से डरा हुआ आदमी कभी सत्य के करीब नहीं खड़ा हो पाता। क्योंकि सत्य के करीब खड़े होने का मतलब मिट जाना है। अगर अपने को बचाना है तो हमेशा असत्य के करीब खड़े रहो।
इसलिए असत्य हमेशा बचाव करता हुआ मालूम पड़ता है। और आदमी जो असत्य बोलता है वह इसलिए कि असत्य बचाव करता है। और सत्य? तो सत्य जमीन से तोड़ देगा, मकान गिरा देगा, आग लगा देगा--क्या होगा, कुछ नहीं कहा जा सकता।
वह जो मरने को तैयार है, वही सत्य के साथ भी खड़े होने को तैयार होता है। वह जो कबीर ने कहा हैः जो घर फूंके आपना, चले हमारे साथ। वह, वह सत्य की आवाज है। वह कहता हैः अपना घर जलाने को तैयार हो, मरने को तैयार हो--तो आओ। तो हमारे साथ आ जाओ। और इतनी हिम्मत न हो, तो फिर असत्य के साथ रहना ठीक है। वह घर बचा देगा, मकान बचा देगा, सब बचा देगा।
तो, तो मेरी अपनी दृष्टि यह है कि हम जो छोटे से निर्णय भी लेते हैं, वे हमारे पूरे व्यक्तित्व की गहराइयों तक स्पर्श करते हैं, और प्रभावित करते हैं। और मौत जैसी बड़ी घटना के सामने हम क्या निर्णय ले सकते हैं? हमें

चुपचाप खड़े हो जाना चाहिए। एक अदभुत घटना घट रही है मौत की। हम, इतना अननोन आ रहा है वहां जिसको हम बिल्कुल नहीं जानते। इतना अज्ञात प्रवेश कर रहा है। उस वक्त भी हम निर्णय ले लेते हैं, और गलती हो जाती है। और अगर एक बात हमारे मन में यह बहुत स्पष्ट हो जाए पूरे समाज के मन में, तो मौत का भय अगर हम खत्म कर सकें, और मौत अनिवार्य रूप से दुखद है यह भाव चला जाए, तो हम जीने की क्षमता, वह इंटेंसिटी ऑफ लिविंग पैदा कर लेंगे। और नहीं तो वह हम पैदा नहीं कर सकते हैं कभी। वह कभी पैदा नहीं हो सकती।
नीत्शे कहता था कि सिर्फ वे ही लोग जीते हैं जो डेंजरसली जीते हैं। और डेंजरसली जीने का, खतरे में जीने का और कोई मतलब नहीं होता है। यह नहीं कि आप पहाड़ पर तलवार लेकर जीते हैं। जो आदमी तलवार लिए हुए है वह खतरे में जी ही नहीं रहा है। खतरे की सुरक्षा उसने तलवार से की हुई है। वह जो है, सेफ्टी-मेजर है। उस, खतरे-वतरे में नहीं जी रहा है वह। खतरे में जीने का मतलब यह है कि जो आदमी प्रतिपल अज्ञात में जाने को तैयार है, क्योंकि अज्ञात सबसे बड़ा खतरा है।
और मौत का हममें जो डर है वह यह थोड़े ही डर है कि हमको पता है मौत बुरी है। मौत अज्ञात है। सबसे बड़ा अज्ञात है जीवन में मौत। वह भर एक ऐसी चीज है जिसको जानने का कोई उपाय नहीं, बिना मरे। और, और, और बिना जाने हम मरना नहीं चाहते। क्योंकि हमें पक्का हो जाना चाहिए कि, कि वह क्या है? हम जान लें तो हम मर भी जाएं। और बिना मरे हम जान नहीं सकते हैं। इसलिए मौत सबसे अजीब हालत की तरह सामने खड़ी रहती है, जीवन भर। और इसलिए हमने उसको सबसे बड़ा खतरा बना रखा है। क्योंकि हम उसे बिना जाने, हममें प्रवेश करना पड़ेगा।
तो मैं यह कहता हूं कि हम निर्णय न लें। और जब मौत की घटना घटे तो हम बहुत मौन और शांति से उस घटना को पूरे प्राणों तक प्रवेश करने दें। जब हमारे निकट का कोई मर जाए तब बहुत लाभ हो सकता है उनका, जो अभी जिंदा हैं। क्योंकि निकट के व्यक्ति के मरने के कारण उनके बहुत गहराई तक यह घटना स्पर्श कर सकती है। यानी करीब-करीब उन्हें अपने मरने का थोड़ा सा अनुभव इस घटना से हो सकता है। क्योंकि हमारा एक हिस्सा मर गया। मगर हम उससे बच जाते हैं, हम निर्णय ले लेते हैं और निपट जाते हैं। निर्णय लिया कि बात खत्म हो गई। वह हमारे भीतर नहीं घुस पाती फिर। हमारा पुराना निर्णय फिर मजबूत हो जाता है। और वह घटना हमारे सारे निर्णय को गिरा देती, बदल देती, नया कर देती। वह मौका हम नहीं आने देते।
मृत्यु जगत में सबसे रहस्यपूर्ण, सबसे अनजानी, और इसीलिए सबसे ज्यादा डिवाइन, इसलिए सबसे ज्यादा दिव्य घटना है। और उसके पास हमें अत्यंत पवित्रता से भर कर खड़ा होना चाहिए। और अगर हम खड़े हो सकें एक मौत के पास भी, तो आपकी जिंदगी पूरी बदल जाएगी।
लेकिन न हम सोचते, न हम विचारते। हमारे सब बंधे हुए निष्कर्ष हैं, वे
हम दोहरा लेते हैं। और उनके दोहरा लेने की वजह से बोथली हो जाती है बात। वह, वह खत्म हो गई। तो मैं नहीं कहता कि... ट्रैजिडी क्यों कहें? इतना ही कहें कि वे दो थे, और सात दिन बाद विलीन हो गए। और हम नहीं जानते हैं कि कहां विलीन हो गए? और क्या हुआ, और क्या नहीं हुआ? इतना ही कहें। इससे आगे इंच भर जाने की जरूरत नहीं।
सुकरात को जिस दिन वह जहर दिया जाने को था, तो उसके एक शिष्य ने, प्लेटो ने उसको कहा कि आप भयभीत नहीं हैं मरने से? सुकरात कहने लगाः भयभीत? मैं बहुत आतुर हूं। क्योंकि जिंदगी भर से जिसकी प्रतीक्षा करते थे, वह घड़ी आज पास आई जाती है। और मैं अपने परिपूर्ण होश में हूं। इसलिए कम लोगों को मौत का जो मजा मिला होगा, वह मुझे मिल जाएगा। कि न अभी मैं बीमार हूं, न अभी मैं बेहोश हूं। मैं अपने परिपूर्ण होश में हूं। मैं अपनी पूरी बुद्धिमत्ता में हूं। और मौत आ गई है भाग्य से। तो मैं आतुर हूं। देखना है, मौत क्या है?
तो उनके शिष्यों ने कहा कि आप कैसी बातें कर रहे हैं? हम तो रो रहे हैं
और दुखी हो रहे हैं। उन्होंने कहा कि तुम बिल्कुल पागल हो, दो ही बातें हो सकती हैं। अभी तक जो हम जानते हैं, दो ही बातें हो सकती हैं--या तो मैं मर ही जाऊंगा, बिल्कुल मर ही जाऊंगा। और तब दुख का कोई कारण नहीं। क्योंकि मैं

ही नहीं बचा तो मुझे कोई दुख नहीं हो सकता--आगे। तो तुम क्यों दुखी होओगे? जिंदा रहता तो मैं दुखी हो सकता था, दुख की संभावना थी--क्योंकि मैं था। तो तुम दुखी भी हो सकते थे। लेकिन मैं मर ही गया, बिल्कुल मर गया, अब मैं हूं ही नहीं--तो अब दुख तो हो ही नहीं सकता। मैं दुख के बाहर हो गया। मैं अस्तित्व के ही बाहर हो गया। तो तुम खुश होना, आनंदित होना कि सुकरात न रहा। अब उसके दुख की कोई संभावना न रही।
और दूसरी संभावना यह हो सकती है कि मैं बचूंगा। मौत को भी पार कर जाऊंगा और मैं रहूंगा, तब तो दुख का कोई कारण नहीं। क्योंकि जिसको पार कर गया मैं, और मैं बचा, तो जिसको मैं पार कर गया वह मैं था ही नहीं। तभी तो मैं बच गया हूं। वह मैं कभी नहीं था, शरीर या कुछ, मैं बच जाऊंगा। तब तुम्हें दुखी होने का कोई कारण नहीं है। क्योंकि दो हालतें हैंः या तो सुकरात बचेगा, या नहीं बचेगा। दोनों हालत में तुम खुश होना। और तीसरी हालत का हमें पता नहीं हैं। अगर वह होगी तो वह मर कर ही जानी जा सकती है। और वह सौभाग्य मुझे मिल रहा है कि मैं मर रहा हूं, वह जानने का मुझे मौका मिल रहा है। मैं अपने पूरे होश में मर रहा हूं। पूरी समझदारी में मर रहा हूं।
जब जहर पीसा जाने लगा, तो बाहर जहर पीसा जा रहा है और सुकरात लेटा है
और उसके मित्र इकट्ठे हैं। वह बार-बार पुछवाता है कि देखो, बहुत देर लगा दी। जहर पीसने में बहुत देर लगा रहा है वह आदमी। तो उस आदमी ने कहा कि तुम पागल हो गए हो। वह जहर पीसने वाला, कि मैं तो देर लगा रहा हूं कि तुम थोड़ी देर और... कि जितनी देर लग जाए। इतना अच्छा आदमी है। तुम थोड़ी देर और जी लो। तो मैं तो देर लगा रहा हूं, और तुम बार-बार पुछवाए चले जा रहे हो कि समय हो गया।
तो सुकरात ने कहा कि पागल, जो आ रहा है उसके स्वागत को अगर हम तैयार न
हो सकें, और अगर आतुर प्रतीक्षा से उसके द्वार पर खड़े न हो सकें तो वह आ भी जाएगा, हम उसे जान भी न पाएंगे। क्योंकि हम आंख बंद किए और छिपे हुए पड़े रहेंगे। वह आ भी जाएगा और गुजर भी जाएगा और हम उसे जान भी न पाएंगे। क्योंकि जानने के लिए खुली आंख चाहिए। आतुर प्रतीक्षा चाहिए। एक अवेटिंग चाहिए, अवेटिंग, एक प्रतीक्षारत मन चाहिए।
तो प्रतीक्षारत मन ओपन होता है, खुला होता है। जैसे हम एक मेहमान की प्रतीक्षा कर रहे हैं तो हम द्वार खोल कर रख देते हैं। हम इतनी भी प्रतीक्षा नहीं करना चाहते कि वह आए और दरवाजा खटखटाए, और थोड़ी देर हो जाए। हम द्वार खोल कर रख देते हैंः कोई आने को है, द्वार खुला है। हमारी आंखें द्वार पर लगी हैं कि कहीं ऐसा न हो जाए, वह आए और लौट जाए। कहीं ऐसा न हो कि खट-खट न सुनाई पड़े, पैर की आवाज न सुनाई पड़े। कहीं कुछ भूल-चूक न हो जाए। तो हम द्वार खुला रखते हैं। द्वार पर बैठ जाते हैं और आंख गड़ा लेते हैं, कोई आ रहा है। और ऐसे भाव में जब वह आता है तो हम परिचित हो पाते हैं। नहीं तो हम परिचित भी नहीं हो पाते।
तो मौत के लिए भी ऐसी ही प्रतीक्षा से भरा हुआ मन चाहिए। लेकिन मौत के प्रति अगर बुरा खयाल है तो यह कैसे हो सकता है? तो हम हमेशा पीठ किए हुए हैं और आंख बंद किए हुए हैं। हम मौत में घसीटे जाते हैं, हम मौत में जाते नहीं। सब यहां इस तरफ घसीट रहे हैं हम अपने को, और मौत उधर घसीट रही है। तो हम आंख बंद किए हुए और बेहोश मौत में जाते हैं--फिर चूक गए।
मेरी अपनी समझ यह है कि एक बार आदमी मौत में जानता हुआ प्रतीक्षा से चला जाए। फिर उसे पता चल जाता है कि न जन्म है, न मौत। एक बार वह पूरे खुले हृदय से चला जाए तो बात खत्म हो गई। परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया। लेकिन हम चूंकि आंख बंद किए परीक्षा से गुजर जाते हैं--फिर जन्म है, फिर मरण है। क्योंकि उस परीक्षा से गुजरना ही पड़ेगा, मौत को जानना ही पड़ेगा। क्योंकि मौत को बिना जाने सत्य को जानने का कोई उपाय नहीं। और मौत के भय के कारण जीवन में भी जो अनुभव मौत के करीब हैं, उनसे हम बच जाते हैं।
अब मेरी अपनी समझ है कि मौत से डरने वाला आदमी अहंकार से कभी नहीं बच सकता। बच ही नहीं सकता। सच यह है कि अहंकार जो है, वह मौत के खिलाफ लड़ाई का बिंदु है। मैं बचा रहूं, और कुछ भी न मिटे। मैं बचा रहूं। सब मिट जाए, लेकिन मैं न मिटूं। लेकिन जिस आदमी को मौत भी स्वीकृत है और उसे दिखाई पड़ता है

कि--मौत है। और वह जीवन का अंत नहीं; जीवन की परिपूर्णता है। सच तो यही है।
एक बीज हमने डाला है, पौधा बन गया है, फूल आ गए हैं, फिर फूल कुम्हलाने लगे और गिरने लगे।
तो यह फूल का कुम्हलाना और गिरना, कहीं बाहर से नहीं आ रहा है। यह बीज
की चरम अवस्था है। यह आखिरी अवस्था है उसकी। यहां तब बीज विकसित होता है। यह उसकी परिपूर्णता है बीज की, जहां से बिखरना शुरू होता है। जहां से अंकुर निकलना शुरू हुआ था वह शुरुआत थी, अभिव्यक्ति थी। जहां फूल गिरते हैं वहां पूर्णता है, अभिव्यक्ति है।
तो मौत हमारे जीवन का अंत नहीं है, जीवन की पूर्णता है। और पूर्णता के प्रति यह जो विरोध से भरा हुआ है, वह कैसे जी सकेगा? जीएगा कैसे? वह खुद के पूरे होने से भी डरा हुआ है, वह घबड़ाया हुआ है कि कहीं मैं पूरा न हो जाऊं। क्योंकि पूरा होने का मतलब ही यही है। तो इसलिए मैं कहता हूं कि इसको ट्रैजिडी क्यों कहेंगे। ट्रैजिडी मत कहें। इतना ही कहें कि एक मिस्टरी है। बस इससे ज्यादा हम कुछ कहने के हकदार नहीं हैं।

प्रश्नः (ध्वनि-मुद्रण अस्पष्ट)

नहीं, यह मैंने नहीं कहा। आप फिर मेरी बात नहीं समझे। अगर कोई कहता हैः डेथ आ गई और अच्छा हुआ। तो फिर उसने निर्णय लिया, यह मैंने कहा नहीं।

प्रश्नः (ध्वनि-मुद्रण अस्पष्ट)

मैंने यह नहीं कहा कि, मेरी बात सुन लें, न, न, मेरी बात सुन लें, मैंने
यह नहीं कहा कि वह कॉमेडी है, मैंने कहा कि वह ट्रैजिडी नहीं है। मैं जो कह रहा हूं, आपकी बात समझा मैं। उसके दो तीन हिस्सों में विचार करें। पहला तो यह कि मैंने यह नहीं कहा कि डेथ आ गई तो अच्छा हुआ। यह मैंने भूल कर भी नहीं कहा। मैंने इतना कहा कि हम निर्णय लेने के हकदार नहीं कि अच्छा हुआ कि बुरा हुआ। हमें कुछ भी पता नहीं कि क्या हुआ।

प्रश्नः (ध्वनि-मुद्रण अस्पष्ट)

इसको थोड़ा समझिए। मैं समझ गया आपकी बात को। मैंने जो कहा वह खयाल में नहीं आया है। नहीं तो यह जो आप कह रहे हैं दूसरी बात, यह नहीं कही जा सकती। जैसे मैंने यह कहा कि जो व्यक्ति मृत्यु को भी जीवन की अनिवार्य पूर्णता मानता है। मृत्यु के भय से बच जाता है, एक बात। इसका मतलब यह नहीं है कि वह बीमार होने की आकांक्षा से भर जाता है। इसका मतलब यह भी नहीं है कि वह आत्मघात करने के लिए उत्सुक हो जाता है। इसका मतलब यह भी नहीं है कि वह बीमार पड़ेगा तो दवा नहीं करेगा। इसका यह कोई भी मतलब नहीं है। इसका यह कोई भी मतलब नहीं है।
इसका मतलब कुल इतना है कि वह आदमी मृत्यु से भयभीत नहीं है। और मृत्यु आएगी तो उसके लिए आनंद से अपने द्वार खोलने को तैयार है। लेकिन बीमारी मृत्यु नहीं है। न लंगड़ा हो जाना मृत्यु है, न आंखें फूट जाना मृत्यु है। ये केवल जीवन की पंगुताएं हैं। और जो आदमी मृत्यु तक को पूरे मन से स्वीकार करने को राजी है, वह, वह जीवन को तो पूरे मन से स्वीकार करेगा ही। यह मेरा कहना है कि बीमारी, लंगड़ा, खाट पर पड़ा हुआ आदमी, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि ये ट्रैजिडी.ज नहीं है, बीमारी ट्रैजिडी है। क्योंकि वह न मरने देती है और न जीने देती है। वह किन्हीं विकल्पों पर नहीं जाने देती। बीमारी को मैं ट्रैजिडी कहता हूं। क्योंकि बीमारी जीने की क्षमता को क्षीण करती है। सच तो यह है कि बीमारी मरने तक की क्षमता को क्षीण करती है। बीमार आदमी उस शान से नहीं मर पाता जिस शान से स्वस्थ आदमी मरता है। और परिपूर्ण स्वस्थ आदमी मरने के जिस आनंद को अनुभव करता है, बीमार आदमी मरने के भी उस आनंद को भी अनुभव नहीं करता। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि फूल का कुम्हला जाना... मैं यह कह रहा हूं कि फूल है, पौधा है, उसको पानी ही न मिले,

यह ट्रैजिडी है; उसको खाद ही न मिले, यह ट्रैजिडी है; एक जिंदा आदमी को खाना न मिले, यह ट्रैजिडी है; वह बीमार रहे, यह ट्रैजिडी है।
जिंदा आदमी पूरे स्वास्थ्य से जीए और जिंदा आदमी पूरे स्वास्थ्य से मरे, वह मैं नहीं कह रहा। यह भी मैं नहीं कह रहा हूं कि जहां से दो लोग बह गए हैं नदी में, वहां आप ब्रिज मत बनाएं। यह भी मैं नहीं कह रहा। यह मैं नहीं कह रहा हूं कि वहां आप ब्रिज न बनाएं, दो आदमी बह गए हैं।
मैं यह कह रहा हूं कि ब्रिज भी आप बना लें और ब्रिज भी गिर सकता है और आदमी मर सकते हैं। आदमी के मरने के बाबत ब्रिज बना लेने के बाद भी हमें निर्णय लेना पड़ेगा कि हम क्या निर्णय लें और आदमी मरेंगे। चाहे ब्रिज आप बना लें, और चाहे न बना लें। अभी नदी के बहने से मर गए, कल ब्रिज के टूटने से मर सकते हैं। कल ब्रिज पर आते हुए वाहन के टकराने से मर सकते हैं। और हम सारे उपाय कर लें कि आदमी को मरने की बाहर कोई जरूरत न रह जाए, तो आदमी भीतर से मरेगा।
मरना कोई आकस्मिक घटना नहीं है कि सिर्फ एक्सीडेंट से आदमी मरेगा। कितने लोग एक्सीडेंट से मरते हैं? उनकी संख्या तो बहुत न्यून है। हम सारे एक्सीडेंट रोक लेंगे, और रोकने चाहिए। क्योंकि एक्सीडेंट जो है, एक्सीडेंट जो है, वह, वह जीने नहीं देता ठीक से। मरने के खिलाफ आप कोई रुकाव नहीं कर सकेंगे। जीना ठीक से हो जाए इसके लिए आप व्यवस्था कर सकते हैं; मरने के लिए तो आपको यह व्यवस्था करनी ही पड़ेगी कि मरने के प्रति हम क्या रुख लेते हैं। वह अंतिम व्यवस्था हमें करनी पड़ेगी। आदमी दो सौ साल जीए तो मरेगा, तीन सौ साल जीए तो मरेगा।
यह सवाल नहीं है कि हम कितनी देर जीने के बाद मरेंगे। मृत्यु वहां है
और मृत्यु के बाबत हमारा कोई एटिट्यूड होना चाहिए कि--क्या है? ट्रैजिडी का एटिट्यूड अगर है तो आप उससे भयभीत होकर जीएंगे। और मेरा कहना हैः जो फियर में जी रहा है, आपको दिखाई नहीं पड़ रहा ऊपर से कि अभी तो हमको कोई मौत का डर नहीं है। हम यहां बैठे हैं, हम मजे से जी रहे हैं। लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि अगर मौत का भय भीतर है तो आप यहां भी ठीक से नहीं बैठे हुए, भीतर एक कंपन जारी है। क्योंकि मौत किसी भी क्षण हो सकती है। मकान गिर सकता है, भूकंप हो सकता है, बाढ़ आ सकती है। कुछ भी हो सकता है। बीमारी आ सकती है, कैंसर आ सकता है।
अगर मौत का एक, एक बुनियादी भय भीतर है तो जीने की आपकी क्षमता को वह पंगु कर देता है, आप डरे-डरे जीते हैं। मौत का भय अगर भीतर बिल्कुल नहीं है, और हम मौत के लिए भी जीवन की तरह ही हमने स्वीकार किया है, तब आप परिपूर्णता से जीते हैं। टोटल लिविंग पैदा होती है। तब आप किसी भी क्षण में पूरी तरह जीते हैं, क्योंकि जो एक भय था वह तो समाप्त हो गया। तो आप मरने का तो कोई सवाल रहा नहीं है। मृत्यु है, और उस मृत्यु को जानने के लिए भी हमारी आतुरता है, पहचानने के लिए हमारी आतुरता है। वह भी एक अज्ञात क्षण है, उसे भी हम जानेंगे और जीएंगे।
मौत जिंदगी से विरोध में हमने खड़ी कर ली है तो हम कष्ट में पड़ते हैं। मौत जिंदगी का अनिवार्य हिस्सा है। और, और अगर हम गौर से देखें तो बच्चा होना एक सुख है, बूढ़ा होना कम सुख नहीं है। बूढ़े की अपनी शान है, अपना गौरव है जो किसी बच्चे को कभी नहीं मिल सकता।
रवींद्रनाथ एक बात कहे हैं कि जब, जब मेरे पिता के बाल सफेद हो गए हैं, सारे बाल शुभ्र हो गए हैं। और वह ऐसे दिखाई पड़ने लगे कि वहां खड़े हो गए हैं जहां जीवन समाप्त होगा और मौत आएगी--तब मैंने जो सौंदर्य उनमें देखा था, वह मैंने कभी किसी में नहीं देखा। वे उनके शुभ्र बाल ऐसे लगने लगे थे कि जैसे कि हिमालय की किसी चोटी पर बर्फ हो। वह इतने शांत दिखाई पड़ते थे और उनकी आंखें इतनी निर्मल हो गई थीं और वे किसी अज्ञात की ऐसी प्रतीक्षा से भरे थे; किसी आहट से... कोई आहट जो सुनाई पड़ने वाली थी एक बॉर्डर लिंक पर खड़े होकर; एक सीमांत पर खड़े होकर नई दुनिया शुरू होने वाली हो। वह सब उससे ऐसे भाव से भरे थे कि जैसा सौंदर्य उनमें देखा है, फिर कभी नहीं देखा।
तो रवींद्रनाथ ने लिखा है कि अगर आदमी ठीक से जीए और ठीक से मरे तो उसके जीवन में परिपूर्ण सौंदर्य प्रकट होता है। ठीक से जीना ही काफी नहीं

है, ठीक से मरने का दृष्टिकोण होना चाहिए। तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप वहां ब्रिज न बनाएं, ब्रिज वहां बनाएं और बहुत बना लें, अच्छा बना लें, वह जरूरी है बना लेना। लेकिन इससे फर्क नहीं पड़ता कि मौत के बाबत हम दृष्टिकोण लें कि न लें। मेरा अपना कहना यह है कि मृत्यु को ट्रैजिडी और दुखद मान लेना जीवन को विषाक्त करना है। मृत्यु को भी उसके ठीक प्रॉपर पर्सपेक्टिव में रखने की जरूरत है कि वह है वहां और एक अनिवार्य तत्व है। और अगर है, और अनिवार्य है तो हम क्या रुख लें। पहली तो बात यह है कि हमें उसके बाबत कुछ भी पता नहीं है कि क्या होता है मृत्यु के पीछे? क्या होगा मृत्यु के बाद? हमें कुछ भी पता नहीं है। बीज टूटता है तो बीज तो मर जाता है। और बीज अगर मौत को जानता होगा तो दुखी होता होगा कि मैं मर रहा हूं, लेकिन पौधा पैदा हो जाता है। उसे पता भी नहीं कि पौधा पैदा हुआ है। फिर जो आप यह कहते हैं, वह भी ठीक लगता है देखने में ऊपर से कि सोक्रटीजका मरना तो एक बात है कि एक बूढ़ा आदमी मर रहा है। दो जवान लोग मर गए तो हमें यह लगता है, ये असमय में मर गए। अनटाइमली डेथ है, इसलिए ट्रैजिडी है। कि इसलिए ही तो कहना पड़ेगा कि ये तो अभी जीने के दिन थे, अभी मर गए। अब यह भी थोड़ा विचारणीय है, यह भी थोड़ा विचारणीय है कि हम किस-किस डेथ को अनटाइमली कहें। मौत के भय से डरे हुए आदमी को सारी डेथ अनटाइमली मालूम होगी। क्योंकि
जो आदमी मौत से डरा हुआ है, वह नब्बे साल का हो जाए तो भी वह यह नहीं कहता कि डेथ टाइमली है। वह यह नहीं कहता कि अब समय पर मौत आ रही है। अभी भी जीने की आकांक्षा उतनी ही प्रगाढ़ है। हमको लगता है कि वह बूढ़ा हो गया है, उसके जीने की आकांक्षा तो उतनी ही प्रगाढ़ है। अभी उसकी आकांक्षा में कोई फर्क नहीं पड़ा है, अभी वह वैसी की वैसी है। क्योंकि भीतर के तल पर आदमी कभी भी बूढ़ा नहीं होता है। शरीर बूढ़ा होता है और वह जो भीतर कांशसनेस है, जो चेतना है वह हमेशा जवान बनी रहती है। वह कभी बूढ़ी नहीं होती। वह हमेशा जवानी ही मांगती रहती है। उसकी मांग भी यही रहती है। अभी भी वह धन मांगती है, प्रेम मांगती है, आदर मांगती है, वह सब मांग रही है। अभी भी वह जीना मांगती है। उस तल पर अगर हम गौर से देखेंगे तो बीस साल के आदमी में और साठ साल के आदमी में कोई फर्क नहीं होता। फर्क एक ही हो सकता है और वह फर्क जो मैं कह रहा हूं वह हो सकता है। बीस साल के आदमी ने अपनी मौत के बाबत कोई भी दृष्टिकोण नहीं लिया। अभी मौत के बाबत उसने सोचा भी नहीं था और साठ साल के आदमी ने मौत के बाबत कुछ सोचा होगा। उसने मौत के बाबत भी कोई पर्सपेक्टिव तय किया होगा। इतनी ही कमी और फर्क हो सकता है।
लेकिन अगर जिस समाज की मैं बात कर रहा हूं कि एक-एक बच्चे को हम मृत्यु
के भय से मुक्त करें, वह मृत्यु के बाबत भी एक, एक सम्मान का, समादर का, एक अज्ञात के स्वीकार का भाव में--तो बीस साल का जवान भी मौत के लिए उतना ही तैयार होगा जितना अस्सी साल का बुड्ढा अभी तैयार नहीं है। वह, वह तैयारी बिल्कुल भीतरी है।
फिर हम जिन चीजों को जीवन का सुख कहते हैं, उनकी वजह से हम तोलते हैं। हमको लगता है कि अभी यह तो कमाई करता, अभी मकान बनाता, अभी गाड़ी खरीदता, अभी इसके बच्चे होते, अभी यह जीता, हम यह सब सोचते हैं। यह सब नहीं कर पाया यह आदमी। इसलिए ट्रेजडी हो गई। अगर हम गौर से देखें तो हमें जिंदगी चली गई, इससे कोई फर्क नहीं पड़ रहा है। हमें फर्क यह पड़ रहा है कि जिंदगी जो करती वह आदमी यह नहीं कर पाया है। और बड़े मजे की बात यह है कि जो लोग मकान बना लेते हैं, बच्चे पैदा कर लेते हैं, धन इकट्ठा कर लेते हैं, उन्होंने क्या कर लिया है इस विषय में? ऐसा क्या हो गया है जिनकी वजह से उन्होंने सुख पा लिया?
और एक आदमी ने, नहीं कमा पाया और नहीं मकान बना पाया और नहीं गाड़ी खरीद पाया तो ऐसी कौन सी एसेंशियल बात छूट गई। सारभूत क्या छूट गया इस आदमी से? यह भी हो सकता है, और जैसा मैंने कहा, रवींद्रनाथ ने एक उपन्यास लिखा हैः उसमें एक युवक है। वह एक युवती को प्रेम करता है। वह युवती विवाह करने के लिए बहुत डरी हुई है और वह युवक है कि एकदम आतुर है कि विवाह कर लूं। तो उस युवती ने उस युवक को कहा है कि तुम पीछे पड़े हो लेकिन मैं डरती हूं। मैं डरती हूं इसलिए कि अभी तो कुछ करने को शेष है, अभी विवाह करने को शेष है। और

उसकी थिरक और उसकी पुलक और उसका खयाल और सपने। कल विवाह कर लेंगे, फिर? तो उस युवती ने, एक बात रवींद्रनाथ ने कहलवाई है उससे, कि मैं तुम्हें प्रेम करते हुए ही मर जाना चाहती हूं--उसी थिरक में, उसी पुलक में, उसी प्रतीक्षा में। विवाह करने पर तो एक फुल पॉइंट, एक डेड एंड आ जाता है। मैं तुम्हें प्रेम करती हुई ही मर जाना चाहती हूं।
हम जिसको कहते हैं कि एक आदमी की टाइमली डेथ हुई। उसका कुल मतलब इतना,
हम, हमारी समझ में इतना होता है कि जो उसे करना था, उसने सब कर लिया। अब करने को कुछ शेष नहीं रहा है। लेकिन आप नहीं जानते हैं कि जिसको करने को शेष नहीं रहा था वह बहुत पहले मर चुका। जिंदगी का मतलब है कि जहां करने को सदा शेष रह गया है। तो जो बूढ़ा आदमी, करने को जिसे अभी बहुत शेष रह गया था, वह आदमी एक अर्थ में जवान है। उसकी डेथ हमेशा अनटाइमली... अगर, अगर उसका भीतरी मतलब लें। और एक जवान आदमी जिसको लगता है मैंने सब कर लिया है उसकी डेथ में कोई टाइम नहीं है। और फिर हमारे तोलने के जो ढंग हैं कि क्या हम किस चीज को करना कहते हैं।
सच बात यह है कि अगर एक आदमी एक क्षण को भी प्रेम में जी ले तो इस पूरी जिंदगी में करने को कुछ नहीं बचा रह जाता। एक क्षण को उसे सत्य की झलक मिल जाए, जिंदगी में कुछ करने को नहीं रह जाता। लेकिन उसकी नाप-जोख हम नहीं कर पाते, उसकी कोई नाप-जोख नहीं है और अभी सब मामले इतने अज्ञात में खड़े हुए हैं।
अब मेरी अपनी समझ है कि एक्सीडेंट को हम, दुर्घटना को हम हमेशा कहते हैं कि वह, वह ट्रैजिडी है। यही बच्चा बीमार होकर, और मर जाता तो इतनी ट्रैजिडी नहीं मालूम होती। लेकिन मेरी अपनी समझ यह है कि दुर्घटना के क्षण में मृत्यु का जैसा प्रगाढ़ अनुभव होता है और जीवन का, वैसा बीमारी के क्षण में कभी नहीं होता। आप हैरान होंगे अगर आप कार चला रहे हैं और एक्सीडेंट होने की हालत आ जाए और एकदम से गाड़ी आपको रोकनी पड़े कि मौत सामने आ गई, दूसरी कार सामने आ गई तो आपने कभी ख्याल नहीं किया होगा। आपके विचार की पूरी प्रक्रिया एक क्षण को बिल्कुल बंद हो जाएगी, विचार की पूरी प्रक्रिया बंद हो जाएगी। विचार एकदम समाप्त हो जाएंगे। क्योंकि इतने इंटेंस क्षण में विचार नहीं रह सकते। इतना घबराने वाला क्षण सामने खड़ा हो गया कि मौत खड़ी हैः सारे विचार बंद हो जाएंगे, सारे विचार विलीन हो जाएंगे। जिसको योग में समाधि कहते हैं, वह एक्सीडेंट के क्षण में किसी को भी उपलब्ध होती है। और इतना इंटेंस, इतना तीव्रतर जीवन का बोध हो सकता है जिसका कोई हिसाब नहीं।
अभी भी यह तय करना बहुत मुश्किल है कि कौन सौभाग्यशाली है--खाट पर मर जाने वाला आदमी, कि एक गहरी दुर्घटना में जीवन को खोने वाला आदमी। क्योंकि उस गहरी दुर्घटना में वह क्या जान लेता है? वह हमारे पास कहने को बचा नहीं रह जाता। लेकिन जो लोग गहरी दुर्घटनाओं से वापस लौट आएं हैं, ऐसी कुछ घटनाएं इतिहास में घटी हैं, और उनका अनुभव बहुत अदभुत है। दोस्तोवस्की को ऐसा एक अनुभव हुआ है।
दोस्तोवस्की को फांसी की सजा हुई। तो रूसी लेखक था, क्रांतिकारी था। साथ में बारह लोगों को फांसी की सजा हुई। तीस दिन बाद एक तारीख को सुबह छह बजे उन्हें फांसी हो जाती। तो उन दिनों फांसी नहीं लगाते थे रूस में वे, गोली ही मार देते थे। तो तीस दिन मौत की प्रतीक्षा करनी पड़ी। ऐसा आमतौर से नहीं होता। क्योंकि हमें मौत का कोई पता नहीं होता कि, कि मौत कब आ जाएगी। तो हम मजे से जीए चले जाते हैं। हमें कोई खयाल भी नहीं होता कि मौत कब किनारे पर खड़ी, और आ गई। लेकिन इनके लिए तो मौत नियोजित थी। ठीक एक-एक घड़ी बीत रही थी और मौत करीब आ रही थी।
हमारी भी आती है इसी तरह, लेकिन हमको इंटेंस अवेयरनेस नहीं होती।
नींद विलीन हो गई। दोस्तोवस्की ने लिखा है कि नींद विलीन हो गई। कैसे सोया जा सकता है? मौत, एक घड़ी हम सोते हैं और मौत एक घड़ी करीब आ जाती है। और बस तीस दिन, और उनतीस दिन, अट्ठाइस दिन, और सात दिन, और पांच दिन, और चार दिन और मौत करीब आती चली जाती है। कोई बारह कैदी हैं और बारह को एक, एक तारीख को

सुबह गोली मार दी जाने वाली है। उन सबकी नींद विलीन हो गई है। वे सब अजीब तनाव से और घबड़ाहट और बेचैनी से भरे हुए हैं, भरे हुए हैं।
लेकिन दोस्तोवस्की ने नोट्स जो दिए हैं, वे अदभुत हैं। उसमें उसने लिखा है कि उन बारह लोगों का ही, लेकिन बारह तरह के लोग थे वे। और उनका जो व्यक्तित्व था पूरे उभार पर आ गया, वे जैसे थे। वे जैसे थे, अब छिपाने और झुठलाने के लिए कुछ नहीं बचा। अब किससे झुठलाना। जिस आदमी को गालियां देनी थीं वह सुबह से गालियां देना शुरू करता था, वह गालियां देता था। अब किससे सभ्यता बतानी है और किससे क्या छिपाना है। अब जिसको गालियां देनी, दे लेनी। तीन दिन का मामला है। तीन दिन बाद बंद हो जाएगा। अब कौन फिकर करे इस बात की कि मैं अच्छा आदमी हूं, कि बुरा आदमी, कि तुम क्या कहते हो? तुम्हारे कहने का, तुम्हारे ओपिनियन का कोई मूल्य ही नहीं रहा। अब वह मूल्य तो तब था जब तक मैं जिंदा रहता। बात खत्म हो गई। अब तो बियांड रिप्रोच। इस आदमी पर कुछ... ।
दोस्तोवस्की ने देखा कि वे जो भले लोग थे, जो कभी मुंह से गाली नहीं दिए थे, वे ऐसी अभद्र गालियां बकते हैं। जो लोग बहुत बकवासी थे, अचानक शांत हो गए हैं। क्योंकि बकवास का क्या मतलब था? बातचीत करते थे, ऐसा हो, दुनिया ऐसी बने, वैसी बने, यह हो, वह हो। दिन-रात विचार करते थे वे, वे एकदम चुप हो गए हैं। और दोस्तोवस्की अपने एक मित्र को कहा कि तू आजकल बोलता नहीं, उसने कहा, बोलने से मतलब, बात खत्म हो गई। गए बोलने के दिन। किससे बोलना है? क्या बोलना है? कुछ भी नहीं बोलना है। वह एकदम चुप हो गए।
अजीब परिवर्तन हुआ है वह बारह लोगों को। दोस्तोवस्की ने लिखा हैः इस भांति हमने कभी नहीं जाना था कि ये, ये, ये इस तरह के लोग? वह जो इतनी बात करने वाला आदमी था, इतना मौन निकलेगा उसके भीतर से, यह कभी सोचा नहीं था। वह जो भला आदमी था और बाइबिल पढ़ता था, वह गालियां बकेगा इस तरह, यह कभी सोचा न था। वह जो भीतर था, वह बाहर आ गया। जो बाहर थी, वह खोल उड़ गई। और ठीक जिस दिन फांसी लगनी है, सुबह पांच बजे उनको नहला-धुला कर, जाकर मैदान में खड़ा कर दिया गया। ट्रेंच खोद दी गई। उनके सामने उनको खड़ा कर दिया गया। मशीनगन लगा दी गई। सामने चर्च है, उसकी घड़ी है, उसमें कांटा घूमने लगा है। साढ़े पांच, पौने छह, दस मिनट, पांच मिनट, और दोस्तोवस्की ने लिखा है कि मैंने ऐसी पुलक अनुभव की कि जैसे मैं बॉडीलेस हो गया हूं। घड़ी जैसे-जैसे छह के करीब पहुंचने लगी, बॉडी नहीं है।
और मैंने चौंक कर अनुभव किया कि क्राइस्ट को क्या अनुभव हुआ होगा सूली पर, मैंने जान लिया। लेकिन ये आदमी बचते नहीं। क्योंकि यह तो बच गया, मैंने जान लिया कि क्राइस्ट को क्या अनुभव हुआ होगा सूली पर। मुझे किसी किताब को पढ़ने की जरूरत नहीं प.ड़ी। मुझे किसी संत से पूछने की जरूरत नहीं पड़ी। बस मैंने जान लिया। वह और घड़ी का कांटा छह के करीब पहुंचने लगा और मैंने जान लिया, अरे! और मैं इतनी कृतज्ञता से भर गया क्राइस्ट के प्रति कि मैंने जिंदगी में पहली दफा उसका नाम लिया कि अरे, तुमने क्या जाना होगा क्रॉस पर--क्रॉस पर लटक कर ही उसको पता चला। घड़ी का कांटा पहुंचने लगा है और एक घुड़सवार भागा हुआ आया, लेकिन वह दिखाई भी नहीं पड़ा। सबकी आंखें एकटक घड़ी पर लगी हैं। आंखों की पलकें झपनी बंद हो गई हैं। घड़ी में छह बजेंगे तो गोली लगेगी और वे खत्म हो जाएंगे। वह घुड़सवार दौड़ा हुआ आया, उसकी आवाज किसी को कुछ नहीं सुनाई नहीं पड़ी।
दोस्तोवस्की ने लिखा है कि मैंने पहली दफा जाना कि एकाग्रता क्या है? कंसंट्रेशन क्या है? पहली दफा। बहुत दफा कोशिश की थी कि एक चीज पर एकाग्र हो जाऊं, वह कभी नहीं हुआ था। आज घड़ी ही रह गई, उसका घूमता कांटा और सब मिट गया। और इतनी पीस झरने लगी भीतर, जैसे कहीं भी कुछ नहीं। क्योंकि उतनी एकाग्रता में उतनी शांति अपने आप जन्मनी शुरू हो जाती है। और उसने लिखा कि मैं, मैं धन्यभागी हूं कि यह मौका, यह क्षण मैंने जान लिया।
लेकिन यह मैंने कभी नहीं जाना था। मैं तनाव और अशांति से भरा हुआ आदमी, निरंतर विचार, निरंतर... वे सब खो गए हैं। एकदम हलका हो गया हूं। और वह जो घुड़सवार आया है वह जार का संदेश लेकर आया है कि उन सबको आजीवन कारावास में बदल दिया जाए, गोली न मारी जाए। लेकिन दो मिनट पहले वह आया और घड़ी में

छह का कांटा, छह बज गया। छह के घंटे बजे, दो आदमी गिर गए। दो आदमी गिर गए, समझा कि गोली लग गई। और एक आदमी मर गया ऑन दि स्पॉट। बिना किसी गोली के। और एक आदमी जो गिरा था, वह पागल हो गया--दूसरा। और वह यह कहने लगा कि तुम्हें पता नहीं, मुझे छह बजे गोली मार दी गई, मैं मर गया हूं। वह फिर जिंदगी भर यही कहता रहा कि मैं मर चुका हूं। कौन कहता है कि मैं जिंदा हूं? फलां दिन सुबह छह बजे गोली मार दी गई। उसको फिर जिंदगी भर कोई अट्ठारह साल जिंदा रहा, उसे प्रमाणित नहीं किया जा सका कि वह जिंदा है। वह यही कहता रहा कि मैं तो मर चुका हूं।
और दोस्तोवस्की ने लिखा कि मेरी जिंदगी में तो क्या हो गया, उसको कहना मुश्किल है। जो मैं लाख साधनाओं से नहीं कर सकता था, वह मुझे अनुभव हो गया। उस अनुभव के बाद मैं दूसरा आदमी हूं। वह एक पॉइंट हो गया जिंदगी का, क्लाइमेक्स मैंने उस दिन जान लिया कि जिंदगी क्या है। लेकिन जिंदगी मैंने उस क्षण में जानी जब मौत सब तरफ से घिरी थी।
अब मेरी भी अपनी समझ यह है कि जिंदगी की इंटेंसिटी उतनी ही गहरी हो जाती है जितनी चारों तरफ मौत तीव्र होती है। जितनी तीव्र मौत होगी, उतना ही तीव्र क्षण जीवन का हो जाएगा। और एक क्षण में अस्सी साल की जिंदगी का रस लिया जा सकता है। और शिथिल जिंदगी में आठ सौ साल जिंदा रह कर एक क्षण की जिंदगी का रस नहीं लिया जा सकता। वह निर्भर करता है इंटेंसिटी पर कि कितने बल से...
रो.जा अलेक्जेंडर कहा करती थीं कि मैं एक क्षण जीऊं वह सवाल नहीं है, लेकिन पूरा। ऐसी मशाल की तरह जो सब तरफ से जल रही है, सब तरफ से। आगे से, पीछे से, नीचे से, ऊपर से, सब जगह--पूरी जल रही है, एक इंच जगह खाली नहीं जहां वह नहीं जल रही है। ऐसी मशाल की तरह, बस एक क्षण, उतना काफी है। उसको दुबारा दोहराने की कोई जरूरत नहीं हैं।
लेकिन जो लोग मौत से भयभीत हैं, कभी भी इतना तीव्र जीवन उपलब्ध नहीं
कर सकते। क्योंकि मौत का डर उनको, जीवन को शिथिल बना देता है। और जीवन एक शिथिल गति हो जाती है, धीरे-धीरे चलती है। वह मैं नहीं कह रहा कि मौत से बचने का आप उपाय नहीं करेंगे। लेकिन एम्फेसिस बदल जाएगी। अगर हम मौत का भय छोड़ दें और जीने की कला को सीखें, तो हम वह ब्रिज इसलिए नहीं बनाएंगे कि उस पर बह कर कोई मरे न; ब्रिज हम इसलिए बनाएंगे कि जो जिंदा हैं वे ढंग से पार हो जाएं।
वह एम्फेसिस बदल जाएगी, हम ब्रिज बनाएंगे फिर भी, लेकिन वह जिंदा लोगों के लिए कि वे शान से, सुविधा से उस रास्ते से निकल जाएं। मरने के डर के कारण ब्रिज नहीं बनाएंगे कि कोई मर न जाए। क्योंकि मरने वाला ब्रिज गिरने से भी मरेगा। और भी उपाय होंगे मरने के। हमारी एम्फेसिस, जिंदगी ज्यादा गहरी हो सके, उसके लिए व्यवस्था जुटाने की। मौत से बच सकें, इसकी व्यवस्था जुटाने की नहीं होनी चाहिए। तो वह मैं नहीं कह रहा हूं।
मेरी दृष्टि यह है कि हमारी... वह निगेटिव बात है जो आप कह रहे हैं कि
मौत के डर से, बीमारी से बचने के लिए अस्पताल खोलना गलत है। हम अस्पताल जरूर खोलें एक दिन। वह इसलिए कि आदमी ज्यादा स्वस्थ कैसे हो सके, बीमारी से बच सके--नहीं। स्वस्थ आदमी बीमारी से बच जाएगा, वह गौण बात है। वह बिल्कुल गौण बात है। तो पॉजिटिव कि आदमी कैसे जी सके ज्यादा से ज्यादा, गहरे और आनंद, और सार्थक रूप से--उसके लिए हम सारी व्यवस्था करें। और उस व्यवस्था में मृत्यु के प्रति भी हमारा स्पष्ट दृष्टिकोण होना चाहिए। नहीं तो व्यवस्था अधूरी है। और अभी सारी दुनिया में मृत्यु के बाबत हमने बहुत साफ दृष्टिकोण नहीं लिया है इसलिए, इसलिए बहुत कठिनाई है। तो मैं नहीं कहता कि क्या ट्रैजिडी है? क्या दुख है? क्या सुख है? इतना मैं कहता हूं कि हम निर्णय ले लें जल्दी से, वह निर्णय उनके बाबत सच नहीं है, वह निर्णय हम अपनी जिंदगी के बाबत काम में लाएंगे।
गोविंददास जी का लड़का चल बसा था। तो वे बहुत पीड़ित थे। इतने ज्यादा पीड़ित कि वे रोज-रोज मेरे पास आकर रोना और वही बात। और मुझसे एक बात पूछना रोज कि, कि आप यह बताइए कि मेरा लड़का कहां चला गया है? मैंने कहाः इसकी क्या फिकर आपको? लड़का मर गया, इतना काफी है। इसके आगे की आपको क्या फिकर?

लेकिन फिकर थी उनको। अब कितने मजे की बात है, वह गए दिल्ली और एक जैन मुनि को मिले और उनसे उन्होंने पूछा। जैन मुनि ने आंखें बंद करके कहा कि वह फलां-फलां स्वर्ग में देवता हो गया है। वे बड़े खुश हुए। मुझे वहां से तार किया कि आपने मुझे क्यों नहीं बताया? मुझे बड़ी खुशी हुई, लड़का फलां-फलां देवलोक में स्वर्ग भोग रहा है।
एंबिशियस माइंड। लड़का यहां था तो वह सोचते थे कि वह प्रधानमंत्री हो जाए मुल्क का। मरने की कोई फिकर नहीं है। ट्रैजिडी यह हो गई कि वह लड़का बिना प्रधानमंत्री हुए मर गया। जो, जो ट्रैजिडी थी, वह मौत नहीं थी ट्रैजिडी। वह एंबिशियस माइंड जो है, वह बिना प्रधानमंत्री हुए मर गया। तो यह बात बड़ी आश्वासनकारी मालूम पड़ी कि वह देवलोक में पैदा हो गया है। वह वहां से कुंभ आए, और किसी एक हिंदू संन्यासी को पूछा, उसने कहा कि कौन कहता है? वह तो आपका जो गांव है जबलपुर के पास, उसके पीपल के झाड़ पर भूत हो गया है। वहां से मुझे चिट्ठी लिखी कि इस आदमी ने मुझे बहुत दुख में डाल दिया और यह आदमी कैसा संन्यासी है! संन्यासी वह जो देवता बनाए लड़के को। यह कैसा संन्यासी है! यह कैसा दुष्ट आदमी है! इसने मुझसे ऐसा कह दिया कि लड़का भूत हो गया। फिर वह जबलपुर आए तो वह बड़ी बेचैनी में थे कि क्या हुआ? लड़का देवता हुआ कि भूत हुआ। मैंने कहा कि लड़के से तुम्हें कोई प्रयोजन नहीं है किसी तरह का भी। तुम कुछ और ही अपनी खोज कर रहे हो, अपनी महत्वाकांक्षा की तृप्ति। भूत हो गया तो दुख की बात। मेरा लड़का और भूत? लड़के से क्या लेना- देना, मेरा लड़का कैसे भूत? मेरा लड़का देवता होना चाहिए। तो वह संन्यासी अच्छा है जो कहता है कि देवता हो गया, और वह बुरा है जो कहता है भूत हो गया। और मैं आपसे कहता हूं कि आपको लड़के से कोई प्रयोजन नहीं, आपको प्रयोजन अपने अहंकार, अपनी महत्वाकांक्षा से है। लड़के की मौत में भी आप अपनी महत्वाकांक्षा सिद्ध करना चाह रहे हैं। अजीब बात है। जिस दिन मरा लड़का, मैं गया तो वह मुझे तार बताने लगे कि यह प्रेसिडेंट का तार है, यह प्रधानमंत्री का तार है। लेकिन फलां आदमी ने अभी तार नहीं किया।
लड़का मर गया है, आंसू बहे चले जा रहे हैं। लेकिन किस तल पर हमारे दुख हैं, किस तल पर हमारी समझ है। ट्रैजिडी क्या है? हम जब नतीजा ले रहे हैं तो वह नतीजा उसके बाबत नहीं है, वह नतीजा हमारे अपने बाबत है। और वे हमारे अपने हिसाब हैं।
तो मैं जो कह रहा हूं तो यह मत समझ लेना आप, मैं कह रहा हूंः मर गए तो अच्छा हुआ। यह मैं नहीं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि आप जो कह रहे हैं कि बुरा हुआ, उस बुरे हुए को बहुत समझने की कोशिश करना कि उसका उस लड़के से कोई भी संबंध है। उसका तो हमें कुछ भी पता नहीं। इसलिए उससे तो कोई भी संबंध नहीं हो सकता। संबंध कुछ हमसे होगा, हमारी एंबिशंस होंगीं कुछ कि वह लड़का ऐसा बनेगा, यह करेगा, वह करेगा--वह सब टूट गई, वह सब खत्म हो गया। वह बीच में ही गुल हो गए। वह हमारी सारी एंबिशंस जो आगे चली गई थीं, वे सब एकदम से गिर गईं।

सारे रिश्तेदार, मित्र, मां-बाप, भाई-बहन सब सोचते होंगेः यह होगा, यह होगा, वह सब गया। वह सब बीच में हमको लटका गया। वह लड़का मर गया, यह ट्रैजिडी हुई कि नहीं, यह नहीं सवाल है, वह हमारे साथ ट्रैजिडी कर गया। तो जो फर्क है एम्फेटिकली, ट्रैजिडी आपके साथ हो गई है। उसके साथ हुई कि नहीं यह, यह तय नहीं किया जा सकता। और अगर हमको यह दिखाई पड़ जाए कि ट्रैजिडी हमारे साथ हो गई है तो हम फिर और ढंग से सोचेंगे। सारी बात और हो जाएगी। उसका मतलब यह होगा कि आगे से किसी लड़के के साथ एंबिशन मत बांधना--ट्रैजिडी हो सकती है। उसका मतलब यह होगा। अभी भी लड़के घर में हैं हमारे सबके, अब उनके साथ मत बांधना कि ये ये हो जाएंगे, ये हो जाएंगे... बांधना ही मत। ट्रैजिडी हो सकती है। क्योंकि, क्योंकि ये बीच में खत्म हो सकते हैं। खत्म न हों, ये बिगड़ सकते हैं।
आपने चाहा था कि ये साधु बन जाएंगे। ये साधु न बनें, असाधु बन जाएंगे। आपने चाहा था ये धन कमाएंगे, ये धन बरबाद कर दें। और मैं आपसे कहता हूं, यह हैरानी की बात है कि अगर मैंने उनसे पूछा बाबू साहब को, मैंने उनको पूछा कि

आपका लड़का जिंदा रहता और गुंडा हो जाता, बदमाश हो जाता, शराब पीता, और स्त्रियों को भगा कर चला जाता तो ज्यादा ट्रैजिडी मालूम पड़ती, कि अभी। उसमें ज्यादा ट्रैजिडी होती। मुझसे कहा यह कि उसमें ज्यादा ट्रैजिडी होती।
मैंने कहाः मौत सवाल नहीं है, सवाल आपकी अपनी तृप्ति का है। वह, वह कितनी फुलफिल होती है, कितनी फुलफिल नहीं होती। कितनी दफा मां-बाप नहीं कहते हैं कि इससे अच्छा होता कि तू मर जाता। कभी हमने सोचा भी नहीं होगा कि वे क्या कह रहे हैं? वे यह कह रहे हैं कि हम जैसा चाहते थे वैसा तू हो, तो तेरी जिंदगी का मतलब है। और हम जैसा नहीं चाहते तो तू नहीं होता तो अच्छा था। क्योंकि उस तरह हमारी-तेरी जिंदगी का कोई, कोई मतलब नहीं। कहीं हम मीनिंग नहीं खोज पाते हैं।
ट्रैजिडी होती है। ट्रैजिडी आपके साथ होती है, मेरे साथ होती है, हमारे साथ होती है। जो मर गया उसके साथ क्या हुआ, यह हमें पता नहीं। वह तो बिना मरे हम जान नहीं सकते। उसका कोई उपाय नहीं है। इसलिए उसके बाबत कोई दुखद और गलत दृष्टिकोण ले लेना घातक है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि अच्छा हुआ, इसलिए हम लड़कों को गाड़ियों में बैठा लें और नदियों में बहा दें। यह मैं कह नहीं रहा। यह मैं कह नहीं रहा। और इसलिए यह भी नहीं कह रहा कि ब्रिज आप न बनाएं। लेकिन पूरा हमारा दृष्टिकोण, सोचने की पूरी की पूरी दिशा बदलनी चाहिए। वह कुछ साफ होनी चाहिए।

प्रेम नदी के तीरा
चौदहवां प्रवचन

इंद्रियों की जड़ें शरीर में

... सब ऐसा हो सकता है जो ऊपर की तरफ इशारा करता हो, और सब ऐसा हो सकता है
कि नीचे की तरफ इशारा करता हो। असल में कोई सीढ़ी ऐसी नहीं जो दोनों तरफ नहीं जाती हो। सब सीढ़ियां दोनों तरफ जाती हैं। ऊपर की तरफ भी वही सीढ़ी जाती है, नीचे की तरफ भी वही सीढ़ी आती है। सिर्फ आपके रुख पर निर्भर करता है कि आप किस तरफ जा रहे हैं। तो एक दफा रुख साफ हो जाए। इधर तो मैं इस पर सच में निरंतर सोचता हूं। अगर एक चित्र को देख कर एक आदमी की कामुकता जग सकती है तो ऐसा क्यों नहीं हो सकता कि एक चित्र को देख कर आदमी की कामुकता विलीन हो जाए। ये दोनों बातें एक साथ हो सकती हैं। मगर ऐसा चित्र तो बना नहीं पाता साधु जो कामुकता को विलीन करता हो। चिल्लाता यह है कि वह कामुकता वाला चित्र नहीं चाहिए। वह तो रहेगा। तुम चित्र को और श्रेष्ठ चित्र से बदल सकते हो। और कोई उपाय नहीं बदलने का। संगीत और श्रेष्ठ संगीत से बदल सकता है; संगीत मिटाने का उपाय नहीं है।
इधर मेरी दृष्टि यह है कि जीवन की सारी चीजों का, समग्र जीवन का ऐसा उपयोग होना चाहिए कि वह रोज सीढ़ी बनती चली जाए। और रोज हमें पता चलता जाए कि कितनी इसमें मिथ्या है। अब जैसे हमें लगे कि इतनी देर संगीत सुना, तो हम फिर कभी पीछे सोचते नहीं कि क्या हुआ। न कभी विचार करते कि आखिर हमको आधा घड़ी अच्छा लगा, क्यों लगा? क्या बात थी? सोचेंगे तो बहुत इंप्लिकेशंस हैं। एक उदाहरण के लिए आपको कहूं कि इतनी देर आप सुन रहे थे, कोई भी इंद्रिय पूरी तरह से कहीं सक्रिय हो जाए तो शेष सारा मन उस तरफ बहने लगता है और, और से शिथिल हो जाता है। और तरफ से मार्ग उसके बंद हो जाते हैं। यानी जब आप संगीत सुन रहे हैं, जब सच में ठीक से सुन रहे हैं, और ठीक से संगीत चल रहा है तो आप सिर्फ कान ही हो जाते हैं, बाकी आप नहीं रह जाते। बाकी सब तरफ से चेतना जो है वह कान की तरफ आकर इकट्ठी हो जाती है। क्योंकि वहां से कुछ रस आ रहा है। तो सारी चेतना वहां चली आती है। और चेतना किसी भी कारण से कहीं भी इकट्ठी हो जाए तो सुखद है। टूटी हुई चेतना दुखद है। बिखरी-बिखरी चेतना दुखद है। खंड-खंड है, अखंड हो गई थोड़ी देर के लिए, सब सरक आई वहीं। यानी सब ताकत वहीं आ गई। और प्रतिपल हमारे शरीर की सब इंद्रियों में चेतना सरकती रहती है।
जैसे आपने खाना खा लिया, फिर नींद आने का मन होता है। वह नींद आने के
मन का और कोई कारण नहीं है। सारी चेतना पेट के पास आ गई और वह पचाने में लग गई है। मस्तिष्क खाली हो गया है और वह शिथिल हो रहा है। और वह सो जाना चाहता है। और कोई कारण नहीं है। इसलिए ज्यादा खा लेते हैं, इसलिए नींद फौरन पकड़ना शुरू करती है। वह जितनी शक्ति मस्तिष्क के पास थी, वह वापस आ गई है। वह पेट पर काम कर रही है। पेट ज्यादा प्राइमरी है। अभी काम वहां होगा, इसके बाद कुछ होगा। इसके बाद फिर मस्तिष्क को मिल सकती है शक्ति। अभी वहां से बुला लिया गया है। तो इमरजेंसी की स्थिति है पेट के लिए, वह सारी चीज वहां आ गई।
आप संगीत सुन रहे हैं तो सारी चेतना कान के पास आ गई। यानी कहना चाहिए आपकी आत्मा कान के पास है उस वक्त। और चूंकि वह इकट्ठी होती है, इसलिए सुखद मालूम पड़ती है। और इंद्रियों पर इकट्ठी होती है तब इतना सुखद मालूम पड़ता है। जब इंद्रियों से भिन्न कहीं इकट्ठी होती हो, उस सुख का तो कोई हिसाब नहीं। जब आप भोजन कर रहे हैं तब भी आपको जो सुख आता है, वह पूरी चेतना वहां आ गई तो, नहीं तो नहीं आएगा।
जैसे आप भोजन कर रहे हैं। बहुत ही स्वादिष्ट और बहुत स्वादपूर्ण लग रहा है। और एक आदमी ने आकर खबर दी कि नीचे पुलिस वाले खड़े हैं, वारंट लिए हुए हैं, हथकड़ी बांधे हुए हैं। अचानक सब विदा हो गया। अब भी आप भोजन खा रहे हैं, लेकिन अब मुंह में कोई स्वाद नहीं आ रहा है। चेतना वहां से विदा हो गई। जीभ रह गई वहां सिर्फ। अब वह जीभ बेकार है। अब वह, अब वह डाले जा रही है जल्दी, अब उसको कोई मतलब नहीं रहा है, बात खत्म हो गई। क्योंकि चेतना वहां

से हट गई, वह और कहीं चली गई, जहां जरूरत है। अब वह वहां चिंतन में लग गई कि अब क्या करना है, क्या नहीं करना है? खाना गया। खाना गया ही।
तो हमारी सारी इंद्रियां चेतना को इकट्ठा करने का उपाय बनती हैं। और इसलिए जिस व्यक्ति के पास जो इंद्री बहुत सजग हो जाती है... आखिर कलाकारों का वही सुख है। जैसे एक पेंटर है, वह भी देखता है बगीचे में आकर फूलों को। आपने भी देखा है। लेकिन आपको कभी कुछ नहीं दिखाई पड़ता है जो उसको दिखाई पड़ता है। क्योंकि आपने सिर्फ आंख से देखा है, उसकी आंख में उसकी पूरी आत्मा इकट्ठी हो जाती है। उसकी जो इंटेंसिटी है, वह वैसी ही है जैसे कि भोजन आप पहले कर रहे थे, और खाने में थी। और खबर मिली कि वारंट आ गया और विदा हो गई, जीभ रह गई सिर्फ। तो हममें, हममें कभी ऐसा नहीं हुआ कि हमारी आंख, पूरी की पूरी आत्मा वहां आ गई हो। तो, तो जो हम जानेंगे, वह पेंटर जान रहा है। कान के पास पूरी आत्मा आ जाए तो हम वह जानेंगे, जो संगीतज्ञ जान रहा है।
एक प्रेमी ने अपने प्रेमी का हाथ हाथ में लिया है तो सारी आत्मा हाथ में आ गई। अगर आ जाए तो ही हाथ में पता चलेगा कि कुछ है, नहीं तो बेकार है। हाथ में हाथ रह जाएगा और कुछ नहीं रह जाएगा। हमारी इंद्रियां भी उतनी ही सतेज हो जाती हैं अनुभव करने में, जहां हम पूरे इकट्ठे हो जाते हैं। और यह... लेकिन इससे सिर्फ दुख ही भूल पाता है, बस।
इंद्रिय के द्वार से कभी भी ऐसे आनंद के आने का उपाय नहीं है जो शाश्वत हो, परम हो। जो आता है, वह चला जाता है फिर। फिर थोड़ी देर में बिखर जाता है। लेकिन एक ऐसा आनंद भी है जो हम इंद्रियों से दूर अपने भीतर वहां इकट्ठे होते हैं जहां इंद्रियों का सवाल नहीं है। इंद्रियों का जो घेरा है, उसके बिल्कुल मध्य में हम इकट्ठे होते हैं जहां इंद्रियां नहीं हैं। वहां जो अनुभव होता है, वह अतींद्रिय है।
यह जो अतींद्रिय अनुभव है, यह सुख, आनंद, कहीं से आया हुआ नहीं है, अब किसी द्वार से। यह अपने ही भीतर जन्मा है। इसलिए अब इसके जाने का भी कोई सवाल नहीं है। तो संगीत से आपको सुख मिल सकता है। संगीत बंद हो जाएगा और सुख खो जाएगा। वह आपमें ऐसा डाला गया था। वह वापस लौट गया। एक ऐसा आनंद है जो आपमें ही जन्मता है। जो कहीं बाहर से नहीं आता। इंद्रियां जो हैं वे बाहर से लाने के द्वार हैं। इसलिए इंद्रियों पर जो निर्भर होकर आनंद को खोज रहा है, वह हमेशा क्षणिक आनंद से बाहर कभी भी नहीं खोज पाएगा। खोजेगा, खोज भी नहीं पाएगा कि गया। पकड़ में आ भी नहीं पाया कि छूट गया।
तो आनंद की खोज तो वहां करनी है जहां हम बाहर के द्वार से सवाल हटा लेते हैं। द्वार का सवाल ही नहीं है। हम सब द्वारों से हट जाते हैं। और वहां खड़े हो जाते हैं जहां कोई द्वार नहीं। जहां हम ही हैं भीतर सिर्फ। और एक बार हम वहां इकट्ठे हो जाएं, इसी का मतलब इंटिग्रेशन या योग। योग का मतलब हैः वहां इकट्ठे हो जाना, जहां इंद्रियां नहीं हैं। जहां इंद्रियां हैं, वहां इकट्ठा होने का नाम है भोग।
अगर इसके पूरे साइंटिफिक अर्थ को समझें, तो भोग का मतलबः जहां इंद्रियां हैं, वहां आत्मा को ले जाना। खाने पर ले जाओ, संगीत पर ले जाओ, प्रेम में ले जाओ, कहीं भी ले जाओ। जहां भी आत्मा को इंद्रिय पर ले जाया जाता है, उस अनुभव का जो नाम है, वह है भोग। और जब आत्मा को हम ऐसी जगह ले जाते हैं जहां कोई द्वार नहीं, कोई इंद्रिय नहीं, किसी का भोग नहीं, किसी से संबंध नहीं; जहां असंग, अकेली, निर्द्वार, डोरलेस आत्मा खड़ी हो जाती है और इकट्ठी हो जाती है--उसका नाम है योग। ऐसी इकट्ठी हुई आत्मा उस आनंद को जान लेती है जो भीतर से जन्मता है।
और तब इसको आप बांट तो सकते हैं, लेकिन चुका नहीं सकते। चुका नहीं सकते हैं। क्योंकि यह आपके प्राणों का हिस्सा है। इसे चुकने का कोई कारण नहीं है। इसे खत्म भी नहीं कर सकते हैं। और इसे जान लें तो फिर सारी इंद्रियों के सुख अत्यंत फीके हो जाते हैं। यानी कोई अर्थ के नहीं रह जाते। कोई अर्थ ही नहीं है। तो ये सारी कलाएं इंद्रियों के द्वार पर आत्मा को इकट्ठा करने का काम करती रही हैं। पर उनको मार्ग बनाया जा सकता है कि वे आगे की खबर दें। वहीं न अटका दें।

प्रश्नः अतींद्रिय जो सुख है उसका, उसका अनुभव हुआ, गहराई कैसे बढ़ती चली जाती है?

वह शुरू तो हो। शुरू हुआ तो गहराई में देर नहीं लगती।

प्रश्नः अतींद्रिय सुख की शुरुआत तो आभासिक शांति से होनी चाहिए न?

होनी चाहिए, ऐसा नहीं कहता। हां, हो सकती है। हो सकती है, ऐसा नहीं कहता हूं, होनी चाहिए।

प्रश्नः तो क्या आभासिक शांति ओम के उच्चारण द्वारा नहीं हो सकती?

वह तो शांति, आभासिक शांति तक भी नहीं है वहां। वहां तो आभासिक शांति
तक नहीं है। उसको तो मैं विक्षिप्तता कह रहा हूं। वह तो पागलपन है। सुबह थे न तुम? उसे तो मैं विक्षिप्तता कह रहा हूं, वह आदमी तो सिर्फ पागलपन में पड़ा हुआ है।

प्रश्नः तो संगीत ओम पर लाया जा सकता है क्या?

हां, हां। बिल्कुल लाया जा सकता है। ओम पर लाया जा सकता है। किसी भी चीज पर लाया जा सकता है। तुम पर जो परिणाम होगा, वह ओम का नहीं होने वाला है। तुम पर जो परिणाम होगा वह तो स्वरों की जो हार्मनी है, उसका होने वाला है। संगीत कुछ भी हो। उसमें जो दो स्वरों के बीच जो लयबद्धता है उसका तुम पर परिणाम होगा। वह चाहे ओम कहे, चाहे कुछ भी कहे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इससे तुम्हारा संबंध नहीं है।
तुम्हारा संबंध तो यह है कि चित्त पर स्वरों का जो आघात हो रहा है, वह आघात लयबद्ध होनी चाहिए। बस लयबद्धता संगीत है। तुम उससे क्या गा रहे हो, फिल्मी गाना गा रहे हो कि भजन गा रहे हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लयबद्धता उसकी तुम्हारे चित्त को प्रभावित करती है।
इसको भी मैं आभासिक शांति ही कह रहा हूं। यह शांति नहीं है। यह शांति नहीं है। लेकिन एक आदमी जो बैठ कर ओम, ओम, ओम जप रहा है, वह तो बेचारा अत्यंत ही जिसको कहें साइको-न्यूरोटिक हालत में है। वह तो उस हालत में है जहां उसकी चिकित्सा, इलाज होना चाहिए। बहुत बुरी हालत में है। उसकी सारी प्रतिभा मर जाएगी। जो चित्त की जागरूकता है, तेजस्विता है, वह मर जाएगी। डल हो जाएगा। तुमने कभी भी राम-राम जपने वाले आदमियों को प्रतिभावान नहीं देखा होगा। जीनियस नहीं पाओगे। डल माइंड, और धीरे-धीरे स्टुपिड हो जाएंगे।
क्योंकि ये काम स्टुपिड हैं। यह जो काम है न, इतना मैकेनिकल और इतना मूढ़तापूर्ण है कि इसका टोटल इंपेक्ट जो होने वाला है, वह डलनेस की तरफ ले जाने वाला है, तमस की तरफ। यानी यह, यह सब इस तरह का नाम जप वगैरह तामसिक निद्रा पैदा करने वाला है। तमसपूर्ण है। इसका सत्य से कोई संबंध नहीं है।

प्रश्नः पर वास्तव जगत को भूलने के लिए जैसी शास्त्रों... ?

वास्तव जगत को भूलना नहीं है। वास्तव जगत को जानना है। भूलना क्यों?

प्रश्नः नहीं-नहीं, वास्तव जगत यानी, आई एम नॉट मीन... मैं वह नहीं बोल रहा हूं कि जैसे आपने कहा कि अब शराब का एक प्याला लेने के बाद... ?

हां, तो उतना ही मूल्य इसको भी मैं देता हूं। मैं तो यही कहता ही हूंः जैसे शराब है, वैसे ही यह राम-राम है। मैं फर्क नहीं करता इसमें। मधुशाला

में जाओ कि मंदिर में चले जाओ, मैं तो फर्क नहीं करता। हां, हां, वही तो। वह तो मैं कहता ही हूं। वह तो है ही।

प्रश्नः शरीर में और कौन सी जगह इकट्ठी की जा सकती है?

असल में जैसे ही तुम इंद्रियों से अलग हुए कि तुम शरीर से अलग हो जाते
हो तत्काल। वह घटना शरीर के भीतर नहीं घटती। अब वह जरा मामला और हो जाएगा। वह घटना शरीर के भीतर घटती ही नहीं। असल में तो शरीर तो जो है, वह पूरा का पूरा इंद्रियों का ही बहिर्मुख और अंतर्मुख स्नायुओं का जाल है। यानी अगर ठीक से हम समझें तो शरीर सब इंद्रियों का जोड़ मात्र है, और कुछ भी नहीं है। शरीर में और कुछ है ही नहीं। सब इंद्रियों का जोड़ है। जैसे कि यह एक फोन लगा हुआ है। तुम फोन उठा कर फोन कर रहे हो। तो यह जो फोन का तुम्हें चोंगा दिखाई पड़ रहा है, यही फोन नहीं है। इसकी जो वायरिंग की सिस्टम है पूरी की पूरी, वह भी इसका ही हिस्सा है। समझे न? वह पूरा का पूरा इसी का हिस्सा है। वह एक्सचेंज जो है, वह भी इसी का हिस्सा है। यानी वह पूरा का पूरा जाल ही उसका है।
जब तुम आंख से देख रहे हो तो सिर्फ आंख ही काम नहीं कर रही। आंख के पीछे का पूरा का पूरा स्नायुओं का जाल काम कर रहा है। अगर तुम इंद्रिय से हट गए तो तुम शरीर से हट गए। अतींद्रिय यानी अशरीर। तो बॉडीलेसनेस में चले गए। वह घटना घटती है। वह घटना बियांड बॉडी है। जब भी कोई व्यक्ति सारी इंद्रियों से चित्त को अलग करके खड़ा होता है तो फौरन पाता है कि शरीर अलग पड़ा है, और मैं अलग हूं। यह जो, इसलिए कहां शरीर में यह घटती है, कहा नहीं जा सकता है। शरीर के बाहर घटती है घटना, शरीर के भीतर नहीं घटती है।

प्रश्नः शरीर में कोई काउंटरपार्ट होता है उसका?

काउंटरपार्ट हैं। काउंटरपार्ट हैं शरीर में। शरीर के भीतर घटना नहीं घटती है। लेकिन शरीर के भीतर वे हिस्से हैं जहां से आत्मा का संपर्क शरीर को उपलब्ध होता है। जैसे कि दो तार लगे हुए हैं, दोनों तार छू रहे हैं। तो एक कांटेक्ट फील्ड है जहां से एक तार की बिजली दूसरे तार में चली जाती है। तो ऐसे हमारे शरीर में कोई कुछ स्थान हैं, कांटेक्ट फील्ड हैं, जहां से चेतना और शरीर जुड़ता है। उन्हीं को चक्र कहते हैं। और चक्र भी इसीलिए कहते हैं उनको, चक्र भी इसीलिए कहते हैं कि जब दो शक्तियां जुड़ती हैं तो वहां चक्र पैदा हो जाता है। तीव्र मूवमेंट पैदा हो जाता है। उसी मूवमेंट से घुसती है चेतना भीतर। यानी चक्र कोई ठहरी हुई चीज नहीं है।
अंग्रेजी में सेंटर शब्द से पता नहीं चलता कुछ, भूल हो जाती है। सेंटर स्टैटिक है। सेंटर का मतलबः ठहरा हुआ एक बिंदु। चक्र का मतलब हैः चलता हुआ। मूवमेंट उसमें है। तो जब भी दो कांटेक्ट फील्ड मिलते हैं तो मूवमेंट की स्थिति बनती है। उस मूवमेंट की स्थिति को भी तुम शरीर से नहीं पकड़ सकते हो। शरीर से पकड़ने जाओगे तो खोज ही मुश्किल है। अगर आदमी... फिजियोलॉजिस्ट से पूछोगेः हम सारा शरीर काट डाले, इसमें कहीं हमें चक्र तो दिखाई नहीं पड़ता। कहीं न कोई हृदय-चक्र है, न कोई कुछ और है, न कोई आज्ञा-चक्र उसमें कहीं नहीं मिलता। इसमें कहीं वह है भी नहीं।
यह ऐसे ही है जैसे कि यह बल्ब जल रहा है। हम इस बल्ब को निकाल लें और सारे बल्ब को तोड़ डालें। और खोज-बीन करें कि वह कहां है, जो रोशनी थी? तो वह कहीं नहीं मिलेगी। तब एक आदमी कह सकता है कि मैं निश्चय से कहता हूं, कि इस बल्ब में रोशनी नहीं थी। क्योंकि इसमें हमने पूरा खोल-खोल के देख लिया, इसमें रोशनी कहीं भी नहीं। रोशनी बाहर से आती हुई कांटेक्ट थी, बल्ब से प्रकट होती थी, लेकिन ठीक बल्ब में नहीं थी। आती बाहर से थी।
तो हमारे शरीर में जो चेतना आ रही है, वह तो बाहर से आ रही हैं, कहीं और से। किन्हीं, कुछ स्थल हैं, जिनसे वह प्रवेश कर रही है। अगर थोड़ी संवेदनशीलता बढ़ जाए, समझ बढ़ जाए, थोड़ी खोज बढ़ जाए तो तुम्हारे शरीर में तुम्हें वे केंद्र बहुत जीवंत और चक्रीय मालूम पड़ने लगेंगे। बिल्कुल साफ

दिखाई पड़ने लगेगा उनका मूवमेंट। वह सब दिखाई पड़ने लगेगा। लेकिन फिर भी अगर तुम काट कर देखोगे शरीर को तो वह नहीं वहां मिलेगा। और इसलिए योगी बड़ी मुश्किल में पड़ जाता है, और उसके लिए बड़ी कठिनाई है। उसको पूरा अनुभव होता है कि चक्र यहां है। और अस्पताल में जाता है, और डाक्टर जांच करता है तो वह कहता हैः यहां तो कुछ है नहीं।
अब यह ऐसे ही है मामला जैसे कि अगर अभी हम सब यहां बैठे सोच रहे हैं। अगर मैं इनसे पूछूं कि आप सोच रहे हैं, तो आप कहेंगेः हां। और अभी हम खोपड़ी खोल कर देखें तो विचार नहीं मिलेगा। तब हम कह सकते हैं कि आप झूठ बोलते थे। क्योंकि विचार कहां हैं? खोपड़ी तो खोल कर हम देखते हैं। और अगर कोई सिद्ध करना चाहे तो वह सिद्ध कर सकता है--कोई भी आदमी कभी नहीं सोचता, सब लोग झूठ बोलते हैं। क्योंकि जब भी खोपड़.ी खोली जाती है, विचार नहीं मिलता। वह तो हम मान लेते हैं, यह दूसरी बात है।
अगर मानने से इनकार कर दें तो कोई आदमी सिद्ध नहीं कर सकता कि विचार है। खोपड़ी खोलने से कुछ मिलता नहीं, विचार एकदम खो जाता है। उसका लेकिन अनुभव है पक्का तुम्हें, कि विचार का हमें अनुभव हो रहा है। मैं जानता हूं कि विचार भीतर है। लेकिन शरीर में पकड़ में नहीं आता। ठीक वैसे ही चक्रों का अनुभव भी होता है। और चक्रों से बड़ी व्यवस्था है पूरे जीवन की।
अगर चक्रों को ठीक से समझा जा सके तो सारे जीवन की प्रक्रिया को बदलने में बड़ा सहयोग मिले, बड़ा सहयोग। क्योंकि हो सकता है कि तुम जिंदगी भर मेहनत करते रहो, सिर्फ तुम्हारा एक चक्र शिथिल पड़ा है, और तुम्हारी सब मेहनत बेकार हो जाती हो। यानी ऐसा ही होता है कि तुम दरवाजे को धक्का दिए चले जाते हो और चाबी लगी हुई है, ताला बंद है। और तुम्हें पता ही नहीं कि दरवाजे में ताला भी होता है। तुम सिर्फ, धक्के दे रहे हो। तुम फिजूल मेहनत कर रहे हो। होशियार आदमी आएगा, वह जानता है तो चाबी घुमा देगा। हाथ का इशारा करेगा, वह दरवाजा खुल जाएगा।
तो कई बार तो यह है कि हम बहुत सी फिजूल मेहनत करते रहते हैं। अगर थोड़ा
सा हमें कांटेक्ट फील्ड्स का पता हो जाए तो हम उनसे बहुत जल्दी गति कर सकते हैं। एकदम गति कर सकते हैं। इधर मैं सोचता हूं इस पर एक किताब पूरी दे देने को, ताकि यह खयाल में पूरी बात आ सके।

प्रश्नः तो अलग-अलग चक्रों पर केंद्रित होती है। आत्म-आनंद के साथ, आत्मा का जो आनंद उपलब्ध होता है, वह चक्रों पर अलग-अलग केंद्रित होता है।

अलग-अलग केंद्रित होती है। और इसलिए हर चक्र पर जहां पर तुम केंद्रित
कर लेते हो, वह वहीं-वहीं प्रवेश करने लगती है। जैसे सेक्स के सेंटर पर अगर किसी को आनंद मिल गया तो उसकी आत्मा उसी के आस-पास इकट्ठी हो जाएगी। और वह उसी को रिपीट करता रहेगा। और उसे पता ही नहीं चलेगा कि और भी सेंटर्स थे जो खाली पड़े रह गए। जहां उसे पता ही नहीं, वहां भी कांटेक्ट हो सकता था। जिसको जहां... और अक्सर यह होता है कि अधिक लोग एकाध सेंटर में जीते हैं और मर जाते हैं--अधिक लोग।
जैसे बहुत बुद्धिशाली व्यक्ति इंटलेक्चुअल है तो वह बुद्धि के चक्र
पर ही जीता है। उसकी सारी शक्ति, सब आत्मा वहीं इकट्ठी हो जाती है। इसलिए हो सकता है एक वैज्ञानिक को शादी की जरूरत न पड़े, उसे सेक्स का सवाल ही नहीं। इसका कारण यह नहीं कि वह ब्रह्मचर्य को उपलब्ध है। इसका कुल कारण इतना है कि सारी आत्मा इंटलेक्ट के उस सेंटर पर आ गई है जहां वह सेक्स की तरफ लौटती ही नहीं। इसलिए सवाल नहीं रहा, उसके लिए सारी आत्मा वहां इकट्ठी हो गई। उसके लिए एक ही काम रह गया। और इन सारे चक्रों की, अलग यात्राएं हैं इनकी।
क्योंकि जिस चक्र पर तुम काम कर रहे हो, उसी चक्र के तल पर जीवन के जो अनुभव हैं, वे तुम्हें उपलब्ध हो सकेंगे। तुम लोग... मैं यहां से देखूं, अगर मेरी आंख का कोन सीधा है तो दीवाल पर जो सीधा पड़ रहा है, वह मुझे दिखाई पड़ेगा। अगर आंख का कोन मेरा ऊपर है तो आकाश में जो है, वह मुझे दिखाई

पड़ेगा। अगर नीचे झुका है तो जमीन पर जो है, वह मुझे दिखाई पड़ेगा। चीजें सब हैं, लेकिन मैं तो वही देखूंगा जो मेरी आंख का कोन है।
तो हमारे जो सेंटर्स हैं, वे हमारे अनुभूति के केंद्र हैं। हम वही जानते हैं जो हमारा सेंटर है। इसलिए हमें, दूसरे सेंटर में क्या होता है, कुछ पता नहीं। और जब दूसरे सेंटर वाला आदमी हमसे कुछ कहेगा तो हम कहेंगे कि यह क्या पागलपन है, यह हो नहीं सकता। यह हो ही नहीं सकता।
जैसे एक छोटा बच्चा है। अभी उसका सेक्स सेंटर सक्रिय नहीं हुआ। उसे कल्पना भी नहीं हो सकती है कि लोग सेक्स के लिए किस तरह परेशान, पीड़ित और पागल हो रहे हैं। उसे कल्पना ही नहीं हो सकती है अभी। और अगर कोई कहे कि दुनिया ऐसी पागल हुई जा रही है इसमें, तो वह कहेगा कि क्या जरूरत है, क्या मामला है? अभी उसका सेक्स सेंटर सक्रिय नहीं हुआ है। अभी वह वहां से दुनिया को देख ही नहीं रहा है।
ठीक जो हमारा केंद्र सक्रिय हो जाए, उसी तल पर जितने अनुभव हों, वे हमें अनुभव में आने शुरू होते हैं। और जिसके सारे केंद्र सक्रिय हो जाएं, वह जीवन को एक समग्रता में अनुभव करता है। और तब एक बहुत ही नया अनुभव होता है। अभी हमारा जो... जिसे समझें, दो चीजें हैं। एक तो जमीन पर हम एक सीधी रेखा खींचें, हॉरिजांटल और एक रेखा हम वर्टिकल खींचें जमीन से आकाश की तरफ। तो जो आदमी हॉरिजांटल रेखा पर जाएगा सीधा, वह जमीन से कहीं भी मुक्त नहीं होगा। वह कितना ही चलता चला जाए, वह कितना ही करोड़ों मील चले, वह रहेगा जमीन पर। क्योंकि जो रेखा उसने पकड़ी है वह जमीन पर चलती है। और जिस आदमी को वर्टिकल यात्रा करनी है, जैसे हवाई जहाज उठा ऊपर, तो वर्टिकल यात्रा उसी बिंदु से शुरू हुई होगी, जहां जमीन छूटेगी। उसके पहले शुरू नहीं होगी। हॉरिजांटल यात्रा जो है वह जमीन पर ही चलेगी। यानी उसमें तुम कितने चलते हो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम यह कहो कि हम हजार मील चल कर बाहर हो जाएंगे, तो तुम गलती पर हो। हजार मील भी तुम उस पर ही चलोगे। वह जो तुम्हारी यात्रा का पथ है, वह हॉरिजांटल है।
इन सेंटर्स में भी दो रास्ते हैं। आमतौर से हम हॉरिजांटल जीते हैं। जैसे सेक्स का सेंटर है। यह सेक्स का सेंटर हैः समझो। तो हम इस सेक्स के सेंटर को पार करके हॉरिजांटल चलते चले जाते हैं। सेक्स के बाहर कहीं नहीं जाता यह। एक स्त्री आए, एक पुरुष आए; हजार स्त्रियां आएं, हजार पुरुष आएं-- कोई फर्क नहीं पड़ता। हजार जन्म हों, कोई फर्क नहीं पड़ता। यह, यह हॉरिजांटल रेखा चलती जाएगी। और यह यात्रा, इस रेखा पर जो भी मिलेगा, उसी से सेक्स के संबंध होते चले जाएंगे। यह बढ़ता चला जाएगा। इसके बाहर तुम कहीं नहीं जाओगे। तुम कहोगे कि हम बहुत अनुभव से गुजर जाएंगे बाहर तो निकल जाएंगे। लेकिन तुम कहीं बाहर नहीं निकलोगे। क्योंकि तुम्हारी यात्रा हॉरिजांटल है।
एक और यात्रा है, जो वर्टिकल है। वर्टिकल का मतलब यह है कि तुम एक सेंटर से आर-पार नहीं जाते। तुम एक सेंटर से दूसरे सेंटर पर जाते हो। यानी एक सेंटर नीचे, उसके ऊपर, उसके ऊपर, उसके ऊपर। अब तुम एक सेंटर से ऊपर की तरफ जाते हो। नीचे के सेंटर से उसके बाद वाले सेंटर को, उसके बाद वाले सेंटर पर, तुम ऐसा बढ़ रहे हो। तुम वर्टिकल हो। तुम वर्टिकल हो। यानी यूं समझो कि मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन की भूमि जो हैः वह सेक्स है। भूमि है वह उसकी। और उस पर वह हॉरिजांटल चल सकता है अनंत जन्मों तक। उसे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। कोई अनुभव उसे बाहर नहीं ले जाएगा। उसी सेंटर से एक और यात्रा जाती है जो वर्टिकल है। जो ऊपर के सेंटर से जोड़ती है।
और एक दफा वर्टिकल यात्रा शुरू हो जाए तो जैसे ही सेक्स के सेंटर से ऊपर उठे तो ऊपर के सेंटर पर सेक्स से हजार गुना आनंद है। और जैसे ही वह आनंद अनुभव हो जाए तब नीचे जाने का कोई सवाल नहीं रहा। वह आदमी हंसेगा। वह कहेगा, क्या पागलपन है। और अब जब उसे यह पता चल गया कि एक सेंटर से ऊपर हटने पर इतना आनंद मिला है, तो अब उसकी खोज ऊपर की तरफ होनी शुरू हो गई।
यह जो हॉरिजांटल यात्रा थी, यह भी आनंद की वजह से थी। उस एक पुरुष ने
एक स्त्री को भोगा, उसे लगा कि बहुत आनंद मिला है। तो अनेक स्त्रियों को भोगूं तो और आनंद मिलेगा। तो वह एक स्त्री से दूसरी स्त्री पर, एक पुरुष से

दूसरे पुरुष पर बदलता चला जा रहा है। एक जन्म में इतना मिला है तो और दस जन्मों में और ज्यादा मिलेगा। पिछला अनुभव उसे आगे धक्का दे रहा है-- हॉरिजांटल। ठीक ऐसे ही एक सेंटर से दूसरे सेंटर में भर गति हो जाए उसकी एक बार तो उसको पता चलता है कि एक सेंटर को छोड़ने से, इतना ऊपर उठने से इतना... ।
हवाई जहाज ऊपर उठा, हजार फीट ऊपर आया तो नीचे की जमीन से बड़ा खुला आकाश
आ गया। नीचे की गंदगी, बदबुएं सब छूट गईं। कचरा है, स्लम्स कुछ दिखाई नहीं पड़ते हैं। और हजार फीट ऊपर उठता है तो और खुला आकाश निकट आता चला जाता है। एक-एक सेंटर बढ़ता है उतना ही। यानी मेरा अपना कहना यह है कि प्रत्येक सेंटर से दूसरे सेंटर पर हजार गुना ज्यादा अनुभव है। लेकिन उसको भी वह अगर हॉरिजांटल पकड़ ले तो मुश्किल में पड़ जाएगा।
और अक्सर योगी पकड़ लेता है। एक सेंटर पर वह गया, सेक्स के सेंटर से ऊपर
उठ गया। अब उसकी फिर यात्रा हॉरिजांटल शुरू हो गई। तो वह फिर भटका। अब वह गया। अब वह फिर जमीन से ऊपर उठ गया, चार फीट ऊपर, तो दौड़ने लगा। अभी उन्होंने कुछ कारें बनाईं, जो चार फीट ऊंचे, जमीन से चल सकेंगीं। चलेंगी जमीन पर ही, चार फीट का फासला रहेगा। तो उनके लिए जमीन के गड्ढे-वड्ढे की झंझट मिट जाएगी। रद्दी जमीन या सड़क की जरूरत नहीं रह जाएगी। बिना सड़क के भी वे जा सकेंगे। मगर जाएंगी हॉरिजांटल। यात्रा ऐसी ही होगी।
तो एक आदमी को किसी भी दूसरे सेंटर पर थोड़ा सा आनंद आ गया, बस वह उस पर चला गया हॉरिजांटल। फिर भटक गया। इसलिए हमारे जितने सेंटर हैं, उतने ही भटकने के मार्ग भी हैं। अगर उनसे वर्टिकल गए तो, तो ठीक। अगर हॉरिजांटल चले गए, तो गए बिल्कुल। और हॉरिजांटल यात्रा कहीं खत्म ही नहीं होती। तुम अनंत जन्मों उसमें फिर जा सकते हो। चले जाओगे, चले जाओगे, कहीं नहीं पहुंचोगे।
तो साधना का मतलब यह है कि माइंड हॉरिजांटल न रह जाए, वर्टिकल हो जाए। साधना की शुरुआत का मतलब यह है कि अब दिमाग सीधे पथ पर यात्रा नहीं करता, आकाश की तरफ यात्रा करता है। यह जो दीये को, जैसे कि आपने मुझसे पूछा कि क्या बनाना, तो मैंने कहा कि दीया बना दो। दीया वर्टिकल यात्रा है। इसलिए उसको कह दिया कि उसको प्रतीक बना दो। दीया जो है उसे तुम हॉरिजांटल चला ही नहीं सकते। कोई उपाय नहीं दीये को चलाने का कि तुम ऐसा चला दो उसको। वह भाग रहा है ऊपर की तरफ। इसलिए अग्नि प्रतीक बन गया। बहुत अर्थों में प्रतीक बन गया।
वह प्रतीक बन गया सिर्फ इसलिए कि वह शायद अकेली चीज है जिसकी कभी भी यात्रा हॉरिजांटल नहीं होती। हमेशा उसकी यात्रा वर्टिकल है। ऊपर, ऊपर, ऊपर जाती है। वह जो निरंतर ऊपर जाने का बोध है--वही। और एक सेंटर से दूसरे सेंटर पर हजार गुना फर्क पड़ता जाता है आनंद का।
और जब तुम उन सातों सेंटर्स को पार कर जाते हो--तो सात सेंटर। समझो सेक्स का सेंटर नंबर दो है, नंबर एक नहीं है। सेक्स का सेंटर नंबर दो है। उससे नंबर एक सेंटर पर नीचे भी उतर सकते हो, अगर उसके नीचे चले गए तो कोमा में चले जाओगे, मूर्च्छित हो जाओगे। उसके नीचे चेतना नहीं है। पौधे वहीं जी रहे हैं, पत्थर वहीं जी रहे हैं, पशु-पक्षी वहीं जी रहे हैं। वह सेक्स के सेंटर से एक सेंटर नीचे के, उस पर जी रहे हैं। वे कभी-कभी सेक्स पर आते हैं, लेकिन फिर अपने सेंटर पर वापस नीचे गिर जाते हैं।
इसलिए पशुओं में, पक्षियों में सेक्स जो है वह पीरियाडिकल है; आदमी में पीरियाडिकल नहीं है। उसका कारण सिर्फ इतना ही है। क्योंकि कभी किसी मौसम में, किसी प्रकृति के दबाव में वे बेचारे मुश्किल से सेक्स तक आ पाते हैं। और काम उनका पूरा हुआ और वे वापस नीचे के सेंटर पर लौट गए। इसलिए कई लोग कहते हैं कि आदमी से तो पशु अच्छा है। अच्छा-वच्छा नहीं है। उसका कुल कारण यह है कि सेक्स के सेंटर पर वह कांस्टेंट नहीं रह सकता। वह कभी छूता है और फिर वापस नीचे गिर जाता है।
आदमी के लिए सेक्स का सेंटर कांस्टेंट है, इसलिए आदमी पीरियाडिकल नहीं है। वह चौबीस घंटे सेक्स से भरा हुआ है। वह उस सेंटर पर ही जीता है। उससे वह नीचे, उससे नीचे गिर सकता है अगर कोई आदमी सेक्स शक्ति का अतिरेक

अपव्यय करे, तो वह नीचे गिर सकता है--कोमा में। तो वह पशु-पौधों के नीचे गिर जाए। और इसलिए कुछ लोग भूल से इसको भी समाधि समझ लेते हैं। यह मूर्च्छित समाधि है।
यह समाधि नहीं है। इसमें भी गिरा जा सकता है। इसमें गिरने से आदमी प्रकृति से एक हो जाता है, परमात्मा से एक नहीं। इसमें नीचे गिरा तो वह पदार्थों की तरह हो गया। वह भी एक हो जाता है। उसे एक-वेक का कुछ पता नहीं चलता। लेकिन वह बड़ी तमस, गहरी निद्रा में चला जाता है।
तुम हैरान होगे, नींद में भी तुम सेक्स के सेंटर से नीचे उतर जाते हो-- नींद में भी। वहां पहुंच जाते हो जहां वनस्पति, पशु-पक्षी, पत्थर। हां, सुषुप्ति में चले जाते हो। नीचे उतर गए तुम सेंटर से। वहां तुम सेक्स के सेंटर पर कभी-कभी आते हो। नहीं तो तुम वापस नीचे गिर जाते हो। यह नंबर दो का सेंटर है। और ऐसे ही नंबर दो का एक सेंटर और है। अगर सेक्स के सेंटर से नीचे गए तो प्रकृति में मिल जाओगे।
सेक्स के मुकाबले ठीक दूसरा सेंटर "आज्ञा" है। अगर उसके ऊपर गए तो उस सेंटर में पहुंच जाते हो जहां से परमात्मा के लिए द्वार खुलता है। जैसे सेक्स के नीचे उतरे तो उस सेंटर में पहुंचते हैं जहां प्रकृति के लिए द्वार खुलता है। आज्ञा से ऊपर गए कि वहां पहुंचते हो जहां से परमात्मा में द्वार खुलता है।

प्रश्न: आज्ञा तो छठवां में आएगा न?

यह गिनती का सवाल नहीं है बड़ा। यानी उसको तुम सात, नौ, दस। वह तो... सच बात तो यह है कि कम से कम हजार सेंटर हैं। लेकिन उसमें जो बहुत पॉवरफुल हैं, उनकी गिनती कर ली जाती है। बहुत पांच गिन लेते हैं, कोई सात गिन लेता है, कोई छह, इससे कोई सवाल नहीं। लेकिन उसके बाद वह सेंटर आ जाएगा, जहां से यह यात्रा आगे शुरू हो जाती है। यह वर्टिकल यात्रा करने की बात है।

प्रश्न: हॉरिजांटल यात्रा को अवॉइड करने के लिए क्या सूत्र है?

अवॉइड नहीं करना है।

प्रश्न: वर्टिकल जो यात्रा है, उसमें जो तीसरा स्टेप है... ज्यादा करके रुक जाते हैं उधर ही।

रुकने का डर तो किसी भी चक्र पर है। रुकने का डर किसी भी चक्र पर है। क्योंकि जिस चक्र पर भी हम आते हैं, वहीं काफी आनंद है; और जहां आनंद है, वहीं खतरा है।
एक कहानी, बहुत पुरानी, सूफियों की कहानी है। एक आदमी जंगल गया। उसने
एक बूढ़े आदमी को पूछा कि मैं बिल्कुल भूखा मर रहा हूं। लकड़ियां काट कर बेच लेता हूं, कोई और उपाय नहीं है। कोई और उपाय नहीं है, लकड़ियां बेच कर ही मैं सिर्फ जिंदगी चला रहा हूं। दिन भर मैं काटता हूं, खाने के लायक भी नहीं जुट पाता दूसरे दिन फिर भूख की भूख खड़ी हो जाती है। उस फकीर ने कहाः थोड़े और आगे जा। तो उसने कहा, थोड़ा और आगे? हां, उसने कहा कि जहां तू लकड़ी काटता है, उससे थोड़ा आगे। वह थोड़ा आगे गया तो वह बड़ा खुश हुआ। आगे जाकर उसने देखा कि वह एक खदान पर पहुंच गया है। वह खदान तांबे की खदान है। वह तांबा लाकर बेच लिया, कई महीनों के लिए इंतजाम हो गया। फिर वह फकीर बूढ़े से मिलने नहीं गया। कई दिन बाद उस बूढ़े को वह दिखाई पड़ा, बड़ा खुश था। बूढ़े से कहने लगा, बड़ा धन्यवाद! बड़े आनंद में जी रहे हैं। उस बूढ़े ने कहा, पागल थोड़ा और आगे भी जा सकता है। उस दिन वह और थोड़े आगे गया और उसने पाया कि वह चांदी की खदान पर पहुंच गया। और उसने कहा, मैं भी बड़ा पागल था कि तांबे पर अटक गया। लेकिन तांबा काफी काम कर रहा था, और वह था लकड़हारा। लकड़ी का अनुभव था कुल जमा, कि एक दिन भर लकड़ी काटो तो दिन भर के लिए खाना जुटता है। तांबा एक दिन ले आता

था तो तीन महीने तक जुट जाता था। भारी संपत्ति मिल गई थी, बात खत्म हो गई थी।
वह चांदी लेकर बहुत खुश हो गया। वर्ष-दो वर्ष दिखाई नहीं पड़ा। बूढ़े को रास्ते से मिलता था, अब बड़ी शान में था। अपने रथ पर बैठा हुआ चला जा रहा था। बूढ़े ने कहा, बड़े मजे में दिखाई पड़ते हो। तो उसने कहा, बहुत ही मजे में। आपकी बड़ी कृपा है। उसने कहा कि थोड़ा और आगे भी जा सकते हो। वह थोड़ा और आगे गया तो सोने की खदान मिल गई उसे। उसने कहा कि मैं भी बड़ा पागल था, कि चांदी पर अटक गया था। मर जाता, बेकार जिंदगी खराब हो जाती। इधर साल भर ढोता था, उतना एक दिन में चला जाएगा अब।
मगर तब कई वर्षों तक दिखाई नहीं पड़ा वह। बूढ़ा मरने के करीब हो गया तो उसके घर गया उसे बताने कि भई, तू वहीं रुका हुआ है, थोड़ा और भी आगे जा सकता है। उसने कहा कि तुम इकट्ठा क्यों नहीं बता देते हो। उसने कहा, मैं क्या कर सकता हूं? मैं क्या कर सकता हूं? तू तो रुक-रुक जाता है। फिर गया है, और जाकर उसने पाया है कि हीरों की खदान मिल गई है। अब तो वह कोई सवाल ही नहीं रहा। अब वह बूढ़ा उसके दरवाजे पर कभी-कभी दस्तक भी देता तो पहरेदार उसको भगा देता कि भाग जाओ, मालिक अभी नहीं मिल सकते। तुम्हारी मर्जी। एक दिन वह चिल्ला रहा है तो मालिक निकल रहा है तो पहरेदार ने उसको डांटा, तो उसने कहा कि अरे इसको मत डांटो। इसी बूढ़े ने तो सब व्यवस्था की। उसने कहा कि मैं मरने के करीब हूं, और मैं तुमसे कहने आया हूं कि थोड़े और आगे जा सकते हो। सच बात यह है असल में कि हम जहां से, जो हम अनुभव में गुजरते हैं, उससे बड़ा अनुभव मिल जाए तो तत्काल रुक जाते हैं। सब बड़ा अनुभव रोकने वाला है। और यह ध्यान रहे कि एक ऐसी जगह भी है, जहां फिर कोई अनुभव नहीं है, और वहां तक पहुंचना है। वहां तक पहुंचना है, जहां कोई अनुभव नहीं है। और तब उसके और आगे फिर नहीं होता। मगर वे सब अनुभव रोकने वाले हैं, सब अनुभव। बल्कि कोई कहेगा कि और आगे, तो दुष्ट मालूम पड़ेगा, कठोर मालूम पड़ेगा, क्योंकि हम बड़ा रस ले रहे हैं। और वह कह रहा है कि यहां नहीं और आगे। वह यहां से तोड़ना चाहे, हिलाना चाहे, तो हम इंकार करेंगे।
तो और, और मजे की बात यह है कि अगर एक जिंदगी में, समझ लें कि सेक्स के सेंटर से कोई ऊपर उठा और दूसरे सेंटर पर चला गया। अगर वह तीसरे पर नहीं चला जाता है तो अगले जन्म में वह फिर पहले से शुरू करेगा। यानी एक शरीर छोड़ने पर एक सेंटर नीचे गिरता है आदमी, दो सेंटर नीचे नहीं गिरता। अगर सेक्स के सेंटर से उठ कर कोई नंबर दो सेंटर पर चला गया, ऊपर की तरफ। और इसी पर रहा जिंदगी में तो अगले जन्म में वह फिर सेक्स से शुरू करेगा। और अगर नंबर तीन पर चला गया, तो अगले जन्म में नंबर दो से शुरू यात्रा होगी।

प्रश्नः यह आपने कैसे कह दिया?

हां, इसके कारण हैं, इसके कारण हैं। क्योंकि हमारे भीतर चेतना की इंटेंसिटी का सवाल है। जैसे समझें: हम जो श्रम कर रहे हैं, जो भी हम श्रम कर रहे हैं, एक सेंटर पर हम खड़े हैं। जिस सेंटर पर हम खड़े हैं, उससे ऊपर के सेंटर के लिए हम श्रम कर रहे हैं। लेकिन जिस सेंटर पर हम खड़े हैं, वह सेंटर हमारे पैर की भूमि है। समझें, कि मैं यहां खड़ा हूं, जमीन मेरे पैर छू रहे हैं। हाथ मेरा छप्पर छू रहा है। एक, नंबर एक का सेंटर समझो जमीन है, नंबर दो का सेंटर छप्पर है। जब आप नंबर दो का छप्पर हाथ से छूते हैं तब आपके पैर नंबर एक पर ही होते हैं। आप समझे मेरा मतलब? यानी जब आपका हाथ नंबर दो छू लेता है, तब आपके पैर नंबर एक पर ही होते हैं। और अगर आप गिर गए और फिर से उठे तो नंबर एक से यात्रा शुरू करनी पड़ेगी। लेकिन अगर आप नंबर तीन छू लेते हैं तो आपके पैर नंबर दो पर पहुंच गए होते हैं। मेरा फर्क समझ रहे हैं आप न? और जिस, जिस नंबर पर आप, लग रहा है आपको कि यह नंबर हमें मिल गया है, वह अब सिर्फ हाथ में है आपके, अभी पैर नहीं बन गया है वह आपका। और जब वह आपके पैर के नीचे आ जाएगा, तब आप उससे नीचे नहीं गिर सकते। जो हमारे पैर के नीचे आ गया, उससे नीचे हम नहीं गिरते। लेकिन जिसे हम हाथ से छू रहे हैं, उससे हम

कभी भी गिर सकते हैं। कोई भी क्षण है गिर जाने का। उसका तो पूरा का पूरा साइंटिफिक मामला है। यानी भीतर तो पूरी सांइस की बात ही है वह।
और इसलिए, और इसलिए खतरा हो जाता है। इसलिए कई दफा ऐसा होता है कि एक आदमी कई जन्मों से नंबर एक से बस नंबर दो में जाता है, और फिर वापस गिर-गिर जाता है, हर बार नंबर दो तक जाता है, फिर खुश हो जाता है, फिर--अस्पष्ट-- में चला जाता है, फिर बेकार हो जाता है।

प्रश्नः बेकार कैसे हो जाता है?

बेकार का मतलब कि उसको नई यात्रा फिर उसी बिंदु से शुरू करनी पड़ती है।

प्रश्नः अगर उसको उसी में ही संतुष्टि हो जाती है। उसको, उसको ऊपर जाने की जरूरत ही क्या है?

संतुष्टि तो हो ही नहीं सकती। संतुष्टि तो परमात्मा के पहले हो ही नहीं सकती। वह तो असंभव है। संतोष हो सकता है। संतोष का मतलब है कि मनाया हुआ संतोष होगा, कि कोशिश करके समझा लेगा कि सब ठीक है, कि अब कहां जाकर... । वह तो रहेगा ही। वह तो जब तक आप आखिरी सेंटर के पार नहीं हो जाते हैं,
तब तक संतोष ही रहेगा।

प्रश्नः तब आदमी यह कब मानेगा? आखिरी सेंटर पर भी पहुंच कर आदमी मानेगा थोड़ा और आगे चल।

जैसे ही आखिरी सेंटर के बाहर हुआ कि मन गया। वह जो कहता हैः और आगे चल,
वह गया। यानी वह जो, वह जो हमको कह रहा था निरंतर, वह कह ही इसीलिए रहा था कि वहां तक चल। इसलिए और आगे, और आगे...
... खास बाइबिल में भी उपलब्ध नहीं है। कुछ और ट्रेडीशनल सोर्से.ज थे, बाइबिल के सीक्रेट, जिनसे वह आया है। तो वह यह है, वह हर जगह पर वे कहते हैंः यह लिख देना कि यह जगह पार कर जाने को है, रुक जाने को नहीं है। जीवन में हर जगह पार कर जाने को है। और एक ऐसी जगह आती है, जो जगह नहीं है। फिर वहां, वहां कोई सवाल नहीं है, आप भी नहीं हैं। वहां कोई भी नहीं है। वैसी जो गति है, वहां फिर और आगे का सवाल नहीं है।

प्रश्नः साधु-संत यही तो बातें करते हैं कि लोगों को... ?

बिल्कुल नहीं करते, बिल्कुल नहीं करते। बिल्कुल ही नहीं करते।

प्रेम नदी के तीरा
पंद्रहवां प्रवचन

जो बाहर से आया वह ज्ञान नहीं है

... सत्य जैसी कोई चीज नहीं है। सब सत्य वही है। मेरा, आपका... जैसे प्रेम जैसी चीज... आपका प्रेम, उनका प्रेम सार्थक है, अर्थ रखता है। प्रेम जैसी चीज खोजने से कहीं भी मिलने वाली नहीं है। और जब मैं प्रेम करता हूं, तो वैसा प्रेम दुनिया में कभी किसी ने नहीं किया। वह मैं ही करता हूं। क्योंकि मैं कभी दुनिया में नहीं हुआ। जब आप प्रेम करते हैं, तो वह प्रेम आप ही करते हैं। दुनिया में कभी न किसी ने किया, न कर सकता है, न कभी करेगा। तो यद्यपि हम कहते हैं कि हजार साल पहले किसी आदमी ने प्रेम किया, दस हजार साल पहले किसी आदमी ने प्रेम किया। मैं प्रेम करता हूं, आप प्रेम करते हैं। आने वाले बच्चे प्रेम करेंगे। लेकिन हर बार प्रेम जब भी फलित होगा, तो नया ही फलित होगा। पुराने प्रेम जैसी कोई चीज नहीं होती। जब मैं प्रेम करूंगा तो वह अनुभव एकदम ही नया है। वह अनुभव मुझे ही हो रहा है। वह अनुभव कभी किसी को नहीं हुआ।
तो मेरी जो दृष्टि हैः वह यह है कि प्रत्येक घटना, प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक अनुभूति अपना व्यक्तित्व रखती है। और व्यक्तित्व हमेशा बेजोड़ है, अनकंपैरेबल है। उसकी कोई तुलना नहीं, कोई तौल नहीं। अगर यह बात हमें कठिन है, झगड़े की बेवकूफी खत्म हो जाती है। वह, वह इस बात पर खड़ी हुई है कि सत्य है--एक। और सत्य है व्यक्तियों से अलग कुछ। और महावीर कहते हैं, वह ऐसा है; बुद्ध कहते हैं, वह ऐसा है; क्राइस्ट कहते हैं, वह ऐसा है--तो ये तीनों सही नहीं हो सकते। यह इनमें से कोई एक सही हो सकता है, बाकी दो तो बिल्कुल उलटी बात कह रहे हैं। वे सही नहीं हो सकते।
तो मेरी अपनी दृष्टि यह है कि ये सभी सही हो सकते हैं। क्योंकि यह, यह जो, यह जो झगड़ा दिखाई पड़ रहा है, यह झगड़ा एक व्यक्ति के कोने से देखी गई बात का है। तो मैं जब देख रहा हूं तो नया ही देख रहा हूं। और आप जब देखेंगे, तब नया ही देखेंगे। पुराना देखने का कोई उपाय नहीं है। पुराना दोहराने का उपाय है, देखने का उपाय नहीं है। आप महावीर की वाणी बिना जाने हुए दोहरा सकते हैं। लेकिन जिस दिन जानेंगे, उस दिन बात बिल्कुल ही और हो गई है। उस दिन बात बिल्कुल और हो गई है।
तो जानना तो हमेशा नया है। नॉलेज ए.ज सच इ.ज न्यू। वह कभी पुरानी नहीं होती। वह कभी पुरानी नहीं हो सकती, न बासी हो सकती है। लेकिन किसी की जानी हुई बातों को हम दोहरा सकते हैं। तो हजारों साल तक दोहराई जा सकती हैं। लेकिन दोहराना जानना नहीं है। दोहराना हमेशा पुराना है। दोहराना हमेशा बासा है।

प्रश्नः लेकिन उस जानने में महाराज जी, समानता तो हो सकती है, जैसा दूसरे ने जाना, वैसा ही मैं जानूं। और समानता मुझे उपलब्ध हो जाए।

यह जो, अगर बहुत गौर से देखेंगेः यह समानता तभी हो सकती है जब कि जैसा दूसरा था, वैसा ही मैं हूं। अन्यथा यह कभी नहीं हो सकती। अगर इसके पूरे इंप्लीकेशंस को समझेंगे, तो जब मैं जान रहा हूं तो मेरा पूरा व्यक्तित्व, मेरा टोटल बीइंग जान रहा है। और मेरा पूरा व्यक्तित्व, और अगर ठीक आपका पूरा व्यक्तित्व बिल्कुल वैसा हो, जैसा मेरा है; तो हम दोनों के जानने की घटना एक ही हो सकती है।
और व्यक्ति कभी दो एक जैसे नहीं हैं। व्यक्ति तो बहुत दूर की बात है,
एक पत्थर उठा लें दिल्ली की सड़क का, तो सारी जमीन पर खोजने से ठीक वैसा दूसरा पत्थर हम नहीं खोज सकते। एक फूल एक बगिया में से चुन लें, और सारे जंगल छान डालें तो दूसरा फूल वैसा हम नहीं चुन सकते। यहां एक-एक चीज का अपना अनूठा होना है। और यह अनूठा होना ही उसकी आत्मा है। मेरे हिसाब में यह जो अनूठापन है, यह उसकी आत्मा है।

मशीन में आत्मा नहीं है, क्योंकि मशीन अनूठी नहीं है। जिस दिन हम अनूठी मशीन बना सकें, उस दिन मशीन में आत्मा शुरू हो गई। लेकिन अनूठी मशीन हम बना नहीं सकते। नकल ही होगी। उस जैसी हजार मशीन हो सकती हैं। मशीन एक ढांचे में ढलती है। और आत्मा एक ढांचा नहीं है। इसलिए मशीन एक परतंत्रता है, आत्मा एक स्वतंत्रता है। स्वतंत्रता इसीलिए है कि--बेजोड़ है, अद्वितीय है, यूनीक है, अपने जैसी है। कोई दूसरे जैसी नहीं है। और अगर यह बात ठीक है कि एक-एक व्यक्ति का अपना अनूठापन है, तो फिर दूसरी बात इसकी कोरोलरी है-- कि तो उसका अनुभव भी उसका ही है। और किसी जैसा नहीं है।
तो हम काम चलाने के लिए बात कर लेते हैं। क्योंकि काम चलाना मुश्किल
हो जाए। अगर हम इस अनूठेपन की परिपूर्णता को स्वीकार कर लें तो, तो भाषा बनानी कठिन हो जाए। क्योंकि जब मैं एक शब्द का उपयोग करता हूं, तब वह शब्द मेरे वैयक्तिक अर्थ रखता है। और जब आपके पास जाता है तो उसके अर्थ बदल जाते हैं। इसीलिए तो दुनिया में इतनी मिसअंडरस्टैंडिंग होती है। जब मैं बोलता हूं, तो मैं कुछ और कह रहा हूं; जब आप समझते हैं, तब आप कुछ और समझते हैं। जब आप फिर बोलते हैं तो आप कुछ और कह रहे होते हैं, मैं कुछ और समझता हूं।
यह जो सारी दुनिया में एक-दूसरे को समझना मुश्किल होता है, दो आदमियों
की तो बात अलग है। जिनसे हमारी बहुत इंटीमेसी है, जिन्हें हम बहुत प्रेम करते हैं, वे भी एक-दूसरे को नहीं समझते। एक-दूसरे की बात, एक-दूसरे के पास जाकर दूसरा रंग और रूप ले लेती है--तत्काल। क्योंकि दूसरे का पूरा व्यक्तित्व रिएक्ट करता है, उस एक शब्द पर, जो दूसरे व्यक्तित्व से आ रहा है। और इन दोनों में कहीं कोई मेल नहीं होगा। कामचलाऊ है मेल हमारा। सिमिलैरिटीज जितनी भी हैं, सब कामचलाऊ हैं। उनको अगर हम तोड़ दें तो जीना मुश्किल हो जाएगा। इसलिए हम उनको बनाए हुए हैं, लेकिन वस्तुतः जगत में कोई दो अनुभव समान नहीं हैं, न हो सकते हैं। क्योंकि अनुभव करने वाली चेतना भिन्न है।
इस पर मेरा बहुत जोर है कि एक-एक व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व है, इनडिविजुअलिटी है। और इसलिए हम सारे लोग एक फूल के करीब से निकलें, तो एक व्यक्ति हो सकता है फूल को देखे भी नहीं। उसे पता भी न चले कि गुलाब का फूल खिला था पास की झाड़ी में, वह निकल जाएगा। उसकी भी आंख पर गुलाब के फूल का रंग पड़ता है। उसकी नाक में भी गंध पड़ती है। सूरज की रोशनी में चमकता हुआ फूल उसके पास भी खड़ा हुआ है। वह निकल जाता है, उसे वह देखता भी नहीं। शायद फूल के लिए उसके व्यक्तित्व में कोई जगह नहीं है। या इस क्षण फूल के लिए उसके व्यक्तित्व के पास कोई पकड़ नहीं है--तो गुजर जाता है।
एक दूसरा आदमी उस फूल के पास से गुजर रहा है, वह एक वैज्ञानिक है। उसके व्यक्तित्व का अपना ढांचा है। एक तीसरा आदमी गुजर रहा है, वह एक कवि है। एक चौथा आदमी गुजरा, वह एक पेंटर है। उनके अपने ढांचे हैं। जब एक चित्रकार उस फूल को देखता है तो उसे रंगों का एक ऐसा अदभुत अनुभव गुजर जाता है जो वैज्ञानिक को कभी नहीं गुजरता। वैज्ञानिक जब उस फूल को देखता है तो हो सकता है सोचे कि किस स्पीसी का है? यह फूल किस जाति का है? इसमें कितने केमिकल्स होते हैं? किस तरह बनता है? किस देश में पैदा होता है? हो सकता है फूल का पूरा इतिहास गुजर जाए; फूल की पूरी केमिस्ट्री गुजर जाए, लेकिन फूल की पोएट्री से उसका कोई संबंध न हो पाएगा। क्योंकि फूल की केमिस्ट्री एक बात है, और फूल की पोएट्री बिल्कुल दूसरी बात है। और एक कवि वहां से गुजरता है, उसे फूल की केमिस्ट्री का पता ही नहीं चलेगा। उससे कोई पूछे कि फूल में केमिकल होते हैं? तो अकबका कर खड़ा रह जाएगा, कि मैंने कभी जाना नहीं। फूल में कुछ और होता है। बाकी केमिकल्स होते हैं, इसका मुझे कोई पता नहीं।
ये जो लोग गुजर रहे हैं फूल के पास से, इनका अपना व्यक्तित्व और फूल का मिलन अनुभव बनता है। और वह अनुभव इसलिए हमेशा भिन्न होगा। इस सत्य को जिस दिन हम स्वीकार कर लेंगे, उस दिन दुनिया में संप्रदायों की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि संप्रदाय बिल्कुल झूठे हैं। क्योंकि संप्रदाय इस बात को मान कर चलते हैं कि अनुभव भीड़ की इकट्ठी हो सकती है। एक भीड़ इकट्ठा अनुभव कर सकती है, यह बात ही फिजूल है।

संप्रदाय मिट सकते हैं, अगर हम एक-एक व्यक्ति की निजता को और इनडिविजुअलिटी को अंगीकार कर लें। साथ ही दुनिया में संप्रदायों का झगड़ा भी समाप्त हो जाता है। क्योंकि मेरे सत्य और आपके सत्य को समान होने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। मेरा सत्य अपनी हैसियत से खड़ा हो जाता है, आपका सत्य अपनी हैसियत से खड़ा हो जाता है। और हमारे ये दावे खत्म हो जाते हैं कि मेरा ही सत्य सबका सत्य होना चाहिए। इस, इस... जब हम एक बार यह सोचने लगते हैं कि सत्य समान होना चाहिए, तब धीरे-धीरे हम यह भी सोचने लगते हैं कि जो समान नहीं है, या तो फिर वह सत्य है तो फिर मेरा सत्य नहीं है। और या फिर मेरा सत्य है तो फिर वह सत्य नहीं है।
फिर यह, यह भाव पैदा होना शुरू होता है--कुरान सत्य है तो फिर गीता सत्य कैसे हो सकती है? और गीता सत्य है तो फिर बाइबिल कैसे सत्य होगी? और अगर महावीर की अहिंसा सत्य है तो मोहम्मद की तलवार कैसे सत्य होगी? और अगर महावीर का जीवन के समस्त संघर्ष से हट जाना सत्य है तो कृष्ण का संघर्ष में ले जाने का आह्वान कैसे सत्य होगा? यह तो फिर, यह तो विरोध पर खड़ी हो गई बातें हो गई हैं। तो मजबूरी हो गई।
अगर महावीर को सत्य मानते हैं तो कृष्ण को असत्य मान लेना अनिवार्यता होगी। और अगर कृष्ण को सत्य मान लेते हैं तो महावीर को असत्य मान लेना अनिवार्यता होगी। और मेरी अपनी समझ यह है कि यह अनिवार्यता नहीं है। यह एक फैलेसी, फैलेसी पर खड़ी हुई बात है कि हमने पहले यह मान रखा है कि सत्य जैसी चीज भी कोई होती है--व्यक्ति से अलग। कृष्ण का सत्य, कृष्ण का सत्य है; और महावीर का सत्य, महावीर का सत्य है; और आपका सत्य, आपका सत्य है।
तो मेरा कहना यह नहीं कि आप किसी के सत्य को मानें। मेरा कहना यह है कि
आप अपने असत्य को छोड़ें, और अपने सत्य को उपलब्ध हो जाएं। मेरा कहना यह नहीं कि आप अपने को छोड़ें। क्योंकि जब आप महावीर के सत्य को मानेंगे तो आपको अपने को छोड़ना पड़ेगा। तो आप महावीर का सत्य मान सकते हैं। और जिस दिन आपने अपने को छोड़ा, आत्मघात शुरू हो गया। इसलिए अनुगमन को मैं आत्मघात कहता हूं। किसी का फॉलोवर बनना सुसाइडल है।
किसी का अनुयायी बनने का मतलब यह है कि मैं अपने को छोड़ता हूं, तुमको स्वीकार करता हूं। मेरी दृष्टि में साधक का छोड़ना स्वयं का छोड़ना नहीं है--स्वयं के असत्य को छोड़ना है, स्वयं के दुख को छोड़ना है, स्वयं के अंधकार को छोड़ना है, स्वयं के अज्ञान को--लेकिन स्वयं के। ताकि स्वयं का सत्य उपलब्ध हो सके। स्वयं का ज्ञान उपलब्ध हो सके।
और जिस दिन, जिस दिन स्वयं के सत्य की पूरी अनुभूति प्रकट होती है, उस दिन सब के सत्य भिन्न-भिन्न होते हुए भी, सत्य हो जाते हैं। उस दिन महावीर असत्य नहीं होते आपके सत्य की अनुभूति में। उस दिन मोहम्मद भी असत्य नहीं होते। और एक मिरेकल घटित होता है कि मोहम्मद की तलवार, और महावीर की अहिंसा एक साथ सत्य हो जाती है।
यह वैसे ही होता है जैसे एक आदमी पहाड़ पर चढ़ रहा है, और जब वह पहाड़ की चोटी पर पहुंच जाता है, तब उसे दिखाई पड़ता है कि हजार-हजार रास्ते हैं। जो दूर-दूर कोनों से अलग-अलग... (रिकार्डिंग रिक्त...)वे एक जगह ले आए। सारी प्रक्रिया जाने की भिन्न है। सारी प्रक्रिया अनुभव की भिन्न है... उसकी जरूरत भी नहीं। लेकिन एक क्षण आता है कि रास्ते भी खो जाते हैं... (रिकार्डिंग रिक्त...)वह साइलेंस इनडिविजुअल नहीं है। मौन व्यक्ति का नहीं है... (रिकार्डिंग रिक्त...) हम अनुभव करेंगे तो हमारे अनुभव अलग-अलग होंगे।... (रिकार्डिंग रिक्त...)कुछ भी न करें, और सब मौन हो जाएं। न कोई विचार, न कोई अनुभव तो हम अलग-अलग कैसे होंगे? मौन में हम अलग-अलग नहीं हो सकते। मैं जब तक बोल रहा हूं, आपसे अलग हूं। जब तक सोच रहा हूं, आपसे अलग हूं। लेकिन अगर मैं बिल्कुल चुप हो गया हूंः न सोच रहा हूं; न बोल रहा हूं; न अनुभव कर रहा हूं--और आप भी इस हालत में हैं, तो हम दोनों में क्या भेद होगा?
साइलेंस भर अभेद है। मौन भर अभेद है। निःशब्द भर अभेद है। लेकिन वहां कोई अनुभव भी नहीं है। तो जहां तक अनुभव है--चाहे वह अनुभव संसार का हो, चाहे सौंदर्य का हो, चाहे सत्य का हो--वहां तक व्यक्ति का भेद है। जहां

अनुभव ही नहीं, नो-एक्सपीरियंस का जगत जहां शुरू होता है, वहां फिर कोई भेद नहीं है। लेकिन वहां समानता भी नहीं है। क्योंकि समानता के लिए दूसरे का होना जरूरी है। समानता के लिए भी भेद होना जरूरी है। तो वहां कोई समानता भी नहीं, वहां कोई भेद भी नहीं।
वहां एक अंतिम सन्नाटा है। उस सन्नाटे में सारी चीजें एक हो गई हैं।
उस सन्नाटे में प्रकट हुआ है कि सारी चीजें एक हैं। उस सन्नाटे में यह दिखाई पड़ा है कि भेद ऊपरी थे। उस सन्नाटे में दिखाई पड़ा है कि व्यक्तित्व भी ऊपरी घटना थी। भीतर अ-व्यक्ति, नो-इनडिविजुल बैठा हुआ है। उसी को हम ब्रह्म कहें, उसको हम मोक्ष कहें--जो नाम दें, वह दूसरी बात है। लेकिन जहां तक अनुभव है, जहां तक अनुभव को शब्द देने की चेष्टा है, वहां तक सब वैयक्तिक है।
और मैं इस पर जोर देना चाहता हूं कि व्यक्ति की गरिमा विकसित होनी चाहिए। क्योंकि उस घटना तक, अ-व्यक्ति तक पहुंचने के लिए व्यक्ति का मौजूद होना जरूरी है, नहीं तो आप कभी पहुंचेंगे नहीं--तभी पहुंचेंगे। अनुभव से शून्य होने के लिए अनुभव का होना जरूरी है। नहीं तो आप उस तक कभी पहुंचेंगे नहीं। और इसलिए मेरा संप्रदाय से विरोध है, तुलना से विरोध है। कंपेरीजन से विरोध है।

प्रश्नः लेकिन तब महाराज जी, जो सारा शास्त्र है, आगम है या प्रवचन है,
या सत्संग है, इस सब का आपकी दृष्टि में क्या उपयोग है?

एक निगेटिव उपयोग है। एक नकारात्मक उपयोग है। पॉजिटिव उपयोग नहीं है। यहां आप मेरे पास आए, यहां दो उपयोग हो सकते हैं। एक तो विधायक उपयोग हो सकता है कि आप मुझसे कुछ ज्ञान लेकर जाएं। आप जितना ज्ञान लेकर आए थे, उसमें कुछ एडिशन हो जाए। मैं कुछ जोड़ दूं। आप यहां से थोड़े ज्यादा ज्ञानी वापस लौटे। यह तो विधायक उपयोग हुआ। और नकारात्मक उपयोग यह है कि आप जितना ज्ञान लेकर आए थे, वह भी गड़बड़ हो जाए। आप खाली हाथ होकर लौटें। आपको लगे कि मैं यह भी नहीं जानता था जो मैं सोचता था कि मैं जानता हूं। यह निगेटिव उपयोग है। यह बहुत मूल्य का है। पॉजिटिव उपयोग बहुत खतरनाक है। सारा सत्संग मूल्यवान है, अगर वहां हमारा अज्ञान प्रकट होता हो। सब शास्त्र मूल्यवान हैं, अगर उनको पढ़ कर आपको पता चलता हो कि मैं कुछ भी नहीं जानता। हालांकि पढ़ते हम इसलिए हैं ताकि हमको यह पता चले कि मैं कुछ जानने लगा। और पढ़ कर हमको यह लगता है कि हम जानने लगे हैं। खतरनाक हो गया है यह उपयोग। समस्त ज्ञानियों के निकट पहुंचने का एक ही मूल्य है कि आपको अपने अज्ञान का बोध, अवेयरनेस ऑफ इग्नोरेंस खयाल में आ जाए। तो अगर आपको अज्ञान का बोध ख्याल में आ जाए तो एक अदभुत प्रक्रिया आपके भीतर शुरू हो जाएगी। और अगर आपको यह पता चल जाए कि मैं कुछ जान लिया तो आपके भीतर जड़ता शुरू होती है, कोई प्रक्रिया शुरू नहीं होती।
ज्ञानी धीरे-धीरे जड़ हो जाता है। क्योंकि उसे खयाल पैदा हो जाता है, मैंने जान लिया। जिसको भी यह खयाल पैदा हो गया कि मैंने जान लिया, उसके जानने के दरवाजे बंद हो गए। अब वह नहीं जानेगा। लर्निंग गई, खोज गई, खोजना बंद हुआ। और जिस आदमी की खोज बंद हो गई, जिसने और जानने के द्वार खटखटाने बंद कर दिए, जो बैठ गया संतुष्ट होकर कि मैंने जान लिया। शास्त्र यह भ्रम पैदा कर सकते हैं। करते हैं, जरूरी नहीं है कि भ्रम पैदा करें। हम करवाते हैं। सत्संग से यह भ्रम पैदा होता है।
सत्संग में क्या मिलेगा आपको? कुछ शब्द मिल सकते हैं। शास्त्र में भी क्या मिलेगा? कुछ शब्द कुछ सिद्धांत, कुछ फार्मुलेशंस भी मिलेंगे। उनको सीख कर आप बैठ जाएंगे और सोचेंगे, मैंने जान लिया। यह जानना वैसे ही है जैसे एक आदमी प्रेम के संबंध में दस किताबें पढ़ ले। और, और प्रेम के संबंध में बात करने लगे। लिख भी सके, बोल भी सके, शास्त्र भी बना सके। लेकिन इसका जानना क्या है?
यह वैसे है जैसे एक आदमी तैरने के संबंध में जितनी किताबें लिखी गई हैं, पढ़ ले। और अगर प्रवचन देना हो तो तैरने के ऊपर प्रवचन दे सके। किताब

लिख सके। और उस आदमी को हम पानी में धक्का दे दें, तो हमें पता चले कि उसका शास्त्र भी काम नहीं आया। उसका तैरने का ज्ञान भी काम नहीं आया। वह तो डूबने लगा, वह चिल्लाने लगा कि मुझे बचाओ। क्योंकि तैरने के संबंध में शब्द सीख लेने से तैरना सीखने का कोई वास्ता ही नहीं है, कोई संबंध ही नहीं है।
और यह इससे उलटा भी हो सकता है कि एक आदमी तैरना जानता है, और तैरने के संबंध में दो शब्द भी न बोल सके। वह यही कहे कि भई, मैं तैरना जानता हूं। और क्या कह सकता है? आप ज्यादा कहें तो मैं तैरना बता सकता हूं। और क्या कह सकता है? तो जानना और शब्द सीख लेना, दो अलग बातें हैं। तो सत्संग और शास्त्र से अगर शब्द सीख लेते हों... और इतना सरल है शब्द सीख लेना। अब हमारे सब शब्द हैं--आत्मा, ईश्वर, ब्रह्म--यह हम, क्या हैं हमारे लिए? इनको सुन कर हमने क्या सीख लिया? हमने कुछ जान लिया है? यह शब्द रूढ़ हो गया। रोज-रोज सुनते-सुनते, सुनते-सुनते मन के भीतर बैठ गया। इतने गहरे बैठ गया कि हमें ऐसा लगता है कि मैं जानता हूं। अगर मैं आपसे पूछूंः ब्रह्म को आप जानते हैं? तो एक तरफ स्मृति कहती है--हां। क्योंकि मैंने उपनिषद पढ़े हैं, मैंने गीता पढ़ी है, मैंने शंकर प.ढ़े हैं, मैंने यह पढ़ा है। मैं जानता हूं कि ब्रह्म क्या है। लेकिन और थोड़ा गहरा झांकें तो पता चलेगा कि सिवाय शब्द के हमारे हाथ में कुछ भी नहीं है। शब्द के पीछे कंटेंट कुछ भी नहीं है। यह तो खतरा है।
तो मेरा उलटा ही खयाल है। मेरा खयाल यह है कि गुरु वह है जो आपका गुरु
न बने। ज्ञान वहां है, जहां से आप अज्ञानी होकर वापस लौटें। शास्त्र वह है जो आपके शब्द छीन ले। अब यह, यह तो उलटा दिखाई पड़ता है न, क्योंकि हमारी आम धारणा यह है कि गुरु वह है जो आपको सिखाए। और मैं कहता हूंः गुरु वह है जो आपने सीखा है, उसको भी भुला दे। लर्निंग नहीं, अनलर्निंग करवा दे।
रमण महर्षि के पास एक जर्मन, आसबर्न उनके पास आकर रहा। और उनसे जाकर कहा कि मैं सीखने आया हूं ब्रह्मज्ञान। तो उन्होंने कहा कि तुम कहीं और जाओ। क्योंकि हम तो यहां भुलाते हैं, सिखाते नहीं हैं। स्कूल ऑफ अनलर्निंग है यह। यह स्कूल ऑफ लर्निंग नहीं है। सीखना है तो बहुत दुनिया, दुनिया पड़ी है, बहुत से स्कूल हैं, वहां तुम सीखो। यह तो स्कूल ऑफ अनलर्निंग है। यहां हम भुलाते हैं। यहां तुम जो सीख कर आए हो, हम बताएंगे कि वह सब फिजूल है। और हम चाहेंगे कि तुम उसको छोड़ दो। जिस दिन तुम कोरे कागज की तरह हो जाओगे और कह सकोगे कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं उस दिन हमारी पहली कक्षा पार हुए।
वह जो थ्रेशहोल्ड है, वह जो ज्ञान की, की दहलीज है, उसकी पहली शर्त तो
यह है कि वहां ज्ञानी प्रवेश नहीं कर सकता। वहां वह प्रवेश कर सकता है जो इतना सरल है और कह सके कि मैं नहीं जानता। तो उपयोग है सत्संग का। लेकिन जो हम उपयोग समझते हैं वह नहीं। उपयोग है हर चीज का, लेकिन जो हम समझते हैं वह नहीं। उपयोग यह है कि वहां...
उपनिषद में कथा है कि श्वेतकेतु वापस लौटा, गुरु से ज्ञान लेकर, पढ़-लिख कर। अब वह चला आ रहा है अपने गांव में। वह, उसने वर्षों अध्ययन किया है। ज्ञान लिया है, परीक्षा उत्तीर्ण हुआ है। गुरु ने प्रशंसा की है। वह चला आ रहा है। उसका बाप उसे देखता है अपने दरवाजे में से। तो ज्ञानी की जो अकड़ होती हैवह उसमें है। आ रहा है अपने घर की तरफ। लेकिन जो ज्ञानी में, जानने वाले को खयाल होता है कि मैं जानता हूं। तो उद्दालक अपनी पत्नी को कहता है कि इसका जाना तो मालूम होता है, फिजूल हुआ। वह तो अकड़ कर चला आ रहा है। ऐसा लग रहा है कि इस खयाल में है कि मैं जानता हूं। तो श्वेतकेतु आ गया। तो उसके पिता ने पूछा कि तू क्या जान कर आया है? तो उसने सारे शास्त्रों के नाम, नाम गिनाए--कि मैं इतिहास पढ़ा, मैं व्याकरण पढ़ा, मैं दर्शन पढ़ा, मैं यह पढ़ा, मैं वह... तो अट्ठारह शास्त्र होते थे, तो सारे शास्त्र उसने गिनाए। सारी ब्रांचिज गिना दीं कि ये-ये मैं पढ़ कर आया हूं। तो उसके पिता ने पूछाः तूने वह जाना कि नहीं जिसको जान लेने से सब जान लिया जाता है?

उसने कहाः ऐसी, ऐसी कोई चीज तो वहां कभी बात नहीं हुई कि जिसके जान लेने से सब जान लिया जाता है। हमने सब जानने की कोशिश की, लेकिन ऐसी कोई चीज नहीं थी कि जिसको जानने से सब जान लिया जाता है।
उसके पिता ने कहाः तूने उसको जाना है कि नहीं जिसको जान लेने से सब पा लिया जाता है? जिसको जान लेने से सब पा लिया जाता है, फिर पाने को कुछ शेष नहीं रह जाता।
नहीं ऐसा तो कुछ नहीं।
पिता ने कहाः तू बेकार ही समय गंवा कर वापस आ गया है। तू फिर वापस जा। लेकिन ऐसा जाननाः जिसको जान लेने से सब जान लिया जाए, जिसे जान लेने से सब पा लिया जाए। वह साधारण जानना नहीं, जिसको हम स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालयों में जानना कहते हैं।
तो एक सत्संग तो स्कूल का है, कालेज का है, विश्वविद्यालय का है। एक शास्त्र वे हैं जो हमें चीजें सिखाते हैं, इनफर्मेशन देते हैं। सूचनाओं से भर देते हैं हमारे मन को। और एक जानना वह है जो सारी सूचनाएं छीन लेता है। सब जाने हुए को पोंछ डालता है। खाली कर देता है मन को। और खाली मन को छोड़ देता है और कहता है--जान। तो एक तो भरे हुए मन का जानना है। और एक खाली मन का जानना है। धर्म जो हैः वह खाली मन का जानना है; और विज्ञान जो हैः वह भरे मन का जानना है। विज्ञान इनफर्मेशन है, धर्म नालेज है। विज्ञान की कोई नॉलेज नहीं होती, और धर्म की कोई इनफॉर्मेशन नहीं होती। विज्ञान ट्रेडीशन है, धर्म इनडिविजुअल है।
विज्ञान की परम्परा होती है। अगर न्यूटन न हो तो आइंस्टीन नहीं हो सकता। लेकिन महावीर न हों तो बुद्ध हो सकते हैं। महावीर से कोई बंधा नहीं है। अगर मोहम्मद न हों तो रमण हो सकते हैं। कोई, कोई, इसमें कोई जकड़ नहीं है। अगर दुनिया में कोई भी कभी धार्मिक व्यक्ति न हो, तो भी धार्मिक व्यक्ति इसी वक्त हो सकता है। लेकिन विज्ञान अतीत से बंधा है। उसका ट्रेडीशन है। अगर वह आदमी न हुआ होता जिसने गाड़ी का चाक बनाया, तो हवाई जहाज बनाने वाला हवाई जहाज नहीं बना सकता। यह उस आदमी से बंधा हुआ है। इसके बिना इसका रास्ता नहीं है, चारा नहीं है।
तो विज्ञान सामूहिक उपक्रम है और धर्म वैयक्तिक। तो विज्ञान की तो सूचना होती है। पहले जो लोगों ने जाना है, वह बताना पड़ेगा विद्यार्थी को कि न्यूटन ने यह जाना, फलाने ने यह जाना, ढिकां... । तुम यह सब जानो, फिर इसके आगे तुम बढ़ सकते हो। लेकिन धर्म का मामला बहुत अलग है। यहां यह बताना पड़ता है कि जिन लोगों ने भी जाना वे, वे ही लोग थे जिन्होंने सब जानने को छोड़ दिया।
महावीर क्या कर रहे हैं पहाड़ियों में जाकर? कोई शास्त्र ले जाते हुए दिखाई नहीं पड़े किसी को। वह कभी कि यह आदमी शास्त्र ले जा रहा है। मोहम्मद सिनाई के पहाड़ पर चला गया, तो कोई ने देखा नहीं कि कोई किताब ले गया हो। वह तो पढ़ता भी नहीं था। पढ़ भी नहीं सकता था। कोई गुंजाइश भी नहीं थी। जीसस क्राइस्ट भी बे-पढ़े-लिखे थे। और शास्त्रों से कोई संबंध, परिचय नहीं था। और तीन वर्ष तक वे जब गुप्त रहे, कोई किताब उनके पास नहीं थी।
इन क्षणों में ये लोग क्या कर रहे हैं? इन क्षणों में ये भूल रहे हैं
जो सिखा दिया गया है। उसको फेंक रहे हैं बाहर वापस, जो भीतर डाल दिया गया। समाज ने, संस्कृति ने, सभ्यता ने जो-जो मन में रख दिया, उन सबसे मुक्त हो रहे हैं। उन सबकी जड़ें काट रहे हैं। क्योंकि उनसे मुक्त हो जाएंगे तो ही वह जो भीतर छिपा है उसके प्रकट होने की कोई संभावना हो सकती है।

प्रश्नः यह ज्ञान घातक किस दृष्टि से आप मान रहे हैं, जो बाहर से आता है। आखिर ज्ञान तो आत्मा का गुण है न? अगर बाहर से भी आया है तो इसमें घातकता क्या है?

जो बाहर से आया, वह ज्ञान नहीं रह गया। वह सूचना रह गई। क्योंकि अगर ज्ञान आत्मा का गुण है तो वह भीतर से ही आ सकता है। उसके बाहर से आने की कोई गुंजाइश नहीं रह गई। जो आत्मा का गुण है, वह भीतर से ही आ सकता है। और बाहर

से जो आता है वह आत्मा का गुण नहीं रह गया। तो बाहर से आने की वजह से ही वह सूचना हो गई, ज्ञान नहीं रहा।

प्रश्नः वह सूचना क्या हम केवल द्रष्टा-ज्ञाता रहे, तब भी हानिकारक हैं?

द्रष्टा-ज्ञाता रहे तब तो कोई हानिकारक नहीं है। वही तो मैं कह रहा हूं। अगर द्रष्टा-ज्ञाता रहें, तो वह आपको पकड़ता ही नहीं। पकड़ता तो वहां है, जहां आप भोक्ता बन जाते हैं उसके। पकड़ता तो वहां है, जहां उसके साथ आइडेंटिटी शुरू हो जाती है। कहने लगते हैं कि मैं जानता हूं। मैं और उसको जोड़ लेते हैं। अगर द्रष्टा-ज्ञाता रहें तो आप कभी यह नहीं कह सकते कि मैं जानता हूं ब्रह्म को। आप इतना ही कहेंगे कि मैंने सुना है ब्रह्म के बाबत। जानता मैं नहीं हूं। मैंने सुना है, मैंने पढ़ा है। जानता मैं नहीं हूं। यह फासला निरंतर बना रहेगा कि मैं जानता नहीं हूं। मैं जानता नहीं हूं। और यह पीड़ा गहरी होती चली जाएगी कि--मैं नहीं जानता, मैं नहीं जानता, मैं नहीं जानता।
यह पीड़ा जितनी गहरी होगी, उतनी ही साधना की संभावना प्रकट होगी। क्योंकि यह पी.ड़ा झेलना बहुत कठिन है। मैं नहीं जानता--इसकी पीड़ा सबसे ज्यादा है जगत में। लेकिन हमने इस पीड़ा को भुलाने की तरकीब निकाल ली है। हम शब्द सीख कर मजे में हो जाते हैं। हम कहने लगते हैंः मैं जानता हूं। वह पीड़ा खत्म हो गई। दुनिया में साधना इसीलिए खत्म हो रही है कि हमने साधना की जो मूल सोर्स है, न जानने का भाव, उसको पोंछ डाला बिल्कुल। हमको खयाल है कि हम जानते हैं। ऐसा आदमी खोजना कठिन है जो यह कहे कि मैं नहीं जानता। (... 29 : 19 अस्पष्ट) वह कहेगा, हां मैं जानता हूं। न केवल वह यह कहेगा कि मैं जानता हूं, बल्कि वह कहेगाः मैं जो जानता हूं, वही सत्य है; दूसरा जो जानता है, वह सब असत्य है। वह लड़ने को, मारने को, तलवार निकालने को तैयार हो जाएगा अगर उसके जानने को आप गलत कह दें।
तो यह जो, आदमी के, आदमी के पतन में, मेरी दृष्टि से, न तो अनीति ने काम किया, न अनाचार ने काम किया, न नास्तिकता ने काम किया; आदमी के पतन में ज्ञान ने काम किया। इसलिए घातक है। क्योंकि जिसको भी यह खयाल हो गया--मैं जानता हूं, वह हो गया शत्रु। अब उसमें ज्ञान कभी पैदा नहीं होगा। बात खत्म ही हो गई।
वैजनर एक जर्मन संगीतज्ञ था। उसने घर के बाहर तख्ती लगा छोड़ी थीः इस संगीत के घर में उन्हीं के लिए प्रवेश है जो संगीत नहीं जानते हैं। वह तो संगीत का अदभुत गुरु था। सैंकड़ों मील से लोग उसके पास सीखने आते थे। जो आदमी आकर कहता, मैं कुछ भी नहीं जानता हूं, वह उसे बहुत थोड़ी सी फीस में सिखाने को राजी हो जाता। जो आदमी कहता कि मैं दस साल सीखा हुआ हूं, वह दुगनी-तिगनी फीस मांगता। वह आदमी कहता, आप क्या अदभुत बात कर रहे हैं? जो आदमी बिल्कुल नहीं जानता उसको आप न-कुछ में सिखाने को राजी हैं, और मैं सीखा हुआ हूं, मैं काफी जानता हूं, मैंने संगीत के सब शास्त्र पढ़े हैं, मैंने दस साल अभ्यास किया है, मैं फलां-फलां गुरु के पास रहा हूं। वह वैजनर कहता हैः इसीलिए मैं दो गुनी, तीन गुनी फीस मांगता हूं। क्योंकि पहले मुझे भुलाने के लिए श्रम करना पड़ेगा। उस आदमी की जगह पहले तुम्हें लाना पड़ेगा जहां कि तुम कह सको, मैं नहीं जानता हूं। तब फिर शुरू होगी बात।
यह, यह जो, तो हमें जो... हमने क्या कर ली है भूल? हमने चीजों को इकठ्ठा
कर लिया है। भूगोल सीखता है आदमी, इतिहास सीखता है, उसी भांति हम धर्म सीखते हैं। ए पोल्स अपार्ट। तो पोलेरिटी अलग है। जैसे एक आदमी गणित सीखता है, उसी तरह प्रेम नहीं सीखता। जैसे एक आदमी व्याकरण सीखता है, उसी तरह कविता नहीं सीखी जाती। ये चीजें अलग हैं। इनकी दिशाएं अलग हैं। जो एक दिशा में सीखने जैसा लगता है, दूसरी दिशा में घातक है। जैसे, और सब चीजें सीखते हैं उनका रास्ता एक ही है--शब्द सीखिए; सिद्धांत सीखिए; तर्क सीखिए, संग्रह करिए। और धर्म का उलटा रास्ता है--तर्क भूलिए, शब्द भूलिए, संग्रह को

त्यागिए। वह जो-जो ज्ञान इकट्ठा कर रखा है उसको छोड़ दीजिए। कुछ कारण है इसका।
इसका कारण यह है कि हमारे भीतर जो छिपा है, अगर हम बाहर की चीजें और भीतर ले जाएं तो वह और दबता चला जाएगा। इस घर में एक हीरा पड़ा हुआ है। इस कमरे के भीतर एक हीरा पड़ा हुआ है। और हम बाहर से जमाने भर के कंकड़-पत्थर और फर्नीचर इस कमरे में लेकर इकट्ठा करते चले जाएं। और कहें कि हम उस हीरे को खोजने की कोशिश कर रहे हैं। और हम जमाने भर की चीजें इस कमरे के भीतर ला रहे हैं। और हम कहते हैं कि हम उस हीरे को खोजने की कोशिश में ये सब चीजें भीतर इकट्ठा कर रहे हैं। तो कोई भी हमसे कहेगा कि तुम पागल हो। हीरा और भी खो जाएगा। इस कमरे में जितनी चीजें बढ़ेंगी, हीरे की खोज उतनी मुश्किल हो जाएगी। तुम कृपा करके कमरे के भीतर जो फर्नीचर है, उसको बाहर करो। वहां जो भीतर सामान है, उसको भी कमरे के बाहर ले आओ। ताकि अंत में अकेला हीरा ही भीतर रह जाए, और तुम देख सको कि वह कहां है, और क्या है।
जब हम कहते हैं कि ज्ञान आत्मा का गुण है, तो उसका मतलब है कि ज्ञान आत्मा में भीतर है। उसे कहीं से लाना नहीं है। और जो-जो हम ला रहे हैं, उसकी भीड़ में उसको खोजना मुश्किल हो जाएगा। जो-जो हम इकट्ठा कर रहे हैं, उसकी भीड़ में उसे खोजना मुश्किल हो जाएगा। स्मृति सब बाहर से आती है, और आत्मा का ज्ञान भीतर है। तो सारी स्मृति हिंडरेंस का काम करती है। वह सब चीजें इकट्ठा कर देती है। धीरे-धीरे खोजना मुश्किल हो जाता है कि--कहां है वह ज्ञान जिसको हम भीतर कहते थे।
तो उलटी प्रक्रिया है। घर का फर्नीचर बाहर कर देना। धीरे-धीरे-धीरे
सब अलग कर देना। तब वही रह जाएगा जो अलग नहीं किया जा सकता। तब वही रह जाएगा जो एसेंशियल है। तब वही रह जाएगा जो सारभूत है, मेरा है। तब वही रह जाएगा जो आत्मा का गुण है। तब घर की चीज ही घर में रह जाएगी, बाहर घर की चीजें सब बाहर कर दी गई हैं। तब ही रिकग्नीशन होगा। तब ही पहचान आएगी। तब ही दिखाई पड़ेगा कि अरे, यह है। एक इलिमिनेशन चाहिए न। एक, एक धीरे-धीरे, धीरे-धीरे चीजों को हटाया जाना चाहिए, तो वह प्रकट हो सकता है।
कुछ और आपको पूछना हो तो बात कर लें?

प्रश्न:... जी का पहला प्रश्न था...

आप अपना ही प्रश्न करिए, उनको छोड़ दीजिए।

प्रश्न: उसके निकट का ही प्रश्न है...

अपना ही... उसको अपना ही कहिए, हां।

प्रश्न: अपना ही कहूंगा...

हां।

प्रश्न: आपके अनुसार...

हां, बिल्कुल। हां, इसीलिए।

प्रश्न: ... दूसरा हो ही नहीं सकता?

हां, इसीलिए।

प्रश्न: ... इन्होंने प्रश्न ऐसा किया कि...

इनको छोड़ दीजिए, कुछ वजह से कह रहा हूं।

प्रश्न: मैं छोड़ इसलिए नहीं रहा कि...

क्योंकि अभी झगड़ा खड़ा हो जाएगा इसका, कि अभी वे कहेंगे कि मेरा यह भाव
ही नहीं था। आप उसको छोड़ दीजिए।

प्रश्न: नहीं उसका भाव जो है, यह नहीं कह रहा कि उनका क्या भाव था या नहीं?

अच्छी बात है।

प्रश्न: प्रश्न कुछ इस तरह का अर्थ था कि जैसे आप जो कुछ कहते हैं वह क्या बिल्कुल एक नवीन बात है या कि कहने का ढंग?

तो मैंने क्या कहा? उससे आपको खयाल में नहीं आया।

प्रश्नः हां, मुझे ध्यान में है कि सत्य जो है वह सबका अलग-अलग है।

हमेशा ही नया है, इसलिए वह सवाल ही नहीं उठता। सवाल ही नहीं उठता।

प्रश्नः तो इस बात को मानते हुए भी इस बात की ओर आपने संकेत किया कि चाहे कामचलाऊ दृष्टि से ही देखें। हमारे जो दृष्टिकोण हैं सत्य के प्रति उनमें हम साझेदार या इकट्ठेपन का भाव लाते हैं। उसी संदर्भ में कुछ पुरानी बातों पर विचार करें, तो जैन धर्म में जैसे अभी वाद और कैवल्य हैं, इन दोनों का ध्यान मुझे एकदम तब आया जब आप कह रहे हैं कि हरेक का अपना-अपना सत्य है, और जब व्यक्ति ने अपना सकल ज्ञान कर लिया, तब उसको लगता है कि सब जो रास्ते थे अलग-अलग। तो वह भी ठीक है। और इसी संदर्भ में स्यात्वाद भी आ जाता है। तो ये तीनों जो हैं...

इस संदर्भ में कोई वाद नहीं आएगा। इस संदर्भ में कोई वाद नहीं आएगा। क्योंकि वाद की मान्यता सत्य को व्यक्ति से मुक्त करने की है। वाद की मान्यता इज्म की। मेरा मतलब आप समझे न? स्यात तो आ सकता है, वाद नहीं आ सकता। क्योंकि वाद की मान्यता यह है कि सत्य न मेरा है, न आपका। सत्य एक वाद है, एक थेयरी है, एक सिद्धांत है। स्यात तो आ सकता है। तो वह मैं कह रहा हूं कि स्यात है उसमें, लेकिन जैन-वैन नहीं आ सकते। वे सब वाद हैं। वे सब वाद हैं। मेरा मतलब आप समझे न? हमारी क्या, हमारी क्या कठिनाई है? हमने तो सत्य के संप्रदाय बनाए हुए हैं। वाद बनाए हुए हैं। और हमारा आग्रह यह होता है कि जब भी हम कोई चीज समझें, तो वह किसी वाद के भीतर समझें। वाद के ढांचे में समझें। उसमें सरलता होती है समझने में।
समझने में सरलता इसलिए होती है, इसलिए होती है कि वाद को हम समझे हुए हैं। यह चीज भी उस ढांचे में जाकर बैठ जाती है। यह कोई फॉरेन ऐलीमेंट नहीं होता। तकलीफ नहीं देता। ठीक है स्यात्वाद हो गया, बात खत्म हो गई। लेकिन मेरा कहना यह हैः यह समझने का रास्ता नहीं है। यह न समझने का रास्ता है। किसी चीज को समझना है तो उसे सीधा, इमीडिएट और डायरेक्ट समझना चाहिए। बीच में वाद नहीं लेना चाहिए। क्योंकि जैसे ही वाद लिया, वैसे ही नासमझी शुरू हो गई। क्योंकि एक चीज के समझने की जगह अब दो चीजों के बीच मेल बिठालने की भी शुरुआत हो गई। और मैं कहता हूं कि दो चीजों के बीच आंतरिक मेल नहीं है, नहीं हो सकता।
तो महावीर को स्यात की भावना, प्रोबेबिलिटी की जो भावना होगी कि हर चीज सत्य हो सकती है, वह जो महावीर का अनुभव हैः वह मेरा नहीं हो सकता, आपका भी नहीं हो सकता। यह अनुभव भी जब मेरा होगा तो मेरा होगा, और आपका होगा। यह अनुभव भी। इसके लिए भी तीन आदमी मिल कर वाद खड़ा नहीं कर सकते हैं। और इसलिए आप जान कर हैरान होंगे कि दुनिया में आज तक जो लोग, जिनको हम कहते हैं जिन्होंने सत्य जाना, उनका आपस में आज तक कोई समूह नहीं बन सका। समूह सब

असत्य के समूह हैं। महावीर और बुद्ध एक ही साथ जिंदा हैं, एक ही प्रदेश में हैं, लेकिन दोनों का कोई समूह नहीं बन सका। यह थोड़ा सोचने जैसा है कि-- क्या?
एक बार तो यह हुआ कि महावीर और बुद्ध एक ही धर्मशाला में ठहरे। वे एक कोने में महावीर, एक कोने में बुद्ध। और ऐसा तो अनेक बार हुआ कि एक ही गांव में दो दिन पहले महावीर गुजरे, और दो दिन बाद बुद्ध। लेकिन इन दोनों के बीच कोई जोड़ नहीं बन सका। तो, या तो हम समझें कि बड़े अहंकारी हैं, इनमें जोड़ नहीं बनता--जो बात बिल्कुल झूठी है। कोई अहंकारी नहीं हैं। या तो हम यह समझें कि बड़े जिद्दी हैं, बड़े वादी हैं कि मैं जो कहता हूं, वही सही है। ऐसी भी कोई वजह मालूम नहीं होती। फिर बुनियादी वजह क्या है? बुनियादी वजह मेरी दृष्टि में यह है कि वह, वह हो ही नहीं सकता, वह असंभावना है।
तो भीड़ इकट्ठी होती है उनकी, जो नहीं जानते; वाद बनता है उनसे, जो नहीं जानते; धर्म बनते हैं उनसे, जो नहीं जानते। जो जानते हैंः वह हमेशा व्यक्तिगत सुगंध है उनका धर्म, उनके साथ लीन हो जाती है, कुछ बचा नहीं रह जाता पीछे। परफ्यूम की खयाल भर रह जाती है कि सुगन्ध आई थी कभी, और गई। महावीर हवा हो जाते हैं, बुद्ध हवा हो जाते हैं; जैन धर्म बचा रह जाता है, बौद्ध धर्म बचा रह जाता है। ये अज्ञानियों के पंथ हुए। ज्ञानी तो विलीन हो जाता है और उसका ज्ञान उसके साथ तिरोहित हो जाता है। जैसे फूल गया, उसकी सुगन्ध भी उसके साथ गई।

मेरा कहना यह है कि अनुभव, महावीर का अनुभव महावीर के साथ आता है और महावीर के साथ विदा हो जाता है। पीछे कुछ रेखा भी नहीं बच जाती। जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं, पीछे कोई पैर के चिह्न भी नहीं छूट जाते। तो सत्य के आकाश में जो भी उड़ता है, पीछे कोई लकीर भी नहीं छूट जाती। लेकिन हम जो सत्य के आकाश से बिलकुल परिचित नहीं हैं, हम वाद खड़े करते हैं। हम पंथ खड़े करते हैं। हम शास्त्र खड़े करते हैं। हम संप्रदाय खड़ा करते हैं।
और फिर इस संप्रदाय की भाषा में हम हर नई चीज को देखने की कोशिश करते हैं, जो और भी गड़बड़ हो जाती है। और इसका परिणाम यह होता है, इसका परिणाम यह होता है कि जब भी किसी व्यक्ति को किसी के जीवन में सत्य का कोई अनुभव होगा तो सारी दुनिया में उस अनुभव की कोई स्वीकृति नहीं होगी, मौजूद में। क्योंकि उन सबके जो लोग हैं दुनिया में, उन सबके अपने संप्रदाय पकड़े हुए हैं।
तो क्राइस्ट जब पैदा होते हैं तब कोई स्वीकृति नहीं क्राइस्ट को। तब उनका समाज उनको सूली पर लटकाता है। आज दो हजार साल बाद हजारों लोगों की स्वीकृति है। लेकिन अभी क्राइस्ट वापस आ जाएं, फौरन अस्वीकार हो जाएंगे। क्योंकि वे जो ढांचे, डेड ढांचे जो बना कर रखे हैं--सिद्धांत के, उसमें कहीं पकड़ में आना बहुत मुश्किल है।
जीवन को कहीं भी ढांचों में नहीं पकड़ा जा सकता। सत्य को भी ढांचों में नहीं पकड़ा जा सकता। अनुभव में--और अनुभव कोई ढांचा नहीं है। इसलिए न तो वाद, न जैन, न हिंदू, न मुसलमान। आप और जीवन, इतना काफी है। मैं और जीवन। और मेरे और जीवन के संबंध में दो नाते हो सकते हैं। या तो मैं और जीवन के संबंध में अज्ञान का नाता है; और या मेरे और जीवन के संबंध में ज्ञान का नाता है। या तो मैं जीवन को जीता ही नहीं, जानता भी हूं, उसमें प्रविष्ट हो गया हूं। और या मैं जीवन के बाहर खड़ा हूं, और नहीं जानता हूं। जीवन के और अपने बीच किसी सिद्धांत को भूल कर भी मत लाइए। क्योंकि वह बाधा ही बनेगा जीवन और आपके बीच।
ये कितनी तरकीबें, लेकिन हम निकाल लेते हैं। और फिर घूम-घूम कर उनके साथ हिसाब बिठालते रहते हैं और समय खराब, खराब करते रहते हैं। अब जैसे आपको यह खयाल आ गया स्यात्वाद का। एक मुसलमान यहां बैठा होता, उसको यह खयाल नहीं आ सकता था, कि आप सोचते हैं आ सकता था उसको? उसको ख्याल नहीं आ सकता था। मेरा मतलब यह कि उसको ख्याल में नहीं आता। मेरा मतलब... उसको ख्याल में शायद नहीं आता। उसको शायद कुछ और खयाल में आता। शायद कुरान की कोई कड़ी खयाल में आ जाती। क्या आपकी बात क्या उससे मेल खाती? एक ईसाई यहां

बैठा हो तो उसको कुरान भी याद नहीं आएगा। एक कम्युनिस्ट बैठा हो तो न कुरान याद आएगा, न स्यात्वाद याद आएगा, न गीता याद आएगी। उसको तो मार्क्स कैपिटल में शायद कुछ लिखा हो तो खयाल में आए कि, कि क्या आपका मतलब यह है? और यह जो याददाश्त आ रही है, यह आपने जो स्मृति इकट्ठी की है, उससे आ रही है। न इससे महावीर का संबंध है, न स्यात्वाद का संबंध है। मेरा आप मतलब समझ लेना। आपने बचपन से अब तक एक स्मृति इकट्ठी की है, एक स्टोर इकट्ठा हुआ है--जानने का, शब्दों का, सिद्धांतों का, संस्कारों का। एक संग्रह है भीतर। वह संग्रह हमेशा इस कोशिश में रहता है कि कोई भी चीज जो आती है जिंदगी में वह संग्रह से मेल खानी चाहिए। तो संग्रह स्वीकार करता है, नहीं तो संग्रह स्वीकार नहीं करता। क्योंकि संग्रह हमेशा खतरे में है। अगर ऐसी कोई चीज आती है जो संग्रह के बिल्कुल उलटी है, या भिन्न है तो दो ही रास्ते हैंः या तो वह चीज बचेगी, या संग्रह को टूटना पड़ेगा।
तो संग्रह, जो माइंड की जो मेमोरी है वह हमेशा, सेल्फ-डिफेंस में हमेशा खड़ी हुई है। वह कोशिश कर रही है कि मेरी अपनी रक्षा होनी चाहिए। मैं टूट न जाऊं। मैं गड़बड़ न हो जाऊं। मैंने जो जाना है वह कहीं गड़बड़ न हो जाए। तो जब भी कोई नई अनुभूति, कोई नया शब्द, कोई नया खयाल, जीवन का कोई भी नया रूप सामने आएगा, वह अनुभूति जल्दी से उसको मेल-तोल करने की कोशिश करेगी। या तो मेल-तोल करेगी या रिजैक्ट करेगी। लेकिन उसको छोड़ नहीं देगी कि जैसा वह है--छोड़ दे।
अगर वैसे ही हम छोड़ते चले जाएं तो अनुभूति रोज स्मृति को नया करती जाएगी। रोज स्मृति का कचरा हटता चला जाएगा, हटता चला जाएगा। और रोज स्मृति भी नई होती चली जाएगी। एक क्षण ऐसा आना चाहिए, जब मैं और जीवन के बीच कोई स्मृति बाधा न देती हो। तो तो कोई अनुभव हो सकता है, नहीं तो अनुभव नहीं हो सकता। तो मुझे इसकी फिकर नहीं कि वह मेल खाए कि नहीं खाए। मुझे इस बात की फिकर है कि आपके मन में खयाल क्यों आता है उसको हम मिलाएं, कंपेयर करें, सिमिलैरिटी खोजें--क्यों? आपके भीतर... मेरा मतलब आप समझे न? हमारे भीतर यह क्यों? हां, वही एक कंडिशनिंग है।

प्रश्नः यह कंडिशनिंग जो है, वह है सब में है। और हम क्या हम इस रूप से नहीं उसका विचार कर सकते, जो व्यक्ति जिसकी भी बात हम करते हैं, क्योंकि वह---- है, इसीलिए हम पूर्ण रूप से सत्य का भी अनुभव करते हैं, किसी दिन उसको अपने अनुभव के साथ आत्मसात करने का प्रयत्न करते हैं, उस स्मृति को मैं यह नहीं मानता कि स्मृति जो है वह जरा इकट्ठी है। स्मृति भी समय-समय पर मोडिफाई होती है। तो रिएक्शन जो होता है उसके साथ स्मृति भी बदलती है। बदलनी चाहिए।

हां-हां।

प्रश्नः... तो यदि वह बदलेगी तो उसके अनुभव हमारे होते जाएंगे, वह भी कुछ प्रभाव अपना डालते हैं?

न, मेरा मतलब...

प्रश्नः तो जो अनुभव हमारे सामने आते रहते हैं, जब-जब और जैसे-जैसे वे अपना कुछ स्टोर करके...

जो भी अनुभव...

प्रश्नः हमारे को और बंधन में, आप यह कहेंगे, बांधते जाते हैं?

जो भी अनुभव सामने आता है, उसे देखने के ढंग का फर्क है। उसको आप स्मृति के माध्यम से देखते हैं या सीधा देखते हैं। इसको समझ लें। मेरे पास स्मृति है, आपके पास स्मृति है। होनी चाहिए, होगी। जीवन के लिए जरूरी

हिस्सा है। लेकिन जैसे आप आए मेरे सामने तो मैं आपको, मेरी जो कल तक की स्मृति है, उसको बीच में पर्दा बना कर आपको देखता हूं। या उसे एक तरफ पड़ा रहने देता हूं, आपको सीधा देखता हूं। और जो अनुभव होता है वह अनुभव तो अपने आप स्मृति में जुड़ जाएगा। उसको जोड़ने की जरूरत नहीं है। लेकिन क्या मैं नये को सीधा देखता हूं, या स्मृति के माध्यम से देखता हूं। इन दोनों में ही बुनियादी फर्क है। अगर स्मृति के माध्यम से देखते हैं तो नये को आप देख ही नहीं पाते हैं। आपने चश्मा पहन लिया एक। और उस चश्मे के रंग आपको दिखाई पड़ते हैं, नये के रंग नहीं दिखाई नहीं पड़ते कि नये में क्या रंग हैं? बुद्ध... एक सुबह एक आदमी आया।
... नहीं, जरा समझ लें, इसको थोड़ा समझ लें।
बुद्ध के पास एक आदमी आया, एक दिन सुबह। बहुत क्रोध में है, उसने बुद्ध
के ऊपर थूक दिया। उन्होंने चादर से उस थूक को पोंछ लिया। और उस आदमी से कहा कि और कुछ कहना हो तो कहो। वह आदमी भी हैरान हो गया। क्योंकि यह उसने कुछ कहा नहीं था, सीधा थूका था। और बुद्ध का शिष्य आनंद, वह भी बहुत बेचैन और क्रोध से भर गया। और उसने कहा कि आप क्या कह रहे हैं? वह आदमी थूक रहा है, और आप पूछते हैं कि और कुछ कहना हो तो कहो।
तो बुद्ध ने कहा कि जहां तक मैं देख पाया, वह इतने क्रोध के आवेश में
है कि शब्द से प्रकट नहीं कर सकता है उस बात को जो कहना चाहता है, तो थूक कर प्रकट कर रहा है। मैं समझ गया। बुद्ध ने कहा कि मैं समझ गया, मैं उसको देख रहा हूं, वह इतने क्रोध में है कि जो बात कहनी है, शब्द असमर्थ हैं। थूक कर कह रहा है। मैं समझ गया। मैं इसलिए मैं पूछता हूं कि और कुछ कहना हो तो कहो। और आनंद से उसने कहा कि आनंद, लेकिन तू इस आदमी को नहीं देख रहा। तुझ पर किसी ने कभी थूका होगा या किसी ने कभी किसी पर थूका होगा, तो उस स्मृति के माध्यम से देख रहा है इस आदमी को कि यह अपमान कर रहा है। इधर मैं तो सीधा देख रहा हूं। मैं भी स्मृति के माध्यम से देखूं तो शायद मुझे ऐसा लगे। मैं सीधा देख रहा हूं इस आदमी को।
वह आदमी तो बेचैनी में पड़ गया, इन दोनों की बातें सुन कर। उसे तो कुछ कहने को नहीं सूझा कि क्या कहे और क्या न कहे? वह वापस चला गया। लेकिन रात भर सो नहीं सका, पछताया। और उसे खयाल आया है कि मैंने कैसे आदमी पर थूका? भूल हो गई। यह तो गलत हो गया। ऐसे आदमी पर जिसने यह पूछा थूकने पर कि और क्या कहना है। जो मुझे इतनी समझने की कोशिश किया थूकते क्षण में भी। थूकते क्षण में भी जो कहीं भी व्यक्तिगत नहीं हुआ। वहां भी निर्वैयक्तिक तटस्थता से देखने की कोशिश की कि घटना क्या घट रही है।
दूसरे दिन सुबह गया माफी मांगने। पैर पर सिर... पैर पर सिर रखा और कहा, मुझे माफ कर दें, मुझसे कल भूल हो गई। तो बुद्ध ने कहा कि कल की बात कल समाप्त हो गई। मैं किसको माफ करूं? तुम वह आदमी नहीं जो कल आए थे। क्योंकि कल जो आदमी आया था, वह थूकता था। आज जो आदमी आया, वह क्षमा मांगता है। तुम वह आदमी नहीं जो कल आए थे। क्षमा मैं किसको करूं? और मैं भी वह आदमी नहीं जो कल था। चौबीस घंटे गंगा का बहुत पानी बह गया। और अब चौबीस घंटे वहीं रुका रहूं, वहीं रुका रहूं, जहां तुम थूक कर गए थे। तो चौबीस घंटे पीड़ा कौन झेले? मेरा मतलब आप समझ रहे हैं? अब वह उस आदमी से कहते हैं कि तुम वह आदमी नहीं, जो थूक गया था। क्योंकि थूकने वाला आदमी कुछ और ही था, जो आया था। उसकी आंखें तो जल रही थीं। तुम्हारी आंखों में तो आंसू भरे हुए हैं--क्षमा के और प्रायश्चित के। तुम वह आदमी नहीं। मैं किसको क्षमा करूं?
आनंद से कहने लगे कि आनंद! लेकिन मैं अगर कल की स्मृति से देखूं कि यही आदमी कल मुझ पर थूक गया था तो यह आदमी तो विलीन हो जाएगा यहां से, और स्मृति मेरे सामने खड़ी हो जाएगी। वही आदमी, लाल आंखों वाला, जो क्रोध से भरा हुआ है, थूक रहा है मेरे ऊपर। तब मैं उस स्मृति के माध्यम क्या इसको देख पाऊंगा जो यह आज होकर आया है? क्या इसके ये आंसू मुझे दिखाई पड़ेंगे? क्या इसकी यह, यह क्षमा की भावना दिखाई पड़ेगी? क्या इस आदमी को मैं पहचान पाऊंगा? नहीं पहचान पाऊंगा, क्योंकि तब सीधा देख ही नहीं पाऊंगा। स्मृति मेरे बीच में होगी।

हम रोज जीवन के छोटे-छोटे अनुभव को भी स्मृति के पर्दे के बीच से देखते हैं। और इसलिए जीवन का सीधा इंपेक्ट, सीधा संपर्क हम पर नहीं हो पाता। अनुभवों का भी नहीं हो पाता, शब्दों का भी नहीं हो पाता, व्यक्तियों का भी नहीं हो पाता। मैं जो कह रहा हूं, वह कुल इतना कह रहा हूंः स्मृति में तो मॉडिफिकेशंस होंगे, वे अपने आप होंगे। आपको करने नहीं हैं। वह तो आपका अनुभव आएगा और स्मृति में जाकर जुड़ेगा और मॉडिफाई करता रहेगा। उसको आपको कुछ भी करना नहीं, आपने किया तो गड़बड़ होगी। न करेंगे तो चुपचाप होगा।
आप खाना खा लेते हैं, फिर पचाते नहीं हैं। फिर वह पचता है। अगर आपने पचाने की कोशिश की तो बीमार पड़े। आप खाना ले गए, गले तक जाता है इसके बाद फिर आपका कोई संबंध नहीं है। फिर वह पचता है और खून बनता है, फिर वह आपको नहीं बनाना है। ठीक वैसे ही अनुभव आपके मस्तिष्क में भीतर प्रविष्ट हो जाए, फिर तो वह स्मृति में जाएगा, पचेगा, मॉडिफाई करेगा, सब कुछ करेगा। वह आपको नहीं करना, वह आपका संबंध नहीं है उससे। वह तो सारी की सारी ऑटोमेटिक प्रोसेस हैं जो हो रहा है। आपको तो इतना करना है कि दरवाजे के भीतर प्रविष्ट हो जाए, भोजन मुंह में चला जाए, इतना भर। यानी इतना आपने नहीं किया तो पेट पचाने का काम नहीं कर सकेगा। आप इतना ही कर लें कि भोजन उठा कर मुंह तक पहुंचा दें। प्रेम से मुंह तक विदा कर दें उसको। फिर इसके बाद जो होना है, वह हो जाएगा।
स्मृति के मामले में भी यही सत्य है। स्मृति के द्वार पर जो चेतना साक्षी है, वह द्वार है। जहां से अनुभव भीतर आते हैं। उस साक्षी के द्वार पर ही स्मृति खड़ी हो जाए तो गड़बड़ शुरू हो गई। क्योंकि वह द्वार अवरुद्ध हो गया। वह फिर बिल्कुल ओपन नहीं रहा। कोई भी स्मृति बीच में आकर पक्ष बनती है; बाधा बनती है; क्लोजिंग बनती है; अवरुद्ध करती है। तो जो मैं कहा, वह कुल इतना, आपकी कंडिशनिंग है--वह है, उस कंडिशनिंग को बीच-बीच में खड़े नहीं होना चाहिए।
प्रतिपल जीवन को सीधा आने दें। न महावीर बीच में खड़े हों; न बुद्ध खड़े हों; न आप खड़े हों; न मैं खड़ा हो जाऊं। कोई खड़ा न हो। इस चित्त का द्वार बिलकुल खुला है। और जीवन के स्वागत के पूरे भाव उसमें हैं, वह जीवन को आने दे रहा है। ऐसा जो अनुभव है, एक दिन, धीरे-धीरे, धीरे-धीरे चित्त को इतना स्पष्ट दर्पण की तरह कर देगा कि उस पर कोई बाधा नहीं रह जाएगी। तब जीवन का पूरा साक्षात भी हो सकता है। वह साक्षात सत्य है। और वह साक्षात हमेशा नया है। जब हो रहा है तब बिलकुल ही नया हो रहा है।
अगर हम गौर से देखें तो जीवन में कुछ भी पुराना नहीं, सिवाय मुनष्य की स्मृति को छोड़ कर। अगर आदमी पृथ्वी पर न हो तो पृथ्वी पर कुछ पुराना है? जो पत्थर रात था, वह सुबह नहीं रहा। जो नदी कल इस घाट पर थी, वह यहां नहीं रही। सब भागा जा रहा है, सब बदला हा रहा है, सब परिवर्तित हुआ जा रहा है। आदमी की स्मृति एक अदभुत ईजाद है। वह नहीं भागती, वह नहीं... वह रुक जाती है। वह ठहर जाती है, वह खड़ी हो जाती है। जो चीज खड़ी हो जाती है, जो चीज मर जाती है, जो डेड हो जाती है--वह स्मृति में संगृहीत होती चली जाती है।
तो स्मृति डेड क्लेक्शन है--अतीत का, बीते हुए का। और बीते हुए मृत के माध्यम से जो जीवित को देखता है, वह भूल में पड़ गया। इसको मैं ध्यान कहता हूंः जीवन को सीधा देखना, स्मृति के बिना सहारे के। इसको मैं मेडिटेशन कहता हूं। और यह जितनी शुभ होती जाएगी, जितनी शुक्ल होती जाएगी--उतना ही सत्य का अनुभव खड़ा होता चला जाएगा--जितनी निर्मल होती चली जाएगी, जितनी इनोसेंट होती चली जाएगी।
यह जरा देखें, बच्चा इनोसेंट होता है--क्यों? बच्चे के पास स्मृति नहीं है। बूढ़ा इनोसेंट नहीं है। बूढ़े के पास स्मृति है। और कोई फर्क नहीं बूढ़े और बच्चे में। कोई फर्क है? एक छोटे से बच्चे में और एक बूढ़े में कोई फर्क है? एक बात का फर्क हैः बूढ़े के पास स्मृति है और बच्चे के पास स्मृति नहीं है। तो बच्चे को हम कहते हैं--सरल, निर्दोष। बूढ़ा होता है--जटिल, कठिन, उलझा हुआ। लेकिन बूढ़ा अगर स्मृति से मुक्त हो जाए या स्मृति को एक कोने सरका दे तो बच्चे जैसा सरल हो गया। और तो कोई कठिनाई नहीं थी, और कोई जटिलता नहीं थी।

तो बुढ़ापे में फिर बचपन को पा लेना, या रोज बचपन को बनाए चले जाना, मिटने न देना--यह साधक की स्थिति है। कि वह अपने इनोसेंस को बचाता हुआ चला जाए। कोई शब्द, कोई सिद्धांत, कोई अनुभव बाधा न दे। वह इतना ही सरल रहे, जैसा पहले दिन बच्चा था--उस दिन था, तो सत्य का अनुभव हो सकता है।

हुं... कौन पूछ रहा है यह? किसका, किसका लिखा हुआ है?

प्रश्नः खुद नहीं कहना चाहता?

पर किसका है? ये तो नहीं कोई... किसने पूछा हुआ है, नहीं कोई कहे नहीं? किसने पूछा हुआ है? तेरा है? ... बढ़िया!

प्रश्नः आपके नीचे गया हुआ है?

न, न, वह पीछे है, नीचे नहीं गया है। ठीक। न मैं इसलिये पूछता हूं कि मेरे लिये प्रश्न भी व्यक्तिगत अर्थ रखते हैं। और जब तक मुझे ख्याल में न हो कि--कौन? तब तक सीधा मेरा संबंध नहीं बन पाता है। यह पूछा हुआ है... नहीं, नहीं, पूछने वाला मौजूद है... आप।

प्रश्नः यह पूछा हुआ है कि जीवन में प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए
या मानसिक शांति के लिए, अपना कुछ सेक्रीफाइस करना पड़ता है, कुछ त्याग करना पड़ता है या कि यह कुछ और ढंग से भी प्राप्त की जा सकती है--शांति और जीवन की प्रसन्नता?

कुछ भी त्याग नहीं करना पड़ता। त्याग तो जिस चीज के लिए भी करना पड़ता
है उससे दुख ही मिलेगा। उससे सुख नहीं मिल सकता कभी भी। दो-तीन बातें समझ लो। पहली बात, जिस चीज के लिए त्याग करना पड़ता है, उससे दुख ही मिलेगा। उससे सुख नहीं मिल सकता, शांति भी नहीं मिल सकती। लेकिन कुछ चीजें मिलती हैं तो कुछ चीजें छूट जाती हैं। त्याग करना नहीं पड़ता है, त्याग हो जाता है। जिस चीज के मिलने से किसी चीज का त्याग हो जाता है, उससे आनंद मिल सकता है। इन दोनों का फर्क समझ लेना चाहिए, त्याग करना और त्याग हो जाना।
तुम अपने हाथ में कंकड़-पत्थर लिए चले जा रहे हो। और कोई तुम्हें समझाता है कि ये, ये कंकड़-पत्थर हैं, इनको छोड़ दो। तुम कहते होः ये चमकदार हैं, ये हीरे हैं, ये मोती हैं। मैं इनको छोड़ नहीं सकती। वह तुमसे कहता है कि नहीं, इन्हें छोड़ दो तो तुम्हें हीरे-मोती मिल सकते हैं। अब उन हीरे- मोतियों को तुम्हें कोई पता नहीं है कि वे कहां हैं? क्या हैं? तुम्हारा प्राण डरता है क्योंकि हाथ में जो है, वह तो कम से कम--है। छोड़ने पर पता नहीं वह मिलेगा कि नहीं मिलेगा जिसकी बात की जा रही है? वह है भी या नहीं? तुम्हें उसका कोई अनुभव नहीं। अगर किसी की बात में आकर या लोभ में आकर तुम ये कंकड़-पत्थर छोड़ दो, तो तुम्हारे खाली हाथ तुम्हें जब तक खाली हैं, पीड़ा ही देंगे। और इनके छोड़ते ही तुम्हें उन हीरे-जवाहरातों की कल्पना नहीं आएगी जो तुमने जाने ही नहीं। तुम्हें इन्हीं की याद बार-बार आएगी जो छूट गए हैं, क्योंकि वे तुम्हारे परिचित थे।
साधु-संन्यासी को परमात्मा नहीं दिखाई पड़ने लगता है। जो घर-द्वार पीछे छूट गया है वही याद आता है। वह जो पीछे छूट गया है, क्योंकि वह जाना हुआ है। याद उसकी आ सकती है, जो परिचित है। जो अपरिचित, उसकी कोई याद ही नहीं होती, कोई उसकी कोई स्मृति नहीं होती। उसको याद कैसे करोगे?
एक बहुत बड़े साधु थे। वह पंद्रह वर्ष छोड़ कर चले गए परिवार को, पत्नी को। फिर काशी में थे। पंद्रह वर्ष बाद उनकी पत्नी की मृत्यु हुई। तो उनके मित्र वहां इकट्ठे थे, और उन्होंने खबर दी, तार पहुंचा कि आपकी पत्नी चल बसी। तो उन्होंने कहा कि अच्छा हुआ, झंझट छूटी। मुझे किसी ने आकर कहा कि उन्होंने ऐसा कहा, कितने त्यागी आदमी हैं! मैंने कहा कि मेरे लिए तो बड़ी गड़बड़ हो गई। जिस पत्नी को पंद्रह साल पहले छोड़ गए, वह अभी तक झंझट थी? उसके

मरने पर पंद्रह साल बाद यह साधु कहे कि अब मेरी झंझट छूटी तो बड़े आश्चर्य की बात है। क्योंकि उस पत्नी को छोड़े पंद्रह साल हो गए। न उस गांव गए, न उस पत्नी... पंद्रह साल से उस परिवार से कोई संबंध नहीं रहा। उसके मरने पर यह आदमी कहे कि चलो झंझट छूटी, तो झंझट मौजूद थी। पंद्रह साल तक कहीं भीतर झंझट चलती थी। यह झंझट थी।
और जब पत्नी के पंद्रह साल छोड़ने पर यह नहीं छूटी थी तो मरने से कैसे छूट जाएगी? क्योंकि पंद्रह साल से मरी थी पत्नी। मरे के बराबर। और जिस पत्नी के मरने पर न तो दया आई, न दुख आया, न प्रेम आया, न पीड़ा आई, न सहानुभूति आई, बल्कि यह खयाल आया कि झंझट छूटी। जरूर इस आदमी ने पंद्रह साल में कई दफा सोचा होगा कि पत्नी मर जाए। यह असंभव है कि इसने न सोचा हो। इसने सोचा होगा कि पत्नी मर जाए तो अच्छा। अब बड़े आश्चर्य की बात है कि पत्नी को छोड़ कर भी यह आदमी उलझा है पत्नी से। वह खयाल पंद्रह साल पीछे ठहरा हुआ रह गया है। पत्नी छोड़ी है, इसलिए। पत्नी छूट जाती, बात दूसरी थी। छोड़... जिस चीज को हम छोड़ेंगे, वह घाव की तरह है। जैसे कच्चे पत्ते को
हम वृक्ष से तोड़ लें, एक घाव छूट गया पीछे। पत्ते को भी पीड़ा हुई, वृक्ष को भी पीड़ा हुई, तोड़ने वाले ने भी हिंसा की। लेकिन एक सूखा पत्ता वृक्ष पर है, हवा आती है, पत्ता उड़ जाता है--सूखा पत्ता है। न पत्ते को पता चलता है कि मैं टूट गया। क्योंकि जो सूख गया उसको पता नहीं चल सकता अब टूटने का। न वृक्ष को पता चलता है कि एक पत्ता टूट गया। क्योंकि जो सूख गया, वह टूट ही गया था। अटका था, हवा ले गई उड़ा कर, कुछ पता किसी को नहीं चलता। न किसी से हिंसा हुई; न कहीं कोई घाव छूटा; न कहीं कोई पीड़ा हुई। एक पत्ता--हवा आई और गिर गया। कहीं दुनिया में कोई खबर न हुई कि एक सूखा पत्ता गिर गया। तो जीवन में सच्चा त्याग तो सूखे पत्ते की तरह होता है, और झूठा त्याग कच्चे पत्ते की तरह होता है।
तो जिसको छोड़ना पड़ता है, जिसको तुम कहते हो सेक्रीफाइस करना पड़े, बस गड़बड़ शुरू हो गई। परेशानी शुरू हो गई। सेक्रीफाइस भूल कर मत करना। कभी किसी चीज को छोड़ना मत। लेकिन जीवन में श्रेष्ठतम चीजें कैसे पाई जा सकें, इसके उपाय करना। और जब भी कोई श्रेष्ठ चीज तुम्हें मिलेगी, तो उसकी जगह जो सब्स्टीट्यूट था--अश्रेष्ठ का, वह छूट जाएगा। वह छूट जाएगा।
अशांति छोड़ नहीं सकती हो तुम, लेकिन शांति पा सकती हो। और शांति पा लो
तो अशांति छूट जाती है। धन कोई छोड़ नहीं सकता, लेकिन धर्म पा सकता है। और धर्म पा ले तो धन छूट जाता है। और... लेकिन हम क्या करते हैं? हम उलटे चक्कर में पड़े हैं। एक आदमी सोचता हैः मैं धन छोड़ दूं तो धर्म पा लूंगा। मैं घर छोड़ दूं तो भगवान मिल जाएगा। मैं यह छोड़ दूं तो वह हो जाएगा। मैं यह छोड़ दूं तो यह हो जाएगा। यह छोड़ने की भाषा ही गलत है। पाने की--जीवन की सच्ची भाषा पाने की भाषा है। जीवन की सच्ची भाषा छोड़ने की भाषा नहीं, छोड़ने की भाषा मृत्यु की भाषा है। जीवन की भाषा नहीं है। इसलिए छोड़ने वाला धीरे- धीरे मरता है, क्षीण होता है, मिटता है, उदास होता है, दुखी होता है। कहीं पहुंचता नहीं। तो जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है उसे पाने की कोशिश करना। और उसको जैसे-जैसे पाने की दिशा में आगे बढ़ोगी, वैसे-वैसे तुम्हें पता चलेगा।
जैसे अब यह कमरा है। कल हम इससे अच्छा फर्श यहां ले आएं, तुम क्या करोगे? फिर इस फर्श को यहां से हटा देना पड़ेगा। लेकिन तब इसकी याद नहीं आएगी। क्योंकि इससे बेहतर फर्श यहां बिछा दिया गया है। यह चुपचाप कोने में हट जाएगा। एक कोने में अंधेरे कमरे में चला जाएगा। इसका किसी को पता नहीं चलेगा।... तुम्हें दिखाई पड़ जाए, तो हाथ के पत्थर तुम छोड़ दोगी, हीरे भर लोगी। तुम्हें खयाल भी नहीं आएगा कि मेरे हाथ में रंगीन पत्थर थे और मैंने त्याग कर दिया।
तो इस मामले में मेरा बहुत जोर है। और वह यह है कि हमेशा पाने की भाषा में, विधायक भाषा में सोचना। जीवन में श्रेष्ठ उपलब्ध होता चले। निकृष्ट छूटेगा, तुम्हें पता भी नहीं चलेगाः कब छूट गया। वैसे ही, जैसे नई साड़ी तुम खरीद लाई हो और पुरानी साड़ी सूटकेस के बाहर हो गई है। तुम्हें कभी पता

नहीं चला कि वह कब बाहर कर दी गई। न उसकी पीड़ा रह गई पीछे, न खयाल रह गया है। न यह भाव रह गया कि मैंने त्याग कर दिया। यह भी भाव नहीं पीछे रह जाता।

प्रश्नः और दूसरा पूछा हुआ है कि कोई व्यक्ति आवश्यकता से अधिक सेंटिमेंटल हो, तो यह कहां तक उचित है? इसे कैसे दूर किया जाए?

दूर करने की कोई जरूरत नहीं है। जीवन में जो भी है उसका उपयोग करने की जरूरत है। इसको समझ लेना खयाल से। हर आदमी के पास संपदा है। कोई आदमी बहुत-बहुत देखेंः इंटलेक्चुअल है, कोई आदमी बहुत सेंटिमेंटल है, भावुक है, कोई आदमी बहुत प्रेमी है, कोई आदमी बहुत बहादुर है, कोई आदमी बहुत क्रोधी है, कोई आदमी बहुत लोभी है--ये घटनाएं हमारे भीतर हैं। आमतौर से लोग कहेंगे कि इसको छोड़ो, उसको छोड़ो, यह करो, वह करो। मैं यह कहता हूंः जो तुम्हें मिला है उसका सम्यक उपयोग करो।
भावुकता का भी सम्यक उपयोग है, राइट यू.ज है। और क्रोध का भी। अशांति
तक का भी ठीक उपयोग है। यानी जीवन में ऐसी कोई चीज नहीं जिसका ठीक उपयोग न हो। और यह भी आश्चर्य की बात है कि जिस चीज का आप ठीक उपयोग करना शुरू करो, वह धीरे-धीरे-धीरे ठीक में परिवर्तित होनी शुरू हो जाती है। अगर कोई व्यक्ति क्रोध का ठीक उपयोग करे तो वह एक दिन क्षमा पर पहुंच जाएगा। क्षमा क्रोध का अंतिम ठीक उपयोग है। अब यह तुम्हें एकदम से दिखाई नहीं पड़ेगा। क्योंकि हमें तो लगता है कि क्षमा उसको मिलती है जो क्रोध को छोड़ देता है। क्षमा उसको मिलती है जो क्रोध को ट्रांसफॉर्म करता है, जो क्रोध को बदलता है, रूपांतरित करता है।
शक्ति तो वही है जो क्रोध में प्रकट होती है, वही क्षमा में प्रकट होती है। तुम यह भी जान कर हैरान होगे कि दुनिया के बड़े क्षमाशील लोग वे ही हो सकते थे जो बड़े क्रोधी थे, नहीं तो क्षमाशील नहीं हो सकते थे। मीडियाकर कुछ भी नहीं हो सकते। गांधी जैसा आदमी इतने बड़े ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो सकता है, क्योंकि गांधी बहुत सेक्सुअल, बहुत कामुक थे।
दुनिया में जब भी कोई आदमी महान ब्रह्मचारी हुआ हो तो यह जान ही लेना
कि वह उतना ही सेक्सुअल न रहा हो तो ब्रह्मचारी हो नहीं सकता। इसको थोड़ा खयाल में लेना। क्योंकि सख्ती... , जो आदमी बड़े से बड़ा पाप कर सकता है, वही आदमी बड़े से बड़ा पुण्य कर सकता है।
नीत्शे ने एक बहुत अदभुत बात अपनी किताब के मॉटो में लिखी हुई है। उसने लिखा है कि अगर किसी वृक्ष को आकाश छूना हो तो उसकी जड़ों को पाताल छूना पड़ता है। इसके बिना कोई रास्ता नहीं है। वृक्ष को आकाश छूना हो तो जड़ों को पाताल छूना पड़ता है। जड़ें जितनी गहरी जाती हैं, वृक्ष उतना ऊपर जाता है।
जीवन बड़ी अदभुत बात है। जीवन जिसको हम कहते हैं, जैसे तुम उदाहरण लिए
हो कि अतिभावुक है मेरा चित्त। तो अतिभावुकता के अच्छे उपयोग हो सकते हैं, बुरे उपयोग हो सकते हैं। मीरा अतिभावुक है। लेकिन सारा भाव एक अदभुत प्रार्थना में परिवर्तित हो गया है। मीरा साधारण स्त्री नहीं है-- अतिभावुक है। क्योंकि अतिभावुक न हो तो अनुपस्थित कृष्ण के प्रति इतने प्रेम की संभावना नहीं है। यह तो अत्यधिक भावुकता है कि जो अनुपस्थित है, वह उपस्थित प्रतीत होने लगे। यह, यह साधारण भावुकता नहीं है। क्योंकि साधारण भावुकता तो ठोंक-बजा कर देखती है, दो पैसे की हंडी खरीदती है तो बजा कर देखती है कि भई, यह ठीक है कि नहीं। लेकिन जो नहीं है मौजूद वह प्राणों का केंद्र बन जाए, इसके लिए इतना भावुक हृदय चाहिए, इतना भावुक--चरम स्थिति में।
लेकिन यह भावुकता प्रेम बन गई। यह भावुकता खुशी बन गई, यह भावुकता आनंद बन गई। यह भावुकता आंसू भी बन सकती थी; यह दुख भी बन सकती थी; पीड़ा भी बन सकती थी। आमतौर से पीड़ा बनती है। दुनिया के सारे कवि भावुक हैं। सारी कविता भाव से पैदा होती है, नहीं तो उसके होने की कोई गुंजाइश नहीं है। गणित से पैदा नहीं होती। गणितज्ञ कवि नहीं हो सकता। उसको कल्पना ही नहीं आ सकती, यह खयाल ही नहीं आ सकता। उसके लिए तो दो और दो चार होते हैं। और भाव

में कभी-कभी दो और दो पांच भी होते हैं, छह भी होते हैं। दो और दो कुछ भी नहीं होता, शून्य भी हो जाता है। भाव के जगत का हिसाब बिल्कुल अनूठा है। वहां का गणित अलग है।
तो यह मत पूछो कि भावुकता को कैसे अलग करें? यह पूछो कि भावुकता को हम कैसे सम्यक, कैसे ठीक दिशा दें? अब तुम गृहिणी हो, तुम किसी को खाना खिलाती हो। होटल में जब खाना खिलाया जाता है तो गणितज्ञ की तरह खाना खिलाया जाता है। और घर में जब खिलाया जाता है तो कवि की तरह खिलाया जाता है। होटल में एक खाना परोसा जा रहा है, वह गणितज्ञ खाना परोस रहा है। वहां सब गणित की भाषा है। कम से कम खाओ, इसकी दृष्टि है। कम से कम खर्च में बन जाए, इसकी दृष्टि है। जितनी जल्दी खाने से उठ जाओ, इसकी दृष्टि है।
एक गृहिणी खाना खिला रही है। यह गणित की भाषा में नहीं खिला रही, यह कविता की भाषा में खिला रही है। जितना ज्यादा खाओ, जितनी देर खाओ, जितना अच्छे से अच्छा दे सके, जितनी देर बिठा सके थाली पर--इसकी कोशिश में लगी हुई है। तो अब अगर भावुक है गृहिणी, और घर में आए मेहमान के प्रति उसकी भावुकता प्रकट होती है, पति को खाना खिलाते वक्त प्रकट होती है, बच्चों को सुलाते वक्त प्रकट होती है, सुबह प्रार्थना करते वक्त प्रकट होती है। तो उसकी सारी भावुकता घर को एक मंदिर बना देगी। लेकिन उसकी भावुकता कब प्रकट होती है? उसका पति उसे सिनेमा नहीं ले जा रहा, उसकी भावुकता प्रकट होती है, वह छाती पीट कर रो रही है, वहां सिर फोड़ रही है--वह सेंटिमेंटल है। वह कहती है, हम सेंटिमेंटल हैं। उसकी भावुकता यहां प्रकट हो रही है। उसको अच्छी साड़ी नहीं लाई गई तो उसकी भावुकता प्रकट हो रही है। वह रो रही है, या दुख उठा रही है, या पीड़ा उठा रही है।
तो हमारे जीवन की सारी की सारी क्षमताएं कैसे सम्यक होती चली जाएं, इस
पर ध्यान रखना बहुत-बहुत जरूरी है। और अगर ध्यान रखो तो तुम्हें किसी चीज को छोड़ने की जरूरत नहीं है। तुम धीरे-धीरे पाओगी कि हर चीज को उपयोग में बदल दिया जा सकता है। और हर चीज जब उपयोगी हो जाती है तो तुम्हारे जीवन को एक सीढ़ी ऊपर पहुंचा देती है। और जब निरूपयोगी हो जाती है तो जीवन को एक सीढ़ी नीचे पहुंचा देती है।
तो इस संबंध में यह ध्यान में ले लेना चाहिए।... बैठ जाइए, बैठ जाइए... ।
यह खयाल में आती है बात तुम्हारे न? यह खयाल में लेना चाहिए कि जो भी मेरे पास संपदा है उसका मैं अधिकतम उपयोग कैसे करूं? ठीक उपयोग कैसे करूं? वह मुझे जीवन में मार्ग बने, दीवाल न बने; सीढ़ी बने, पत्थर न बने रोकने वाला। और तब एक भी ऐसी बात नहीं खोजी जा सकती जिसका कोई न कोई ठीक उपयोग न किया जा सके। एक भी बात नहीं खोजी जा सकती। बुरे से बुरे आदमी में भी ऐसी बात नहीं खोजी जा सकती कि उसके भीतर बड़े से बड़ा आदमी इसी वक्त पैदा न हो सके। लेकिन ट्रांसफर्मेशन की दृष्टि--यह दृष्टि ही गलत है कि मैं छोड़ू। क्योंकि तुम कभी छोड़ ही नहीं सकती, छोड़ेगा कौन? तुम भावुक हो, भावुकता छोड़ेगा कौन? तुम नहीं छोड़ोगी, छोड़ोगी कैसे? छोड़ने का कोई सवाल नहीं है। हां, इसका उपयोग, यह जीवन के लिए सृजनात्मक हो, विध्वंसात्मक न हो। यह जीवन को और समृद्ध करे; और सुखी करे; और सुंदर बनाए; और प्रेम से भरे--इस दिशा में बढ़ते जाना चाहिए। और अगर इसका खयाल आ जाए तो ऐसा ही है मामला, जैसे कि यहां घर के बाहर कोई खाद लाकर रख दे और दुर्गंध फैलने लगे, बदबू फैलने लगे। और हम कहें कि इस खाद को हम कैसे छूटें? इसे कैसे फेंकें, क्या करें, क्या न करें?
तो और एक दूसरा आदमी है, वह उस खाद को बगिया में डाल दे और बीज बो दे।
और कल फूल आ जाएं और सुगंध से मकान भर जाए। और हम पूछने लगें कि इतने सुंदर फूल, इतने खूबसूरत, इतने सुगंधित फूल कहां से आए? और वह कहे कि वही खाद है जो दुर्गंध फेंकती थी, वह मैंने बगिया में बिछा दी, मैंने बीज डाल दिए--वही खाद। उसी की दुर्गंध अब सुगंध बन गई है। तो ट्रांसफार्मेशन हुआ। नहीं तो खाद दुर्गंध देती थी, और फूल सुगंध दे रहे हैं। और जितनी दुर्गंध देने वाली खाद होगी, उतनी सुगंध देने वाले फूल पैदा होंगे। यह, यह ध्यान में रहे। लेकिन अगर हम खाद से घबड़ा गए और सोचने लगे इसको कहां छोड़ें, कहां फेंकें, तो फिर बगिया में फूल भी पैदा नहीं होंगे।

जीवन की प्रत्येक चीज का निषेध किया गया अब तक। अब तक की सारी शिक्षाएं एक तरह से निषेधात्मक हैं। और यह छोड़ो, वह छोड़ो, यह करो, वह करो। क्रोध छोड़ो, भावुकता छोड़ो, घृणा छोड़ो, ईर्ष्या छोड़ो, सब छोड़ो। आदमी सुन लेता है और उसको लगता भी है--ठीक है, कि बात ठीक है। खाद दुर्गंध दे रही है, इसको छोड़ो। लेकिन छोड़ना न तो संभव है, न छोड़ना अर्थपूर्ण है। न छोड़ने से कभी कोई मुक्त हो सकता है। पीछे बंध जाएगा।
तो मेरा छोड़ने का ख्याल ही नहीं, मेरा खयाल है बदलो। जो भी है तुम्हारे पास उसको संपत्ति मान लो, उसको इनवेस्ट करो। उसको और आगे इनवेस्ट करो, कि देखो कि मेरे पास क्या है? पहले तो पूरा निरीक्षण कर लो कि मेरे पास क्या है? मैं क्या संपत्ति लेकर पैदा हुआ। मेरे पास इतना क्रोध है, इसका मैं क्या कर सकता हूं। गांधी के पास क्रोध न हो तो कुछ भी नहीं कर सकते। महावीर के पास भी क्रोध न हो तो कुछ भी नहीं कर सकते। क्योंकि जीवन में करने की सारी ताकत जो है, वह क्रोध से पैदा होती है। जो बच्चा घर में पैदा हो, अगर उसमें क्रोध नहीं है तो न तो उसको पढ़ा सकते, न लिखा सकते, न उससे कुछ करवा सकते जिंदगी भर। अगर क्रोध न हो तो लड़का बिल्कुल ही, बिल्कुल ही व्यर्थ होकर मिट्टी का आदमी हो जाए पैदा, उसमें कुछ नहीं होगा। क्रोध तो बल है। लेकिन कहां लगाया जाए? कैसे लगाया जाए? पर हमको शिक्षक समझाते हैंः क्रोध छोड़ो, शांति ग्रहण करो। मैं नहीं समझाता। मैं कहता हूं, क्रोध को बदलो। और क्रोध अंततः शांति में परिवर्तित होगा। इतना बदलो, इतना बदलो, उसको इतने ऊंचे से ऊंचे तलों पर ले जाओ। दुनिया में जितने, जितने बड़े लोग हैं, सभी लोग बड़े क्रोधी लोग हैं। बड़ा बल है, लड़ने की सामर्थ्य है, मिटने की सामर्थ्य है, दांव लगाने की सामर्थ्य है--ये सब क्रोधी के हिस्से हैं। ये सब क्रोधी के हिस्से हैं।
सुभाष परीक्षाएं पास करके वापस लौटे और कलकत्ता के गवर्नर ने उनको इंटरव्यू के लिए बुलाया। तो जैसे बंगाली अपना छाता बगल में दबा कर... वह अपना छाता दबा कर गवर्नर से मिलने गए। अंदर गवर्नर बैठा है अपने कमरे में। वह अंदर पहुंचे, जाकर कुर्सी पर बैठ गए। अपना टोपी लगाए हुए हैं, छाता लगाए हुए हैं। तो उस, तो उस गवर्नर ने कहा कि इतनी भी शिष्टता तुममें नहीं है? तुम आई.सी.एस. की परीक्षा पास करके आ रहे हो कि... टोपी नीचे उतारनी चाहिए। इतना कहना था कि उन्होंने वह छाता निकाल कर, टेबल के उस तरफ गवर्नर की गर्दन छाते की डंडी में फंसा ली। अब वे दोनों अकेले हैं कमरे में, और उससे कहा कि महानुभाव, यह नौकरी मैंने छोड़ी। अभी मैं नौकर नहीं हुआ। अभी तो इंटरव्यू देने आया था। अभी तो मेहमान था आपका। आपको पहले खड़े होना चाहिए था, आपको पहले टोपी उतारनी चाहिए थी। और जब आपने इतनी अशिष्टता का व्यवहार किया, स्वभावतः जो आपने किया, उसका मैंने उत्तर दिया। और अब यह नौकरी नहीं करूंगा। क्योंकि ऐसे नीचे लोगों के साथ क्या नौकरी करनी है? छाता बाहर खींच लिया। उस गवर्नर को तो एक सेकेंड में समझ भी नहीं आया कि यह क्या हो गया?
अब यह आदमी साधारण क्रोधी नहीं है। इसका क्रोध ज्वलंत है। लेकिन वह क्रोध धीरे-धीरे ट्रांसफॉर्म होता चला गया। वह धीरे-धीरे बल बन गया है। इस आदमी की आत्मशक्ति बन गया। इस आदमी की पूरी जिंदगी एक दांव बन गई। और इस दांव में इस आदमी ने जिंदगी में कुछ जाना, पाया। कुछ, कुछ अनुभव किया। अगर यह क्रोध न हो तो सुभाष बिना रीढ़ का आदमी हो गया। अब वह तो, तो उतार लेता और नमस्कार करके बैठ जाता, नौकरी भी मिल जाती, आई.सी.एस. आफिसर भी हो जाता। लेकिन एक दुनिया में एक बहुत कीमती आदमी पैदा होने से वंचित हो जाता। मेरा मतलब समझ रहे हैं न? हमारी कोशिश यह होनी चाहिए कि जो हमारे पास है, उसको हम अधिकतम ठीक दिशा में कैसे उपयोग करें कि वह जीवन के लिए हितकर हो जाए। और मेरी जिंदगी के लिए सीढ़ियां बने और मुझे ऊपर ले जाए। तो अपनी सेंटिमेंटैलिटी का भी उपयोग करो। बड़े उपयोग हैं। और एक स्त्री में अगर भावुकता न हो तो और क्या होना चाहिए? लेकिन सब लोग समझा रहे हैं कि भावुकता नहीं होनी चाहिए। तो स्त्री धीरे-धीरे पुरुष जैसी हो जाएगी, उसमें जिस दिन भावुकता नहीं होगी। पश्चिम में वैसी हालत पैदा हो गई है। पश्चिम की स्त्री भावुक नहीं रही। क्योंकि इधर डेढ़ सौ साल के शिक्षकों ने

यह सिखाया कि भावुकता नहीं होनी चाहिए, बड़ी गलत बात है। यह वीकनेस है, कमजोरी है। तो आज हालत यह खड़ी हो गई कि पश्चिम में स्त्री है ही नहीं। दो तरह के पुरुष हैं, बस। स्त्री तो नहीं है वहां। और उसके पीछे कोई भाव नहीं है, कोई कल्पना नहीं है, कोई कविता नहीं है। कोई जीवन को समर्पित करने का सवाल नहीं है। सीधा गणित हो गया है।
तो एक स्त्री तलाक दे सकती है अपने पति को, क्योंकि रात यह आदमी खर्राटे भरता है। और रात उसकी नींद ठीक नहीं चलती। यह हम कल्पना ही नहीं कर सकते। लेकिन अगर ठीक गणित से चलें तो यह बिल्कुल ठीक बात है, इसमें गलती क्या है? एक स्त्री को जिस पति के साथ जिंदगी भर रहना है, वह रात को खर्राटे भरता है। आवाज करता है सोने में, तो यह कैसे चल सकता है? यह तलाक देना ठीक है, बिल्कुल गणित की बात है। बिल्कुल वैज्ञानिक है, बिल्कुल साइंटिफिक है। एक दिन का सवाल नहीं है, यह तो रोज का सवाल है। सीधा गणित कहता है कि पति ऐसा होना चाहिए जो रात सोने दे। यह रात आवाज करे तो कैसे हो? लेकिन भावुकता कुछ और कहती है।
भावुकता एक अंधे पति को भी जीवन भर हाथ पकड़ कर चला सकती है। एक बीमार पति को जीवन भर बैठ कर पत्नी खिला सकती है, मजदूरी कर सकती है, बर्तन धो सकती है, सड़क पर गिट्टी फोड़ सकती है। और उसकी भावुकता यह कहेगी उससे कि वह मेरा पति है। क्या वह मेरा पति तभी होता जब वह स्वस्थ होता? उसकी आंखें होती हैं, तभी मेरा पति होता। तो फिर प्रेम क्या आंख और स्वास्थ्य और ये कीमतें सोचता है? और प्रेम देखेगा यह कि वह... यह कसौटी है अब उसको कि वह पता चले कि प्रेम था कि नहीं था। वह जीवन भर उसकी सेवा करती रहेगी। यह भावुकता का ट्रांसफार्मेशन हुआ। और भावुकता अगर हम तोड़ ही दें, तो भावुकता टूटती है। तो फिर गणित रह जाता है, सीधा-सीधा हिसाब रह जाता है। मां देखती है कि यह बेटा, इसको बड़ा करना है तो यह कितना कमा कर देगा, नहीं देगा--तो बड़ा करना। नहीं तो क्या जरूरत है? क्या प्रयोजन है? क्या अर्थ है इसमें? कोई प्रयोजन नहीं, कोई अर्थ नहीं। लेकिन एक भावुकता है वह मां को कहती है कि कुछ देगा कि नहीं देगा...
मैं अभी एक, लाला जी एक, एक स्टेशन पर एक ट्रेन चूक गया। वहां प्लेटफार्म पर बैठा हुआ हूं। एक बूढ़ी औरत को गांव से लोग लाए गाड़ी में, बैलगाड़ी में। उसके सिर पर पट्टियां बंधी हैं, उसको अस्पताल ले जा रहे हैं, बड़ी बस्ती। और चार-छह औरतें उसके साथ हैं। और वह बिल्कुल बेहोश सी हालत में है बुढ़िया। तो मैं पूछा कि इसको क्या हुआ? तो साथ की औरत ने कहा कि इसके लड़के ने इसको लाठी मार दी। एक ही लड़का है इसका, और उसने इसको यह लाठी मार दी। और उस औरत ने यह कह कर, यह कहा कि ऐसे लड़के तो होते से मर जाएं तो अच्छा। वह जो बुढ़िया आधी सी बेहोश है, वह फौरन कहने लगीः न-न-न, ऐसा मत कहो। अगर आज लड़का न होता तो मारता भी कौन? है, तो मारता है। नहीं, ऐसा मत कहो। ऐसा मत कहो। ऐसा बुरा शब्द मत कहो। लड़का है तो मारता है, नहीं होता तो मारता भी कौन? अब इसको तो हम कहेंगे, यह भावुकता की अंतिम दशा हो गई। लेकिन यही मां के चित्त की दशा है। भावुकता काट लो तो मां भी कट गई। पीछे एक औरत रह गई, फिर एक मां नहीं है वहां।
मेरी समझ तो यही है कि जो हमारे पास है--जो भी है, उसको बुनियादी संपत्ति मानो। जिससे जीवन का पूरा व्यवसाय करना है, उसे छोड़ने-छाड़ने की बात मत करो। उसको बुनियादी संपत्ति मान कर हम क्या करें, किस दिशा में नियोजित करें कि हमारा जीवन अधिकतम आनंद और शांति को उपलब्ध होता चला जाए। हम क्या करते हैं, ऐसी दिशा में नियोजित करते हैं कि जीवन दुख और अशांति को उपलब्ध होता चला जाता है। और स्मरण रखें कि जो चीज दुख और अशांति लाती है, वही चीज सुख और शांति ला सकती है। सिर्फ नियोजन का फर्क होगा, सिर्फ नियोजन का फर्क। और छोटा सा फर्क और जमीन-आसमान अलग हो जाते हैं।
अभी मैं पूना था तो मैं एक घटना वहां कह रहा था। एक, एक यहूदी साधु है, लिएबमेन। वह शिक्षा लेने गया है, अपने गुरु के आश्रम में। अपने एक मित्र के साथ दोनों गए। दोनों आश्रम में भर्ती हो गए हैं लेकिन बड़ी तकलीफ दोनों को सिगरेट पीने की, पागल पकड़ है। बिना उसके जी नहीं सकते। और आश्रम में

सिगरेट वगैरह बिल्कुल निषिद्ध है। सिर्फ एक घंटा बाहर निकलने का मौका मिलता है। नदी के किनारे वह घूमने के लिए एक घंटा मिलता है। एक घंटे बाहर जा सकते हैं। लेकिन वह भी ईश्वर चिंतन के लिए मिलता है। किसी और काम के लिए नहीं। एक घंटा घूमो, ईश्वर चिंतन करो। तो उन्होंने सोचा कि यही वक्त है, इसी में पी लेनी चाहिए। लेकिन लिएबमेन ने कहा कि जब हम साधु होने आए हैं तो इतनी सच्चाई तो बरतें कि गुरु से आज्ञा ले लें कि हम वहां सिगरेट पीना चाहते हैं। तो दोनों गुरु के पास गए। लिएबमेन गुरु के पास गया तो गुरु ने एकदम मना कर दिया--कि नहीं, नहीं पी सकते हो। सिगरेट मना है। वह वापस लौटा। लेकिन उसका मित्र पहले ही गुरु से पूछ कर आ गया और बैठ कर सिगरेट पी रहा है। तो बहुत हैरान हो गया। उसने कहाः तुमको गुरु ने हां भर दी क्या? मुझे तो इंकार किया है। उसने कहा कि मुझे तो, उन्होंने कहा, हां-हां। उसने कहाः यह तो बड़ी अजीब बात है! एक ही गुरु है, एक ही बात के लिए हम दोनों ने पूछा। यह तो बड़ी ज्यादती और अन्याय है। मैं फिर से जाता हूं। तो उसके मित्र ने कहाः एक मिनट रुक जाओ, तुमने पूछा क्या था? उसने कहा कि पूछने की क्या बात थी, मैंने पूछा कि क्या हम ईश्वर-चिंतन करते समय सिगरेट पी सकते हैं? उन्होंने कहा कि नहीं-नहीं, बिल्कुल नहीं। तुमने क्या पूछा था? तो उसने कहा कि बस समझ में आ गया। मैंने पूछा था कि क्या हम सिगरेट पीते समय ईश्वर-चिंतन कर सकते हैं? बिल्कुल कर सकते हैं।
अब इसमें कितना सा फर्क है? शायद कोई भी फर्क नहीं है बुनियादी तो। लेकिन नियोजन का फर्क है। शब्द अलग तरह से नियोजित हुए हैं। एक आदमी पूछता है कि क्या मैं ईश्वर चिंतन करते समय सिगरेट पी सकता हूं? कौन हां भरेगा इसके लिए? कोई भी नहीं भरेगा दुनिया में हां, कि यह क्या बेवकूफी की बातें कर रहे हो। तुमको और कोई वक्त नहीं मिलता? ईश्वर-चिंतन करते समय सिगरेट पीनी है? लेकिन एक आदमी पूछता है कि मैं सिगरेट पीता हूं, और उस वक्त ईश्वर-चिंतन करूं तो कोई बुराई तो नहीं? तो कोई भी कहेगा कि क्या हर्जा है? कर सकते हो। यह बिलकुल एक ही है, लेकिन नियोजन है, दिशा। जरा सा फर्क, और जमीन और आसमान अलग हो जाते हैं। तो अपनी सेंटिमेंटैलिटी को, अपनी भावुकता को नियोजन करो। उसे उस दिशा में लगाओ, जहां से धीरे-धीरे ज्यादा आनंद... खयाल रखो चौबीस घंटे कि मैंने अपनी भावुकता का क्या प्रयोग किया? क्या उससे दुख आया मुझे, पति को, बच्चों को, परिवार को, या कि सुख आया? और एक पंद्रह दिन निरीक्षण करो। और तय करो कि किन-किन उपयोग से दुख और किन-किन उपयोग से सुख अनुभव होता है। फिर सुख की दिशा में उसका प्रयोग करते चलो। एक तीन महीने में तुम पाओगे कि भावुकता तुम्हारी सबसे बड़ी संपत्ति बन गई। तुम उसके लिए भगवान को धन्यवाद दोगे कि यह मुझे दी तो ठीक, नहीं तो मैं क्या करती? छोड़ने की तो बात ही मत करना, छोड़ तो कोई सकता नहीं। छोड़ नहीं सकता।

प्रेम नदी के तीरा
सोलहवां प्रवचन

लीला का अर्थ है वर्तमान में जीना

एक तो वर्तमान से एकाकार होने के लिए मैंने नहीं कहा है। एकाकार तो मैं कहता हूं किसी से भी मत होना। क्योंकि एकाकार होने का मतलब मूर्च्छा के और कुछ भी नहीं हो सकता। जब तक तुम्हें होश है तब तक तुम एकाकार कैसे होओगे? जब तुम बेहोश हो तभी हो सकते हो। यानी जब तक भी तुम्हें होश है, तब तक तुम अलग हो। तुम एकाकार हो कैसे सकते हो? इसलिए मूर्च्छित व्यक्ति के सिवाय एकाकार कोई कभी नहीं होता या निद्रा में होता है। प्रकृति से एकाकार हो जाता है।
तो मैं तो एकाकार होने के बिल्कुल विरोध में हूं। तल्लीनता के बिल्कुल विरोध में हूं। मेरा कहना बिल्कुल उलटा है। मैं यह कहता हूं, वर्तमान के प्रति जागरूक होना--एकाकार नहीं। अवेयरनेस ऑफ दि प्रेजेंट, आईडेंटिटी नहीं। वह जो वर्तमान क्षण है, हमारे पास से जो गुजर रहा है, उसके प्रति पूरे जागरूक होना। फिर इस वर्तमान क्षण के प्रति जागरूक होने में बहुत बार दिखाई पड़ता है कि भविष्य की बात है यह, लेकिन हो सकता है समस्या वर्तमान में हो।
जैसे कि कल मुझे ट्रेन पकड़नी है। लेकिन टिकट तो आज खरीदनी है। ट्रेन
तो कल ही पकडूंगा, आज कोई उपाय भी नहीं है पकड़ने का। ट्रेन तो कल ही पकडूंगा न, आज तो कोई उपाय नहीं है। लेकिन टिकट तो कल नहीं खरीदूंगा, आज ही खरीदूंगा। तो जब तुम कल ट्रेन पकड़ने के लिए और आज टिकट खरीदने के लिए सोच रहे हो तब वस्तुतः तुम वर्तमान समस्या के प्रति ही सोच रहे हो, भविष्य के लिए नहीं। भविष्य के लिए सोचने का तो मतलब यह होगा कि कल तुम्हें ट्रेन पकड़नी है और तुम आज बैठे हो, तुमने ट्रेन पकड़ ली है कल्पना में। और तुम ट्रेन में चल पड़े हो, तुम सोचने लगे कि कहीं एक्सीडेंट तो नहीं हो जाएगा। तो तुम भविष्य में चले गए। मेरा मतलब समझ रहे हो न तुम? समस्या तो आज है, दस साल बाद की भी समस्या आज हो सकती है।
और अगर समस्या आज हो तो तुम्हें उसे आज वर्तमान का हिस्सा मान कर ही जागना चाहिए। वह है भी वर्तमान का हिस्सा। तो भविष्य में हम अक्सर क्या करते हैं कि वर्तमान चूक ही जाता है। यह समझ लो कि कल तुम्हें किसी मित्र से मिलना है तो तय तो तुम्हें आज करना पड़ेगा। कि कल फलां जगह मिलूंगा, यह तो आज की समस्या है। लेकिन यह तो खत्म हो गई। अब तुम कुर्सी पर बैठे हो और मित्र से तुमने मिलना शुरू कर दिया, जो कि मौजूद नहीं है। तो जो मित्र मौजूद नहीं है, उससे तुम मिल तो नहीं सकते आज। हां, उससे मिलने में वर्तमान की जागरूकता खो जाएगी। क्योंकि वह कल्पना में सो जाना है। वह एक तरह का स्वप्न है। तो जब मैं यह कह रहा हूं कि वर्तमान के प्रति जागें, तो मेरा मतलब यह नहीं है कि आपके लिए कल है ही नहीं, ऐसा मैं कह रहा हूं।

प्रश्नः आपका कुछ ऐसा कहना है कि हमें जागरूक वर्तमान के ही प्रति होना चाहिए। लेकिन क्या इसके साथ आप यह भी कहेंगे कि जागरूक रहने के साथ-साथ हम भविष्य के बारे में चिंता न करें। उसको आप बिल्कुल बहिष्कार करना चाहेंगे क्या? उसका बहिष्कार करना चाह रहे हैं।

असल में मैं, जीने पर मेरा जोर है, चिन्तन पर जोर ही नहीं है। और जी तो सिर्फ वर्तमान में सकते हैं, भविष्य में तो जी नहीं सकते। मेरा जोर है जीने पर। जैसे मेरा जोर है खाना खाने पर। अब मुझसे कोई कहे कि हम भविष्य की रोटी खाएं तो आपका कोई इनकार है? तो मैं यह कहूंगा पहली तो बात है कि भविष्य की रोटी खा नहीं सकते। सिर्फ सपना देख सकते हैं। और सपने में जो बड़ा खतरा है वह यह है कि हो सकता है आज की रोटी चूक जाए। जो बड़ा खतरा है सपने में वह यह है कि आप भविष्य की रोटी खाएं तो वर्तमान की रोटी कौन खाएगा?

और वर्तमान आपके लिए रुकता नहीं एक क्षण। आप नहीं हो मौजूद तो भी भागा चला जा रहा है, आप मौजूद हो तो भी भागा चला जा रहा है। आप हो या नहीं, इसलिए वर्तमान नहीं रुकता। वर्तमान आपके लिए रुकता नहीं, वह चला जा रहा है। समय चला जा रहा है। तो जिस क्षण में हम नहीं होते, वह क्षण खाली निकल जाता है। और अगर एक आदमी के चित्त की ऐसी आदत बन जाए कि वह सदा भविष्य में जीने लगे तो समझना चाहिए वह पूरी जिंदगी ही चूक जाएगा। उसको पता ही नहीं चलेगाः जिंदगी कब आई और कब चली गई। क्योंकि जो नियम है, वह नियम तो यह है कि मेरे हाथ में अभी एक क्षण है, और एक साथ दो क्षण मेरे हाथ में कभी भी नहीं होते। जब भी होगा, एक ही क्षण होगा।
तुझे खयाल होना चाहिए कि महावीर समय का मतलब ही यह कहते हैंः समय का
वह हिस्सा जो हमारे हाथ में होता है। वह आखिरी टुकड़ा काल का जो हमारे हाथ में होता है, उसका नाम समय है। और इसलिए सामायिक का मतलब हैः उस क्षण में होना जो हमारे हाथ में है। समय का मतलब ही यह है कि मोमेंट का आखिरी टुकड़ा। क्षण का वह अंतिम एटॉमिक हिस्सा जो हमारे हाथ में होता है। जिससे हम वस्तुओं को तोड़ें तो एटम आएगा। और अगर हम काल को तोड़ें, टाइम को तोड़ें तो समय आएगा। क्षण आएगा।

प्रश्नः क्षण का भी कितना हिस्सा होता है?

हां, यानी...

प्रश्नः अंत जिसका अंत आ जाए...

... जो अंतिम हो जाए, एटामिक। आयनिक हो जाए, इसका आगे विभाजन न हो सके। ऐसा अविभाज्य जो क्षण का टुकड़ा हमारे हाथ में होता है, वही हमारे हाथ में है। अच्छा और उसको चूकने में बाल भर की देरी गई, वह चूक जाता है। उसमें देर नहीं लगती चूकने में। क्योंकि वह तो भागा ही चला जा रहा है। और अगर आप अनुपस्थित हैं तो वह भागा चला जा रहा है। और हम अनुपस्थित निरंतर रहने की आदत बना लेते हैं।
तब धीरे-धीरे वह आदत हमारे साथ होती है। जब भी समय आता है वह निकल जाता है। जब निकल जाता है, तब हम उसके संबंध में सोचते हैं। या जब वह नहीं आया होता तब सोचते हैं। लेकिन जब वह होता है तब हम नहीं होते। तो हमारा मेल कहां से हो--एक्झिस्टेंस से, अस्तित्व से। यानी मनुष्य को तकलीफ ही क्या है? मनुष्य की सारी कठिनाई क्या है?
एक ही कठिनाई है कि उसका तालमेल अस्तित्व से नहीं हो पाता। जो अस्तित्व है किसी न किसी तरकीब से वह उससे चूकता ही चला जाता है। और यह चूक का जो सूत्र है, वह अतीत में या भविष्य में होना है।
मैं नहीं कहता कि सोचें, न सोचें। मैं यह कह रहा हूं कि अगर अस्तित्व
की कभी अनुभूति में जाना है; सत्य को अगर कभी जानना है; अगर आनंद को कभी अनुभव करना है तो, तो एक ही रास्ता है। और वह रास्ता यह है कि किसी भांति मन के पेंडुलम को अतीत और भविष्य के छोरों पर घूमने से रोकें। और उसे ठहरा दें वहां, जहां क्षण है अभी।
अब यह बड़े मजे की बात हैः साधारण मनुष्य समय में डोलता है। अतीत से भविष्य की तरफ जाता है चित्त; भविष्य से अतीत की तरफ जाता है चित्त। और इसका नियम है। जैसे घड़ी का पेंडुलम उत्तर से... बाएं से दाएं गया, फिर दाएं से बाएं गया। जब घड़ी का पेंडुलम बाएं जा रहा है तब तुमको खयाल भी नहीं हो सकता कि बाएं जाता हुआ पेंडुलम दाएं जाने की शक्ति अर्जित कर रहा है। इधर गया, तब उधर जाने में ही उसने उतनी ताकत इकट्ठी कर ली कि जिससे वह फिर उलटा जाएगा। दाएं जाता हुआ पेंडुलम फिर बाएं जाने की शक्ति अर्जित कर रहा है। इसका बड़ा मजेदार मतलब है। इसका मतलब यह है कि जब हम एक दिशा में जा रहे होते हैं--एक अति में, तो हम अनिवार्य रूप से उसके विरोध में जाने की शक्ति अर्जित कर रहे होते हैं।

गांव में कोई बच्चा रोता हो तो उसकी मां कहती है... हंसता हो तो उससे कहती है कि ज्यादा मत हंसाओ, नहीं तो वह रोने लगेगा। वह बहुत गहरे सूत्र का कारण है। अगर कोई बहुत हंसेगा तो फिर करेगा क्या आखिर में? यानी आखिर पेंडुलम हंसी की सीमा में पहुंच जाएगा तो फिर लौटेगा, तब फिर वह रोना शुरू करेगा। मेरी बात समझ लो जल्दी, नहीं तुम दूसरी जगह चले जाओगे।
अति में यह हमारा चित्त डोलता है। और जब तक हम अति में डोलते हैं समय की--अतीत और भविष्य के बीच में--तब तक वर्तमान निरंतर चूक जाता है। एक सेकेंड को पेंडुलम बाएं जाकर भी ठहरता है, फिर लौटती यात्रा शुरू होती है। दाएं जाकर एक सेकेंड ठहरता है, फिर लौटती यात्रा शुरू होती है। लेकिन मध्य में कभी भी नहीं ठहरता। वह हमेशा यात्रा ही में पड़ता है। या तो पेंडुलम इधर जाता है या उधर जाता है, और मध्य में कभी भी नहीं होता। होता ही नहीं। मध्य में दिखाई पड़ता है, लेकिन होता कभी भी नहीं। वह या तो बाएं जा रहा होता है या दाएं जा रहा होता है। मध्य पड़ता है उसकी यात्रा में, पर वह चूक जाता है।

प्रश्नः मगर कोई रास्ता है उसको... ?

वह जो मैं कह रहा हूंः तो साधारण व्यक्ति के पास, साधारण व्यक्ति के चित्त की गति समय में होती रहती है--अतीत और भविष्य... । असाधारण व्यक्ति खड़ा हो जाता है मध्य में। और तब एक बिल्कुल ही नया अनुभव शुरू होता है। तब उस समय का कोई भी हिस्सा उसके बिना जीए नहीं निकल पाता। क्योंकि वह सदा वहीं मौजूद है जहां से समय निकलता है। वह उसी दरवाजे पर खड़ा है। जैसे कि वह दरवाजा है, हवा वहां से आती-जाती है। मैं कभी इस कोने में होता हूं, कभी उस कोने में होता हूं। दरवाजे पर कभी होता ही नहीं। ज्यादा से ज्यादा एक कोने से दूसरे कोने पर जाते हवा का थोड़ा सा जो स्पर्श होता है, वही मेरा अनुभव है।
लेकिन मेरा ध्यान होता है आगे, तो वह अनुभव भी मैं सचेतन नहीं ले पाता। लेकिन एक आदमी द्वार पर ही खड़ा हो गया। अब हवा का कोई भी ऐसा झोंका नहीं है जो बिना उसे छुए निकल जाए। और चूंकि उसने द्वार पर ही खड़े होने का तय कर लिया है, इसलिए अब वह पूरा उपस्थित है। और हवा के प्रत्येक झोंके को पूरा जीता है। यानी अब असंभव है कि हवा उसको धोखा दे जाए। अब तो वह वहीं खड़ा है जहां से हवा आती-जाती है।
तो वर्तमान जो है मेरी दृष्टि में, समय का हिस्सा ही नहीं है। टाइम-प्रोसेस का हिस्सा नहीं है। मेरे हिसाब में तो पास्ट और फ्यूचर, ये दो ही समय के हिस्से हैं। वर्तमान तो अस्तित्व का हिस्सा है। समय का नहीं है। और जो व्यक्ति वर्तमान में खड़ा हो गया, वह अस्तित्व में प्रवेश कर जाता है। उसको कोई ब्रह्म कहे; आत्मा कहे; सत्य कहे--जो नाम देना हो। मोक्ष कहे, जो भी नाम देना हो।
तो यह जो मेरा जोर है, वह उसके लिए तुम जो पूछते हो, इररेलेवेंट है। मैं यह नहीं कह रहा कि तुम सोचो, कि नहीं सोचो। यह मैं कह ही नहीं रहा। मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि अगर तुम्हें जीवन की इस गहराई को जानना है तो यह करना पड़ेगा। और एक बार जिसने यह जाना, उसके लिए न अतीत का कोई अर्थ है, न भविष्य का। कोई अर्थ ही नहीं है। क्योंकि इतनी बड़ी अर्थवत्ता उसके जीवन में प्रकट होती है, इतनी परिपूर्णता से जीवन उसके पास आ गया होता है कि अब वह, इन टुकड़ों में--कल जीऊंगा, इसको सोचता ही नहीं। अब इसे भी थोड़ा समझना चाहिए। हम कैसे लोग हैं?
अगर मेरा प्रेमी है कोई, उससे मुझे मिलना है। तो जब तक वह मुझे नहीं मिला है मैं उसके बाबत सोच रहा हूं। अभी वह मुझे मिला नहीं। जब वह मुझे मिल गया है, तब मैं कुछ और सोचने लगा हूं कि--मेरी चित्त की आदत है पूरी की पूरी, कि वह तो मेरे चित्त की बनावट है न--तब मैं दूसरी बातें सोचने लगा हूं। जब वह मिल गया, तब मैं दूसरी बातें सोच रहा हूं। जब वह चला गया है फिर, तब मैं फिर उसका सोच रहा हूं कि वह... । लेकिन वह क्षण जब वह मुझे मिला था... ।

यानी एक आदमी जब खाना नहीं खाया, तब सोचता है खाना खाने का। और जब खाना खा रहा होता है, तब कुछ और बातें सोचता है। खाने से उठ जाता है, फिर सोचने लगता है खाने के बाबत। और मजा यह था कि जब खाना खा रहा था, तब ही खाने में पूरी तरह अगर जी लिया होता, तो न तो आगे सोचने की जरूरत पड़ती, न पीछे सोचने की। सोचने की जरूरत इसलिए पड़ती है कि खाने का रस ही नहीं मिल पाया। वह जो रस मिल गया होता तो बात खत्म हो गई थी।
तो हम जीवन के रस से चूकते हैं, इसलिए भविष्य और अतीत में सोचते रहते हैं। और तुम जो कह रहे हो, वह असल में भविष्य और अतीत की बात नहीं है। यह तो ठीक है जीवन का लोक, जो जहां जीवन हमारा संबंधित है, जहां लोक व्यवस्था है, जहां घड़ी के कांटे पर सब चल रहा है--गाड़ियां दौड़ रही हैं, हवाई जहाज चल रहे हैं, कारें दौड़ रही हैं, ड्यूटियां बदल रही हैं, दफ्तर हैं, दुकान हैं--वह जो दुनिया है, वह मनुष्य की बनाई हुई दुनिया है। और उस मनुष्य की बनाई हुई दुनिया है जो अतीत और भविष्य में जीता है। ध्यान रखना, वह उस आदमी ने बनाई है जो अतीत और भविष्य में जीता है। वह उस आदमी ने नहीं बनाई जो वर्तमान में जीता है।

प्रश्नः... फूलकुमार जी सेठिया का टेलीफोन है?

क्या कहते हैं?

प्रश्नः वह आपको प्रणाम बोलते हैं, और कलकत्ता से ट्रंककॉल आया है आपका प्रोग्राम पूछने के लिए?

बता दो उनको। क्या प्रोग्राम पूछते हैं? तुम बात कर लो। कलकत्ते का?

प्रश्नः कलकत्ते से पूछ रहे हैं...

ट्रंक है न? नहीं तो कहना कतकत्ते का अभी मेरा बाकी कोई प्रोग्राम नहीं है।... अभी मेरा नहीं है। लेकिन कौन पूछता है? इंदू पूछते हैं क्या देखो?

प्रश्नः फूलकुमार जी पूछते हैं?

... हम अतीत और भविष्य में ही चिंतन करते हैं। उनकी सारी व्यवस्था वैसी है। उसमें तुमने जीना है, उसमें तुम्हें जीना है। तो उसमें जीने का इस तरह के व्यक्ति के लिए एक ही अर्थ होता हैः ऐसा नहीं कहता कि उसमें जीएं ही मत, कहां जाएंगे? उसमें जीना पड़ेगा। तो उसमें जीना पड़ने का मतलब इतना ही होता हैः जैसे कि चार बच्चे हैं। गुड्डा-गुड्डी का विवाह कर रहे हैं। और तुम भी उस कमरे में बैठे हो और तुम भी सम्मिलित हो गए हो। और बच्चे तो बड़े गंभीर हैं। सब तैयारियां चल रही हैं शादी की उनकी। और उतने ही गंभीर हैं जितने कि बड़े-बूढ़े असली शादियों में होते हैं। लेकिन तुम उसमें सम्मिलित हो गए हो। और तुम जो उस कमरे में उन बच्चों के साथ खेल खेल रहे होः तुम भी उनकी दुल्हन को, दूल्हे को सजाने में लगे हो। तो जिस तरह तुम वहां सम्मिलित होओगे, क्योंकि पूरे वक्त तुम्हें पता है कि एक खेल हो रहा है, इससे ज्यादा कुछ भी नहीं।
ठीक इस भांति जो व्यक्ति वर्तमान में जीने की साधना में उतरता है, और कोई साधना ही नहीं है दुनिया में। और कोई साधना ही नहीं। बाकी जिनको हम साधनाएं कहते हैं, वह सिर्फ साधन है। जो इस साधना तक पहुंचाते हैं। और कुछ भी नहीं हैं वह। लेकिन साधन को लोग साधना समझ लेते हैं। साधना तो सिर्फ एक है कि वर्तमान में कैसे जीएं? बाकी साधन अनेक हो सकते हैं कि कैसे इस स्थिति तक आएं, जहां कि वर्तमान में जीना हो जाए। इस स्थिति में आ गया व्यक्ति तुम्हारी जिंदगी में, तुम्हारे जगत में सम्मिलित होगा, लेकिन वह खेल से ज्यादा नहीं है।

इसलिए एक बहुत कीमती धारणा है इस मुल्क में विकसित हुई लीला की। और लीला का मतलब हैः खेल। इसलिए हम कृष्ण के जीवन को कृष्ण-चरित्र नहीं कहते हैं। कृष्ण-लीला, राम-लीला कहते हैं। और यह ब.ड़ा मजेदार है। कहना चाहिए राम नहीं--चरित्र। नहीं, लेकिन चरित्र नहीं कहते। कहना गलत है। और तुलसीदास की किताब का नाम थोड़ा गलत है। रामचरितमानस ठीक नहीं है। तुलसी समझे नहीं लीला की बात को। लीला और चरित्र में तो जमाने भर का अंतर है।
चरित्र का मतलब होता है कि वह आदमी समझ रहा है कि यह बिल्कुल सच बात है
जो हो रही है। लीला का मतलब होता है कि वह आदमी सिर्फ खेल में भागीदार है। यानी इसका मतलब यह होता हैः अगर गहरे में समझो कि अभी रामलीला चल रही है, दिल्ली में समझो। तो वह जो राम इस रामलीला में राम का पार्ट कर रहा है, असली राम ने भी इससे ज्यादा नहीं किया है--लीला का मतलब यह होता है। यानी लीला का मतलब यह होता है कि अभी, अभी इस, इस राम की सीता खो जाएगी, इस राम की जो आज नाटक में काम करेगा--इसकी सीता खो जाएगी, फिर रात फिर शांति से सोया हुआ है। रोया है; चिल्लाया है; छाती पीटी है; और हाय सीता चिल्लाया है और फिर शांत हो गया है। अगर राम की जिंदगी भी उनको लीला दिखाई पड़ी होगी, तो इससे भिन्न नहीं रह सकती। यानी उसका मतलब ही है क्या? उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। एक बड़े कैन... बड़े प्लेटफार्म पर जिंदगी के वह खेल चला। जहां पात्र बड़े थे, जहां लंबा विस्तार था कथा का, जो दस-बीस साल चली लंबी, पचास साल चली। बाकी थी वह कथा। थी वह लीला।
वर्तमान में जीने वाला जीएगा इन सारे लोगों के साथ जो वर्तमान में नहीं जीते हैं, तो एक लीला हो जाएगी। तब वह भविष्य के लिए अगर उसे सोचना पड़ा, तो सोचना पड़ने का मतलब ही यह है कि कभी रसमुग्ध तो उसमें होने वाला ही नहीं। सोचना इसी ढंग का हो सकता है कि कल तुम्हें रुपये देने हैं तो आज डाक से भेज दूं। रुपये तुम्हें कल ही मिलेंगे, आज भी रुपये तुम्हें दे नहीं रहा हूं। आज तो सिर्फ डाक से भेज रहा हूं। लेकिन डाक भी चौबीस घंटे लेगी पहुंचने में न। तो आज मैं डाक में डाले दे रहा हूं। लेकिन भविष्य में मेरा कोई रस नहीं है। रसमुग्ध नहीं हूं उसमें। रसमुग्ध तो वर्तमान में हूं। और तब इसका मतलब यह हुआ कि तब मैं यह जो डाक से तुम्हें रुपये तुम्हें भेज रहा हूं, इस भेजने के कृत्यों को मैं पूरा जीऊंगा।
वह जो आदमी कल की फिकर में लगा हुआ है, वह हो सकता है कि एक लिफाफे की डाक दूसरे में बंद कर दे। यह मुझसे नहीं हो सकेगा। क्योंकि डाक में जब मैं भर रहा हूं लिफाफे में रुपये, तब मैं पूरी तरह वहां मौजूद हूं। यद्यपि तुम्हें रुपये कल मिलेंगे और उसका इंतजाम आज करना पड़ रहा है। लेकिन जो मैं अभी कर रहा हूं, मैं वहीं हूं--पूरा। मेरा मतलब समझ रहे हैं न?
तो तुम्हें कल का इस अर्थ में सोचना जारी रखना पड़ेगा। लेकिन वह रसमुग्ध चिंतन नहीं है जिसमें तुम लीन नहीं होते हो; जिसमें तुम कभी डूबते नहीं हो। और वहां तुम्हारा एक खेल का जगत है, वह भी चलता है। उसमें कुछ हर्जा नहीं है। लेकिन वह खेल का जगत तब ही होगा, जब तुम खड़े हो जाओगे। नहीं तो वह खेल का जगत नहीं होगा, वह असली मालूम पड़ेगा। बहुत असली मालूम पड़ेगा। सच तो यह है कि वर्तमान हमें उतना असली कभी मालूम नहीं पड़ता, जितना भविष्य और अतीत मालूम पड़ते हैं। वर्तमान का तुम्हें पता ही नहीं चलता-- असली है, तो कैसे मालूम पड़ेगा? अतीत बहुत असली मालूम पड़ता है। क्योंकि वह हो चुका ठोस। सब चीजें रख गईं वहां। जो होना था, वह हो चुका। और भविष्य बहुत असली मालूम पड़ता है। क्योंकि हमारी वासना हमसे कहती है कि--यह हो जाए, यह हो जाए, यह हो जाए। यह ठोस मालूम पड़ते हैं। जब कि दोनों बिल्कुल झूठे हैं। क्योंकि अतीत तो अब है ही नहीं कहीं, और भविष्य में भी कहीं नहीं। जो है--बारीक रेखा वर्तमान की, वह ऐसी चूकी जा रही है--जो कि असली है। तो इसको समझ, इसको समझपूर्वक देखने से, जीवन में प्रयोग करने से धीरे-धीरे, धीरे- धीरे वह जो पेंडुलम है, वह कम कंपन करेगा। फिर धीरे-धीरे खड़ा होना शुरू होगा। और कोई भी उपाय किया जा सकता है जिससे वह वर्तमान में थोड़ी देर जीने लगे।
ध्यान इत्यादि का इतना ही मतलब है कि आधा घंटा, घंटे भर तुम द्वार बंद करके, कम से कम उस आधा घंटे में तुम वर्तमान में ही रहोगे--इसका ही प्रयोग

करना है। साढ़े तेईस घंटे जो तुम करते हो--करना। आधा घंटा के लिए द्वार बंद करके वर्तमान में ही होना। न अतीत को घुसने देना, न भविष्य को--जो हो, वही होने देना। सड़क से कार गुजरेगी, आवाज आएगी, उसे सुनना। क्योंकि वह है। पंखे का... चलेगा, उसकी आवाज आएगी, उसे सुनना--वह है। एक बच्चा रोएगा, उसे सुनना--वह है। तुम्हारे मन में विचार चलेंगे, उन्हें जानना--वे हैं। श्वास चलेगी... ।

प्रश्नः आपने जैसे कहा है श्वास पर चित्त को जगाना, तो उसमें भी वह चित्त श्वास पर नहीं रहता, वह इधर-उधर जाता है, उसको जाने देना है या... ?

न, न, आप उसकी फिकर ही न करें। आप तो पॉजिटिवली श्वास पर होने की फिकर करें। वह इधर-उधर जाता है। अगर आप उसका पता लगाने गए तो आप और दूर चले जाएंगे। उसकी फिकर ही मत करें। आप तो दो बातें जानें कि श्वास पर है, या नहीं। नहीं है तो श्वास पर ले आएं, है तो बात ठीक है। आप उसके साथ जाने की चिंता ही न करें। और न लड़ने की कोशिश करें उससे। आप तो पॉजिटिवली इतना खयाल रखें कि बस वह श्वास जो चल रही है उस पर--है, या नहीं। बीच-बीच में चूक जाएगा, चूक लेने दें। फिर लौट आए, फिर वापस आ गए। चूकेगा, वह बहुत चूकेगा। वह तो एक-दो सेकेंड रहेगा, और चूकेगा।
क्योंकि वह तो उसकी आदत जन्मों की है। इसलिए करने की आदत है उसकी, वह कभी रहा ही नहीं वर्तमान में। आप कहां कि उसको झंझट में डाल रहे हैं? जो उसका अनुभव ही नहीं है... । तो वह तो किसी तरह खींच-तान कर आप लाए हैं, एक सेकेंड वह रुका नहीं कि--वह गया। वह गया, अपनी आदतवश गया वह वापस। वह बिल्कुल मैकेनिकल रुटीन है। वह तो धीरे-धीरे टूटेगी।

प्रश्नः जिनको जागरूकता हो जाती है, अगर उनके शरीर की मूर्च्छा होती
है तो जागरूकता फिर भी रहती है?

हां, बिल्कुल रहेगी। उससे कोई...

प्रश्नः फिर भी रहती है!

वह तो मरने तक में रहती है।

प्रश्नः मूर्च्छा होने के बाद?

उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह तो कितना ही मूर्च्छित हो जाएं। तो मूर्च्छित हैं, यह उन्हें पता रहेगा। यानी यह कांशसनेस उन्हें पूरी रहेगी कि शरीर मूर्च्छित है और मैं हाथ हिला नहीं सकता, उठा नहीं सकता--यह भी होश है। मैं मूर्च्छित हूं, यह भी उनका होश रहेगा। वे रात सोएंगे, तो भी मैं सोया हूं--यह उन्हें पता है। यह पूरे वक्त पता है। यानी यह घटना भी उनकी कांशसनेस का हिस्सा है कि मैं सोया हुआ हूं। इसीलिए तो वे मरते वक्त भी होश में रह सकेंगे कि मैं मर रहा हूं। मैं मर रहा हूं, यह मौत घट रही है।

प्रश्नः मौत भी ऐसे होती है, मूर्च्छा में?

बिल्कुल ही। तो वह तो इसीलिए वह मौत का अनुभव उन्हें नहीं हो पाता। हम बहुत बार मरे हैं, हमें अनुभव नहीं हुआ उसका। क्योंकि मरने के बहुत पहले ही हम मूर्च्छित हो गए हैं। मरने की घटना इसलिए कभी हम जान नहीं पाए। मरे बहुत बार। लेकिन करीब-करीब क्लोरोफॉर्म की हालत में मरे। और प्रकृति ने पूरा इंतजाम किया हुआ है। प्रकृति ने पूरा इंतजाम किया हुआ है कि कोई भी ऐसी स्थिति जो आपके सहने के बाहर हो, तत्काल आपके शरीर में वह इस तरह के तत्व फेंक देती है कि आप मूर्च्छित हो जाएं। जैसे कोई भी बहुत दुख आ जाए और वह मूर्च्छित हो गया। वह दुख इतना था कि अगर मूर्च्छित न होता, तो मर जाता।

वह दुख इतना था कि मौत आ जाती। तो मौत से बचाने के लिए सब्स्टीट्यूट है। फिर वह मूर्च्छित कर दिया शरीर ने उसको। अब उसे पता ही नहीं रहा दुख का। अब वह तब तक होश में आएगा, तब तक दुख को समय हील कर लेगा।
और ध्यान का प्रयोग चलता रहे तो निद्रा में पता चलने लगता है कि यह नींद है। मूर्च्छा में पता चलता है, मूर्च्छा है। मृत्यु में पता चलता है, मृत्यु है। और जब यह पता चलता है तब उसका मतलब यह हुआ कि मैं न तो सोया कभी, क्योंकि पता किसे चलता अगर मैं सो जाता। न मैं कभी मूर्च्छित हुआ, क्योंकि फिर जानता कौन अगर मैं मूर्च्छित हो जाता। न फिर मैं कभी मरा। क्योंकि फिर जानता कौन, अगर मैं, मैं मर जाता तो फिर जानता कौन?
तो वह जो जानने का बोध है, वही अमृत्व का अनुभव बन जाता है कि फिर मैं नहीं मरता हूं। वह तो निरंतर हम प्रयोग करेंगे तो ही मृत्यु के क्षण तक यह हालत आ पाने वाली है। नहीं तो नहीं आने वाली। वह तो मृत्यु का खयाल ही हमें बेहोश कर देगा, और उसको... क्योंकि मृत्यु न तो भविष्य में घटती है, न अतीत में घटती है। मृत्यु की घटना वर्तमान में घटेगी। जब भी घटेगी तब वर्तमान में होगी वह। और आपके दिमाग की आदत जो है वह आगे-पीछे की है, इसलिए सब गड़बड़ होता है। उस आदत को थोड़ा समझ कर प्रयोग करना चाहिए, वह टूटेगी। जरूर टूटेगी।

प्रश्नः अगर विज्ञान की भाषा में कहें तो शायद इस तरह कह सकते हैं कि मान लीजिए हमारा कोई भी लक्ष्य हो, जो हमें भविष्य में प्राप्त करना है, क्या उसको हम लीला समझ कर करेंगे, तो उसको तो हम अपने अनकांशस माइंड के अंदर जाने दें। और कांशस माइंड पर केवल वर्तमान में जो कुछ जानना है, जागरूकता के अंदर... जैसे कोई वैज्ञानिक है, वह जिस प्रोसेस में वह लगा हुआ है, जिस क्रिया पर वह चल रहा है, उसी पर लगा रहे। और इस बात को भूल जाए कि भविष्य में उसको क्या प्राप्त करना है।

नहीं, वह तो भूलेगा नहीं तो प्रोसेस कर ही नहीं सकता। वह तो वैज्ञानिक
को भूलना ही पड़ता है, नहीं तो यहीं भूल-चूक हो जाएगी अभी। वह तो भूलता है, तभी पहुंच पाता है। वह तो पूरा का पूरा जो कर रहा है, उसमें ही मौजूद हो जाता है। उसके लिए कोई भविष्य नहीं, कोई फल नहीं है। उसमें कोई भविष्य नहीं, कोई फल नहीं, कोई अंत नहीं है। जो हो रहा है, वही चरम है। उस होने से अंत भी निकलेगा, लेकिन वह गौण बात है। वह कोई बात... नहीं तो ठीक है वह।
एक लक्ष्य तुम्हारे खयाल में है, वह तो डूब ही गया। अब उसको बार-बार खयाल में क्यों रखना। तुम एक काम में लगे हो, एक खोज कर रहे हो। अब वह तुम खोज में लगे हो, वह तो तुम्हारे चित्त का हिस्सा हो ही गया। अब उसे याद क्या रखना? अब तो तुम काम में लग जाओ पूरे। और असल में हमें खयाल में नहीं आता कि वह जो खोज का खयाल है, वह भी किसी क्षण में वर्तमान था। वह उसको मैं भविष्य नहीं कहता।
समझो, एक आदमी है। वह कैंसर देखा किसी आदमी का और उसे, उसे खयाल आया कि कैंसर मिटाने के लिए क्या किया जाए? वह एक खोज में लग गया। यह कैंसर का दिखाई पड़ना है। यह कैंसर कैसे मिटे, इसका विचार, इसकी खोज--सब वर्तमान क्षण में घटी। अब वह खोज में लग गया। अब वह खोज में लगा हुआ है। अब जो-जो घटेगा, वह वर्तमान में ही घटेगा। जिस दिन फल भी आएगा, वह भी वर्तमान में ही आएगा। भविष्य में तो कुछ आ ही नहीं सकता। सब आता आज है।
लेकिन समझ लें कि एक आदमी कैंसर को देखा, और उसने कहा कि मैं कैसे इसको दूर करूं? और यह बात, कैसे इसे दूर करूं? बजाय किसी वर्तमान कृत्य में ले जाने के यह आंख बंद करके बैठ गया और सोचने लगा कि मैं सारी दुनिया का कैंसर ठीक कर दूंगा। कहीं कोई बीमारी नहीं बचेगी। और ऐसा कर दूंगा, और ऐसा हो गया--मन में, कि अब सारी दुनिया ठीक हो रही है। और आंख बंद करके बड़ा प्रसन्न है कि अब कोई कैंसर का बीमार नहीं है। तो यह आदमी भविष्य में चला गया, तो वर्तमान से चूक गया। इसीलिए ध्यान रहे कि असल में एक्शन तो कभी भी फ्यूचर में हो नहीं सकता। वह तो इंपॉसिबिलिटी है। एक्शन तो करना पड़ेगा वर्तमान में ही। सिर्फ कल्पना हो सकती है भविष्य की।

और इसलिए ध्यान में कर्म उतनी बाधा नहीं है, जितनी कल्पना बाधा है। हालांकि लोगों ने उलटा समझ रखा है। कर्म बाधा ही नहीं है ध्यान में। लेकिन लोग यह समझते हैं कि सब काम-धाम छोड़ कर भागो, तब ध्यान हो सकेगा। और मजे की बात यह है कि जो आदमी सब काम-धाम छोड़ कर भाग जाएगा, वह कल्पना करेगा। और करेगा क्या? वह बैठा-बैठा करेगा क्या? वह बैठा-बैठा करेगा क्या? जब कि कर्म बाधा ही नहीं है।
एक.झेन फकीर हुआ। वह अपने बगीचे में मिट्टी खोद रहा है। एक आदमी उसके पास गया है और उसने उससे पूछा कि मैं फलां-फलां फकीर से मिलने आया हूं। वह कहां मिलेंगे? उसे पता नहीं है कि यही आदमी है। उसने समझा कि कोई माली है जो बगीचे में काम कर रहा है। कि वह इतना ब.ड़ा फकीर बगीचे में गड्ढा खोदेगा? तो उस फकीर ने कहा कि वह तो मौजूद है। उस फकीर ने कहा कि वह फकीर तो मौजूद है, लेकिन तुम मौजूद हो कि नहीं? उससे तो मिलना अभी हो सकता है। लेकिन उस आदमी ने पूछा, वह हैं कहां? मैं उनसे ही तो मिलने आया हुआ हूं। उसने कहाः उनसे ही मिलने आया हूं, वह हैं कहां? तो उसने कहा, फिर तुम अभी खोजो। अगर मिल जाएं तो मुझको भी बता देना। उसने कहा कि तुम अभी खोज कर आओ इस पूरे बगीचे में, अगर मिल जाएं मुझे बता देना।
वह आदमी पूरे बगीचे में खोज कर आया। वह आदमी फिर भी गड्ढा खोद रहा है। पीछे से किसी ने उसको बताया, किसी दूसरे माली ने कि--वही हैं। उसने आकर लौट कर कहा कि आप भी कैसे आदमी हैं! आपने यह क्यों न कह दिया कि मैं ही हूं? तो उसने, फकीर ने कहा कि जब से "हूं" का पता चला तब से "मैं" का पता नहीं रहा है। जब से इस बात का पता चला है कि--हूं, तब से मैं खो गया। और जब तक मैं का पता था, तब तक हूं सिर्फ वाक्य में लगाते थे। उसका कुछ पता नहीं था कि वह क्या है? होना क्या है? खैर, तुम आ गए बड़ी जल्दी। क्योंकि जो लोग खोजने निकलते हैं, बड़ी देर से लौटते हैं। उसने कहाः फिर भी तुम जल्दी आ गए, तुम्हें ज्यादा चक्कर नहीं लगा।
उस आदमी ने पूछा है कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया। मैं तो खुद ध्यान
के लिए पूछने आया था, और आप तो गड्ढा खोद रहे हैं। और मैंने तो सुना है कि सब क्रिया छोड़ देनी पड़ेंगी, तब ध्यान उपलब्ध होगा। तो उस फकीर ने कहा कि तू फिर बैठ जा चुपचाप और मैं गड्ढा कैसे खोदता हूं, यह देख। वह थोड़ी देर बैठा रहा। उसने कहा, मैं कुछ समझा नहीं। आप सिर्फ गड्ढा ही खोद रहे हैं और क्या कर रहे हैं। उसने कहा कि बस सिर्फ गड्ढा ही खोद रहा हूं, यह तेरी समझ में आया न? और कुछ भी नहीं कर रहा हूं। तो ध्यान हो गया। अगर मैं सिर्फ गड्ढा ही खोद रहा हूं, और कुछ भी नहीं कर रहा--तो मैं वर्तमान में मौजूद हो गया।

प्रश्नः यह एकाग्रता न हुई क्या?

न, एकाग्रता बहुत और बात है।

प्रश्नः और अगर मैं केवल आपको ही सुन रहा हूं?

अगर तुम सिर्फ केवल मुझे सुन रहे हो, सिर्फ केवल मुझे सुन रहे हो और साथ में तुम्हें पंखे की आवाज, और सड़क की कार का हॉर्न नहीं सुनाई पड़ रहा, तो एकाग्रता हो गई। तब वह मूर्च्छा है। और तब तुम मुझसे हिप्नोटाइज्ड हो जाओगे। तब तुम मुझे समझोगे कम, प्रभावित ज्यादा होओगे। और जो जितना कम समझता है उतना ज्यादा प्रभावित होता है, यह ध्यान रखना। क्यों? प्रभावित होने के नियम अलग हैं, समझने के नियम बहुत अलग हैं। अगर तुम्हें कुछ भी सुनाई नहीं पड़ रहा, सिर्फ मुझे ही सुन रहे हो, तुम्हारी पूरी चेतना का फोकस मुझ पर रुक गया--तो तुम बेहोश हो जाओगे। तुम हिप्नोटाइज्ड हो जाओगे। तब तुम्हें जो भी मैं कहूंगाः वह ठीक ही लगेगा, और प्रवेश कर जाएगा। क्योंकि तुम मूर्च्छित हो। यह तो एकाग्रता हुई।
लेकिन जागरूकता का मतलब यह है कि यह सब जो घट रहा है इस वक्त चारों तरफ; वह सब घट रहा है। तुम ओपन हो। एक हॉर्न बजता है, वह भी तुम्हें सुनाई पड़ता है। मैं बोल रहा हूं, वह भी तुम्हें सुनाई पड़ रहा है। तुम्हारे पैर

में चींटी काटेगी, वह भी तुम्हें पता चल रहा है। तुम्हारे सिर में दर्द हो रहा है वह भी तुम्हें पता चल रहा है। तुम सिर्फ जागे हुए हो। और जो भी उसके आस-पास घट रहा है, वह सब तुम्हें पता चल रहा है। तुम बेहोश नहीं हो। तो यह जागरूकता हुई।
और तो मैं कहूंगा, तुम ज्यादा ठीक से समझ पाओगे। जब मैं यह कहता हूं कि केवल सुन रहे हो, तो उसका मतलबः मेरा इन चीजों से विरोध नहीं है जो और सुनाई पड़ रही हैं। केवल सुन रहे हो का मेरा मतलब है कि तुम कुछ और तो नहीं कर रहे हो। जो फर्क मैं कर रहा हूंः यानी हो सकता है कि तुम यहां बैठे दिखाई पड़ रहे हो, लेकिन तुम मुझे सुन नहीं रहे, तुम कहीं और चले गए हो। तुम किसी दुकान पर कुछ खरीददारी कर रहे हो। वह यहां किसी को पता नहीं चलेगा सिवाय तुम्हारे। तुम किसी से झगड़ा कर रहे हो, तुम कहीं और चले गए हो--तब तुम जागरूक भी नहीं रहे। तब तुम सपने में खो गए।
यानी तीन स्थितियां हुईं। एक तो स्थिति है हमारे चित्त की आमतौर से कुछ न कुछ करते रहने की। वह एक तरह की ड्रीम-स्टेज है। एक स्थिति है एकाग्र होने की। वह एक तरह की मूर्च्छा की दशा, तंद्रा की दशा है। स्वप्न नहीं है उसमें, तंद्रा है। और एक स्थिति है पूरे जागे होने की। न तो तुम कहीं गए हो, न तुम किसी से बंधे हो, तुम सिर्फ मौजूद हो। अगर इस मकान में आग लगेगी, तो तुम्हें पता चलेगी। अगर कोई चिल्लाता हुआ गुजरेगा, तो तुम जानोगे। जरूरी नहीं है कि कोई चिल्लाता हुआ गुजरे, तो तुम उस पर सोचो। सोचा कि तुम गए फिर... । सोचने की बात नहीं कह रहा हूं। तुम सिर्फ जो भी इंप्रेशंस चारों तरफ पड़ रहे हैं, सबके लिए ओपन हो। उसमें एक इंप्रेशन मेरा भी पड़ रहा हैः तुम उसके लिए भी ओपन हो, क्लोज नहीं हो। एकाग्रता के लिए नहीं कहता हूं, मैं कहता हूं जागरूकता के लिए। ओपननेस के लिए। खुला हुआ मन हो।

प्रश्नः जो लोग भी पृष्ठ पढ़ते हैं किसी भी किताब का, और एकदम से याद हो जाता है। या एक कोई क्वेश्चन होते हैं मैथेमेटिकल, तो लिखते जाते हैं, एकदम उत्तर दे देते हैं, जैसे तुलसी जी के चार शिष्य करते हैं, तो यह एकाग्रता है या ओपननेस है माइंड की?

न ओपननेस है, और न एकाग्रता। उसकी सब ट्रिक्स हैं। वह सब ट्रिक्स की बात है।

प्रश्नः याददाश्त से कुछ...

न, न, न कुछ याददाश्त का यह मामला नहीं है। कोई याददाश्त का...

प्रश्नः जैसे कोई लैंग्वेज उन्होंने पढ़ी नहीं, फ्रैंच है जैसे, फ्रैंच पढ़ते हैं तो वह वैसे ही बोल देते हैं।

हां, हां। वह सब के रास्ते हैं। वह सब के रास्ते हैं। और जितना बुद्धिहीन आदमी हो उतनी जल्दी सीख सकता है, बुद्धिमान नहीं।... यह जान कर आप हैरान होंगे कि बुद्धिमान आदमी बिल्कुल नहीं चाहिए। क्योंकि जितनी बुद्धि सचेतन होगी, उतनी जागरूक होगी, उतना ही उस बुद्धि का एक अनिवार्य हिस्सा होता है। स्मरण करने से ज्यादा विस्मरण करना उस बुद्धि का हिस्सा होता है--भूलने का है। क्योंकि उतनी ताजा रह सकती है बुद्धि, जितनी जल्दी भूल जाए।
भूलना जो हैः वह बु.द्धमत्ता का ज्यादा हिस्सा है, बजाय स्मरण के। स्मरण एक हिस्सा है, लेकिन विस्मरण और भी बड़ा हिस्सा है। जितना बड़ा बुद्धिमान आदमी है उतनी जल्दी उसके चित्त से चीजें हट जाती हैं, और चित्त फिर साफ हो जाता है। फिर चीजों को पकड़ने के लिए वह सक्षम हो जाता है। जितना बुद्धिहीन आदमी जो चीज पकड़ लेता है, वह अटकी रह जाती है। वह हटती नहीं, वह वहीं जड़ की तरह रुका रह जाता है। तो उस चित्त को जड़ बनाने की तरकीबें हैं।

प्रश्नः जिसकी याददाश्त ज्यादा तेज होती है, माना तो आमतौर पर यही गया है कि बहुत बुद्धि... ?

बिल्कुल ही गलत माना गया है। बुद्धिमान आदमी में याददाश्त हो सकती है, यह बिल्कुल दूसरी बात है। इसको समझना चाहिए। असल कठिनाई क्या है, असल कठिनाई क्या है, इसमें इतने बारीक फासले हैं, यह इतनी गलत बात है कि याददाश्त अच्छी होने वाले आदमी को बुद्धिमान समझा जाता है। वह तो हमारी सारी युनिवर्सिटीज भी करती हैं। जिसकी याददाश्त अच्छी है वह, वह गोल्ड मेडल लेकर आता है। उसका कारण बुद्धिमानी नहीं है, और इसीलिए तो युनिवर्सिटी के गोल्ड मेडल जिंदगी में कभी बुद्धिमानी करते हुए दिखाई नहीं प.ड़ते।
आप यह जान कर हैरान होंगे कि अगर दुनिया भर के गोल्ड मेडलिस्टों का पता लगाया जाए तो वे खो कहां जाते हैं, वे जाते कहां हैं? यानी वे आदमी फिर जाते कहां हैं? कभी जिंदगी में उन्होंने कुछ बड़े काम किए हों, ऐसा तो दिखाई नहीं पड़ता। कभी नहीं दिखाई पड़ता। उसका कारण यह है कि उनकी स्मृति की परीक्षा हो गई थी; बुद्धि की तो परीक्षा हुई नहीं थी कोई। और बुद्धि की परीक्षा के अभी तक उपाय भी नहीं निकल पाए हैं।

प्रश्नः स्मृति और बुद्धि दो अलग चीजें हैं?

बहुत अलग चीजें हैं। बहुत अलग चीजें हैं। स्मृति का मतलब हैः किसी चीज को याददाश्त रखने की क्षमता। समझने की क्षमता बहुत अगल बात है। अच्छा, जो आदमी समझता है, वह भी याद रखता है। लेकिन एसेंस को याद रखता है। सिर्फ एसेंशियल याद रह जाता है। क्योंकि बुद्धि पर बोझ बढ़ाने की जरूरत नहीं। एक आदमी पूरी रामायण पढ़ लेता है तो कचरे को याद करने नहीं बैठ जाता कि सारी चौपाइयां याद कर ले। उसे तो, जो करता होगा, बिल्कुल बुद्धिहीन है। रामायण का जो सार है, वह जैसे कि फूलों... करोड़ फूलों से निकाल कर हम थोड़ा सा इत्र निकाल लेते हैं। और एक आदमी एक फोए में लगा कर कान में लगा लेता है। हजार किलो का गट्ठर सिर पर लेकर नहीं चलता है। बुद्धिमान आदमी के पास सुगंध बच जाती है, जो उसने जाना--उसकी। जो भी सारभूत है उसमें निकल आता है। बुद्धिहीन के पास ढेर कचरा होता है, जो सब इकट्ठा कर लेता है। और उसको कठिनाई होती है, कुछ भी छोड़ने में वह डरता है। डरता इसलिए है कि... बुद्धिमान आदमी कुछ भी भूलने में डरता नहीं क्योंकि बुद्धि अपने पास है। सब भी भूल जाए तो बुद्धि तो मेरे पास होगी। एक बात का तो पक्का भरोसा है न, कि मैं जो भी पढ़ा, लिखा, सुना, अगर वह सब भी भूल जाए तो भी मेरी बुद्धि तो मेरे पास रहेगी। तब भी तो कोई समस्या मेरे सामने खड़ी होगी तो मैं उससे लड़ सकूंगा। लेकिन बुद्धिहीन को डर होता है कि मेरे पास अपनी बुद्धि तो कुछ है ही नहीं, तो जो उत्तर मैंने तैयार किए हैं वह भूल न जाएं। नहीं, कल कोई ने सवाल पूछा तो उत्तर कहां से लाऊंगा? तो बुद्धिहीन जो है, वह स्मृति के द्वारा बुद्धिमत्ता की कमी पूरी करता है। वह जो कमी पूरी कर रहा है, पूरे वक्त वह कह रहा है कि यह भी याद कर लूं, यह भी याद कर लूं, क्योंकि पता नहीं कब जरूरत पड़ जाए। और जरूरत पड़ जाए तो मेरे पास अपनी कोई बुद्धि तो है नहीं कि मैं कुछ निकाल लूंगा। तब तो यही करना पड़ेगा कि जो मैंने जाना उसको खोज कर निकाल लूंगा।

प्रश्नः हम तो यही समझ रहे थे कि हम बुद्धिहीन हैं।

नहीं, बिल्कुल नहीं। और स्मृति जो है, वह दो तरह से होती है। एक तो स्मृति है जो, जिसको तरकीबें हैं चीजों को कंठस्थ करने की। चित्त के ऊपर उनकी रेखा किस तरह जोर से पड़ जाए, इसके उपाय हैं। हां, उन उपायों को करने से बुद्धि के ऊपर जोर से असर पड़ जाते हैं जो फिर भूलते नहीं--एक। दूसरी एक स्मृति बहुत और तरह की चीज है। और वह स्मृति है जो समझ के पीछे छाया की तरह चलती है। आप किसी चीज को पूरा समझ लेते हैं--बस, बात खत्म हो गई।

प्रश्नः कहीं देखा हमने, जब पढ़ते थे, स्टूडेंट थे, कोई पृष्ठ उन्होंने पढ़ा है, और वैसे ही वह डिक्टेट करा देते थे।

हां, हां, करा दे सकते हैं। वह करा दे सकते हैं। वह कोई कठिनाई नहीं है बड़ी। इसमें कोई कठिनाई नहीं है बड़ी। लेकिन इससे बुद्धिमान है, ऐसा समझ लेने की भूल में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि हो सकता है उस पृष्ठ में एक बात भी उनकी समझ में न आई हो। और पूरा डिक्टेट करा दें।

प्रश्नः नहीं, लगते तो नहीं थे वैसे वह। उसके सब्जेक्ट में नहीं थे। हमारे साथ एक लड़का था...

न, कोई हो सकता है। यह मैं नहीं कह रहा हूं।

प्रश्नः... बुद्धिमान भी लगता था वैसे। क्योंकि मैथेमेटिक्स तो बगैर बुद्धि के आ ही नहीं सकती?

ना, हमारी तकलीफ क्या है कि हम बुद्धिमान भी तो स्मृति की परीक्षाओें
से ही समझते हैं न। कठिनाई जो है हमारी। हमारी जो कठिनाई है वह यह है कि हम बुद्धिमान समझते कैसे हैं? अब तक बुद्धि की परीक्षा का तो उपाय नहीं हो पाया; सब उपाय स्मृति की परीक्षा का है। आप समझते कैसे हैं? आप समझते हैं इसके लिए वह सबसे ज्यादा नंबर लाएगा, सब विषयों में आगे होगा। जो उत्तर आप नहीं दे सकते, वह देगा। जो पढ़ाया जाएगा, वह उसे याद है। वह बुद्धिमान है। आपके पास और बुद्धिमानी का उपाय क्या है जांच का? लेकिन यह टेप-रिकॉर्ड है, इसको आप बुद्धिमान नहीं कहेंगे। हालांकि यह उतना एक्युरेसी से रिकार्ड करता है, जितना किसी मुनि के कोई शिष्य कभी नहीं कर सकते। समझे न आप? लेकिन यह इतनी एक्युरेसी से रिकॉर्ड क्यों करता है?
यह रिकॉर्डिंग की एक व्यवस्था है। और जिस तरह इस पर रिकॉर्ड हो रहा है, उसी तरह ब्रेन-सेल्स पर भी रिकॉर्ड हो रहा है। और रिकॉर्डिंग की व्यवस्था यही है। इसमें फर्क नहीं है। हमारे जो ब्रेन-सेल्स हैं, उन ब्रेन-सेल्स पर भी वही केमिकल्स हैं जो इस रिकॉर्ड पर लगे हुए हैं। और वही केमिकल्स रिकॉर्ड करते हैं। जितना जड़बुद्धि आदमी होगा, उसको तरकीबें भर सिखला दी जाएं, वह उतना रिकॉर्ड कर लेगा। उतना रिकॉर्ड कर लेगा। और यह भी जान कर आप हैरान होंगे कि दुनिया के सब बुद्धिमान एक अर्थों में भुलक्कड़ होते हैं। बहुत बुद्धिमान लोग एक अर्थ में बड़े भुलक्कड़ होते हैं। इस अर्थ में भुलक्कड़ होते हैं कि जो गैर-जरूरी है उसे वह कभी भी याद नहीं रख पाते। एडिसन के संबंध में तो यहां तक मामला है कि वह एक हजार आविष्कार किए
उस अकेले आदमी ने। वैसी बुद्धि कम लोगों को उपलब्ध होती है। लेकिन स्मृति के मामले में इतना कमजोर था, कि वह जैसे अभी उसने एक कागज पर कुछ लिख कर रखा है। तो उसके पूरे कमरे में कागज लिख कर रखे रहते, क्योंकि वह उसे स्मृति तो उसको थी नहीं। जो खयाल में आया, वह उसने लिखा। अब वे हजार कागज पड़े हैं कमरे में। अब वह कागज कहां गया, यह सवाल उठ गया। क्योंकि वह भी उसे याद नहीं रहा। तो उसकी पत्नी ने एक डायरी बनाई उसके लिए कि तुम डायरी रखो। तो वह डायरी कहां रख आया? वह बाथरूम में रखी है; कि कोर्ट में रखी है; कि किताबों में दब गई--वह कहां है?
एक दिन सुबह बैठा है वह नाश्ते के लिए। तो उसकी पत्नी उसे नाश्ता रख गई। वह अपना काम कर रहा है। तभी उसका एक मित्र आया है मिलने। उसने देखा, वह काम में लगा है, उसने नाश्ता कर लिया। और थाली साफ, खाली करके बगल में रख दी। थोड़ी देर बाद उसने वहां देखा, उसने थाली उठा कर देखी। उसने अपने मित्र से कहाः माफ करना, जरा तुम देर से आए, मैं नाश्ता कर चुका हूं। स्मृति सब खत्म हो गई थी। तो उसने कहा कि माफ करना भई, तुम जरा देर से आए, मैंने नाश्ता कर लिया। तो उसके मित्र ने कहा कि हद हो गई!

यह जो आदमी है, इस आदमी के पास बहुत अदभुत बुद्धि है। बुद्धि लेकिन इतनी तीव्र है, और इतनी सजग है, और इतने तलों पर काम कर रही है कि यह सब नाश्ता किया कि नहीं किया, कि हुआ कि नहीं हुआ, यह या वह, यह सब सरक सकता है। यह फोकस में न रह जाए। समझे न? अब यह सब सरक सकता है। हां, यह कचरा, यह फोकस के बाहर गिर जाए। फोकस की एक सीमा है। बाहर गिर जाए।
अब आप देखते हैं, फोटो-प्लेट होती है। कैमरा आप उतारते हैं, तो (फोटो- प्लेट 45 : 36 ... अस्पष्ट) होती है। लेकिन फोटो-प्लेट एक ही दफा में खराब हो जाती है। क्योंकि फोटो-प्लेट की मेमोरी बहुत तगड़ी है। जो पकड़ लिया, वह पकड़ लिया। फोटो-प्लेट ने आपका चेहरा पकड़ लिया, पकड़ लिया। अब खराब हो गई। लेकिन दर्पण है। दर्पण के पास मेमोरी बिल्कुल नहीं है। आप सामने आए, बिल्कुल दिखाई पड़े। आप गए, बिल्कुल गए। दर्पण फिर खाली हो गया। इसीलिए दर्पण के सामने दूसरा कोई आए, तीसरा कोई आए, हजार कोई आए, दर्पण देखेगा और फिर खाली हो जाएगा। तो दर्पण ज्यादा इंटेलिजेंट है फोटो-प्लेट से। समझ रहे हैं मेरा मतलब आप? चूंकि दर्पण जो है वह ज्यादा जीवंत है। फोटो-प्लेट एक ही दफा काम करती है दर्पण का, और फिर खत्म हो जाती है। क्योंकि उसने जो पकड़ लिया, उसने पकड़ लिया।
तो बुद्धिमान आदमी तो रोज इतना जानता चला जाता है, इतना जानता चला जाता है कि उसे रोज हटा देना पड़ता है, बहुत सा। और विस्मरण उसके लिए बड़ी सामर्थ्य होती है। क्योंकि वह जो भी, जितना विस्मरण कर पाए, उतनी ही नई दिशाओं में गति करता है। विस्मरण न कर पाए, तो ये दिशाएं रुक जाती हैं। लेकिन फिर भी ऐसे आदमी में एक तरह की सारभूत स्मृति होती है।
सारभूत स्मृति बिल्कुल दूसरी बात है। नॉन-एसेंशियल छूट जाता है उससे। लेकिन जो भी एसेंशियल है चेतना के लिए, वह सब संरक्षित होता है। और भी एक मजे की बात है कि वह इसे कभी याद नहीं करता। बुद्धिहीन और बुद्धिमान में स्मृति का जो फर्क होगाः बुद्धिहीन याद करेगा तो स्मृति होगी, चेष्टा करेगा तो स्मृति होगी। बुद्धिमान समझेगा और बात खत्म हो जाएगी। जो समझ में आ गया, वह अनिवार्य रूप से उसकी बुद्धिमत्ता का हिस्सा हो जाएगा। वह उसका हिस्सा हो गया।
गांधी जी के पास एक सेक्रेटरी थे, महादेव देसाई। गांधी जी को तो इतने पत्र होते थे कि सब जवाब नहीं दे सकते। तो वह पत्र लिखवाते थे महादेव से। वे जवाब दे देते थे, पढ़ कर सुना देते थे। गांधी जी कहते ठीक, दस्तखत कर देते। तो वल्लभ भाई ने एक दिन उनसे कहा, वल्लभ भाई ने उनको कहा कि यह बात ठीक नहीं है। आप जवाब न दें और महादेव जवाब दें।
एक पत्र आया है वायसराय का। और वल्लभ भाई ने कहा कि मैं नहीं पसंद करता कि वह जवाब लिख दें। क्योंकि कई दफा ऐसा हो जाता है कि जो आपने कभी न लिखा होता, वह-वह लिख दें। लेकिन सुनने पर वह ठीक लगे, और चला जाए। लेकिन आपने कभी न लिखा होता। आप कुछ और ही लिखते यह हो सकता है। यानी गलत न लगे सुनने पर, और आप कह दें कि ठीक है। लेकिन हो सकता है वह वही न हो।
तो गांधी जी ने कहा कि यह पत्र अभी खोला नहीं--पत्र खोला। एक कॉपी महादेव को दी, एक और अपनी रखी। महादेव को कहा, दूसरे कमरे में तुम जाकर इसका उत्तर लिख लाओ। और एक गांधीजी ने उत्तर लिखा। वल्लभ भाई बैठे हुए हैं। वह उत्तर लिख कर आया। महादेव का उत्तर पढ़ा गया, गांधी जी का उत्तर प.ढ़ा गया। वल्लभ भाई से गांधी जी ने पूछाः किसका भेजते हो? तो उन्होंने कहा कि महादेव का ही ज्यादा आपके जैसा है। वल्लभ भाई ने कहाः महादेव का ही ज्यादा आपके जैसा है, आपका नहीं। तो गांधी जी ने कहा कि महादेव निकट रह कर इतना समझा है, इतना समझ गया है कि कई दफा मुझसे भूल हो जाए, उससे भूल नहीं हो सकती। मैं ही भूल कर जाता हूं, मगर वह भूल नहीं करता। वह समझ गया पूरी बात कि यह आदमी क्या कहेगा? इतना भीतर से जी लिया है कि अब यह इसलिए चिंता नहीं होती। यानी मुझसे भूल हो जाती है तो मेरी भूल मुझे महादेव से सुधरवा लेनी पड़ती है कि यह एक... ।
अब यह संभावना बिल्कुल है। संभावना इसलिए है कि गांधी जी को और हजार काम भी हैं। गांधी जी कितना... हजार काम हैं उनके लिए। महादेव को कोई भी काम नहीं है। गांधी जी को समझना ही एक काम है। वह निकट रह कर इम्बाइब कर

गया पूरी स्क्रिप्ट को। और यह हो सकता है कि खुद गांधी जी वह उत्तर न दे पाएं जो कि गांधी जी को देना चाहिए। मेरा मतलब समझ रहे हैं न? यानी बिल्कुल एब्सर्ड मालूम होता है। क्योंकि गांधीजी जो उत्तर दें, वही उनका ठीक होना चाहिए। लेकिन यह हो सकता है। और फिर मेरा अपना अनुभव बहुत अजीब है। मेरा अपना अनुभव यह कि मैंने कभी कुछ याद नहीं किया। याद करने से मेरी दुश्मनी ही है। क्योंकि मैं कहता हूं याद हमें करना उस चीज को पड़ता है, जिसे हम समझते नहीं।
मैं इतने दिन युनिवर्सिटी में पढ़ाता था तो मेरे विद्यार्थियों को एक तकलीफ ही थी निरंतर। क्योंकि मैं नोट नहीं करने देता था। मैं उनको कहता कि नोट करने का मतलब ही यह है कि तुम समझ नहीं रहे हो। मेरे ऊपर जुल्म लगा रहे हो। मैं तुम्हें समझाता हूं, फिर समझाऊंगा, दस बार समझाने को राजी हूं। तुम मुझसे कहते जाओ कि हम नहीं समझे, मैं समझाता चला जाऊंगा। तुम जब कह दोगेः समझ गया, तब बात खत्म कर दूंगा, लेकिन लिखने नहीं दूंगा। क्योंकि लिखने का मतलब यह है कि तुम समझ का काम लिखने से लेना चाहते हो। लिख क्यों रहे हो?
लिखने का मतलब यह होता है कि अभी हम समझ तो नहीं रहे, लेकिन लिख लो, याद
कर लेंगे, काम चल जाएगा। समझ अगर विकसित हो तो समझ के साथ सारभूत स्मृति आती है। लेकिन वह बिल्कुल बाई-प्रॉडक्ट है। और यह सब जो अवधान वगैरह के प्रयोग हैं, ये सब तरकीबें हैं, ट्रिक्स हैं। न तो इनसे उस मनुष्य की बुद्धिमत्ता बढ़ती है। न उसकी चेतना विकसित होती है।

प्रश्नः... यहां तो इतना प्रशंसा मिलती है जिसका कोई हिसाब ही नहीं है?

भारी पागलपन है। भारी पागलपन है।

प्रश्नः हमलोगों ने जो प्रश्न किए थे उस संबंध में, टेक्नीक हैं... ?

टेक्नीक हैं।

प्रश्नः... कि वह संकेत निश्चत कर लेते हैं?

संकेत है।

प्रश्नः... में शून्यता को तो अनिवार्य स्थान देते है? वह बोले कि हम शून्य की स्थिति में हो जाते हैं सतावधानी में?

पागल सा (... 51 : 41 अस्पष्ट) शून्य की स्थिति में होओगे। नहीं, मेरा मतलब नहीं समझे। शून्य की स्थिति में जो हो जाए वह सतावधानी होगा, मदारी नहीं करेगा।

प्रश्नः यह एक अलग बात है...

नहीं, नहीं, नहीं, असंभव है--असंभव।

प्रश्नः शून्यता के ट्रिक को मदारीपने में बदल दे?

न, न, बदल ही नहीं सकते तुम। शून्य को तो तुम बदल ही नहीं सकते किसी ट्रिक में। शून्य में नहीं होते, सिर्फ फोकस को केंद्रित कर लेते हैं। और कुछ भी नहीं होने वाला है।

प्रश्नः उन्होंने मुझे यही स्थिति बताई। मैंने उनसे पूछा कि आप सतावधान जब करते हैं, उससे पहले क्या होता है। बोले मैं यहां से

पार्लियामेंट हाउस तक जाऊंगा। वे नये... में ठहरे हुए थे। और मुझे मालूम नहीं कि मेरे आस-पास क्या हो रहा है।

हां, नहीं यह तो हो जाएगा। यह शून्य नहीं है न। यही तो मूर्च्छा है।
यही तो एकाग्रता है। कंसंट्रेशन है। हां-हां बिल्कुल।

प्रश्नः... पता नहीं लगेगा कि मैं कहां से जा रहा हूं... ?

मैं तुम्हें बताऊंः यह जो कह रहे हैं न ट्रिक की बात... । जर्मनी में एक घोड़ा था जो सब सवालों के जवाब देता था। सारी दुनिया में प्रसिद्ध था।

प्रश्नः यहां कुछ बैल मिलते हैं?

हां, बैल मिल जाते हैं।... तो उस घोड़े को, तो उस घोड़े की तो भारी प्रसिद्धि थी यूरोप में। जैसे आपने पूछा कि इस समय कितने बजे हैं, तो घोड़ा ऐसा पैर पटक-पटक कर सात चोट कर देगा। सात बजे हैं--घोड़ा। आपने नोट घोड़े के सामने किया कि कितने नंबर हैं? तो पैर पटक-पटक कर दो, फिर रुक कर एक, फिर रुक कर तीन--ऐसा नंबर गिना देगा।

प्रश्नः उस नोट को देखेगा नहीं?

नहीं नोट, नोट को दिखाना पड़ेगा घोड़े को, नोट को दिखाना पड़ेगा भई घोड़े को। किताब का कौन सा पृष्ठ है तो घोड़े को दिखाना पड़ेगा, घोड़ा यूं करके बता देगा। ऐसी बहुत सी बातें घोड़ा बताता था। तो घोड़ा बहुत प्रसिद्ध था। बहुत प्रसिद्ध था। और सारी ट्रिक घोड़ा चलवाने वाले में थी। सारी ट्रिक जो थी, वह घोड़ा चलवाने वाले में थी। तो उसने उसे सिखाया हुआ था। वह घोड़े पर हाथ रखे रहता। वह उसकी पीठ में इशारा कर जाता--एक, दो, तीन--वह, वह अंगूठे के इशारे की सारी ट्रेनिंग थी उसकी। वह अंगूठा लगाता जाता--एक, तो वह घोड़ा एक पैर मार देता, दो--तो वह दो पैर मार देता। वह ऐसा हाथ रखे रहता घोड़े पर। बस वह सिर्फ बिल्कुल आहिस्ता आपको दिखाई भी न पड़े। वह सिर्फ उसको इशारा कर रहा है। वह उतनी, उतनी ही ट्रेनिंग थी (अस्पष्ट.53 : 54--)। न घोड़े को नोट से मतलब है, न घोड़े को किसी चीज से मतलब है। तो वह सारी चीज के सिंबल्स हैं, प्रतीक हैं, ट्रिक्स हैं। एक दूसरे को एसोसिएट करने की बात है। और वह सारी टेक्नीक खयाल में जाए तो उसमें कोई मामला नहीं है ज्यादा।

प्रश्नः पर वह मूर्च्छा जो कहते हैं आप, करने की वह किस प्रक्रिया से करते हैं और निर्विचार होने की प्रक्रिया... ?

न, न, न। कुछ भी नहीं, उसी चीज में एकाग्र होना पड़ता है न पूरा तो मूर्च्छा हो जाती है। एकाग्र होना पड़ेगा न आपको।

प्रश्नः सतावधान के पहले क्या करते हैं?

हां, वह सारी ट्रेनिंग है एकाग्रता की ही।

प्रश्नः किसी चीज पर एकाग्र करते हैं... ?

हां, हां, किसी चीज पर... एकाग्रता तो सरल होगा।

प्रश्नः और धर्म में तो ऐसा सिखाते हैं, हमको एक सिखाने वाला मिला था।
उसने टेलीफोन नंबर याद और ध्यान करने बोलाः 562416 अभी भी मुझे याद है।
उसने बोला छप्पन यहां दुकान पड़ा था, याद रख लो... , चौबीस तीर्थंकर हैं,

चौबीस याद कर लो, सोलह शांति नाथ भगवान हैं तो सोलह नंबर सोच लो, कभी भी तुम भूलोगे नहीं?

सारी ट्रिक्स हैं। सब ट्रिक्स हैं। बल्कि हमारी अजीब हालत है न, साधु- संन्यासी जिनसे ट्रिक्स की कम आशा होनी चाहिए, वहां ज्यादा होती है। और बिल्कुल बेमानी है। उस आदमी को कोई लाभ नहीं हो रहा है। न देखने वाले को लाभ हो रहा है।

प्रश्नः उसमें क्या ट्रिक हो सकती है कि जैसे कि किसी फिगर को क्यूब रूप में पढ़ना, उसमें तो ट्रिक नहीं हो सकती...

शॉर्टकट फॉर्मूले हैं। शॉर्टकट फॉर्मूले हैं और अनकांशस फॉर्मूले
भी हैं। अब जैसे कि आपको बेहोश करके, आपको हिप्नोटाइज्ड करके बेहोश कर दिया जाए। और आपके अचेतन चित्त को, शब्द रूप समझा दिए जाएं--जैसे आपको बता दिया जाए कि तीन हजार पांच सौ बत्तीस में पांच हजार छह सौ का गुणा करने से यह आएगा। यह आपको बता दिया गया। अब आपको कुछ भी पता नहीं है। आपको कुछ भी पता नहीं है, आप होश में आ गए। लेकिन इसका आप जवाब तत्काल दे देंगे, आपको गुणा-वुणा करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। यह आपके अचेतन चित्त में तैयार कनक्लूजन है पूरा का पूरा। सिर्फ कुछ लोग, जैसे कि शंकरण और दूसरे लोग जिनकी कि प्रसिद्धि हुई इन सारे मामले में।
हमारे माइंड की जो वर्किंग है... जैसे छोटा बच्चा है। छोटा बच्चा पढ़ता हैः ग गणेश का। फिर वह गणेश को छोड़ देता है, सिर्फ ग रह जाता है। अगर वह बार-बार पढ़े हर चीज में ग गणेश का, तो वह पढ़ ही नहीं पाए, तो उपद्रव हो जाए। तो वह गणेश छूट जाता है ग रह जाता है। फिर छोटा बच्चा पढ़ता हैः अ छोटा अ, ब छोटा ब--अब। लेकिन बाद में ऐसा नहीं पढ़ता, पढ़ता है अब। अ और ब को अलग नहीं पढ़ता, अब पढ़ता है। आपने खयाल नहीं किया होगा कि आप पूरी लाइन में सारे शब्द थोड़े ही पढ़ते हैं। शब्द का सिर्फ शुरू का हिस्सा पढ़ते हैं। बाद के हिस्से तो सिर्फ निकल जाते हैं।
और इसलिए प्रूफ-रीडिंग वाले को पता चलती हैं भूलें, जो कि उसको कभी पता नहीं चली थीं। क्योंकि प्रूफ-रीडिंग में भी वह वही करता है। उसने देखा कि लिखा है लग्जरी, तो लग्ज पढ़ा और बाकी तो, बाकी तो सिर्फ वही--जो होता है।
बाकी वह पढ़ता नहीं, वह सिर्फ बढ़ जाता है। फिर आप पूरा सेंटेंस पढ़ते हैं।
पूरा सेंटेंस जैसे अ और ब अब न पढ़ कर पूरा सेंटेंस इकठ्ठा पढ़ते हैं।
और इसकी अगर थोड़ी व्यवस्था की जाए तो आप और शीघ्रता से पढ़ सकते हैं।
और यह जो जिनमें इस तरह के कितने भी गणित के सवाल जो कि घंटा, आधा घंटा, दो घंटा, तीन घंटा लग जाए बोर्ड पर करने में, और वह सीधा कर दे बिना अंगुलियों को हिलाए। उसकी चेतना, उसका चित्त बड़ी तीव्रता से काम कर रहा है। और काम करने की व्यवस्था है। किसी में जन्मजात हो सकती है, किसी को ट्रेनिंग से भी लाई जा सकती है। क्योंकि बहुत कचरा है। मजे की बात जो है, वह यह है कि इस सब का अध्यात्म से कोई धेला भर संबंध नहीं है।

प्रश्नः यह स्मृति है या बुद्धि है?

सब स्मृति है। सब स्मृति है, बुद्धि नहीं।

प्रश्नः मैंने आचार्य जी ऐसा समझा है कि ध्यान में सबसे बड़ा बाधक ही कंसंट्रेशन है।

यह तो ठीक समझे हो।

प्रश्नः जहां भी हमारा कंसंट्रेशन हुआ नहीं

ध्यान गया...

प्रश्नः... कि जागरूकता सब तरफ से गई नहीं और एक तरफ आई नहीं।

बिल्कुल ठीक खयाल में आ गया।

प्रश्नः तो मैं ऐसा ही समझ पाया कि अगर दो स्थितियों को हम बचा सकें
एक तो सुषुप्ति

हूं, हूं।

प्रश्नः... होने न दें...

बस, बस।

प्रश्नः... और दूसरा केंद्रीकरण, कंसंट्रेट होने न दें, ...

बस तो ध्यान पर चले गए।

प्रश्नः तो स्वयं ही जागरूकता होगी?

यह बिल्कुल ठीक खयाल में आ गया। यही मैं कह रहा हूं निरंतर। बस ये दो बातें हो जाएं तो तुम कहीं और जा ही नहीं सकते। ध्यान में चले ही जाओगे और कोई उपाय ही नहीं है दूसरा।

प्रश्नः सारी प्रक्रिया हमारी कंसंट्रेशन से ही चल रही है विचार की।
और उसमें एक दूसरी तरफ प्रमाद हो जाना आवश्यक है एक तरफ केंद्रित होकर।

(ओशो द्वारा कोई उत्तर नहीं)--

प्रश्नः गीता का श्लोक हैः युगस्थः कुल कर्माणी... जिसका मीनिंग कुछ
इस तरह है, युग में रहता हुआ कर्म कर, वर्तमान में रह कर कर्म कर?

ठीक है, यही है। हूं। ठीक है, यही है।

प्रश्नः... यदि हम इस वर्तमान के अंदर जागरूक रहें... तो अगले क्षण का हमलोग विचार न करें, इसी क्षण का विचार करें... तो ऐसा नहीं हो सकता कि एक क्षण के बाद अगला जो कुछ कांटेक्ट होगा वह फिर आगे निकल जाएगा?

तो अभी है कहां? अभी तो है ही नहीं न। और यह क्षण गुजरा कि वह क्षण वर्तमान बन जाएगा। तब तुम कांटेक्ट कर लेना पूरा। कांटेक्ट तो तभी करोगे न जब वह... । वह तो जब भी आएगा तब वर्तमान होकर आएगा, और तो कोई उपाय नहीं है बच कर निकल जाने का उसके। यानी आपके घर के सामने ही से निकलेगा, और कोई रास्ता ही नहीं है पीछे का जहां से कि भविष्य का क्षण निकल जाए। भविष्य के प्रत्येक क्षण को वर्तमान होना ही पड़ेगा।
और आप वर्तमान में जागरूक हो, अब आपको चिंता ही नहीं है। समय का कोई क्षण आपसे बिना पूछे नहीं निकल सकता अब। हां, इससे उलटा हो सकता है कि आप भविष्य के प्रति चिंतित हो तो वर्तमान का क्षण निकल सकता है। आपको पता नहीं चलेगा। आपके हाथ में आना ही पड़ेगा उसे। और आप जागरूक हो। इसलिए किसी ने पूछा एक...
एक सूफी फकीर हुआ है, बायजीद। बायजीद से किसी ने पूछा कि कितनी देर ध्यान करूं? तो बायजीद ने कहाः कितनी देर पागल, तेरे पास कितनी देर है? यह तू मुझे बता दे, तो मैं तुझे बताऊं। उसने कहाः मैं समझा नहीं। तो बायजीद ने कहाः एक क्षण से ज्यादा तेरे पास हैं कहां? तू बस एक क्षण ध्यान कर, बाकी

की फिकर छोड़। तू एक क्षण ध्यान करना सीख गया तो बात खत्म हो गई। दो क्षण तो तेरे पास इकट्ठे कभी होते ही नहीं कि तुझे दो क्षण ध्यान करना पड़े। तू ध्यानस्थ हुआ एक क्षण, अब जो भी क्षण तेरे पास आएगा--तू ध्यानस्थ है। तो एक ही क्षण का तो सवाल है।
सच है यह बात। एक क्षण भी कोई जागना सीख जाए तो अनंतकाल के लिए जाग गया। क्योंकि क्षण के बिना अनंतकाल भी तो गुजर नहीं सकता। और वह तो अब यह जो हम यह सारी बातें कहते हैंः आने वाला क्षण, जाने वाला क्षण--यह सब हमारी तभी तक बातें हैं, जब तक हम जागे नहीं हैं। जिस दिन हम जागे, उसी दिन टाइम एवोपरेट हो जाता है। न कोई आने वाला क्षण है, न कोई जाने वाला क्षण है। जो है, वह वर्तमान ही है। वह तो हमारी जो सारी, अभी, अभी, जो हम... हमको जो सोचने का अभी हमारा सिलसिला है न, तुम्हें अंदाज नहीं है।
एक छोटी इल्ली चलती है समझो एक पत्ते पर। तो तुम्हें शायद पता ही नहीं होगा कि इल्ली को लगता है कि पत्ता दोनों तरफ से उसके पीछे जा रहा है। जैसा कि तुमको ट्रेन में लगता है। तुम एक ट्रेन में बैठे हो, और ट्रेन खड़ी है। और बगल की ट्रेन ने चलना शुरू कर दिया। एक क्षण को तुम चौंक जाते हो, कहीं मेरी ट्रेन तो नहीं चल रही। समझ लो इस तरफ का प्लेटफार्म हो ही नहीं देखने को, या दरवाजे बंद हैं। वह तो इस तरफ का प्लेटफार्म देख कर तुम पक्का कर लेते हो, अपनी गाड़ी नहीं चली। वह प्लेटफार्म वहीं खड़ा हुआ है। लेकिन अगर उस चलती गाड़ी में समझो--।
आइंस्टीन कहा करता था कि अगर हमने... अंतरिक्ष में दो यान चल रहे हैं। जहां कि दोनों तरफ शून्य है, दोनों तरफ शून्य है। और एक यान चल पड़ा, तो दूसरे यान वाले को लगेगा कि मैं भी चल पड़ा। लेकिन वह कैसे जांच करे कि मैं नहीं चला हूं। क्या उपाय है उसके पास जांच करने का? क्योंकि न कोई दरख्त खड़ा है, न कोई प्लेटफार्म है, न कोई है, न कोई है; शून्य है दोनों तरफ। उसे कैसे पता चले कि मैं नहीं चल पड़ा हूं? बगल वाला चला है। समझे मेरा मतलब? एक इल्ली चलती है एक पत्ते पर तो उसे लगता है कि दोनों तरफ पत्ता पीछे सरक रहा है। और इल्ली को कैसे पता चले कि ऐसा नहीं हो रहा है? इल्ली को उपाय क्या है? वह लौट कर भी देखे तब भी पत्ता पीछे सरक जाता हुआ मालूम पड़ेगा। इल्ली जब भी चलेगी तो इल्ली को कैसे पक्का पता चले कि इल्ली चल रही है कि पत्ता दोनों तरफ पीछे जा रहा है? जिन लोगों ने खोज-बीन की है इल्लियों के बाबत, उनका कहना है इल्ली को कभी पता नहीं चलता। बहुत खोज-बीन इस पर हुई है। नहीं छोटी, लंबी इल्लियां सीधी चलने वालीं, पत्ते पर सब्जी में चलने वाली। उसको पता नहीं चलता, वह वन- डायमेंशनल है। वह सीधी चली जाती है। और दोनों तरफ से पत्ता पीछे चला जाता है। अब इल्ली को कैसे पता चले कि मैं चली, कि पत्ता पीछे सरक गया? तो इल्ली को तो ऐसे ही मालूम पड़ता है कि चीजें पीछे सरक रही हैं।
और जो लोग टाइम के बाबत बहुत खोज-बीन करते हैं, उनके अनुभव बहुत दूसरे हैं। या हमको लगता है कि एक क्षण गया और दूसरा आया, और तीसरा आया, और चौथा आया, और पांचवां आया; और यह गया, और वह आया। लेकिन जो वर्तमान में खड़ा हो जाता है वह अचानक पाता है, वह अचानक पाता है कि समय तो वहीं का वहीं खड़ा है, मैं चल रहा हूं। वह जो, जो बुनियादी फर्क पड़ता है, वह यह पता चलता हैः समय तो जहां का तहां है, समय जाएगा कहां? यह कभी आपने सोचा नहीं। कभी आपने सोचा नहीं कि अगर समय जाएगा तो जाएगा कहां? कहतेहैं कि कल अतीत में चला गया।े अतीत, यानी कहां? कहीं सुरक्षित है? कहीं रखा हुआ है? जाकर कोई जगह है? अगर कहीं कोई जगह है तब तो हम किसी न किसी दिन दरवाजा खोज लेंगे और वापस पहुंच जाएंगे। तुम जिस दिन जन्मे थे, हम उस दिन को पकड़ लेंगे। तब बड़ी मुश्किल हो जाएगी। क्योंकि फिर दोनों घटनाएं... तुम अभी मौजूद हो, तुम जन्म रहे हो। अगर हमने उस घटना को पकड़ लिया उस जगह जाकर, तो तुम जन्म रहे हो और तुम अभी मौजूद हो। ये दोनों बातें एक कैसे हो सकती हैं? तब तो एक आदमी मर रहा है और पैदा हो रहा है। ये दोनों एक साथ पकड़ी जा सकती हैं। किसी कमरे में अगर अतीत जाकर इकट्ठा हो जाता हो, तब तो बड़ा मुश्किल हो जाएगा। फिर भविष्य आता कहां से है? आखिर चीजें आने के लिए कहीं से आनी चाहिए न। अगर कोई चीज आ रही है, तो आने-जाने की धारणा ही हमारे डायमेंशन की वजह से है। सच

बात बिल्कुल उलटी है। सच बात यह है कि हम गतिमान हैं। और चीजें तो थिर हैं अपनी जगह, हम गतिमान हैं। और हम यहां वन-डायमेंशनल हैं। हम पीछे नहीं लौट पाते।
जैसे कि एक आदमी की गर्दन जाम हो और पीछे लौट कर न देख सकता हो। ऐसी मनुष्य की बीइंग है कि वह पीछे नहीं लौट पाता। और आगे भी नहीं जा पाता। बस जहां होता है, वहीं देख पाता है, उतना ही देख पाता है। फोकस उतना ही आगे बढ़ता है। इस बात की पूरी संभावना है कि कोई व्यक्ति इस फोकस के ऊपर उठ जाए। और वह उन चीजों को देख सके जो अभी नहीं हुई हैं। त्रिकालज्ञ का मतलब ही यह होता है। त्रिकालज्ञ का मतलब ही सिर्फ इतना है।
एक आदमी टाइम के बाहर चला जाए तो उन चीजों को देख सके, जो अभी होंगी।
उन लोगों के लिए जिनका फोकस अभी वहां नहीं पड़ा है। समझ लो, मैं एक झाड़ के नीचे बैठा हुआ हूं और आप झाड़ के ऊपर बैठे हुए हैं। एक रास्ता है, उस पर एक बैलगाड़ी आ रही है। मुझे दिखाई नहीं पड़ती, झाड़ के ऊपर वाला बैठा हुआ आदमी कहता हैः एक बैलगाड़ी आ रही है। मैं कहता हूंः अभी तो कोई बैलगाड़ी नहीं है, भविष्य में है, मुझे तो दिखाई पड़ती नहीं। उसके लिए वह वर्तमान है। वह उस ऊंचाई पर खड़े होकर देख रहा है जहां बैलगाड़ी आ चुकी है। उससे भी बड़े वृक्ष पर एक आदमी हो सकता है जिसको और पहले बैलगाड़ी आ चुकी। फिर मेरे सामने बैलगाड़ी आएगी। तब मैं कहूंगाः वर्तमान हुआ। फिर बैलगाड़ी चली जाएगी। मैं कहूंगा, अतीत हो गया। झाड़ वाला कहेगा, अभी नहीं हुई। अभी है, अभी मुझे दिखाई पड़ती है। उससे ऊपर झाड़ वाले को अभी भी दिखाई पड़ती है। असल में टाइम के साथ अगर थोड़े प्रयोग किए जाएं तो बड़े अदभुत अनुभव होते हैं, बहुत हैरानी के। बड़ा हैरानी का अनुभव तो यह होता है कि टाइम नहीं चलता, हम चलते हैं। और हमारा फोकस लिमिटिड है।
जैसे यह कमरा है, और एक आदमी के पास एक दूरबीन है। वह उस कोने से चलना शुरू करता है। उसको दूरबीन पर आप नंबर एक बैठे हुए दिखाई पड़ते हैं। वह कहता है, वर्तमान आ गया। लेकिन शांति बाबू भविष्य में हैं। फिर वह और आगे बढ़ा। उसकी दूरबीन में पहला व्यक्ति गया, वह कहे अतीत में चला गया। शांति बाबू आ गए हैं फोकस में, वह कहता है वर्तमान आ गया। थोड़ी देर में शांति बाबू विदा हो जाएंगे। यह आगे बढ़ता चला आएगा। उस पूरे कमरे से वह गुजर जाएगा। वह कहेगा, कुछ चीजें गईं, कुछ चीजें आती रहीं, कुछ चीजें थीं। लेकिन उस आदमी ने दूरबीन पटक दी, तोड़ दी। और उसने चारों तरफ देखा, कमरा पूरा का पूरा उसे दिखाई पड़ा। तो उसने कहा, यह तो बड़ी हैरानी की बात है। जिसको हम कहते थे चला गया--वह भी है। जिसको हम कहते थे, होने वाला है--वह भी है। जिसको हम कहते थेहै--वह भी है। क्योंकि अब तो सब है। अब उसको पूरा कमरा, युगपत दिखाई पड़ रहा है।
असल में चेतना के जैसे-जैसे पल हैं, हमारा माइंड एक फोकस है जिसमें से
हम देखते हैं छेद छोटा सा। पर वह दूसरी बात है। कुछ आता, कुछ जाता नहीं। कुछ आता, कुछ जाता नहीं। हम जा रहे हैं। अस्तित्व तो वहीं का वहीं खड़ा है, हम चक्कर लगा रहे हैं। और जो हमें दिखाई पड़ता है वह वर्तमान बन जाता है। और अगर हम वर्तमान पर हम खड़े हो जाएं, क्योंकि हमारे खड़े होने का एक ही रास्ता है कि हम वर्तमान पर खड़े हो जाएं। भविष्य पर तो हम खड़े नहीं हो सकते, क्योंकि वह अभी आया नहीं। उस पर खड़े कैसे होंगे? हम कहेंगेः हम कल खड़े होंगे, जब आ जाएगा। अतीत पर हम खड़े हैं।... सारी चीजें खड़ी हैं। वह हमारे चलने की वजह से भ्रम पैदा हो रहा था कि सारी चीजें चल रही हैं। और ध्यान में रहे, हम इस तरफ जा रहे हैं तो टाइम हमें इस तरफ जाता हुआ मालूम पड़ रहा है।
जैसे एक आदमी दौड़ रहा है, और बगल का मकान उसे भागता हुआ मालूम पड़ रहा
है पीछे की तरफ। वह आदमी खड़ा हो गया, और मकान भी खड़ा हो गया। वह आदमी कहेगा, बड़ी हैरानी की बात है, मैं खड़ा हुआ तो मकान खड़ा हो गया। सच बात यह है कि मकान पहले ही खड़ा था। आप ही सिर्फ भाग रहे हैं। आपके भागने की वजह से एक उलटी गति पैदा हो गई थी दोनों तरफ भागने की, जो कि सिर्फ इलुजरी थी। और शंकर या इस तरह के सारे लोग जो टाइम के बिल्कुल खिलाफ हैं, जो कहते हैं कि समय सबसे बड़ा भ्रम है। और इसलिए एक बात कभी खयाल में नहीं आई होगी... जिन

लोगों को भी मोक्ष, आत्मा, परमात्मा इस दिशा में कुछ भी गति हुई है, वे एक शर्त जरूर रखेंगे, वे कहेंगेः कालातीत। समय के बाहर। चाहे वह मोक्ष हो, चाहे ब्रह्म हो, चाहे आत्मा हो--वह काल के बाहर होगा। और हमारा सब अनुभव काल के भीतर है।
बड़ी देर लगा दी। नहीं, हम तो बड़ी देर से राह देख रहे थे। शांति बाबू बड़ी जल्दी आते हैं। आइए बैठिए? कैसी तबीयत है? आप तो बड़ी देर लगाए।... क्योंकि साधु के पास ही खाली हाथ न गए तो फिर कहां जाएंगे।

प्रश्नः जैसा आप कहते हैं कि श्वास पर ध्यान करें तो मन शांत हो जाता है...

हूं, हूं।

प्रश्नः... मन शांत हो जाए...

तो भी श्वास दीखने लगता है...

प्रश्नः... तो श्वास दीखने लगता है।

... बस, बस यह सब ठीक है।

प्रश्नः यह बात ठीक... ?

बिल्कुल ही ठीक। असल में, असल में दो छोर हैं। कहीं से भी चलें, दूसरे
पर पहुंच जाते हैं। और इसलिए श्वास पर ध्यान रखने को कहता हूं। जापान में बच्चों को वे बचपन से एक बहुत बढ़िया बात सिखाते हैं। वे किसी बच्चे को नहीं कहते कि क्रोध न करो। वे यह कहते हैं कि जब क्रोध हो तब तुम जोर से श्वास लो। और अगर जोर से श्वास लो तो साथ में क्रोध नहीं कर सकते हैं। यह असंभावना है। एक रिदम हो श्वास में तो फिर क्रोध नहीं कर सकते। क्योंकि उसकी जो लय है, वह टूटनी चाहिए। वह बड़ी होशियारी की बात है। यानी वह नहीं टूटेगी, तो क्रोध नहीं कर सकोगे; क्रोध न करो, तो वह नहीं टूटेगी। और हमारा पूरा शरीर और मन, कोई ऐसी बहुत अलग-अलग चीजें नहीं हैं। एक ही चीज जैसे और गहरे में प्रवेश कर गई है।
तो कहीं से भी शुरू करो। अगर श्वास से शुरू करो, तो मन शांत होगा; अगर
मन शांत हो जाए, तो श्वास पर ध्यान चला जाएगा। मन की शांत अवस्था में सिवाय श्वास के और कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता। बस वही एक रिदम रह जाती है। क्योंकि वह हमारे जीवन की निकटतम...

प्रश्नः आपने मुझे फिर शंका में डाल दिया है कि अलावा श्वास के कुछ दिखाई ही नहीं देता। ऐसा तो नहीं। आप यह जागरूकता की बात कहते हैं उसमें तो यह कि सब कुछ ही दिखाई देता है।

दिखाई देने का मेरा मतलब नहीं समझे तुम। मेरा मतलब...

प्रश्नः... श्वास पर केंद्रीकरण हो जाएगा

न, न, न...

प्रश्नः तब तो दूसरी तरफ... ?

केंद्रीकरण के लिए, केंद्रीकरण के लिए भी नहीं कर रहा हूं। जैसे ही तुम शांत होओगे तो तुम्हारे निकटतम चेतना के जो गतिविधि है, जो मूवमेंट है वह श्वास का है। फिर तो सब मूवमेंट दूर है। फिर तो सब फासले पर है। निकटतम

मूवमेंट जो है वह श्वास का है। और वह तो हम इतने उलझे हुए हैं बाहर कि हमें श्वास का मूवमेंट पता नहीं चलता। जैसे ही हम शांत होंगे, वह मूवमेंट पता चलेगा।
और वह मूवमेंट भी अपने में इतना है कि जब पता चलेगा तो वही तुम्हें घेर लेगा--एकाग्र नहीं है, वह तो वही तुम्हें घेर लेगा। और सब इतना दूर मालूम होगा, इतना दूर जैसे तुम्हारे बीच और सड़क पर बजने वाले हॉर्न के बीच मीलों का फासला है। वह फासला इसलिए पैदा हो जाएगा कि तुम अपने भीतर इतने चले गए हो कि वहां से वह सड़क तो बहुत दूर पड़ गई। वहां से तो निकटतम जो ध्वनियों का जगत है, वह श्वास रह जाती है। और वहीं अगर ध्यान बना रहा, बना रहा, तो एक दिन वहां से भी उजड़ जाता है--एकदम, और वह जंप है। वह आखिरी बिंदु है, जिसका हमें बोध रहता है। उस पर से भी वह रिदम अचानक उजड़ जाएगा। अचानक तुम पाओगेः बाहर नहीं गए तुम, श्वास का बोध भी विदा हो गया।

प्रश्नः इसे ही आप विस्फोट कहते हैं?

इसे विस्फोट कहूंगा। मन जब तक शांत है तब तक श्वास दिखाई पड़ेगी, और मन शून्य हुआ कि श्वास भी गई। फिर जो रह जाता है उसे शब्द में कहने का कोई उपाय नहीं है। श्वास आखिरी पड़ाव है। यानी जहां तक हिसाब-किताब रख सकते हो, उसके बाद हिसाब-किताब गया। उसके बाद अचानक तुम्हें ऐसा भी लग सकता है कि बिल्कुल मर गए। और पहला अनुभव करीब-करीब ऐसा ही होगा--कि जैसे समाप्ति हो गई। क्योंकि हमारे जीवन का बोध श्वास से ही बंधा हुआ है। वह विस्फोट की घटना है। वह एक्सप्लोजन है।

प्रश्नः उसका साधन एक मात्र यही है कि श्वास पर ध्यान रखे रखें?

साधन और भी हैं। हां, लेकिन कोई भी साधन से फर्क नहीं पड़ता। लेकिन यह सरलतम मेरे खयाल में हैं। सरलतम हैं।

प्रश्नः मेरे बच्चे ने एक बड़ा अजीब सा प्रश्न किया?

बताइए, बताइए।

प्रश्नः चार वर्ष का बच्चा है। मंदिर गया, वह कहता हैः बतलाओ पापा, भगवान क्या होता है? मैंने उससे कहाः बड़े हो जाओगे, तब समझोगे। वह कहता हैः नहीं, मैं अभी समझ सकता हूं। आप बतलाएं तो सही। उसको कोई उत्तर दिया जा सकता है?

झूठ तो बोल ही दिया। उत्तर तो दे ही दिया। कहते हैं, बड़े हो जाओगे तब समझ जाओगे। कौन बड़ा होकर समझ गया, यह तो पता लगाओ?

प्रश्नः मैंने कहा है कि सोच कर बतलाऊंगा कुछ अगर समझाया जा सके?

एक तो यह बात गलत ही है कि कोई बड़े होकर जान लेगा। क्योंकि जानने से बड़े होने का क्या संबंध? वह बच्चा ठीक कह रहा है। क्योंकि बड़े बहुत तो हैं (अस्पष्ट 75 : 04...) चारों तरफ, उनमें से कौन जान लेता है? बड़े होने से कौन जान लेता है? दूसरा तुम कहते हो कि सोच कर बताऊंगा, वह भी बिल्कुल गलत है। क्योंकि सोच कर अब तक कौन बता सका है?

प्रश्नः नहीं, मैंने तो इस आशा में कह दिया कि आपने पूछ कर बतला दूंगा।

नहीं, तो किसी से पूछ कर भी कहां बता सके हैं? किसी से पूछ कर भी कौन बता सका है? नहीं संभव है। असल में हमें अपना अज्ञान स्वीकार करना चाहिए।

जहां भी मौका मिल जाए, अज्ञान को स्वीकार करने का जहां भी मौका मिल जाए उसे चूकना नहीं चाहिए। क्योंकि वह ज्ञान की दिशा में बड़ा कदम है। अज्ञान की स्वीकृति विनम्रता की दिशा में बड़ा कदम है।
मेरी दृष्टि में तो ज्ञान के अतिरिक्त और कोई अहंकार ही नहीं है। न धन का, न यश का, न पद का। यह कोई अहंकार-वहंकार नहीं है। मगर बड़े मजे की बात हैः ज्ञानी ने अपने को बचा लिया है, सबको अहंकारी सिद्ध किया हुआ है। हम नहीं जानते हैं तो यह कहना चाहिए न, कि हम नहीं जानते हैं। और हम जो कर सकते हैं, वह इतना ही कर सकते हैं कि हम नहीं जानते हैं। यह उस बच्चे का भी भाव बनना शुरू हो जाएगा है कि वह भी नहीं जानता है।
क्योंकि न जानने की जो पी.ड़ा है, वही खोज में ले जाती है। उत्तर कोई दूसरा थो.ड़े ही देगा उसे कभी। न तुम दे सकते, न मैं दे सकता। उत्तर तो उसे ही मिलेगा कभी। उसे मिल सके इसका, इसके लिए हम कोई बाधा न डालें, इतना ही हम कर सकते हैं।

प्रश्नः आगे प्रश्न भी पूछ सकता है कि आप मंदिर क्यों जाते है?

जरूर पूछ सकता है और बताना चाहिए। और जो सच्चाई है वह बतानी चाहिए। कि पत्नी के डर से आए हुए हैं; या पड़ोसियों के डर से आए हुए हैं; या समाज के डर से आए हुए हैं; या एक बुरी लत बन गई है, छूटती नहीं; नहीं आते तो ऐसा लगता है कि कुछ खास काम छूट गया है। जैसे सिगरेट पीने का है, ऐसा मंदिर आने का बन गया है। जो सच हो वह उसे कहना चाहिए।

प्रश्नः यह तो बड़ा मुश्किल प्रश्न है, ध्यान में बैठे हैं तब भी वह कहता है कि क्या कर रहे हो?

हां, कहेगा।

प्रश्नः तो फिर उसको कुछ जवाब दिया जा सकता है?

हां-हां। जो जवाब सूझे वह देना चाहिए। जो दिखे सच-सच, जवाब देने के लिए नहीं--जो हो। मैं जो, मैं जो कह रहा हूं वह यह है कि एक तो जवाब होता है देने के लिए। नहीं उसका कोई मतलब ही नहीं, मूल्य ही नहीं। हम सब बच्चों को इसी तरह तो बिगाड़ रहे हैं कि हम वे जवाब दे रहे हैं, जो देने चाहिए। और आज नहीं कल बच्चे भी पता लगा लेते हैं कि सब झूठ है। सब मां-बाप झूठ थे, उनकी सब परंपराएं झूठ थीं। सब शास्त्र झूठ थे, सब गुरु झूठ थे। सरासर सब तरफ झूठ थे। यह बच्चों को जिस दिन पता चलता है, उस दिन उनके जीवन में बड़े संकट का क्षण होता है। अनास्था हम पैदा करवाते हैं झूठी आस्था थोप कर। जब अनास्था पैदा होती है तो हम दुख लाते हैं। वह दुख तो आने ही वाला है। वह हमने खुद बीज बो दिया उसका। मेरा तो कहना यह है कि हम नहीं जानते तो हमें साफ कहना चाहिए।
मैं पीछे लारेंस से कह रहा था। लारेंस एक बगिया में घूम रहा है। एक छोटा बच्चा उसके साथ है, और उससे पूछता है कि वृक्ष हरे क्यों हैं? तो वह लारेंस कहता हैः दि ट्रीज आर ग्रीन बिका.ज दे आर ग्रीन। हरे हैं क्योंकि हरे हैं। वह बच्चा कहता है, आप कैसा पागलपन का उत्तर देते हैं? यह कोई उत्तर हुआ। वृक्ष हरे हैं क्योंकि हरे हैं। लारेंस ने कहाः बस इतना ही उत्तर मुझे पता है। इसके आगे, इसके आगे मैं अज्ञानी हूं। इसके आगे मैं अज्ञानी हूं। अब यह जो आदमी है, अत्यंत ईमानदार है।
मेरी दृष्टि में सत्य की खोज में, अगर कहीं कोई सत्य है तो ऐसा व्यक्ति पहुंच भी सकता है। लेकिन जानने वाले लोग कभी नहीं पहुंच सकते हैं। वे जो पहले से जाने हुए बैठे हैं। पंडित तो कभी नहीं पहुंचता, पहुंच ही नहीं सकता है। पापी पहुंच भी सकता है। क्योंकि पापी विनम्र हो सकता है, पंडित नहीं हो सकता है विनम्र। लेकिन हमें कभी भी मानने में तकलीफ होती है कि हम नहीं जानते हैं। बहुत तकलीफ होती है।

एक नसरुद्दीन के बाबत एक उल्लेख है। उसके गांव के सम्राट ने नसरुद्दीन को पकड़वा कर बुलवा लिया। और उसने कहा कि मैंने तय किया है कि कल से, कल मेरा जन्म-दिन है और कल से राजधानी में असत्य बंद करवा दूंगा। और जो असत्य बोलेगा, उसको सूली पर लटका दूंगा। तो नसरुद्दीन ने कहा कि यह सूली कहां है आपकी? क्योंकि कल सुबह सबसे पहले मैं ही आ जाना चाहता हूं। तो उसने कहाः ठीक दरवाजे पर नगर के सूली है। और दरवाजे पर ही कल पूछताछ जारी रहेगी। जो आदमी झूठ बोलता हुआ पकड़ा जाएगा उसे सूली वहीं दरवाजे पर दे देंगे, ताकि पूरा गांव देखे। तो नसरुद्दीन ने कहा कि कल सुबह दरवाजे पर ही मिलेंगे। पर राजा ने कहाः मैंने तुम्हें बुलाया था यह पूछने के लिए कि जो मैं कर रहा हूं, वह ठीक है? उसने कहाः यह कल ही, वहीं बात हो जाएगी। वह नसरुद्दीन बहुत अदभुत आदमी है।
सुबह दरवाजा खुला तो नसरुद्दीन अपने गधे पर बैठा हुआ पहला आदमी प्रवेश किया दरवाजे में। राजा ने पूछा, अरे कहां जा रहे हो सुबह-सुबह? तो नसरुद्दीन ने कहा कि सूली पर लटकने। तो उस राजा ने कहा यह तो बड़ी मुसीबत हो गई। तुम सरासर झूठ बोल रहे हो। तो नसरुद्दीन ने कहा कि झूठ बोलने वाले को सूली पर लटका दो। तो उस राजा ने कहा, फिर तो मैं बड़ी मुश्किल में पड़ जाऊंगा। सूली पर लटका कर तुम सच हो जाओगे। फिर नसरुद्दीन ने कहा कि फिर तय कर लो, जैसा ठीक समझो। तो मैं जाऊं कि रुकूं। तो उस सम्राट ने कहाः तुमने बड़ी मुश्किल में डाल दिया। तो नसरुद्दीन ने कहा कि अभी तक तय ही नहीं हुआ, सच क्या है और झूठ क्या है? और तुम सूली दे रहे हो? तुम इस झंझट में पड़ो ही मत। तुम इस झंझट में ही मत पड़ो, क्योंकि इतना आसान नहीं है यह तय कर लेना। और नसरुद्दीन ने कहा कि हम तो अज्ञानी हैं। हमसे तुमने पूछने बुलाया था तो हमने कहा कि अपना अज्ञान कल सुबह दरवाजे पर ही प्रकट कर देंगे। और अगर अब तुम ज्ञानी हो तो जैसा ठीक समझो, मैं सूली पर जाने को तैयार हूं।
असल में बच्चों के प्रश्न तो हमेशा सच्चे होते हैं, और बूढ़ों के उत्तर सदा झूठे होते हैं। यह बच्चों और बूढ़ों के बीच एक निरंतर संघर्ष है। बच्चे के झूठ पूछने का कोई कारण ही नहीं है। वे जब पूछेंगे, ठीक ही पूछेंगे। नहीं हैं उत्तर आदमी के पास, बहुत सी बातों के उत्तर नहीं हैं। तो स्वीकार करना चाहिए कि उत्तर नहीं है। लेकिन कोई मानने को राजी नहीं कि उत्तर नहीं है। यह न मानने के कारण हमने फिलॉसफी की इतनी (84 : 01... अस्पष्ट) सिस्टम खड़ी की हैं। यह बच्चों के द्वारा उठाए गए... , उत्तर बड़ों के द्वारा दिए गए-- प्रश्नों के उत्तर दिए गए। लेकिन सब झूठ हैं। और सच की पहली तो बात यह कि जो नहीं मालूम, नहीं मालूम। उसे कहना ठीक नहीं है। और जो हम कर रहे हैं, उसके पीछे जो मोटिव हैं वह भी साफ कहना चाहिए कि हम इसलिए कर रहे हैं।
और अगर हम इतनी सच्चाई बरतें तो मेरा अपना मानना हैः बच्चे को भी रास्ता मिलेगा, और हमको भी रास्ता मिलेगा। क्योंकि बच्चे हमें उस स्थिति में डाल देते हैं जहां सच में हम हैं, लेकिन जिसको हम कभी स्वीकार नहीं करते हैं। वह हमें बहुत बार धक्के देकर वहां खड़ा कर देते हैं, कि जहां पता चल जाए कि हम अज्ञानी हैं। लेकिन हम अपना फिर लिबास ओढ़-आढ़ कर, कपड़े झाड़ कर खड़े हो जाते हैं। हम फिर इंतजाम करके कह देते हैं कि हमें सब मालूम है। लेकिन कितनी देर?
अगर बहुत गौर से देखें, तो यह बच्चे थोड़े ही पूछ रहे हैं आपसे? बहुत गौर से सोचें, तो यह आपकी ही सरलता आपसे पूछती है। यह आपका ही बचपन आपसे फिर बार-बार पूछता है। और जो झूठ हमने ओढ़ रखे हैं, अपने बचपन को भुला दिया सब तरह से, वह बार-बार हमसे पूछ रहा है। और जब भी वह पूछता है तब ही हमारा सब वह पांडित्य हिलता है। क्योंकि वह सब बिल्कुल झूठा खड़ा हुआ है। इसका कहीं कोई मतलब नहीं है।
और मेरा मानना है कि गिरना चाहिए। आदमी के भविष्य के लिए सबसे सुखद यही घटना घटेगी कि आदमी अपने अज्ञान को स्वीकार कर ले। और व्यर्थ के ज्ञान के ताने-बाने न बुने। तब हो भी सकता है कि यह करोड़ों न जानने वाली चीजों में एक-आधा चीज हम जान भी लें। वह सब हो भी सकता है। और कम से कम एक बात तो पक्की है कि हम कुछ भी न जान सकें--तो यह जो अज्ञान की स्वीकृति है, ऐसा व्यक्ति स्वयं को तो जान ही सकता है। क्योंकि तब वह कोई हाइपोथिसिस और कोई

सिद्धांत नहीं ठोंकता। नहीं, कोई उत्तर दे ही मत। और किसी से उत्तर मत पूछिए।
उस बच्चे ने अच्छे प्रश्न उठाए हैं। उसको बुरे उत्तरों को देकर, उसको खराब न करें। उसके प्रश्नों को और बढ़ाएं। उसे कहें कि मुझे भी पता नहीं है, और मैं भी यही पूछना चाहता हूं, लेकिन किससे पूछूं? लो मैं भी तुमसे यही पूछता हूं। इसमें हर्ज क्या है? बच्चे ही बूढ़ों से पूछेंगे, यह क्या जरूरी है? यह क्या जरूरी है? यह हमारा पुराना खयाल बना हुआ है कि बूढ़े उत्तर दें, और बच्चे सवाल करें। यह कोई जरूरी नहीं है। सब उलटा भी हो सकता है। बहुत बार इससे उलटा हो भी जाता है। और नहीं मालूम है, नहीं मालूम। और मेरी अपनी दृष्टि है कि अगर हमें इतना भी खयाल में आ जाए कि हमें नहीं मालूम है तो इतना आनंद उतरता है, उसके पीछे जिसका कोई हिसाब नहीं। क्योंकि हम एकदम हलके हो गए।
आस्पेंस्की गया था गुरजिएफ को मिलने। तो आस्पेंस्की जब मिला तो उसके पहले उसकी किताब जगत विख्यात हो गई। और उसकी एक किताब तो बहुत ही अदभुत थी। टर्शियन आर्गनम उसकी एक किताब है। और कहा जाता है दुनिया में तीन ही किताबें हुई हैं (अस्पष्ट... 87 : 05)। उसमें एक अरस्तु की आर्गनम नाम की किताब है। और दूसरी बैकल की किताब हैः नोवन आर्गनम। और तीसरी आस्पेंस्की की किताब हैः टर्शियन आर्गनम। तो पहली किताब का नाम हैः पहला सिद्धांत। दूसरी किताब का नाम हैः दूसरा सिद्वांत। तीसरी किताब का नाम हैः टर्शियन, थर्ड, तीसरा सिद्धांत। यह किताब उसकी प्रकाशित हुई थी, और बहुत अदभुत किताब है।
वह गुरजिएफ नाम के एक साधारण गरीब फकीर से मिलने गया, एक गांव में। मित्रों ने उससे कहा कि जाओ। जिन मित्रों ने उससे कहा, उसने उन्हें कहा कि वह मुझे क्या सिखाएगा? उन मित्रों ने कहा कि सिखाएगा तो वह शायद ही, लेकिन जो-जो तुम्हें सीखे होने का भ्रम है वह छीन लेगा--सिखाएगा शायद ही। बाकी जो-जो तुम्हें सीखे होने का भ्रम है, वह छीन सकता है।
सिर्फ कौतूहलवश आस्पेंस्की गया। बड़ी देर हो गई गुरजिएफ चुप बैठा है,
और दस पंद्रह लोग बैठे हैं। वह भी चुप बैठा है। आस्पेंस्की तो बेचैन हो गया। न कोई बोलता, न कोई पूछता, न कोई उत्तर देता। वह सोचता था कि कुछ बात चलेगी तो मैं भी पूछ लूंगा। घबड़ा गया। वह पड़ोसी जो उसको लेकर आया था उससे कहा कि मैं कुछ पूछूं? तो उसने कहा कि इन सब के बीच तुम बड़े अज्ञानी सिद्ध होओगे, अगर पूछा। क्योंकि यहां पूछने और उत्तर देने का मामला खत्म हो चुका है। ये लोग उस जगह पहुंच गए हैं जहां चीजें हैं। ऐसा है? उसने कोई उत्तर-वुत्तर नहीं लिखा। तो गुरजिएफ कहता है कि ऐसा है। पूछा कि ऐसा है? उत्तर नहीं है। फिर भी आस्पेंस्की ने कहा, अरे यह क्या बोलता है? हर चीज के उत्तर हो सकते हैं।
तो उसने पूछा गुरजिएफ से कि मैं कुछ पूछना चाहता हूं। तो गुरजिएफ ने
एक कागज उठा कर उसको दे दिया, और कहा कि इस पर लिख दो कि तुम जो भी पूछते हो उस शब्द में खुद भी तो कुछ नहीं जानते हो। अगर खुद भी जानते हो तो फिर मुझे बेकार परेशान मत करो। क्योंकि जाने हुए को जनाना बहुत मुश्किल है। इस कागज पर लिख दो। इस पर लिख दो जो भी तुम न जानते हो। तो फिर उस संबंध में मैं तुमसे कुछ कहूंगा। क्योंकि जो नहीं जानता, वह सुन सकता है। आस्पेंस्की ने लिखा हैः मैं इतनी मुश्किल में कभी नहीं पड़ा था। बड़ी- बड़ी किताबें लिखी थीं, लेकिन उस छोटे कागज पर लिखना बहुत मुश्किल होने लगा था। कलम उठाता हूं कि क्या लिखूं? ईश्वर को जानता हूं? उत्तर आता है कि नहीं जानता, और ईश्वर पर मैंने किताबें लिखी हैं। आत्मा को जानता हूं? उत्तर आता है, कहां? कुछ पता तो नहीं है। और आत्मज्ञान पर मैंने ग्रंथ लिखे हैं। और लोग मुझसे पूछने आते हैं। और मैं मुश्किल में पड़ गया हूं। धीरे-धीरे वे जो दस-बारह चुप बैठे हैं लोग, वे सब हंसने लगे हैं। बहुत जोर से हंसने लगे हैं और मेरा पसीना छूटा जा रहा है। और वह गुरजिएफ कहता है कि जल्दी लिख दो। जो भी तुम्हें आता हो, कुछ भी, जो भी आता हो वह लिख दो तो मैं थोड़ा पहचान तो लूं क्या तुम्हें आता है? फिर आगे बात करेंगे। जो तुम्हें न आता होगा, उस संबंध में बात कर लेंगे। वह उनकी हंसी, और उसका पसीना... ठंडी

रात, वह कागज वापस लौटा देता है। और वह कहता है, यह कागज वापस ले लें। क्योंकि किसी चीज को जानता हूं, यह कहने की हिम्मत नहीं पड़ती मेरी। तो गुरजिएफ खूब हंसता है। वे सब लोग खूब हंसते हैं। (--टेप ब्लैंक.है.)
... खोज रहा हूं और तुम भी खोजो। और तुम्हें पता चल जाए तो मुझे भी बता देना। और मुझे पता चल जाएगा तो मैं तुमको बता दूंगा। लेकिन अभी पता नहीं, अभी पता नहीं है। इतनी अगर सरलता हो तो सच में खोज हो सकती है। तब बाप-बेटे दोस्त हो गए। तब एक खोज पर निकल गए वे दोनों। तब कल वह उसे कुछ पता लगेगा तो वह बताएगा। और कौन जाने पहले उसे पता लग जाए! यह कोई पक्का थोड़े ही है? यह कोई पक्का... । किसी न किसी तरह से वह तुम्हारा नोइंग एटिट्यूट है, वह टूट जाएगा। वह बिल्कुल टूट जाएगा। और बड़ी घटना घटती है, और वह टूटता है।